भारत में अंगरेज़ी राज

तीसरी जिल्द

सुन्दरलाल

प्रकाशक

त्रिवेणी नाथ वाजपेयी

ओंकार प्रेस, इलाहाबाद ।

१९३८

दूसरा संस्करण १०,०००]   [पूरी पुस्तक का मूल्य ७) रु०

विषय सूची

अड़तीसवाँ अध्याय

सिन्ध पर अंगरेज़ों का क़ब्ज़ा

उन्तालीसवाँ अध्याय

अन्य भारतीय नरेशों के साथ एलेनब्रु का व्यवहार

चालीसवाँ अध्याय

पहला सिख युद्ध

इकतालीसवाँ अध्याय

दूसरा सिख युद्ध

बयालीसवाँ अध्याय

दूसरा बरमा युद्ध

तैंतालीसवाँ अध्याय

डलहौज़ी की भू-पिपासा

चवालीसवाँ अध्याय

सन् १८५७ की क्रान्ति से पहले

पैंतालीसवाँ अध्याय

चरबी के कारतूस और क्रान्ति का प्रारम्भ

छयालीसवाँ अध्याय

प्रतिकार का प्रारम्भ

सैंतालीसवाँ अध्याय

दिल्ली पञ्जाब और बीच की घटनाएँ

अड़तालीसवां अध्याय

अवध और बिहार

उनचासवाँ अध्याय

लक्ष्मीबाई और तात्या टोपे

पचासवाँ अध्याय

सन् ५७ के स्वाधीनता संग्राम पर एक दृष्टि

इक्यावनवाँ अध्याय

सन् १८५७ के बाद

चित्र सूची

तीसरी जिल्द

भारत में अंगरेज़ी राज

छत्तीसवाँ अध्याय

भारतीय शिक्षा का सर्वनाश

अंगरेज़ों से पहले भारत में शिक्षा की अवस्था

अंगरेज़ों के आगमन से पहले सार्वजनिक शिक्षा और विद्या प्रचार की दृष्टि से भारत संसार के अग्रतम देशों की श्रेणी में गिना जाता था। आज से केवल सवा सौ वर्ष पहले यूरोप के किसी भी देश में शिक्षा का प्रचार इतना अधिक न था जितना भारतवर्ष में, और न कहीं भी प्रतिशत आबादी के हिसाब से पढ़े लिखों की संख्या इतनी अधिक थी। उन दिनों यहां जन सामान्य को शिक्षा देने के लिए मुख्यकर चार प्रकार की संस्थाएँ थीं।

(१)—असंख्य ब्राह्मण आचार्य अपने अपने घरों पर अपने शिष्यों को शिक्षा देते थे। (२)—अनेक मुख्य मुख्य नगरों में उच्च संस्कृत साहित्य की शिक्षा के लिए 'टोल' या विद्यापीठ क़ायम थीं। (३)—उर्दू और फ़ारसी की शिक्षा के लिए जगह जगह मकतब और मदरसे थे, जिनमें लाखों हिन्दू और मुसलमान बालक शिक्षा पाते थे। (४)—इन सब के अतिरिक्त देश के प्रत्येक छोटे से छोटे ग्राम में ग्राम के समस्त बालकों की शिक्षा के लिए कम से कम एक पाठशाला होती थी। जिस समय तक कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने आकर भारत की सहस्रों वर्षों की पुरानी ग्राम पञ्चायतों को नष्ट नहीं कर डाला उस समय तक ग्राम के समस्त बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध करना प्रत्येक ग्राम पञ्चायत अपना आवश्यक कर्तव्य समझती थी और सदैव उसका पालन करती थी।

इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट के प्रसिद्ध सदस्य केर हार्डी ने अपनी पुस्तक 'इण्डिया' में लिखा है—

"मैक्समूलर ने, सरकारी उल्लेखों के आधार पर और एक मिशनरी रिपोर्ट के आधार पर जो बङ्गाल पर अंगरेज़ों का क़ब्ज़ा होने से पहले वहाँ की शिक्षा की अवस्था के सम्बन्ध में लिखी गई थी, लिखा है कि उस समय बङ्गाल में ८०,००० देशी पाठशालाएँ थीं, अर्थात् सूबे की आबादी के हर चार सौ मनुष्यों पीछे एक पाठशाला मौजूद थी। इतिहास लेखक लडलो अपने 'ब्रिटिश भारत के इतिहास' में लिखता है कि—'प्रत्येक ऐसे हिन्दू गाँव में, जिसका कि पुराना संगठन अभी तक क़ायम है, मुझे विश्वास है कि आम तौर पर सब बच्चे लिखना पढ़ना और हिसाब करना जानते हैं;

किन्तु जहाँ कहीं कि हमने ग्राम पञ्चायत का नाश कर दिया है, जैसे बङ्गाल में, वहाँ ग्राम पञ्चायत के साथ साथ गाँव की पाठशाला भी लोप हो गई है।' "*

प्राचीन भारतीय इतिहास के यूरोपियन विद्वानों में मैक्समूलर प्रामाणिक माना जाता है और लडलो एक प्रसिद्ध इतिहास लेखक था। जो बात जर्मन मैक्समूलर ने बङ्गाल के विषय में कही है उसी का समर्थन अंगरेज़ लडलो ने समस्त भारत के लिए किया है।

प्राचीन भारत में शिक्षा का प्रचार

प्राचीन भारत के ग्रामवासियों की शिक्षा के सम्बन्ध में सन् १८२३ की कम्पनी की एक सरकारी रिपोर्ट में लिखा है—

"शिक्षा की दृष्टि से संसार के किसी भी अन्य देश में किसानों की अवस्था इतनी ऊँची नहीं है जितनी ब्रिटिश भारत के अनेक भागों में।"†

---

* "Max Muller, on the strength of official documents and a missionary report concerning 'education in Bengal prior to the British occupation, asserts that there were then 80,000 native schools in Bengal, or one for every 400 of the population. Ludlow, in his 'History of British India,' says that 'in every Hindoo village which has retained its old farm I am assured that the children generally are able to read, write, and cipher, but where we have swept away the village system as in Bengal there the village school has also disappeared.'"—Keir Hardie in his work on India, p. 5.

† ". . . . . the peasantry of few other countries would bear a comparison as to their state of education with those of many parts of British India."—Report of the Select Committee on the Affairs of the East India Company, vol. i, p. 409, published 1832.

यह दशा तो उस समय शिक्षा के विस्तार की थी, अब रही शिक्षा देने की प्रणाली। इतिहास से पता चलता है कि उन्नीसवीं सदी के शुरू में डॉक्टर एण्ड्रूबेल नामक एक प्रसिद्ध अंगरेज़ शिक्षा प्रेमी ने इस देश से इङ्गलिस्तान जाकर वहाँ पर अपने देश के बालकों को भारतीय प्रणाली के अनुसार शिक्षा देना शुरू किया। ३ जून सन् १८१४ को कम्पनी के डाइरेक्टरों ने बङ्गाल के गवरनर जनरल के नाम एक पत्र भेजा, जिसमें लिखा है—

भारतीय शिक्षा प्रणाली

"शिक्षा का जो तरीक़ा बहुत पुराने समय से भारत में वहाँ के आचार्यों के अधीन जारी है उसकी सबसे बड़ी प्रशंसा यही है कि रेवरेण्ड डॉक्टर बेल के अधीन, जो मद्रास में पादरी रह चुका है, वही तरीक़ा इस देश (इङ्गलिस्तान) में भी प्रचलित किया गया है; अब हमारी राष्ट्रीय संस्थाओं में इसी तरीक़े के अनुसार शिक्षा दी जाती है, क्योंकि हमें विश्वास है कि इससे भाषा का सिखाना बहुत सरल और सीखना बहुत सुगम हो जाता है।

"कहा जाता है कि हिन्दुओं की इस अत्यन्त प्राचीन और लाभदायक संस्था को सल्तनतों के उलट फेर भी कोई हानि नहीं पहुंचा सके × × ×।"*

* "The mode of instruction that from time immemorial has been practised under these masters has received the highest tribute of praise by its adoption in this country, under the direction of the Reverend Dr. Bell, formerly chaplain in Madras; and it is now become the mode by which education is conducted in our national establishments, from a conviction of the facility it affords in the acquision of language by simplifying the process of instruction.

"This venerable and benevolent institution of the Hindoos is represen-

आज कल की पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली में जिस चीज़ को "म्यूचुअल ट्यूशन" कहा जाता है वह पश्चिम के देशों ने भारत ही से सीखी थी।

कम्पनी के शासन में भारतीय शिक्षा का ह्रास

भारत के जिस जिस प्रान्त में कम्पनी का शासन जमता गया उस उस प्रान्त से ही यह सहस्रों वर्ष की पुरानी शिक्षा प्रणाली सदा के लिए मिटती चली गई। कम्पनी के शासन से पहले भारत में शिक्षा की अवस्था और कम्पनी का पदार्पण होते ही एक सिरे से उस शिक्षा के सर्वनाश, दोनों का कुछ अनुमान वेलारी ज़िले के अंगरेज़ कलेक्टर ए० डी० कैम्पवेल की सन् १८२३ की एक रिपोर्ट से किया जा सकता है। कैम्पवेल लिखता है—

"जिस व्यवस्था के अनुसार भारत की पाठशालाओं में बच्चों को लिखना सिखाया जाता है और जिस ढङ्ग से कि ऊँचे दर्जे के विद्यार्थी नीचे दर्जे के विद्यार्थियों को शिक्षा देते हैं, और साथ साथ अपना ज्ञान भी पक्का करते रहते हैं, वह समस्त प्रणाली निस्सन्देह प्रशंसनीय है, और इङ्गलिस्तान में उसका जो अनुसरण किया गया है उसके सर्वथा योग्य है।"

आगे चल कर कम्पनी के शासन में भारतीय शिक्षा की अवनति और उसके कारणों को बयान करते हुए कैम्पवेल लिखता है—

"इस समय असंख्य मनुष्य ऐसे हैं जो अपने बच्चों को इस शिक्षा का लाभ नहीं पहुंचा सकते, × × × मुझे कहते हुए दुख होता है कि इसका

---

ted to have withstood the shock of revolutions . . . "—Letter from the Court of Directors to the Governor-General in council of Bengal; dated 3rd June, 1814.

कारण यह है कि समस्त देश धीरे धीरे निर्धन होता जा रहा है। हाल में जब से हिन्दोस्तान के बने हुए सूती कपड़ों की जगह इङ्गलिस्तान के बने हुए कपड़ों को इस देश में प्रचलित किया गया है तब से यहाँ के कारीगरों के लिए जीविका निर्वाह के साधन बहुत कम होगए हैं। हमने अपनी बहुत सी पलटनें अपने इलाक़ों से हटा कर उन देशी राजाओं के दूर दूर के इलाक़ों में भेज दी हैं, जिनके साथ हमने सन्धियाँ की हैं, हाल ही में इससे भी नाज की माँग पर बहुत बड़ा असर पड़ा है। देश का धन पुराने समय के देशी दरबारों और देशी कर्मचारियों के हाथों से निकल कर यूरोपियनों के हाथों में चला गया है। देशी दरबार और उनके कर्मचारी उस धन को भारत ही में उदारता के साथ व्यय किया करते थे; इसके विपरीत नए यूरोपियन कर्मचारियों को हमने क़ानूनन् आज्ञा दे दी है कि वे अस्थायी तौर पर भी इस धन को भारत में व्यय न करें। ये यूरोपियन कर्मचारी देश के धन को प्रति दिन ढो ढो कर बाहर ले जा रहे हैं, इसके कारण भी यह देश दरिद्र होता जा रहा है। सरकारी लगान जिस कड़ाई के साथ वसूल किया जाता है उसमें भी किसी तरह की ढिलाई नहीं की गई, जिससे प्रजा के इस कष्ट में कोई कमी हो सकती। मध्यम श्रेणी और निम्न श्रेणी के अधिकांश लोग अब इस योग्य नहीं रहे कि अपने बच्चों की शिक्षा का ख़र्च बरदाश्त कर सकें, इसके विपरीत ज्योंही उनके बच्चों के कोमल अङ्ग थोड़ी बहुत मेहनत कर सकने के भी योग्य होते हैं, माता पिता को अपनी ज़िन्दगी की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए उन बच्चों से अब मेहनत मज़दूरी करानी पड़ती है।"

अर्थात् उन्नीसवीं शताब्दी के शुरू में भारत की प्राचीन

सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली के नाश का एक मुख्य कारण यह था कि प्राचीन भारतीय उद्योग धन्धों के सर्वनाश और कम्पनी की लूट और अत्याचारों के कारण देश उस समय तेज़ी के साथ निर्धन होता जा रहा था, और देश के उन करोड़ों नन्हें नन्हें बालकों को जो पहले पाठशालाओं में शिक्षा पाते थे, अब अपना और अपने माँ बाप का पेट भरने के लिए मेहनत मज़दूरी में माँ बाप का हाथ बटाना पड़ता था।

उद्योग धन्धों का नाश और शिक्षा का ह्रास

और आगे चल कर अपने से पहले की हालत और अपने समय की शिक्षा की हालत की तुलना करते हुए कैम्पबेल लिखता है—

"इस ज़िले की क़रीब दस लाख आबादी में से इस समय सात हज़ार बच्चे भी शिक्षा नहीं पा रहे हैं, जिससे पूरी तरह ज़ाहिर है कि शिक्षा में निर्धनता के कारण कितनी अवनति हुई है। बहुत से ग्रामों में, जहाँ पहले पाठशालाएँ मौजूद थीं, वहाँ अब कोई पाठशाला नहीं है, और बहुत से अन्य ग्रामों में जहाँ पहले बड़ी बड़ी पाठशालाएँ थीं वहाँ अब केवल अत्यन्त धनाढ्य लोगों के थोड़े से बालक शिक्षा पाते हैं, दूसरे लोगों के बालक निर्धनता के कारण पाठशाला नहीं जा सकते।

"इस ज़िले की अनेक पाठशालाओं की जिनमें देशी भाषाओं में लिखना, पढ़ना और हिसाब सिखाया जाता है, जैसा कि भारत में सदा से होता रहा है, इस समय यह दशा है। × × × विद्या × × × कभी किसी भी देश में राज दरबार की सहायता के बिना नहीं बढ़ी, और

भारत के इस भाग में विज्ञान को देशी दरबारों की ओर से पहले जो सहायता और उत्तेजना दी जाती थी वह अंगरेज़ी राज के आने के समय से, बहुत दिन हुए, बन्द कर दी गई है।

"इस ज़िले में अब घटते घटते शिक्षा सम्बन्धी ४३३ संस्थाएँ रह गई हैं और मुझे यह कहते लज्जा आती है कि इनमें से किसी एक को भी अब सरकार की ओर से किसी तरह की सहायता नहीं दी जाती।"

इसके बाद प्राचीन भारत में इन असंख्य पाठशालाओं के ख़र्च की व्यवस्था को बयान करते हुए कैम्पबेल लिखता है—

प्राचीन पाठशालाओं की ख़र्च की व्यवस्था

"इसमें कोई सन्देह नहीं कि पुराने समय में, विशेष कर हिन्दुओं के शासन काल में, विद्या प्रचार की सहायता के लिए बहुत बड़ी रक़में और बड़ी बड़ी जागीरें राज की ओर से बँधी हुई थीं × × ×।

"× × × पहले समय में राज की आमदनी का एक बहुत बड़ा हिस्सा विद्या प्रचार को उत्तेजना और उन्नति देने में ख़र्च किया जाता था, जिससे राज का भी मान बढ़ता था, किन्तु हमारे शासन में यहाँ तक अवनति हुई है कि राज की इस आमदनी से अब उलटा अज्ञान को उन्नति दी जाती है। पहले जो ज़बरदस्त सहायता राज की ओर से विज्ञान को दी जाती थी उसके बन्द हो जाने के कारण अब विज्ञान केवल थोड़े से दानशील व्यक्तियों की अकस्मात उदारता के सहारे ज्यों त्यों कर जीवित है। भारत के इतिहास में विद्या के इस तरह के पतन का दूसरा समय दिखा सकना कठिन है × × ×।"*

* "The economy with which children are taught to write in the native

यह सारी कहानी मद्रास प्रान्त की है। ठीक इसी तरह की कहानी, महाराष्ट्र और बम्बई प्रान्त के विषय में एलफ़िन्सटन ने सन् १८२४ की एक सरकारी रिपोर्ट में बयान किया है, किन्तु उसे दोहराना व्यर्थ है।

---

schools and the system by which the more advanced scholars are caused to teach the less advanced, and at the same time to confirm their own knowledge, is certainly admirable, and well deserved the imitation it has received in England. . . .

" . . . there are multitudes who can not even avail themselves of the advantages of the system, . . .

"I am sorry to state, that this is ascribable to the gradual but general impoverishment of the country. The means of the manufacturing classes have been of late years greatly diminished by the introduction of our own English manufactures in lieu of the Indian cotton fabrics. The removal of many of our troops from our own territories to the distant frontiers of our newly subsidized allies has also, of late years affected the demand for grain; the transfer of the capital of the country from the native government and their officers, who liberally expended it in India, to Europeans, restricted by law from employing it even temporarily in India, and daily draining it from the land, has likewise tended to this effect, which has not been alleviated by a less rigid enforcement of the revenue due to the state. The greater part of the middling and lower classes of the people are now unable to defray the expenses incident upon the education of their offspring, while their necessities require the assistance of their children as soon as their tender limbs are capable of the smallest labour.

" . . . of nearly a million of souls in this District, not 7,000 are now at school, a proportion which exhibits but too strongly the result above stated. In many villages where formerly there were large schools, there are now none, and in many others where there were large schools, now only a few children of the most opulent are taught, others being unable from poverty to attend, . . .

"Such is the state in this District of the various schools in which

एक और अंगरेज़ विद्वान वॉल्टर हैमिल्टन ने सन् १८२८ में सरकारी रिपोर्टों के आधार पर लिखा था—

साहित्यिक अवनति

"भारतवासियों के अन्दर साहित्य और विज्ञान की दिन प्रति दिन अवनति होती जा रही है। विद्वानों की संख्या घटती जा रही है और जो लोग अभी तक विद्याध्ययन करते हैं उनमें भी अध्ययन के विषय बेहद कम होते जा रहे हैं। दर्शन विज्ञान का पढ़ना लोगों ने छोड़ ही दिया है ; और सिवाय उन विद्याओं के, जिनका सम्बन्ध विशेष धार्मिक कर्मकाण्डों या फलित के साथ है, और किसी भी विद्या का अब लोग अध्ययन नहीं करते। साहित्य की इस अवनति का मुख्य कारण यह मालूम होता है कि इससे पहले देशी राज में राजा लोग, सरदार लोग

---

reading, writing and arithmetic are taught in the vernacular dilects of the country, as has been always usual in India, ... learning, ... has *never flourished in any country except under the encouragement of the ruling power*, and the countenance and support once given to science in this part of India has long been withheld.

" Of the 533 institutions for education now existing in this District, I am ashamed to say, not one now derives any support from the State, . . .

" There is no doubt, that in former times, especialy under the Hindoo Governments, very large grants, both in money and in land, were issued for the support of learning. . . .

" . . . . considerable alienations of revenue, which formerly did honour to the state by upholding and encouraging learning, have deteriorated under our rule into the means of supporting ignorance ; whilst science, deserted by the powerful aid she formerly received from Government, has often been reduced to beg her scanty and uncertain meal from the chance benevolence of charitable individuals ; and it would be difficult to point out any period in the history of India when she stood more in need . . . "—The Report of A. D. Campbell Collector of Bellary, dated 17th August, 1823, from the Report of the Select Committee etc., vol. i, published 1832.

और धनवान लोग सब विद्या प्रचार को उत्तेजना और सहायता दिया करते थे। वे देशी दरबार अब सदा के लिए मिट चुके और अब वह उत्तेजना और सहायता साहित्य को नहीं दी जाती।"*

सारांश यह कि जो कहानी कैम्पवेल ने मद्रास प्रान्त की बयान की है वही कहानी वास्तव में समस्त ब्रिटिश भारत की थी।

प्राचीन शिक्षा प्रणाली और शिक्षा संस्थाओं के सर्वनाश के चार मुख्य कारण गिनाए जा सकते हैं—

भारतीय शिक्षा के सर्वनाश के कारण

(१) भारतीय उद्योग धन्धों के नाश और कम्पनी की लूट से देश की बढ़ती हुई दरिद्रता।

(२) प्राचीन ग्राम पञ्चायतों का नाश और उस नाश के कारण लाखों ग्राम पाठशालाओं का अन्त।

(३) प्राचीन हिन्दू और मुसलमान नरेशों की ओर से शिक्षा सम्बन्धी संस्थाओं को जो आर्थिक सहायता और जागीरें बँधी हुई थीं, कम्पनी के राज में उनका छिन जाना। और

(४) नए अंगरेज़ शासकों की ओर से भारतवासियों की शिक्षा का विधिवत् विरोध।

इस चौथे कारण को अधिक विस्तार के साथ बयान करना ज़रूरी है। सन् १७५७ से लेकर पूरे सौ वर्ष तक लगातार बहस होती रही कि भारतवासियों को शिक्षा देना अंगरेज़ों की सत्ता के लिए हितकर है या अहितकर। शुरू के दिनों में

अंगरेज़ शासकों की ओर से भारतवासियों की शिक्षा का विरोध

* Walter Hamilton in 1828, Ibid, vol. i, p. 203.

क़रीब क़रीब सभी अंगरेज़ शासक भारतवासियों को शिक्षा देने के कट्टर विरोधी थे।

जे० सी० मार्शमैन ने १५ जून सन् १८५३ को पार्लिमेण्ट की सिलेक्ट कमेटी के सामने गवाही देते हुए कहा था —

"भारत में अंगरेज़ी राज के क़ायम होने के बहुत दिनों बाद तक भारतवासियों को किसी प्रकार की भी शिक्षा देने का प्रबल विरोध किया जाता रहा।"*

मार्शमैन बयान करता है कि सन् १७९२ में जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी के लिए नया चारटर एक्ट पास होने का समय आया तो पार्लिमेण्ट के एक सदस्य विलबरफ़ोर्स ने नए क़ानून में एक धारा इस तरह की जोड़नी चाही जिसका ज़ाहिरा अभिप्राय थोड़े से भारतवासियों की शिक्षा का प्रबन्ध करना था। इस पर पार्लिमेण्ट के सदस्यों और कम्पनी के हिस्सेदारों ने विरोध किया और विलबरफ़ोर्स को अपनी तजवीज़ वापस ले लेना पड़ी।

मार्शमैन लिखता है—

"उस अवसर पर कम्पनी के एक डाइरेक्टर ने कहा कि—'हम लोग अपनी इसी मूर्खता से अमरीका हाथ से खो बैठे हैं, क्योंकि हमने उस देश में स्कूल और कॉलेज क़ायम हो जाने दिए, अब फिर भारत के विषय में

---

* "For a considerable time after the British Government hab been established in India, there was great opposition to any system of instruction for the natives "—J. C. Marshman, in his evidence before the Select Committee of the House of Lords appointed to enquire into the affairs of the East India Company, 15th June, 1833.

हमारा उसी मूर्खता को दोहराना ठीक नहीं है।' × × × इसके बीस वर्ष बाद तक यानी सन् १८१३ तक भारतवासियों को शिक्षा देने के विरुद्ध ये ही भाव इंगलिस्तान के शासकों के दिलों में क़ायम रहे।"*

जाति पाँति से अंगरेज़ों को लाभ

सन् १८१३ में विलायत के अन्दर सर जॉन मैलकम ने, जा उन विशेष अनुभवी नीतिज्ञों में से था, जिन्होंने १९ वीं सदी के शुरू में भारत के अन्दर अंगरेज़ी साम्राज्य को विस्तार दिया, पार्लिमेण्ट की जाँच कमेटी के सामने गवाही देते हुए कहा—

"× × × इस समय हमारा साम्राज्य इतनी दूर तक फैला हुआ है कि जो असाधारण ढङ्ग की हुकूमत हमने उस देश में क़ायम की है उसके बने रहने के लिए केवल एक बात का हमें सहारा है, वह यह कि जो बड़ी बड़ी जातियाँ इस समय अंगरेज़ सरकार के अधीन हैं वे सब एक दूसरे से अलग अलग हैं, और जातियों में भी फिर अनेक जातियाँ और उप जातियाँ हैं; जब तक ये लोग इस तरह एक दूसरे से बटे रहेंगे, तब तक कोई भी बलवा हमारी सत्ता को नहीं हिला सकता। × × × जितना जितना लोगों में एकता पैदा होती जायगी और उनमें वह बल आता जायगा जिससे वे

---

* "On that occasion, one of the Directors stated that we had just lost America from our folly, in having allowed the establishment of schools and colleges, and that it would not do for us to repeat the same act of folly in regard to India; . . . For twenty years after that period, down to the year 1813, the same feeling of opposition to the education of the natives continued to prevail among the *ruling* authorities in this country."—J. C. Marshman, 15th June, 1853, Ibid.

वर्त्तमान अंगरेज़ी सरकार की अधीनता को अपने ऊपर से हटा कर फेंक सकें, उतना उतना ही हमारे लिए शासन करना कठिन होता जायगा।"

इसलिए—

"मेरी राय है कि कोई इस तरह की शिक्षा, जिससे हमारी भारतीय प्रजा के इस समय के जाति पाँति के भेद धीरे धीरे टूटने की सम्भावना हो, या जिसके ज़रिये उनके दिलों से यूरोपियनों का आदर कम हो, अंगरेज़ी राज के राजनैतिक बल को नहीं बढ़ा सकती × × ×।"*

ज़ाहिर है कि सर जॉन मैलकम भारतवासियों को सदा के लिए जाति पाँति और मत मतान्तरों के भेदों में फँसाए रखना, आपस में एक दूसरे से लड़ाए रखना और उन्हें अशिक्षित रखना अंगरेज़ी राज की सलामती के लिए आवश्यक समझता था।

---

* ". . . In the present extended state of our Empire, our security for preserving a power of so extraordinary a nature as that we have established, rests upon the general division of the great communities under the Government, and their sub-division into various castes and tribes; while they continue divided in this manner, no insurrection is likely to shake the stability of our power. . . .

* * *

". . . . we shall always find it difficult to rule in proportion as it (the Indian community) obtains union and possesses the power of throwing off that subjection in which it is now placed to the British Government."

". . . . I do not think that the communication of any knowledge, which tended gradually to do away the subsisting distinctions among our native subjects or to diminish that respect which they entertain for Europeans, could be said to add to the political strength of the English Government. . . . ."—Sir John Malcolm, before the Parliamentary Committee of 1813.

सन् १८१३ की मंज़ूरी

सन् १८१३ में इंगलिस्तान की पार्लिमेण्ट ने जो चारटर एक्ट पास किया, उसमें एक धारा यह भी थी कि—"ब्रिटिश भारत की आमदनी की बचत में से गवरनर जनरल को इस बात का अधिकार होगा कि हर साल एक लाख रुपए तक साहित्य की उन्नति और पुनरुज्जीवन के लिए और विद्वान भारतवासियों के प्रोत्साहन के लिए काम में लाए।" किन्तु यह समझना भूल होगी कि यह एक लाख रुपए सालाना की रक़म वास्तव में भारतवासियों की शिक्षा के लिए मंज़ूर की गई थी। इस मंज़ूरी के साथ साथ जो पत्र डाइरेक्टरों ने ३ जून सन् १८१४ को गवरनर जनरल के नाम भेजा उसमें साफ़ लिखा है कि यह रक़म "राजनैतिक दृष्टि से भारत के साथ अपने सम्बन्ध को मज़बूत रखने के लिए", "बनारस" और एक दो अन्य स्थानों के "पण्डितों को देने" के लिए, "अपनी ओर विचारवान भारतवासियों के हृदय के भावों का पता लगाने" के लिए, "प्राचीन संस्कृत साहित्य का अंगरेज़ी में अनुवाद कराने के लिए," "संस्कृत पढ़ने की इच्छा रखने वाले अंगरेज़ों को सहायता देने के लिए," "उस समय की रही सही भारतीय शिक्षा संस्थाओं का पता लगाने के लिए," और "अपने साम्राज्य के स्थायित्व की दृष्टि से अंगरेज़ों और भारतीय नेताओं में अधिक मेल जोल पैदा करने के उद्देश से" मंज़ूर की गई है। इसी पत्र में यह भी लिखा है कि इस रक़म की मदद से कोई "सार्वजनिक कॉलेज न खोले जावें।"*

* *Affairs of the East India Company*, published 1832, vol. i. pp. 446, 447.

भारतवासियों की शिक्षा की ओर अंगरेज़ शासकों का विरोध इसके बहुत दिनों बाद तक बराबर जारी रहा। सन् १८३१ की जाँच के समय सर जॉन मैलकम के बीस वर्ष पहले के विचारों को दोहराते हुए मेजर जनरल सर लिओनेल स्मिथ ने कहा—

लिओनेल स्मिथ का डर

"शिक्षा का परिणाम यह होगा कि वे सब साम्प्रदायिक और धार्मिक पक्षपात, जिनके द्वारा हमने अभी तक मुल्क को वश में रक्खा है—और हिन्दू मुसलमानों को एक दूसरे से लड़ाए रक्खा है, इत्यादि—दूर हो जायँगे; शिक्षा का परिणाम यह होगा कि इन लोगों के दिमाग़ खुल जायँगे और उन्हें अपनी विशाल शक्ति का पता लग जायगा।"*

अंगरेज़ी राज के लिए शिक्षा की आवश्यकता

किन्तु १८ वीं शताब्दी के अन्त से ही इस विषय में अंगरेज़ शासकों के विचारों में अन्तर पैदा होना शुरू हो गया। कारण यह था कि धीरे धीरे इंगलिस्तान के नीतिज्ञों को भारत के अन्दर दो विशेष कठिनाइयाँ अनुभव होने लगीं। १—चूंकि शिक्षित भारतवासियों की संख्या दिन प्रति दिन घटती जा रही थी, इसलिए अंगरेज़ों को अपने सरकारी महकमों और विशेष कर नई अदालतों के लिए योग्य हिन्दू और मुसलमान कर्मचारियों की कमी महसूस

* "The effect of education will be to do away with all the prejudices of sects and religions by which we have hitherto kept the country—the Mussalmans against Hindoos, and so on; the effect of education will be to expand their minds, and show them their vast power."—Major-General Sir Lionel Smith, K. C. B., the enquiry of 1831.

होने लगी, जिनके विना कि उन महकमों और अदालतों का चल सकना सर्वथा असम्भव था। और २—उन्हें थोड़े से इस तरह के भारतवासियों की भी आवश्यकता अनुभव होने लगी जिनके ज़रिए शेष भारतीय जनता के हृदय के भावों का पता लगता रहे और जिनके ज़रिए से वे जनता के भावों को अपनी ओर मोड़कर रख सकें।

सन् १८३० की पार्लिमेण्टरी कमेटी की रिपोर्ट में इन दोनों आवश्यकताओं का वार वार ज़िक्र आता है और साफ़ लिखा है कि कलकत्ते का 'मुसलमानों का मदरसा' और वनारस का 'हिन्दू संस्कृत कॉलेज' दोनों अठारवीं सदी के अन्त में ठीक इसी उद्देश से क़ायम किए गए थे। इसी उद्देश से सन् १८२१ में पूना का डेकन कॉलेज, सन् १८३५ में कलकत्ते का मेडिकल कॉलेज और सन् १८४७ में रुड़की का इंजीनियरिङ्ग कॉलेज क़ायम हुए।

डाइरेक्टरों ने ५ सितम्बर सन् १८२७ के पत्र में गवरनर जनरल को लिखा कि इस शिक्षा का धन—"उच्च और मध्यम श्रेणी के उन भारतवासियों के ऊपर व्यय किया जाय, जिनमें से कि आपको अपने शासन के कार्यों के लिए सब से अधिक योग्य देशी एजण्ट मिल सकते हैं, और जिनका अपने शेष देशवासियों के ऊपर सबसे अधिक प्रभाव है।"*

* ". . . with the superior and middle classes of the natives, from whom the native agents whom you have occasion to employ, in the functions of Government are most fitly drawn, and whose influence on the rest of their countrymen is the most extensive."—Letter from the Court of Directors to the Governor-General in Council, dated 5th September, 1827, Ibid, p. 490.

१८३३ में बीस लाख की मंज़ूरी

इसका मतलब यह है कि बिना योग्य भारतवासियों की सहायता के केवल अंगरेज़ों के बल ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य का चल सकना सर्वथा असम्भव था, और इसीलिए थोड़े बहुत भारतवासियों को किसी न किसी प्रकार की शिक्षा देना भारत के विदेशी शासकों के लिए अनिवार्य हो गया। इस काम के लिए सन् १८१३ वाली एक लाख रुपए सालाना की मंज़ूरी को सन् १८३३ में बढ़ा कर दस लाख सालाना कर दिया गया, क्योंकि इन बीस वर्ष के अन्दर भारत का बहुत अधिक भाग विदेशी शासन के रङ्ग में रँगा जा चुका था।

सन् १७५७ से लेकर १८५७ तक भारतवासियों की शिक्षा के विषय में अंगरेज़ शासकों के सामने मुख्य प्रश्न केवल यह था कि भारतवासियों को शिक्षा देना साम्राज्य के स्थायित्व की दृष्टि से हितकर है या अहितकर, और यदि हितकर या आवश्यक है तो उन्हें किस प्रकार की शिक्षा देना उचित है।

ईसाई धर्म प्रचार

उस समय अनेक अंगरेज़ नीतिज्ञ भारतवासियों में ईसाई धर्म प्रचार के पक्षपाती थे। इन लोगों को ईसाई धर्म ग्रन्थों का भारतीय भाषाओं में अनुवाद कराने, इंगलिस्तान से आने वाले पादरियों को सहायता देने और सरकार की ओर से मिशन स्कूलों को आर्थिक मदद करने की आवश्यकता अनुभव हो रही थी। यह भी एक कारण था कि जिससे अनेक

अंगरेज़ भारतवासियों को शिक्षा देने के पक्ष में होगए। सन् १८१३ के बाद की बहसों में इस विषय का बार बार ज़िक्र आता है।

शिक्षित भारतवासियों से डर

सन् १८५३ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के लिए अन्तिम चारटर एक्ट पास होने के समय भारतवासियों की शिक्षा के प्रश्न पर अनेक योग्य और अनुभवी अंगरेज़ नीतिज्ञों और विद्वानों की गवाहियाँ जमा की गईं। इन गवाहियों में से नमूने के तौर पर दोनों पक्षों की एक एक या दो दो गवाहियाँ उद्धृत करना काफ़ी है।

४ अगस्त सन् १८५३ को मेजर रॉलेण्डसन ने, जो १७ वर्ष तक मद्रास प्रान्त के कमाण्डर-इन-चीफ़ के साथ फ़ारसी अनुवादक रह चुका था और वहाँ की शिक्षा कमेटी का मन्त्री रह चुका था, पार्लिमेण्ट की कमेटी के सामने इस प्रकार गवाही दी—

प्रश्न—आपने यह राय प्रकट की है कि भारतवासियों को शिक्षा देने का नतीजा यह होता है कि वे अंगरेज़ सरकार के विरुद्ध हो जाते हैं, क्या आप यह समझाएँगे कि इसका कारण क्या है, और सरकार की ओर उनकी शत्रुता किस ढङ्ग की और कैसी होती है?

उत्तर—मेरा अनुभव यह है कि भारतवासियों को ज्यों ज्यों ब्रिटिश भारतीय इतिहास के भीतरी हाल का पता लगता है और आम तौर पर यूरोप के इतिहास का ज्ञान होता है, त्यों त्यों उनके चित्त में यह विचार उत्पन्न होता है कि भारत जैसे एक देश का मुट्ठी भर विदेशियों के क़ब्ज़े में होना एक बहुत बड़ा अन्याय है; इससे स्वभावतः उनके चित्त में प्रायः यह

इच्छा उत्पन्न हो जाती है कि वे अपने देश को इस विदेशी शासन से स्वतन्त्र करने में सहायक हों; और चूँकि इस विचार को दूर करने वाली कोई बात नहीं होती और न उनमें आज्ञा पालन का भाव ही पक्का होता है, इसलिए ब्रिटिश सरकार की ओर द्रोह का भाव इन लोगों में पैदा हो जाता है। × × × मैंने देखा है कि हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों में यह भाव मौजूद है और मुसलमानों में अधिक है। × × × विशेषकर जब ये लोग ब्रिटिश साम्राज्य के रहस्य को जान जाते हैं तो उनके दिलों में असन्तोष का भाव पैदा हो जाता है और आशा जाग उठती है, × × ×।*

इसी प्रश्नोत्तर में यह भी साफ़ सुझाया गया कि यदि शिक्षा के साथ भारतवासियों के दिलों में यह भय उत्पन्न करने का भी प्रयत्न किया जाय कि यदि अंगरेज़ भारत से चले गए तो उत्तर की अन्य जातियाँ आकर भारत पर शासन करने लगेंगी, या भारत में अराजकता फैल जायगी, तो इसका परिणाम कहाँ तक हितकर होगा।

कुछ विपरीत विचार

अनेक अंगरेज़ों के विचार मेजर रॉलेण्डसन के विचारों से मिलते हुए थे। किन्तु दूसरों के विचार इसके विपरीत थे। उनका ख़याल था कि अशिक्षित भारतवासी शिक्षित भारतवासियों की अपेक्षा विदेशीय शासन के लिए अधिक ख़तरनाक होते हैं, और भारतवासियों को केवल पश्चिमी शिक्षा देकर ही उन्हें राष्ट्रीयता

* *Sixth Report from the Select Committee on Indian Territories*, 1853, pp. 155-57.

के भावों से दूर रक्खा जा सकता है और विदेशी शासन के लिए उपयोगी यन्त्र बनाया जा सकता है। प्रसिद्ध नीतिज्ञों में सर फ्रेडरिक हैलिडे की गवाही, जो बङ्गाल का पहला लेफ्टिनेएट गवरनर हुआ, और मार्शमैन की गवाही इसी अभिप्राय की थी।

पूर्वी और पश्चिमी शिक्षा पर बहस

एक और महत्वपूर्ण प्रश्न जो १९ वीं शताब्दी के प्रारम्भ से भारत के उन अंगरेज़ शासकों के सामने उपस्थित था, जो भारतवासियों को शिक्षा देने के पक्ष में थे, वह यह था कि किस प्रकार की शिक्षा देना अधिक उपयोगी होगा। दो भिन्न भिन्न विचारों के लोग उस समय के अंगरेज़ों में मिलते हैं। एक वे जो भारतवासियों को प्राचीन भारतीय साहित्य, भारतीय विज्ञान और संस्कृत, फ़ारसी, अरबी और देशी भाषाएँ पढ़ाने के पक्ष में थे, और दूसरे वे जो उन्हें अंगरेज़ी भाषा, पश्चिमी साहित्य और पश्चिमी विज्ञान की शिक्षा देना अपने लिए अधिक हितकर समझते थे। पहले विचार के लोगों को 'ओरियण्टलिस्ट' और दूसरे विचार के लोगों को 'ऑक्सिडेण्टलिस्ट' कहा जाता है, अनेक वर्षों तक इन दोनों विचार के अंगरेज़ों में खूब वाद विवाद होता रहा। इसी बहस के दिनों में सन् १८३४ में भारत के अन्दर लॉर्ड मैकॉले का आगमन हुआ, जिसके चरित्र का थोड़ा सा वर्णन हम पिछले अध्याय में कर आए हैं। मैकॉले से पहले क़रीब १२ वर्ष तक इस प्रश्न के ऊपर अत्यन्त तीव्र वाद विवाद जारी रह चुका था। मैकॉले के विचारों का प्रभाव इस प्रश्न पर निर्णायक साबित हुआ। मैकॉले

भारतवासियों को प्राचीन भारतीय साहित्य की शिक्षा देने के विरुद्ध और उन्हें अंगरेज़ी भाषा, अंगरेज़ी साहित्य और अंगरेज़ी विज्ञान सिखाने के पक्ष में था। मैकॉले का निर्णय भारतवासियों के लिए हितकर रहा हो या अहितकर, किन्तु मैकॉले का उद्देश केवल यह था कि उच्च श्रेणी के भारतवासियों में राष्ट्रीयता के भावों को उत्पन्न होने से रोका जाय और उन्हें अंगरेज़ी सत्ता के चलाने के लिए उपयोगी यन्त्र बनाया जाय। अपने पक्ष का समर्थन करते हुए मैकॉले ने एक स्थान पर लिखा है—

"हमें भारत में इस तरह की एक श्रेणी पैदा कर देने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए जो कि हमारे और उन करोड़ों भारतवासियों के बीच, जिन पर हम शासन करते हैं, समझाने बुझाने का काम करे। ये लोग ऐसे होने चाहिए जो कि केवल रक्त और रङ्ग की दृष्टि से हिन्दोस्तानी हों, किन्तु जो अपनी रुचि; भाषा, भावों और विचारों की दृष्टि से अंगरेज़ हों।"*

बेण्टिङ्क का फ़ैसला

गवरनर जनरल लॉर्ड विलियम बेण्टिङ्क मैकॉले का बड़ा दोस्त और उसके समान विचारों का था। मैकॉले की इस रिपोर्ट के ऊपर ७ मार्च सन् १८३५ को बेण्टिङ्क ने आज्ञा दे दी कि—

"जितना धन शिक्षा के लिए मञ्जूर किया जाय उसका सबसे अच्छा

---

* "We must do our best to form a class who may be interpreters between us and the millions whom we govern; a class of persons Indian in blood and color, but English in taste, in opinions, words and intellect,"—Macaulay's Minute of 1835.

उपयोग यही है कि उसे केवल अंगरेज़ी शिक्षा के ऊपर ख़र्च किया जाय।"*

मैकॉले के विचारों और उन पर लॉर्ड बेरिटङ्क के फ़ैसले के नतीजे को बयान करते हुए ५ जुलाई सन् १८५३ को प्रसिद्ध इतिहास लेखक प्रोफ़ेसर एच० एच० विलसन ने पार्लिमेण्ट की सिलेक्ट कमेटी के सामने कहा—

"वास्तव में हमने अंगरेज़ी पढ़े लिखों की एक पृथक जाति बना दी है, जिन्हें कि अपने देशवासियों के साथ या तो ज़रा भी सहानुभूति नहीं है और यदि है तो बहुत ही कम।"†

देशी भाषाओं का दबाना

अंगरेज़ी भाषा और अंगरेज़ी साहित्य की शिक्षा के साथ साथ जहाँ तक हो सके देशी भाषाओं को दबाना भी मैकॉले और बेरिटङ्क दोनों का उद्देश था। इतिहास लेखक डॉक्टर डफ़ ने, इस विषय में बेरिटङ्क और मैकॉले की नीति की सराहना करते हुए, तुलना के तौर यह दिखलाते हुए कि जब कभी प्राचीन रोम निवासी किसी देश को विजय करते थे तो उस देश की भाषा और साहित्य को यथाशक्ति दबा कर वहाँ के उच्च श्रेणी के लोगों में रोमन भाषा,

---

* " . . . all the funds appropriated for the purposes of education would be best employed on English education alone."—Lord Bentinck's Resolution, dated 7th March, 1835.

† " . . . we created a separate caste of English scholars, who had no longer any sympathy, or very little sympathy with their countrymen ;"—Prof. H. H. Wilson before the Select Committee of the House of Lords, 5th July, 1863.

रोमन साहित्य और रोमन आचार विचार के प्रचार का प्रयत्न करते थे, साथ ही यह दर्शाते हुए कि यह नीति रोमन साम्राज्य के लिये कितनी हितकर साबित हुई, अन्त में लिखा है—

"× × × मैं यह विचार प्रकट करने का साहस करता हूँ कि भारत के अन्दर अंगरेज़ी भाषा और अंगरेज़ी साहित्य को फैलाने और उसे उन्नति देने का लॉर्ड विलियम बेण्टिङ्क का क़ानून × × × भारत के अन्दर अंगरेज़ी राज के अब तक के इतिहास में कुशल राजनीति की सब से ज़बरदस्त और अपूर्व चाल स्वीकार की जायगी।"*

डॉक्टर डफ़ ने अपने से पूर्व के एक दूसरे अंगरेज़ विद्वान के विचारों का समर्थन करते हुए लिखा है कि भाषा का प्रभाव इतना ज़बरदस्त होता है कि जिस समय तक भारत के अन्दर देशी नरेशों के साथ अंगरेज़ों का पत्र व्यवहार फ़ारसी भाषा में होता रहेगा, उस समय तक भारतवासियों की भक्ति और उनका प्रेम दिल्ली के सम्राट की ओर बराबर बना रहेगा। लॉर्ड बेण्टिङ्क के समय तक देशी नरेशों के साथ कम्पनी का समस्त पत्र व्यवहार फ़ारसी भाषा में हुआ करता था। बेण्टिङ्क पहला गवरनर जनरल था, जिसने यह आज्ञा दे दी और नियम कर दिया कि भविष्य में

---

* ". . . . . I venture to hazard the opinion, that Lord William Bentinck's double act for the encouragement and diffusion of the English language and English literature in the East, ... the grandest master-stroke of sound policy that has yet characterized the administration of the British Government in India."—Dr. Duff, in the Lords' Committee's Second Report on Indian Territories, 1853, p. 409.

समस्त पत्र व्यवहार फ़ारसी के स्थान पर अंगरेज़ी भाषा में हुआ करे।

इतिहास से पता चलता है कि आयरलैण्ड के अन्दर भी आइरिश भाषा को दबाने और यदि "सम्भव हो तो आइरिश लोगों को अंगरेज़ बना डालने के लिए"* वहाँ की अंगरेज़ सरकार ने समय समय पर अनेक अनोखे क़ानून पास किए।

लॉर्ड मैकॉले की रिपोर्ट

यद्यपि सन् १८३५ के बाद से अंगरेज़ शासकों का मुख्य लक्ष्य भारत में अंगरेज़ी शिक्षा के प्रचार की ओर ही रहा, फिर भी 'ओरियण्टलिस्ट' और 'ऑक्सिडेण्टलिस्ट' दोनों दलों का थोड़ा बहुत विरोध इसके बीस वर्ष बाद तक भी जारी रहा। अंगरेज़ शासक भारतवासियों को किसी प्रकार की भी शिक्षा देने में बराबर सङ्कोच करते रहे। यहाँ तक कि लॉर्ड मैकॉले की सन् १८३५ की रिपोर्ट २९ वर्ष बाद सन् १८६४ में पहली बार प्रकाशित की गई। किन्तु अन्त में पल्ला अंगरेज़ी शिक्षा के पक्षवालों का ही भारी रहा।

भारत के अंगरेज़ शासकों की शिक्षा नीति और वर्तमान अंगरेज़ी शिक्षा के उद्देश को स्पष्ट कर देने के लिए, हम अंगरेज़ी शिक्षा के एक प्रबल और मुख्य पक्षपाती लॉर्ड मैकॉले के बहनोई सर चार्ल्स ट्रेवेलियन के उन विचारों को नीचे उद्धृत करते हैं, जो ट्रेवेलियन ने सन् १८५३ की पार्लिमेण्टरी कमेटी के सामने पेश किए।

---

* "for the purpose of changing Irishmen into Englishmen, if that were possible."—Professor H. Holman in his *English National Education*. p. 50.

सर चार्ल्स ट्रेवेलियन ने सन् १८५३ की पार्लिमेण्टरी कमेटी के सामने "भारत की भिन्न भिन्न शिक्षा प्रणालियों के राजनैतिक परिणाम" शीर्षक एक पत्र लिख कर पेश किया। यह पत्र इतने महत्व का है और ब्रिटिश सरकार की शिक्षानीति का इतना स्पष्ट द्योतक है कि उसके कुछ अंशों का इस स्थान पर उद्धृत करना आवश्यक है। भारत-वासियों को अरबी और संस्कृत पढ़ाने या उनके प्राचीन विचारों और प्राचीन राष्ट्रीय साहित्य के जीवित रखने के विषय में सर चार्ल्स ट्रेवेलियन लिखता है कि इसका परिणाम यह होगा—

वर्त्तमान अंगरेज़ी शिक्षा का उद्देश

"मुसलमानों को सदा यह बात याद आती रहेगी कि हम विधर्मी ईसाइयों ने मुसलमानों के अनेक सुन्दर से सुन्दर प्रदेश उनसे छीन कर अपने अधीन कर लिए हैं, और हिन्दुओं को सदा यह याद रहेगा कि अंगरेज़ लोग इस प्रकार के अपवित्र राक्षस हैं, जिनके साथ किसी तरह का मेल जोल रखना लज्जाजनक और पाप है। हमारे बड़े से बड़े शत्रु भी इससे अधिक और कुछ इच्छा नहीं कर सकते कि हम इस तरह की विद्याओं का प्रचार करें जिनसे मानव स्वभाव के उग्र से उग्र भाव हमारे विरुद्ध भड़क उठें।

"इसके विपरीत अंगरेज़ी साहित्य का प्रभाव अंगरेज़ी राज के लिए हितकर हुए बिना नहीं रह सकता। जो भारतीय युवक हमारे साहित्य द्वारा हमसे भली भाँति परिचित हो जाते हैं, वे हमें विदेशी समझना प्रायः बन्द कर देते हैं। वे हमारे महापुरुषों का ज़िक्र उसी उत्साह के साथ करते हैं जिस उत्साह के साथ कि हम करते हैं। हमारी ही सी शिक्षा, हमारी ही सी रुचि और हमारे ही से रहन सहन के कारण इन लोगों में हिन्दोस्तानियत

कम हो जाती है और अंगरेज़ियत अधिक आ जाती है। × × × फिर बजाय इसके कि वे हमारे तीव्र विरोधी हों, या यदि हमारे अनुयायी भी हों तो उनके हृदय में हमारी ओर क्रोध भरा रहे, वे हमारे होशियार और उत्साही मददगार बन जाते हैं। × × × फिर वे हमें अपने देश से बाहर निकालने के प्रचण्ड उपाय सोचना बन्द कर देते हैं, × × ×।

"× × × जब तक हिन्दोस्तानियों को अपनी पहली स्वाधीनता के विषय में सोचने का मौक़ा मिलता रहेगा, तब तक उनके सामने अपनी दशा सुधारने का एक मात्र उपाय यह रहेगा कि वे अंगरेज़ों को तुरन्त देश से निकाल कर बाहर कर दें। पुराने तर्ज़ के भारतीय देशभक्तों के सामने इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है; × × × उनके राष्ट्रीय विचारों को दूसरी ओर मोड़ने का केवल एक ही उपाय है। वह यह कि उनके अन्दर पाश्चात्य विचार पैदा कर दिए जायँ। जो युवक हमारे स्कूलों और कॉलेजों में पढ़ते हैं वे उस असभ्य स्वेच्छाशासन को, जिसके अधीन उनके पूर्वज रहा करते थे, घृणा की दृष्टि से देखने लगते हैं, और फिर अपनी राष्ट्रीय संस्थाओं को अंगरेज़ी ढङ्ग पर ढालने की आशा करने लगते हैं। × × × बजाय इसके कि उनके दिलों में यही विचार सब से ऊपर हो कि हम अंगरेज़ों को निकाल कर समुद्र में फेंक दें, वे इसके विपरीत अब उन्नति का कोई ऐसा विचार तक नहीं कर सकते जो उनके ऊपर अंगरेज़ी राज को रिवट लगा कर और भी अधिक पक्का न कर दे, और जिसके द्वारा वे अंगरेज़ों की शिक्षा और अंगरेज़ों की रक्षा पर सर्वथा निर्भर न हो जायँ। × × ×

× × ×

"× × × हमारे पास उपाय केवल यह है कि हम भारतवासियों को

यूरोपियन ढंग की उन्नति में लगा दें, × × × फिर पुराने ढंग पर भारत को स्वाधीन करने की इच्छा ही उनमें से जाती रहेगी और उनका लक्ष्य ही यह न रह जायगा। देश में अचानक राजक्रान्ति फिर असम्भव हो जायगी और हमारे लिए भारत पर अपना साम्राज्य क़ायम रखना बहुत काल के लिए असन्दिग्ध हो जायगा। × × × भारतवासी फिर हमारे विरुद्ध विद्रोह न करेंगे × × × फिर उनके राष्ट्रीय प्रयत्न यूरोपियन शिक्षा प्राप्त करने और उसे फैलाने और अपने यहाँ यूरोपियन संस्थाएँ क़ायम करने में ही पूरी तरह लगे रहेंगे, जिससे हमें कोई हानि न हो पाएगी। शिक्षित भारतवासी × × × स्वभावतः हमसे चिपटे रहेंगे। × × × हमारी समस्त प्रजा में किसी भी श्रेणी के लोगों के लिए हमारा अस्तित्व इतना सर्वथा आवश्यक नहीं है जितना उन लोगों के लिए, जिनके विचार अंगरेज़ी साँचे में ढाले गए हैं। ये लोग शुद्ध भारतीय राज के काम के ही नहीं रह जाते; यदि जल्दी से देश में स्वदेशी राज क़ायम हो जाय तो उन्हें उससे हर प्रकार का भय रहता है; × × ×।

"× × × मुझे आशा है कि थोड़े ही दिनों में भारतवासियों का सम्बन्ध हमारे साथ वैसा ही हो जायगा जैसा किसी समय हमारा रोमन लोगों के साथ था। रोमन विद्वान टैसीटस लिखता है कि जूलियस ऐग्रीकोला की (जो ईसा से ७८ वर्ष बाद इङ्गलिस्तान का रोमन गवरनर नियुक्त हुआ था और जिसने उस देश में रोमन साम्राज्य की नीवों को पक्का किया) यह नीति थी कि बड़े बड़े अंगरेज़ों के लड़कों को रोमन साहित्य और रोमन विज्ञान की शिक्षा दी जाय और उनमें रोमन सभ्यता के ऐश आराम की रुचि पैदा कर दी जाय। हम सब जानते हैं कि जूलियस

ऐग्रीकोला की यह नीति कितनी सफल साबित हुई। यहाँ तक कि जो अंगरेज़ पहले रोमन लोगों के कट्टर शत्रु थे वे शीघ्र ही उनके विश्वासपात्र और उनके वफ़ादार मित्र बन गये; और उन अंगरेज़ों के पूर्वजों ने जितने प्रयत्न अपने देश पर रोमन लोगों के हमले को रोकने के लिए किए थे उससे कहीं अधिक ज़ोरदार प्रयत्न अब उनके वंशज रोमन लोगों को अपने यहाँ क़ायम रखने के लिए करने लगे। हमारे पास रोमन लोगों से कहीं अधिक बढ़ कर उपाय मौजूद हैं, इसलिए हमारे लिए यह शर्म की बात होगी यदि हम भी रोमन लोगों की तरह भारतवासियों के चित्तों में यह भय उत्पन्न न कर दें कि यदि हम जल्दी से देश से निकल गए तो तुम लोगों पर भयङ्कर आपत्ति आ जायगी। × × ×

× × ×

"ये विचार मैंने केवल अपने दिमाग़ से सोच कर ही नहीं निकाले, वरन् स्वयं अनुभव करके और देख भाल कर मुझे इन नतीजों पर पहुँचना पड़ा। मैंने कई वर्ष हिन्दोस्तान के ऐसे हिस्सों में बिताए जहाँ हमारा राज अभी नया नया जमा था, जहाँ पर कि हमने लोगों के भावों को दूसरी ओर मोड़ने की अभी कोई कोशिश भी नहीं की थी, और जहाँ पर कि उनके राष्ट्रीय विचारों में अभी कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। उन प्रान्तों में छोटे और बड़े, धनी और दरिद्र, सब लोगों के सामने केवल अपनी राजनैतिक दशा सुधारने की ही एक मात्र चिन्ता थी। उच्च श्रेणी के लोगों के दिलों में यह आशा बनी हुई थी कि हम फिर से अपने प्राचीन प्रभुत्व को प्राप्त कर लें; और निम्न श्रेणी के लोगों में यह आशा बनी हुई थी कि यदि देशी राज फिर से स्थापित हो गया तो धन और वैभव प्राप्त करने के

मार्ग हमारे लिए फिर से खुल जायँगे। जिन समझदार भारतवासियों को औरों की अपेक्षा हमसे अधिक प्रेम था उन्हें भी अपनी क़ौम की पतित अवस्था को सुधारने का इसके सिवा और कोई उपाय न सूझता था कि अंगरेज़ों को तुरन्त देश से निकाल कर बाहर कर दिया जाय। इसके बाद मैं कुछ वर्ष बङ्गाल में रहा। वहाँ मैंने शिक्षित भारतवासियों में बिलकुल दूसरी ही तरह के विचार देखे। अंगरेज़ों के गले काटने का विचार करने के स्थान पर, वे लोग अंगरेज़ों के साथ जूरी बन कर अदालतों में बैठने या बेञ्च मैजिस्ट्रेट बनने की आकांक्षाएँ कर रहे थे। × × ×"*

---

* ". . . . would be perpetually reminding the Mohammadans that we are infidel usurpers of some of the fairest realms of the faithful, and the Hindoos, that we are unclean beasts, with whom it is a sin and a shame to have any friendly intercourse. Our bitterest enemies could not desire more than that we should propagate systems of learning which excite the strongest feelings of human nature against ourselves.

"The spirit of English literature, on the other hand, can not but be favourable to the English connection. Familiarly acquainted with us by means of our literature, the Indian youth almost cease to regard us as foreigners. They speak of our great men with the same enthusiasm as we do. Educated in the same way, interested in the same objects, engaged in the same pursuits with ourselves, they become more English than Hindoos, . . . they cease to think of violent opponents, or sullen conformists, they are converted into zealous and intelligent co-operators with us, ... they cease to think of violent remedies, . . .

" . . . . As long as the natives are left to brood over their former independence, their sole specific for improving their condition is, the immediate and total expulsion of the English. A native patriot of the old school has no notion of anything beyond this; . . . It is only by the infusion of European ideas, that a new direction can be given to the national views. The youngmen, brought up at our seminaries, turn with contempt from the barbarous despotism under which their ancestors groaned, to the prospect

सर चार्ल्स ट्रैवेलियन के पूर्वोक्त पत्र के विषय में पार्लिमेण्ट की कमेटी के सदस्यों और ट्रैवेलियन में कई दिन तक प्रश्नोत्तर होता रहा, जिसमें ट्रैवेलियन ने और अधिक स्पष्टता के साथ अपने विचारों को दोहराया और उनका समर्थन किया। इस प्रश्नोत्तर हो में २३ जून सन् १८५३ को ट्रैवेलियन ने कमेटी के सामने बयान किया—

ट्रैवेलियन के और अधिक स्पष्ट विचार

---

of improving their national institution on the English model. . . . So far from having the idea of driving the English into the sea uppermost in their minds, they have no notion of any improvement but such as rivets their connection with the English, and makes them dependent on English protection and instruction. . . .

* * *

"The only means at our disposal . . . . is, to set the natives on a process of European improvement, to which they are already sufficiently inclined. They will then cease to desire and aim at independence on the old Indian footing. A sudden change will then be impossible; and a long continuance of our present connection with India will even be assured to us. . . . The natives will not rise against us, ... The national activity will be fully and harmlessly employed in acquiring and diffusing European knowledge, and naturalising European institutions. The educated classes, . . . will naturally cling to us. . . . There is no class of our subjects to whom we are so thoroughly necessary as those whose opinions have been cast in the English mold; they are spoiled for a purely native regime; they have everything to fear from the premature establishment of a native Government; . . .

" . . . . The Indians will, I hope, soon stand in the same position towards us in which we once stood towards the Romans. Tacitus informs us, that it was the policy of Julius Agricola to instruct the sons of the leading men among the Britons in the literature and science of Rome and to give them a taste for the refinements of Roman civilization. We all know

"अपने यहाँ की शुद्ध स्वदेशी पद्धति के अनुसार मुसलमान लोग हमें 'काफ़िर' समझते हैं, जिन्होंने कि इसलाम की कई सर्वोत्तम बादशाहतें मुसलमानों से छीन ली हैं, × × × उसी प्राचीन स्वदेशी विचार के अनुसार हिन्दू हमें 'म्लेच्छ' समझते हैं, अर्थात् इस तरह के अपवित्र विधर्मी जिनके साथ किसी तरह का भी सामाजिक सम्बन्ध नहीं रक्खा जा सकता; और वे सब के सब मिल कर अर्थात् हिन्दू और मुसलमान दोनों, हमें इस तरह के

---

how well this plan answered. From being obstinate enemies, the Britons soon became attached and confiding friends; and they made more strenuous efforts to retain the Romans, than their ancestors had done to resist their invasion. It will be a shame to us if, with our greatly superior advantages, we also do not make our premature departure be dreaded as a calamity. . .

* * *

"These views were not worked out by reflection, but were forced on me by actual observation and experience. I passed some years in parts of India, where owing to the comparative novelty of our rule and to the absence of any attempt to alter the current of native feeling, the national habits of thinking remained unchanged. There high and low, rich and poor, had only one idea of improving their political condition. The upper classes lived upon the prospect of regaining their former pre-eminence; and the lower, upon that of having the evenues to wealth and distinction reopened to them by the reestablishment of a native government. Even sensible and comparatively well-effected natives had no notion that there was any remedy for the existing depressed state of their nation except the sudden and absolute expulsion of the English. After that, I resided for some years in Bengal, and there I found quite another set of ideas prevalent among the educated natives. Instead of thinking of cutting the throats of the English, they were aspiring to sit with them on the grand jury or on the bench of magistrates. . . . "—A paper on The political tendency of the different systems of education in use in India, by Sir Charles, E. Trevelyan, submitted to the Parliamentary Committee of 1853.

आक्रामक विदेशी समझते हैं जिन्होंने उनका देश उनसे छीन लिया है और उनके लिए धन और मान प्राप्त करने के समस्त मार्ग बन्द कर दिए हैं। यूरोपियन शिक्षा देने का नतीजा यह होता है कि भारतवासियों के विचार एक बिलकुल दूसरी ही ओर मुड़ जाते हैं। पाश्चात्य शिक्षा पाए हुए युवक स्वाधीनता के लिए प्रयत्न करना बन्द कर देते हैं × × × वे फिर हमें अपने शत्रु और राज्यापहारी नहीं समझते, बल्कि हमें अपने मित्र, अपने मददगार और बलवान और उपकारशील मनुष्य समझने लगते हैं, × × × वे यह भी समझने लगते हैं कि भारतवासी अपने देश के पुनरुज्जीवन के लिए जो कुछ इच्छा भी कर सकते हैं वह धीरे धीरे अंगरेज़ों ही के संरक्षण में सम्भव हो सकती है। यदि राजक्रान्ति के पुराने देशी विचार क़ायम रहे तो सम्भव है, कभी न कभी एक दिन के अन्दर हमारा अस्तित्व भारत से मिट जाय। वास्तव में जो लोग इस ढंग से भारत की उन्नति की आशा कर रहे हैं वे इस लक्ष्य को सामने रख कर हमारे विरुद्ध लगातार षड्यन्त्र और योजनाएँ रचते रहते हैं। इसके विपरीत नई और उन्नत पद्धति के अनुसार विचार करने वाले भारतवासी यह समझते हैं कि उनका उद्देश बहुत धीरे धीरे पूरा होगा और उन्हें अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचते पहुँचते सम्भव है युग बीत जायँ।"

भारत की पराधीनता को चिरस्थायी करना

जाँच कमेटी के अध्यक्ष ने ट्रेवेलियन से और अधिक स्पष्ट शब्दों में पूछा कि आप की तजवीज़ का अन्तिम लक्ष्य भारत और इङ्गलिस्तान के राजनैतिक सम्बन्ध को तोड़ना है या उसे सदा के लिए क़ायम रखना है? इस पर ट्रेवेलियन ने फिर उत्तर दिया—

"× × × मुझे विश्वास है कि भारतवासियों को शिक्षा देने × × × का अन्तिम परिणाम यह होगा कि भारत और इंगलिस्तान का पृथक हो सकना दीर्घ और अनन्त काल के लिए टल जायगा, × × ×. यदि इसके विरुद्ध नीति का अनुसरण किया गया × × × तो नतीजा यह होगा कि किसी भी समय हम भारत से निकाले जा सकते हैं, और निस्सन्देह बहुत जल्दी और बड़ी ज़िल्लत के साथ निकाल दिए जायँगे। × × ×

× × ×

"मैं एक ऐसा रास्ता बता रहा हूँ जो हमारे राज के स्थायित्व के लिए सबसे अधिक हितकर होगा। अनेक वर्षों तक ख़ूब अच्छी तरह सोच समझ कर मैंने ये विचार क़ायम किए हैं। मुझे विश्वास है कि मैं इस विषय को पूरी तरह समझता हूँ। × × × मैं एक परिचित उदाहरण आपके सामने पेश करता हूँ। मैं बारह वर्ष भारत में रहा। इनमें से पहले ६ वर्ष मैंने उत्तर भारत में गुज़ारे। मेरा मुख्य स्थान दिल्ली था। शेष छै वर्ष मैंने कलकत्ते में बिताए। जहाँ पर मैंने पहले छै वर्ष गुज़ारे वहाँ पर पुराने शुद्ध देशी विचारों का राज था, वहाँ पर लगातार युद्ध और युद्धों की ही अफ़वाहें सुनने में आती थीं। उत्तर भारत में भारतवासियों की देशभक्ति केवल एक ही रूप धारण करती थी, वे हमारे विरुद्ध साज़िशें कर रहे थे, हमारे विरुद्ध विविध शक्तियों को मिलाने की तजवीज़ें सोच रहे थे, इत्यादि। इसके बाद मैं कलकत्ते आया। वहाँ मैंने बिलकुल दूसरी हालत देखी। वहाँ पर लोगों का लक्ष्य था—स्वतन्त्र अख़बार निकालना, म्युनिसिपैल्टियाँ क़ायम करना, अंगरेज़ी शिक्षा फैलाना, अधिकाधिक हिन्दोस्तानियों को सरकारी नौकरियाँ दिलवाना; और इसी तरह की और अनेक बातें।"

इस पर फिर लॉर्ड मॉएटीगल ने ट्रेवेलियन से पूछा—

"अब अनुमान कीजिए कि इन दोनों में से एक मार्ग का अनुसरण किया जाय; पहला यह कि भारतवासियों को शिक्षा देने और नौकरियाँ देने का विचार छोड़ दिया जाय, और दूसरा यह कि उन्हें अधिक शिक्षा दी जाय और उचित अहतियात के साथ उन्हें अधिकाधिक नौकरियाँ दी जायँ। आपकी राय में इन दोनों मार्गों में से किस मार्ग पर चलने से हिन्दोस्तान और इङ्गलिस्तान का सम्बन्ध अधिक से अधिक काल तक क़ायम रह सकता है ?"

ट्रेवेलियन ने उत्तर दिया—

"निस्सन्देह शिक्षा को बढ़ाने और भारतवासियों को अधिकाधिक नौकरियाँ देने से; मुझे इस बात में किसी प्रकार का ज़रा सा भी सन्देह नहीं है।"*

---

* "According to the unmitigated native system the Mohammadans regard us as *Kafirs*, as infidel usurpers of some of the finest realms of Islam, . . . According to the same original native views, the Hindoos regard us as *Mlechhas*, that is, impure outcasts with whom no communion ought to be held; and they all of them, both Hindoo and Mohammadan, regard us as usurping foreigners, who have taken their country from them, and exclude them from the avenues to wealth and distinction. The effect of a training in European learning is to give an entirely new turn to the native mind. The young men educated in this way cease to strive after independence. . . They cease to regard us as enemies and usurpers, aad they look upon us as friends and patrons, and powerful beneficent persons, under whose protection all they have most at heart for the regeneration of their country will gradually be worked out. According to the original native view of political change, we might be swept off the face of India in a day, and, as a matter of fact, those who look for the improvement of India according to

इङ्गलिस्तान के प्रभुत्व को क़ायम रखना

सर चार्ल्स ट्रेवेलियन या उस विचार के अन्य अंगरेज़ शासकों के बयानों से अधिक वाक्य उद्धृत करने की आवश्यकता नहीं है। निस्सन्देह ठीक यही विचार वेरिटङ्क और मैकॉले जैसों के थे। भारत के अन्दर वर्त्तमान अंगरेज़ी शिक्षा के प्रचार का एक मात्र उद्देश राजनैतिक था और वह उद्देश यह था कि भारत के ऊपर इङ्गलिस्तान के राजनैतिक प्रभुत्व को अनन्त काल तक के लिए क़ायम रक्खा जाय।

---

this model are continually meditating on plots and conspiracies with that object; whereas, according to new and improved system, the object must be worked out by very gradual steps, and ages may elapse before the ultimate end will be attained, . . .

* * *

" . . . . . Now my beliet is, that *the ultimate result of the policy of improving and educating India will be, to postpone the separation for a long indefinite period*, . . . Whereas I conceive that the result of the opposite policy . . . may lead to a separation at any time, and must lead to it at a much earlier period and under much more disadvantageous circumstances . .

* * *

"I am recommending the course which, according to my most deliberate view which I have held for a great many years, founded, I believe, on a full knowledge of the subject, will be most conducive to the continuance of our dominion, . . . I may mention, as a familiar illustration, that I was 12 years in India, and that the first six years were spent up the country, with Delhi for my headquarters, and the other six at Calcutta. The first six years represent the old regime of pure native ideas, and there were continual wars and rumours of wars. The only form which native patriotism assumed up the country was plotting against us, and meditating combinations against us and so forth. Then I came to Calcutta: and there I found quite a new state of things. The object there was to have a free press, to have municipal

सन् १८५३ की तहक़ीक़ात के बाद कम्पनी के डाइरेक्टरों ने १६ जुलाई सन् १८५४ को गवरनर जनरल लॉर्ड डलहौज़ी के नाम वह प्रसिद्ध ख़रीता भेजा जो सन् १८५४ के 'एजूकेशन डिसपैच' के नाम से प्रसिद्ध है, और जिसे 'वुड्स डिसपैच' भी कहते हैं, क्योंकि सर चार्ल्स वुड उस समय कम्पनी के 'बोर्ड ऑफ़ कण्ट्रोल' का प्रेसीडेण्ट था। बोर्ड ऑफ़ कण्ट्रोल के प्रेसीडेण्ट का पद आज कल के भारत मन्त्री के पद के समान था।

एजूकेशन डिसपैच

इस पत्र में डाइरेक्टरों ने अपनी भारत हितैषिता की काफ़ी डींग हाँकी है, किन्तु पत्र में यह भी लिखा है कि शिक्षा की इस नई योजना का उद्देश "शासन के हर महकमे के लिए आपको विश्वसनीय और होशियार नौकर दिलवाना है" और इसका एक उद्देश इस बात को "पक्का कर लेना है कि इङ्गलिस्तान के उद्योग धन्धों के लिए जिन अनेक पदार्थों की आवश्यकता होती है और

भारत को इङ्गलिस्तान की मण्डी बनाना

---

institutions, to promote English education and the employments of the Natives, and various things of that sort"

"6724, Lord Monteagle of Brandon. Then, supposing one of two courses to be taken, either the abandonment of the education and employment of the Natives, or an extension, of education, or an extension, with due precaution, of the employment of the Natives, which of those two courses, in your judgment, will lead to the longest possible continuance of the connexion of India with England?"

"Decidedly the extension of education and the employment of the Natives; I entertain no doubt whatever upon the question."—Sir Charles E. Trevelyan, before the Parliamentary Committee of 1853.

जिनकी इङ्गलिस्तान की हर श्रेणी के लोगों में खूब खपत होती है वे सब पदार्थ अधिक परिमाण में और अधिक निश्चिन्तता के साथ सदा इङ्गलिस्तान पहुँचते रहें, और इसके साथ ही इङ्गलिस्तान के बने हुए माल के लिए भारत में अनन्त माँग बनी रहे।"*

सौ वर्ष का अनुभव

सन् १७५७ से लेकर १८५४ तक क़रीब १०० वर्ष के अनुभव और परामर्श के बाद इङ्गलिस्तान के नीतिज्ञों को इस बात का विश्वास हुआ कि थोड़े से भारतवासियों को अंगरेज़ी शिक्षा देना इस देश में अंगरेज़ी साम्राज्य को क़ायम रखने के लिए आवश्यक है। किन्तु इस पर भी ये लोग इतने बड़े प्रयोग के लिए एकाएक साहस न कर सके। ट्रेवेलियन ने अपने पत्र और बयान दोनों में उन्हें साफ़ आगाह कर दिया था कि अशिक्षित या अंगरेज़ी शिक्षा से वञ्चित भारतवासियों के दिलों में अपनी पराधीनता के विरुद्ध गहरा असन्तोष भीतर ही भीतर भड़कता रहता था, जिसका विदेशी शासकों को पता तक नहीं चल सकता था। यह स्थिति अंगरेज़ों के लिए बेहद ख़तरनाक थी। ट्रेवेलियन के बयान में दिल्ली और उत्तर भारत के अन्दर सन् १८५७ से दस वर्ष पूर्व से क्रान्ति की गुप्त तैयारियों और सम्भावनाओं की ओर साफ़ सङ्केत मिलता

---

* " . . . enabling you to obtain the services of intelligent and trustworthy persons in every department of Government; "—Para 72 and

" . . . secure to us a larger and more certain supply of many articles necessary for our manufactures and extensively consumed by all classes of our population as well as an almost in-exhaustible demand for the produce of British labour."—Para 4, *The Education Despatch of 1854.*

है। ट्रेवेलियन की आशङ्काएँ बहुत शीघ्र सच्ची साबित हुईं। सन् १८५७ की क्रान्ति ने एक बार इस देश के अन्दर ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ों को बुरी तरह हिला दिया।

सरकारी विश्वविद्यालय

अंगरेज़ शासकों को अब ट्रेवेलियन, मैकॉले जैसों की नीतिज्ञता और दूरदर्शिता में कोई सन्देह न रहा। उनका बताया हुआ उपाय ही इस देश में अंगरेज़ी राज को चिरस्थायी करने का एक मात्र उपाय था। लॉर्ड कैनिङ्ग उस समय भारत का गवरनर जनरल था। ठीक सन् १८५७ में कलकत्ते, बम्बई और मद्रास के अन्दर सरकारी विश्वविद्यालय क़ायम करने के लिए क़ानून पास किया गया। सन् १८५९ में इङ्गलिस्तान के प्रधान मन्त्री ने सन् १८५४ के पत्र को फिर से दोहरा कर पक्का किया।

सन् १८५४ का यह मशहूर ख़रीता ही भारत की आजकल की अङ्गरेज़ी शिक्षा प्रणाली और अंगरेज़ शासकों की शिक्षा नीति दोनों का उद्गम स्थान है। ब्रिटिश सरकार का वर्तमान शिक्षा विभाग इसी पत्र का नतीजा है।

शिक्षित भारतवासियों का चरित्र

दिल्ली कॉलेज के शुरू के विद्यार्थी, सर चार्ल्स ट्रेवेलियन के पट्ट शिष्य और प्रथम अफ़ग़ान युद्ध में अंगरेज़ों के परम सहायक, पण्डित मोहनलाल से लेकर आज तक के अधिकांश अंगरेज़ी शिक्षा पाए हुए भारतवासियों के जीवन, उनके रहन सहन और उनके चरित्र से स्पष्ट है कि लॉर्ड मैकॉले और सर चार्ल्स ट्रेवेलियन

जैसों की नीति कितनी दूरदर्शिता की थी। नतीजा यह कि क़रीब डेढ़ सौ वर्ष पूर्व तक जो देश संसार के शिक्षित देशों की अग्रतम श्रेणी में गिना जाता था, वह डेढ़ सौ वर्ष के विदेशी शासन के बाद अब संसार के सभ्य कहलाने वाले देशों में, शिक्षा की दृष्टि से, सबसे अधिक पिछड़ा हुआ है। जिस देश में प्रायः प्रत्येक मनुष्य लिखना पढ़ना और हिसाब करना जानता था, वहाँ अब क़रीब ६४ प्रतिशत अशिक्षित हैं और थोड़े से अंगरेज़ी शिक्षा पाए हुए लोग अपने शेष देशवासियों के सुख दुख की ओर से उदासीन, सच्ची राष्ट्रीयता के भावों से कोसों दूर, विदेशी सत्ता के निर्लज्ज पृष्ठपोषक बने हुए हैं।

सैंतीसवाँ अध्याय

पहला अफ़ग़ान युद्ध

लॉर्ड ऑकलैण्ड

लॉर्ड बेण्टिङ्क के बाद मार्च सन् १८३५ से मार्च सन् १८३६ तक सर चार्ल्स मेटकॉफ़ ने गवरनर जनरल का काम किया।

इस बीच इङ्गलिस्तान के शासकों ने प्रसिद्ध अंगरेज़ नीतिज्ञ एलफ़िन्सटन को, जिसके कृत्यों का ज़िक्र नागपुर और पूना दरबारों के सम्बन्ध में ऊपर किया जा चुका है, पेशवा राज का अन्त कर देने के इनाम में भारत की गवरनर जनरली के पद पर नियुक्त करना चाहा। एलफ़िन्सटन कुछ समय तक बम्बई का गवरनर रह चुका था। किन्तु कहा जाता है, स्वास्थ्य ख़राब होने के कारण वह इस समय अपने मालिकों की इच्छा को पूरा न कर सका।

अन्त में सन् १८३६ में लॉर्ड वेरिटङ्क की राय से लॉर्ड ऑकलैण्ड को गवरनर जनरल नियुक्त करके भारत भेजा गया।

सिन्धु नदी के सरवे का परिणाम

लॉर्ड वेरिटङ्क के समय में सिन्धु नदी की जो सरवे महाराजा रणजीतसिंह को उपहार भेजने के वहाने की गई थी उसके गुल अब अफ़ग़ान युद्ध के रूप में आकर खिले। इस दृष्टि से लॉर्ड ऑकलैण्ड का शासन काल ब्रिटिश भारतीय इतिहास में एक विशेष सीमा चिन्ह है। इस शासन काल में ही ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य की 'वैज्ञानिक सरहद' (साइण्टिफ़िक फ्रण्टीयर) खोजने का प्रयत्न शुरू हुआ; जिसके फल रूप धीरे धीरे सिन्ध, पञ्जाव, वलूचिस्तान, चितराल और उस समय के अफ़ग़ानिस्तान के कुछ भाग को अपनी स्वाधीनता खोनी पड़ी।

लॉर्ड ऑकलैण्ड के समय में दोस्तमोहम्मद ख़ाँ अफ़ग़ानिस्तान का वादशाह था। उससे पहले का वादशाह शाहशुजा उन दिनों लुधियाने में अंगरेज़ों का मेहमान था।

बर्न्स की मध्य एशिया की यात्रा

सिन्धु नदी की सरवे करने और महाराजा रणजीतसिंह को वादशाह विलियम की ओर से घोड़े और गाड़ी भेंट करने का कार्य एक चतुर अंगरेज़ लेफ़्टिनेण्ट बर्न्स के सुपुर्द था। इन उपहारों को रणजीत सिंह की नज़र करने के बाद बर्न्स को सन् १८३२ में मध्य एशिया की ओर भेजा गया। कारण यह बताया गया कि चूँकि अंगरेज़ों को रूस के हमले का डर है, इसलिए भारत और मध्य एशिया के

बीच की ताक़तों को कम्पनी की ओर करने के लिए बर्न्स को भेजा जा रहा है। बर्न्स के साथ एक और अंगरेज़ डाक्टर गैरार्ड, एक काश्मीरी पण्डित मुन्शी मोहनलाल और एक मुसलमान सरवेयर मोहम्मदअली भी थे। यह पण्डित मोहनलाल अत्यन्त चालाक और दिल्ली कॉलेज के शुरू के विद्यार्थियों में से था। ये लोग सब से पहले अफ़ग़ानिस्तान पहुँचे, अमीर दोस्तमोहम्मद ख़ाँ ने इनकी ख़ूब ख़ातिर की। उसके बाद एक साल तक मध्य एशिया में घूमने के बाद सन् १८३३ में ये लोग अनेक पत्रों, मान चित्रों आदि सहित भारत लौट आए। भारत और इङ्गलिस्तान दोनों में बर्न्स की बहुत बड़ी इज़्ज़त हुई। बर्न्स की इस यात्रा ने ही पहले अफ़ग़ान युद्ध की बुनियाद डाली। बर्न्स के भारत लौटने के कुछ दिनों बाद लॉर्ड ऑकलैण्ड ने गवरनर जनरली का पद सँभाला।

बर्न्स का व्यापारी मिशन

अंगरेज़ बहुत दिनों से अफ़ग़ानिस्तान तक अपने पैर फैलाने के लिए लालायित थे। रूस का डर अधिकतर केवल एक बहाना था। सन् १८३६ के अन्त में बर्न्स को दूसरी बार 'व्यापारी मिशन' (कॉमर्शियल मिशन) पर काबुल भेजा गया। इतिहास लेखक सर जॉन के इस मिशन के सम्बन्ध में लिखता है—

"पूर्व की परिभाषा में 'व्यापार' केवल 'देशविजय' का दूसरा नाम है। × × × और यह व्यापारी मिशन गम्भीर राजनैतिक कुचक्रों को अपने भीतर छिपाए रखने का एक कपट वेश था।"*

* "Commerce, in the vocabulary of the East, is only another name fo·

दोस्त मोहम्मद ख़ाँ

[By the courtesy of the curator, Victoria Memorial, Calcutta.]
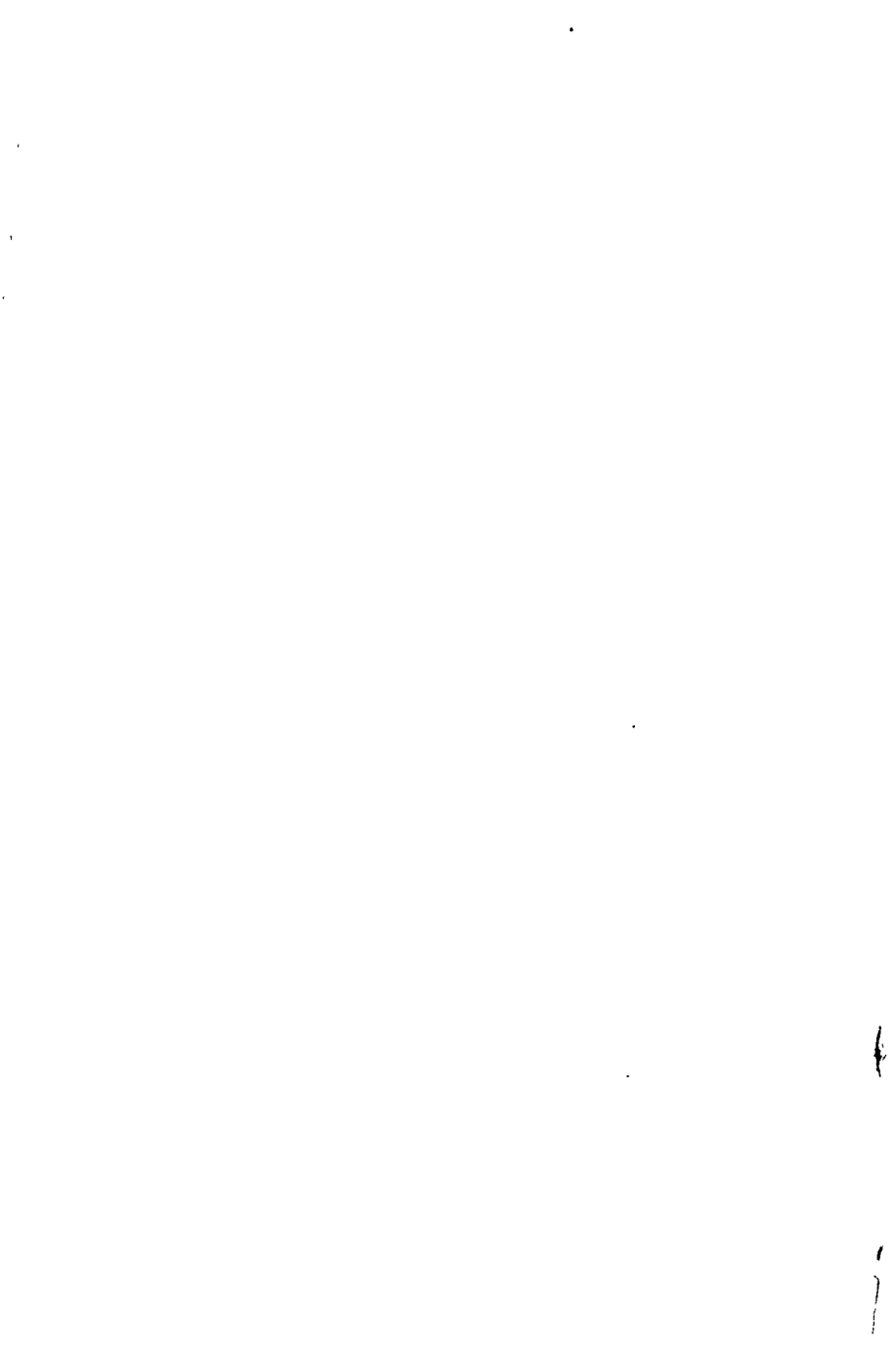
अच्छा साधन मौजूद था। वे केवल युद्ध का वहाना ढूंढ़ रहे थे। उस समय के अनेक उल्लेखों से यह भी साफ़ ज़ाहिर है कि अंगरेज़ों को इस वात का पूरा विश्वास था कि रणजीतसिंह के मरने के वाद रणजीतसिंह का राज आसानी से कम्पनी के क़ब्ज़े में आ जायगा। वर्न्स ने दोस्तमोहम्मद ख़ाँ की वात न मानी। इसी लिए उसे असफल भारत लौट आना पड़ा।

अफ़ग़ानिस्तान के साथ युद्ध की तैयारी

वर्न्स के भारत पहुँचते ही अफ़ग़ानिस्तान के साथ युद्ध की तैयारियाँ शुरू हो गईं। इतिहास-लेखक के लिखता है कि ठीक उस समय जव कि वर्न्स कावुल में दोस्तमोहम्मद ख़ाँ से दोस्ती करने की दिखावटी कोशिशें कर रहा था—

"हिमालय पहाड़ के ऊपर साज़िशों के उस वड़े अड्डे शिमले में दूसरी तरह की सलाहें हो रही थीं— × × × उन लोगों ने शाहशुजा के पुराने पदच्युत कुल को फिर से कावुल की गद्दी पर वैठाने का इरादा कर लिया और शाहशुजा को लुधियाने की ख़ाक में से उठा कर उसे अपना एक साधन और अपने हाथ की एक कठपुतली वना लिया × × ×।"*

पार्लिमेण्ट के काग़ज़ों में जालसाज़ी

निस्सन्देह इन कुचक्रों के सूत्राधार शिमले में रहने वाले कम्पनी के अंगरेज़ प्रतिनिधि थे। पहले अफ़ग़ान युद्ध से अंगरेज़ों की राजनीति और उनके राष्ट्रीय चरित्र पर एक आश्चर्य जनक रोशनी पड़ती है। एक ख़ास वात इस युद्ध के समय यह खुली कि

* "Other counsels were prevailing at Simla—that great hotbed of

इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट के सरकारी पत्रादिक भी सत्य असत्य की दृष्टि से विश्वसनीय नहीं कहे जा सकते। वर्न्स ने दोस्तमोहम्मद ख़ाँ के विषय में काबुल से कुछ पत्र लिखे थे। इन पत्रों में उसने दोस्त-मोहम्मद ख़ाँ के चरित्र की प्रशंसा की थी; किन्तु अब अंगरेज़ दोस्तमोहम्मद ख़ाँ से युद्ध करना चाहते थे। इसलिए दोस्त-मोहम्मद ख़ाँ को जन सामान्य की दृष्टि में गिराना आवश्यक था। वर्न्स के भेजे हुए उन पत्रों में, जो पार्लिमेण्ट की सरकारी रिपोर्टों में दर्ज थे, काट छाँट की गई; यहाँ तक कि जिस दोस्तमोहम्मद ख़ाँ के चरित्र की वर्न्स ने ख़ूब प्रशंसा की थी उसकी वर्न्स ही के क़लम से उन्हीं पत्रों में ख़ूब बुराई दिखला दी गई। इस काट छाँट का भेद कुछ समय बाद अचानक वर्न्स के मर जाने पर उसके पिता ने प्रकट किया और इङ्गलिस्तान के बादशाह के सन्मुख बाज़ाब्ता शिकायत की कि आपके मन्त्रियों ने इस प्रकार जाल बना कर मेरे पुत्र के यश को कलङ्कित करने का प्रयत्न किया है; इसी काट छाँट के विषय में इतिहास लेखक के लिखता है—

"सार्वजनिक लोगों के सरकारी पत्र व्यवहार में काट छाँट करने की इस प्रथा के प्रति, निस्सन्देह, मैं अपनी घृणा प्रकट किए बिना नहीं रह सकता। × × × जिस बेईमानी के साथ झूठ पर झूठ संसार के सामने पेश कर दिया जाता है उसमें कोई भी भलाई नहीं है। × × × इस मामले

---

intrigue on the Himalayan hills— . . . . . . They conceived the idea of reinstating the old deposed dynasty of Shah Shuja, and they picked him out of the dust of Ludhiyana to make him a tool and a puppet."—Kaye's *Lives of Indian Officers*, vol. ii, p. 36.

में × × × दोस्तमोहम्मद के चरित्र पर झूठे कलङ्क लगाए गए हैं; बर्न्स के चरित्र पर झूठे कलङ्क लगाए गए हैं; बर्न्स के पत्र व्यवहार में काट छाँट करके बर्न्स और दोस्तमोहम्मद दोनों के बयानों में भयङ्कर झूठ मिला दिया गया है—दोनों ने जो जो बातें नहीं कीं वे, कहा गया है, उन्होंने कीं, और जो बातें उन्होंने कीं, वे कहा गया है, उन्होंने नहीं कीं। × × ×"*

मई सन् १८३८ में बर्न्स काबुल से शिमले वापस आ गया। कहते हैं कि बर्न्स की अनुपस्थिति में रूसी राजदूत का प्रभाव काबुल के दरबार में बढ़ने लगा।

अपहरण नीति

निरपराध अफ़ग़ानियों के साथ युद्ध छेड़ने के लिए केवल भारत के अंगरेज़ ही ज़िम्मेवार न थे। इतिहास-लेखक कीन साफ़ लिखता है कि इङ्गलिस्तान के मन्त्री पहले से अफ़ग़ानिस्तान पर हमला करने का निश्चय कर चुके थे और उनसे ही इस युद्ध का सूत्रपात हुआ। प्रधान मन्त्री लॉर्ड पामर्सटन के कई गुप्त पत्र इस विषय में गवरनर जनरल के नाम आ चुके थे कम्पनी के डाइरेक्टरों के चेयरमैन ने गवरनर जनरल को एक पत्र लिखा जिसमें उसने गवरनर जनरल को पहले

---

* "I can not indeed suppress the utterance of my abhorrence of this system of garbling the official correspondence of public men—. . . . The dishonesty by which lie upon lie is palmed upon the world has not one redeeming feature . . . In the case before us . . . the character of Dost Mohammed has been lied away; the character of Burnes has been lied away; both, by the mutilation of the correspondence of the latter, has been fearfully misrepresented—both have been set forth as doing what they did not, and omitting to do what they did . . . . "—Kaye's *Lives of Indian Officers*, vol. ii.

पञ्जाब विजय करने और फिर पञ्जाब द्वारा काबुल पर हमला करने की सलाह दी। जनरल जॉन ब्रिग्ज़ ने ८ मई सन् १८७२ को मेजर ईवन्स बेल के नाम एक पत्र लिखा। इसमें लिखा है कि लॉर्ड ऑकलैण्ड के समय में लॉर्ड लैन्सडाउन के मकान पर इङ्गलिस्तान के मन्त्रियों और प्रधान नीतिज्ञों की एक गुप्त सभा हुई थी जिसमें यह निर्णय किया गया था कि जिस तरह हो सके भारत की शेष देशी रियासतों को, जो कम्पनी की सामन्त हैं, अन्त करके उनके इलाक़ों को कम्पनी के राज में मिला लिया जाय। लिखा है कि इसी निर्णय के अनुसार बम्बई की सरकार ने क़ोलाबा की रियासत को, जो ख़ासी बड़ी थी, केवल यह बहाना लेकर कम्पनी के राज में मिला लिया कि दत्तक पुत्र को गद्दी का कोई अधिकार नहीं है। इसी के अनुसार कुछ समय बाद लॉर्ड डलहौज़ी ने झाँसी, नागपुर इत्यादि रियासतों को हज़म किया। वास्तव में यह अपहरण नीति इङ्गलिस्तान के मन्त्रियों की निश्चित नीति थी।*

रणजीतसिंह की मृत्यु

युद्ध शुरू करने से पहले कम्पनी, महाराजा रणजीतसिंह और शाहशुजा तीनों के बीच एक सन्धि हो गई। इस सन्धि ने सिन्ध के स्वाधीन अस्तित्व को भविष्य के लिए सङ्कट में डाल दिया। अंगरेज़ों ने शाहशुजा को ले जाकर काबुल के तख़्त पर बैठाने का वादा किया शाहशुजा ने अंगरेज़ों को सिन्ध में आज़ाद छोड़ने का वचन दिया।

---

* Memoir of General John Briggs, p. 277.

रणजीतसिंह को इस सन्धि से कोई विशेष लाभ न था। यह भी कहा जाता है कि रणजीतसिंह इस सन्धि के साथ सर्वथा सहमत न था, फिर भी ज्यूँ त्यूँ कर उससे हस्ताक्षर करा लिए गए। इस सन्धि के थोड़े दिनों बाद ही महाराजा रणजीतसिंह की मृत्यु हो गई।

इसके बाद आगामी अफ़ग़ान युद्ध के विषय में कम्पनी की ओर से एक एलान प्रकाशित किया गया जो इस तरह के अन्य अनेक एलानों के समान आद्योपान्त झूठ से भरा हुआ है।

अफ़ग़ानिस्तान पर चढ़ाई

अफ़ग़ानिस्तान पर चढ़ाई कर दी गई। बम्बई की सेना सिन्ध और बलूचिस्तान से होती हुई और उत्तरी भारत की सेना पञ्जाब और ख़ैबर के रास्ते अफ़ग़ानिस्तान पहुँचीं। इन सेनाओं की यात्रा को विस्तार से वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है। केवल मार्ग में सिन्ध के अमीरों के साथ अंगरेज़ों ने जो अत्याचार किए उन्हें थोड़ा बहुत बयान करना आवश्यक है।

सिन्ध के अमीरों के साथ ज़बरदस्ती

हैदराबाद सिन्ध के अमीर अपने देश के स्वाधीन नरेश थे। फिर भी बिना उनकी अनुमति लिए अंगरेज़ी सेना ज़बरदस्ती सिन्धु नदी से होती हुई अफ़ग़ानिस्तान की ओर बढ़ चली। कम्पनी सरकार की यह कारवाई उस सन्धि के विरुद्ध थी, जो हाल ही में अंगरेज़ों और सिन्ध के अमीरों के बीच हो चुकी थी। जिस समय सिन्ध के अमीरों ने अंगरेज़ों को सिन्धु नदी से होकर महाराजा रणजीत

सिंह के पास उपहार ले जाने की इजाज़त दी थी, तो इस साफ़ शर्त पर दी थी कि कभी किसी तरह का फ़ौजी सामान उस नदी के रास्ते न ले जाया जायगा। अब लॉर्ड ऑकलैण्ड ने उस समय की इस सन्धि को रद्दी काग़ज़ की तरह फाड़ फेंका। केवल इतना ही नहीं, वरन् के लिखता है —

"यह मालूम था कि अमीर निर्बल हैं; यह भी माना जाता था कि उनके पास ख़ूब धन है; तय हुआ कि उनका धन ले लिया जाय और उनके देश पर क़ब्ज़ा कर लिया जाय। उनकी सन्धियों को सङ्गीनों के ज़ोर तोड़ देने का निश्चय किया गया, किन्तु साथ ही मित्रता और परस्पर प्रेम के अनेक कपट वाक्यों की बौछार जारी रक्खी गई।"*

अमीरों के साथ नई सन्धि

सिन्ध के अमीरों से यह कहा गया कि आइन्दा से आप शाह शुजा को अपना अधिराज स्वीकार करें और उसको अफ़ग़ानिस्तान की गद्दी पर बैठाने के लिए अंगरेज़ों को धन की सहायता दें। अमीरों से तीन लाख रुपए सालाना भविष्य के लिए बतौर ख़िराज के, और इक्कीस लाख रुपया नक़द युद्ध के ख़र्च के लिए तलब किए गए। इस सब के लिए एक नई सन्धि उनके सामने पेश की गई। उस समय की इस समस्त घटना को बयान करते हुए एक इतिहास लेखक, जो अंगरेज़ों के साथ था लिखता है —

* "The Amirs were known to be weak; and they were believed to be wealthy. Their money was to be taken; their country to be occupied: their treaties to be set aside at the point of the bayonet but amidst a shower of hypocritical expressions of friendship and good will."—Kaye's *History of the War in Afghanistan*, vol. i, p. 401.

"कप्तान ईस्टविक ने अवसर पाकर अपने मिशन का काला घूँट अपने मेज़बानों के गले से उतार दिया। × × × अमीरों ने शान्ति के साथ सुना × × × जब नई सन्धि पढ़ी जा चुकी तब बलूचियों में बड़ी व्याकुलता दिखाई दी। उस समय यदि अमीर थोड़ा सा भी इशारा कर देते तो जो अनेक असभ्य और निर्दय बलूची नङ्गी तलवारें लिए हमारे पीछे खड़े हुए थे, उनकी तलवारें हम सब की ज़िन्दगियों को समाप्त कर देने के लिए काफ़ी थीं। पहले अमीर नूर मोहम्मद ख़ाँ ने अपने दोनों साथियों से बलूची ज़बान में कहा कि—"लानत है उस शख़्स के ऊपर, जो इन फ़िरङ्गियों के वादों का एतबार करे।" इसके बाद गम्भीरता के साथ अंगरेज़ प्रतिनिधि की ओर मुख़ातिब होकर उसने फ़ारसी में यह कहा—'मैं समझता हूं, आप अपनी सन्धियों को जब चाहे अपनी इच्छा और सुविधा के अनुसार बदल सकते हैं; क्या अपने दोस्तों और मेहरबानों के साथ सलूक करने का आपका यही तरीक़ा है? आपने हमसे इस बात की इजाज़त माँगी कि हम आपकी फ़ौज को अपने इलाक़े से होकर जाने दें। हमने आपकी मित्रता और आपके × × × वादों पर विश्वास करके बिना सङ्कोच मंज़ूर कर लिया। यदि हमें यह मालूम होता कि अपनी सेना को हमारे मुल्क में ले आने के बाद आप हमें ही धमकी देंगे और ज़बरदस्ती दूसरी सन्धि हमारे सिर मढ़ेंगे और हमसे तीन लाख रुपए सालाना ख़िराज और इक्कीस लाख रुपए नक़द फ़ौज के ख़र्च के लिए तलब करेंगे, तो हम उस सूरत में अपनी जान और अपने मुल्क की रक्षा के लिए उपाय कर रखते। आप जानते हैं हम लोग बलूची हैं, बनिए नहीं हैं, जिन्हें आप आसानी से डरा लें। × × ×'

"कप्तान ईस्टविक ने ये सब बातें शान्ति से सुनीं और फ़ारसी और

अरबी कहावतों में संक्षिप्त उत्तर दिए और कहा—'दोस्तों को ज़रूरत के समय अपने दोस्तों की मदद करनी चाहिए।' मीर नूरमोहम्मद ने मुस्करा कर अपने भाइयों से बलूची ज़बान में कुछ कहा × × × फिर आह भर कर कप्तान ईस्टविक से कहा—आप 'दोस्त' शब्द का जिन माइनों में उपयोग करते हैं उसे मैं चाहता हूं कि मैं समझ सकता। हम आपकी इस समय की माँगों का फ़ौरन् फ़ैसला नहीं कर सकते।"*

सिन्धी प्रजा पर लूट और अत्याचार

इसके बाद सिन्ध के अमीरों को वश में करने के लिए अंगरेज़ी सेना ने सिन्धी प्रजा को लूटना मारना और उन पर तरह तरह के अत्याचार करना शुरू किया। इस लूट मार का उद्देश शायद अमीरों को यह दर्शाना था कि यदि मित्रता के तौर पर आपने कम्पनी को सहायता न दी तो मजबूर कम्पनी की सेना प्रजा से अपनी आवश्यकताओं को पूरा करेगी।

देश भर में अब स्थान स्थान पर अंगरेज़ अफ़सरों ने बलूची प्रजा के साथ जिस तरह के अत्याचार किये, जिस प्रकार निर्दोष बलूची लड़कों के लम्बे बाल एक दूसरे में बाँध कर निर्दयता के साथ अपनी बन्दूकों की गोलियों से उनके सिरों के भेजों को निकाल बाहर किया, उस सब की रोमाञ्चकारी कहानी सेना के अंगरेज़ अफ़सरों के लिखे हुए बयानों में मौजूद है।†

---

* *Autobiography of Lutfullah*, pp. 277-279, 294-296.

† *Narrative of the Campaign of the Army of Indus in Sindh and Cabul, in 1838-39*, by P. H. Kennedy, 2 vols.

अन्त में अपने और विशेष कर अपनी प्रजा के इन असह्य कष्टों से विवश होकर और सुलह की इच्छा से जुलाई सन् १८३९ में सिन्ध के अमीरों ने नए सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये। अनन्त लूट का माल और २१ लाख नक़द युद्ध के ख़र्च के लिए लेकर अंगरेज़ी सेना आगे बढ़ी।

काबुल पर क़ब्ज़ा

इसके बाद अंगरेज़ी सेना अफ़ग़ानिस्तान पहुँची। थोड़े ही दिनों में केवल अपनी साज़िशों के प्रताप अफ़ग़ानिस्तान के अनेक सरदारों को अपनी ओर फोड़ कर, शाहशुजा के नाम पर अंगरेज़ों ने एक बार काबुल पर क़ब्ज़ा कर लिया। शाहशुजा काबुल के तख़्त पर बैठा दिया गया और दोस्त मोहम्मद ख़ाँ को क़ैद करके भारत की ओर रवाना कर दिया गया।

अफ़ग़ानिस्तान की परिस्थिति

जिस उद्देश को सामने रख कर अंगरेज़ों ने अफ़ग़ानिस्तान में प्रवेश किया था वह ज़ाहिरा पूरा होगया। किन्तु अफ़ग़ानिस्तान के अन्दर युद्ध समाप्त नहीं हुआ। अंगरेज़ों की प्रारम्भिक सफलता का कारण केवल यह था कि उन्होंने वहाँ के अनेक सरदारों और बहुत सी प्रजा को, झूठे वादे करके और शाहशुजा को सामने रख कर, अपने पक्ष में कर लिया था। जो पक्ष अंगरेज़ों और शाहशुजा दोनों के विरुद्ध था, उसने दोस्त मोहम्मद ख़ाँ के वीर पुत्र अकबर ख़ाँ के अधीन बराबर दो वर्ष तक युद्ध जारी रक्खा। इस अरसे में अंगरेज़ अधिकारियों की दुरङ्गी चालों, उनके अत्याचारों और दुराचारों

को देख कर धीरे धीरे उस पक्ष का हृदय भी अंगरेज़ों से फिर गया, जो आरम्भ में अंगरेज़ों और शाहशुजा के पक्ष में हो गया था।

अफ़ग़ानिस्तान के अन्दर अंगरेज़ों के अत्याचारों के विषय में स्वयं पण्डित मोहनलाल ने, जो उस समय अंगरेज़ों के साथ था और उनका एक ख़ास आदमी था, अपनी पुस्तक 'लाइफ़ ऑफ़ दोस्त मोहम्मद ख़ाँ' में साफ़ साफ़ लिखा है कि अंगरेज़ों ने राज-शासन न खुले अपने हाथों में लिया और न शाहशुजा के सुपुर्द किया। ऊपर से दिखाने के लिए उन्होंने तख़्त शाहशुजा को दे दिया, किन्तु भीतर ही भीतर वे सलतनत की छोटी सी छोटी बातों में भी सन्धिपत्र के विरुद्ध हस्तक्षेप करते रहे। परिणाम यह हुआ कि शाहशुजा और उसके आदमी भी अंगरेज़ों से असन्तुष्ट हो गए। इसके अतिरिक्त मोहनलाल लिखता है कि अंगरेज़ों ने वहाँ के विविध सरदारों के साथ जो गम्भीर वादे किए थे उनमें से एक को भी पूरा न किया। अंगरेज़ अफ़सरों की दस्तख़ती चिट्ठियाँ इन सब सरदारों के पास मौजूद थीं, किन्तु उनकी ज़रा भी परवा न की गई। पण्डित मोहनलाल के शब्द हैं कि—"वास्तव में हमारे अपने वादों को तोड़ने और अपने राजनैतिक व्यवहार में लोगों को धोखा देने की मिसालें, जिनका मुझे पता है, वे इतनी अधिक हैं कि उन्हें एक सिलसिले में जमा कर सकना कठिन है।"*

---

* "There are, in fact, such numerous instances of violating our engagements and deceiving the people in our political proceedings, within what I am acquainted with, that it would be hard to assemble them in one series."
—*Life of Dost Mohammad Khan*, pp. 208, 209.

अफ़ग़ानिस्तान और बङ्गाल

वास्तव में अंगरेज़ उस समय अफ़ग़ानिस्तान के अन्दर ठीक वही खेल खेलना चाहते थे जो प्लासी के संग्राम के समय वे बङ्गाल में सफलता के साथ खेल चुके थे। दोस्त मोहम्मद ख़ाँ काबुल का सिराजुद्दौला था और शाहशुजा उस देश का मीर जाफ़र था। क्लाइव के मुक़ाबले में इस समय अफ़ग़ानिस्तान के अन्दर कम्पनी सरकार का प्रतिनिधि विलियम मैकनॉटन था, जो अपनी रीति नीति में ठीक क्लाइव का अनुकरण करने का प्रयत्न कर रहा था।

पण्डित मोहनलाल

मैकनॉटन और उसके साथियों ने अपनी साज़िशों से अफ़ग़ानिस्तान के लोगों में सदा के लिए फूट डालने का भरसक प्रयत्न किया। इस काम के लिए काशमीरी पण्डित मोहनलाल उनके हाथों में एक अत्यन्त उपयोगी यन्त्र साबित हुआ। इतिहास लेखक के लिखता है—

"मालूम होता है कि मुन्शी मोहनलाल में देशद्रोही पैदा करने की असाधारण योग्यता थी, उसकी इस योग्यता की दमक युद्ध के अन्त तक फीकी नहीं पड़ी"*

गुप्त हत्याओं का प्रबन्ध

मोहनलाल का मुख्य कार्य था रिशवतें देकर अफ़ग़ान सरदारों को अपने देश के विरुद्ध फोड़ना, अफ़ग़ानियों में फूट डालना, शिया और सुन्नियों को एक दूसरे से लड़ाना और जो सरदार अंगरेज़ों के हाथों

---

* "The Munshi (Mohanlal) seems to have been endowed with a genius for traitor-making, the lustre of which remained undimmed to the very end of the war."—*History of the Afghan War*, by Kaye, vol. i, p. 459.

में न आवें, धन ख़र्च करके उन सब की गुप्त हत्याओं का प्रबन्ध करना। अंगरेज़ अफ़सर लेफ़्टेनेएट जॉन कोनोली ने ५ नवम्बर सन् १८४१ को बालाहिसार के क़िले से मोहनलाल के नाम निम्नलिखित पत्र लिखा—

"क़ाज़िलबाश सरदारों, शीरीनख़ाँ, नायबशरीफ़, और शिया मज़हब के तमाम सरदारों से कहो कि विद्रोहियों के विरुद्ध हमसे मिल जायँ। ख़ान शीरीन को आप एक लाख रुपए देने का वादा कर सकते हैं, इस शर्त पर कि वह विद्रोहियों को मार डाले या गिरफ़्तार कर ले; और सब शियाओं को हथियार देकर उन्हें लेकर फ़ौरन् तमाम विद्रोहियों पर हमला करे। शियाओं के लिए ख़ैरख़्वाही दिखाने का यही वक़्त है। जो सरदार हमारी तरफ़ झुके हुए हैं उनसे कहिए कि वे (अंगरेज़) एलची के पास अपनी ओर से बाइज़्ज़त एजएट भेज दें। कोशिश कीजिए और विद्रोहियों के अन्दर 'निफ़ाक़' (फूट) फैला दीजिए। आप जो कुछ करें, मुझसे सलाह कर लें और मुझे अक्सर लिखते रहें।

"मुख्य मुख्य विद्रोही सरदारों में से हर एक के सिर के लिए मैं दस दस हज़ार रुपए देने का वादा करता हूँ।"*

---

* "Tell the Kuzzil Bash chiefs, Sherreen Khan, Nayab Sheriff, in fact, all the chiefs of Shiyah persuasion, to join against the rebels. You can promise one lakh of rupees to Khan Shereen on the condition of his killing and seizing the rebels and arming all the Shiyas, and immediately attacking all rebels. This is the time for the Shiyas to do good service. Tell the chiefs who are well disposed, to send respectable agents to the Envoy. Try and spread "Nifak" among the rebels. In everything that you do consult me, and write very often.

कप्तान जॉन कोनोली, अफ़गान वेश में

[मोहन लाल की 'लाइफ़ आफ़ अमीर दोस्त मोहम्मद ख़ाँ' से]

मालूम होता है, मुन्शी मोहनलाल काफ़ी चालाक था। वह यह चाहता था कि अंगरेज़ एलची मैकनॉटन के क़लम से भी यह बात स्पष्ट करा ली जाय। अंगरेज़ एलची के नाम उसने एक पत्र में लिखा —

"लेफ़्टेनेण्ट कोनोली के पत्र से मैं यह नहीं समझ सका कि विद्रोहियों को किस तरह क़त्ल किया जाय, किन्तु जिन लोगों को मैंने अब इस काम के लिए नियुक्त किया है वे वादा करते हैं कि वे इन लोगों के घरों में जाकर ऐसे मौक़ों पर, जब वे अकेले हों, उनके सिर काट डालेंगे।"

लिखा है कि सब से पहले सरदार अब्दुल्ला ख़ाँ और मीर मसजिद जी को इन गुप्त हत्यारों की कटारों का शिकार बनाया गया।

केवल इतना ही नहीं, वरन् इन दो वर्ष में अंगरेज़ राजदूतों और अंगरेज़ अफ़सरों की घृणित पाशविक वृत्तियों ने अफ़ग़ान भले घरों के अन्दर त्राहि त्राहि मचा दी। अंगरेज़ इतिहास लेखक सर जॉन के लिखता है —

अंगरेज़ों की घृणित पाशविक वृत्तियाँ

"हमारे अंगरेज़ अफ़सर उन प्रलोभनों को भी न जीत सके, जिनका जीतना कि सबसे अधिक कठिन है। काबुल की स्त्रियों के आकर्षणों का वे मुक़ाबला न कर सके। अफ़ग़ानों को अपनी औरतों की इज़्ज़त का बड़ा ज़बरदस्त ख़याल रहता है; और काबुल के अन्दर इस तरह की काररवाइयाँ

"I promise ten thousand rupees for the head of each of the principal rebel chiefs."—Kaye's *History of the Afghan War*, vol. i, p. 202.

की गईं, जिनके कारण वे लोग शरम से पानी पानी हो गए और बदले के लिए उतारू हो गए। × × × पूरे दो साल तक यह शरम काबुलियों के दिलों में आग की तरह धधकती रही; कुछ प्रभावशाली और प्रसिद्ध आदमियों के घरों की भी इस प्रकार इज़्ज़त ली गई। उन्होंने शिकायतें कीं, किन्तु व्यर्थ। यह कलुषित कार्य खुले किया जा रहा था, सब पर प्रकट था और प्रसिद्ध था। इसका कोई चारा न था। पाप कम होता दिखाई न दिया। बल्कि उस समय तक जारी रहा जब तक कि वह असह्य न हो गया। तब अत्याचार पीड़ितों ने देखा कि हमारे दुख का एक मात्र इलाज हमारे अपने हाथों में है। इस दुखकर घटना को केवल इन मोटे शब्दों में बयान कर देना ही काफ़ी है।"*

अफ़ग़ान चरित्र

अफ़ग़ान भोले थे। वे इन विदेशियों के चरित्र को न समझते थे। शुरू में वे उनकी साज़िशों के चक्कर में फँस गए। किन्तु वे वीर थे, उनमें आत्माभिमान था।

---

* "The temptations which are most difficult to withstand, were not withstood by our English officers. The attractions of the women of Cabul they did not know how to resist. The Afghans are very jealous of the honour of their women; and there were things done in Cabul which covered them with shame and roused them to revenge. . . . For two long years, now had this shame been burning itself into the hearts of the Cabulies; and there were some men of note and influence among them who knew themselves to be thus wronged, complaints were made; but they were made in vain. The scandal was open, undisguised, notorious. Redress was not to be obtained. The evil was not in course of suppression. It went on till it became intolerable and the injured then began to see that the only remedy was in their own hands. It is enough to state broadly this painful fact."—Kaye's *History of the Afghan War*, vol. i, pp. 143, 144.

कप्तान एण्डरसन

[अंगरेज़ी सेना का एक सेनापति, अफ़ग़ान वेश में]

[From "The Military Operations at Cabul," London, 1843]

वे एक सुसङ्गठित क़ौम थे। उनके राष्ट्रीय चरित्र में अभी तक वे घातक दोष उत्पन्न होने न पाए थे जिनके कारण उनसे कहीं अधिक प्राचीन और कहीं अधिक सभ्य भारतवासी अपने प्यारे देश की आज़ादी से हाथ धो चुके थे। अफ़ग़ानों ने अब अच्छी तरह देख लिया कि इन विदेशियों के हाथों हमें सिवाय दग़ा, बेईमानी, लूट, हत्या और अपनी स्त्रियों के सतीत्वनाश के और कुछ न मिल सका, उनकी आँखें खुल गईं। विदेशियों के चरित्र को अब वे पूरी तरह समझ गए। अपनी क़ौमी आज़ादी के साथ साथ क़ौमी इज़्ज़त तक का उन्हें निकटवर्ती भविष्य में ख़ात्मा दिखाई देने लगा। उनका खून खौलने लगा, वे बदले के लिए कटिबद्ध हो गए।

शाहशुजा का वध

अफ़ग़ानियों ने अब एक दिल होकर अंगरेज़ों को अपने देश से बाहर निकाल देने का सङ्कल्प कर लिया। वे समझ गए कि शाहशुजा हमारी समस्त आपत्तियों का मूल कारण है। शाहशुजा को पता लग गया। वह डर गया, उसने फिर एक बार काबुल से भाग कर भारत में आश्रय लेने का इरादा किया। किन्तु इसी बीच ५ अप्रैल सन् १८४२ को एक जोशीले अफ़ग़ान ने अपनी बन्दूक से उस अफ़ग़ानी मीर जाफ़र के पापमय जीवन का अन्त कर दिया।

बर्न्स की हत्या

दूसरा मनुष्य, जिससे अफ़ग़ानी इस समय हद दरजे की घृणा करने लगे थे, अंगरेज़ राजदूत बर्न्स था। अफ़ग़ानों ने देख लिया कि जिस बर्न्स की अफ़ग़ान बादशाह और वहाँ की जनता ने इतनी ज़बरदस्त ख़ातिर

की थी वह वास्तव में एक जासूस था। उसने अफ़ग़ान क़ौम के साथ विश्वासघात किया। एक दिन दिन दहाड़े कुछ अफ़ग़ानियों ने वर्न्स के टुकड़े टुकड़े कर डाले।

मैकनॉटन का छल

तीसरा मनुष्य, जो कि अफ़ग़ानिस्तान का क्लाइव बनना चाहता था, अंगरेज़ एलची मैकनॉटन था। मैकनॉटन को शुरू में यह पता न था कि अफ़ग़ानिस्तान बङ्गाल न था। अब हवा बिगड़ी हुई देख कर मैकनॉटन ने नए गवरनर जनरल लॉर्ड एलेनब्रु की इजाज़त से दोस्त मोहम्मद ख़ाँ के बेटे अकबर ख़ाँ से यह वादा कर लिया कि हम दोस्त मोहम्मद ख़ाँ को फिर वापस अफ़ग़ानिस्तान लाकर यहाँ के तख़्त पर बैठा देंगे। इस अहदनामे पर मैकनॉटन के दस्तख़त तक होगए। इस पर भी मैकनॉटन के दिल से दग़ा न गई। उसने अकबर ख़ाँ को एक पत्र लिखा, जिसमें अपनी मित्रता का विश्वास दिलाते हुए लिखा कि मैं आप से मिलना चाहता हूँ। इसी पत्र के अन्त में उसने अकबर ख़ाँ को सलाह दी कि आपके अमुक अमुक सरदार आपके साथ दग़ा करने वाले हैं, आप उनका ख़ात्मा कर डालिए। ठीक उसी समय मैकनॉटन ने उन सरदारों को अलग अलग पत्र लिखे, जिनमें उन्हें अकबर ख़ाँ के विरुद्ध भड़काने की कोशिश की। अकबर ख़ाँ ने पत्र पाते ही अपने समस्त सरदारों को जमा किया। इनमें वे लोग भी शामिल थे, जिनके विरुद्ध मैकनॉटन ने अकबर ख़ाँ को आगाह किया था। इन सरदारों के सामने अकबर ख़ाँ ने मैकनॉटन का पत्र रख दिया। उन सरदारों के हाथों

में भी वे पत्र मौजूद थे जो मैकनॉटन ने उनके नाम भेजे थे। इन लोगों ने ये पत्र भी अपने देश भाइयों के सामने पेश कर दिए। अन्त में सब लोग मैकनॉटन के इस छल को देख कर आश्चर्य और क्रोध से भर गए।

अकबर ख़ाँ उस समय चुप रहा। बाद में शीघ्र ही उसने मैकनॉटन की प्रार्थना के अनुसार मैकनॉटन को मुलाक़ात के लिए बुलाया। किन्तु मालूम होता है कि मैकनॉटन इस समय अफ़ग़ानिस्तान के अन्दर अंगरेज़ों के सबसे बड़े शत्रु मोहम्मद अकबर ख़ाँ की हत्या की गुप्त योजना कर रहा था।

मैकनॉटन की हत्या

लॉर्ड एलेनब्रु ने ५ अक्तूबर सन् १८४२ को मलका विक्टोरिया के नाम एक पत्र लिखा, जिसमें स्पष्ट लिखा है कि उन दिनों गवरनर जनरल ने यह एलान कर दिया था कि जो मनुष्य अकबर ख़ाँ का सिर काट कर लाएगा उसे एक बहुत बड़ी रक़म नक़द बतौर इनाम के दी जायगी। इस एलान की सूचना मैकनॉटन को मिल चुकी थी। मैकनॉटन जब अकबर ख़ाँ से मिलने गया तो अपने कुछ सिपाही छिपा कर साथ ले गया। इन सिपाहियों को उसने अकबर ख़ाँ के ख़ेमे के बाहर घात में छिपे रहने की आज्ञा दी और यह हुक्म दे दिया कि एक ख़ास इशारा पाते ही तुम लोग फ़ौरन् अपने गुप्त स्थानों से निकल कर अकबर ख़ाँ पर टूट पड़ना। जिस समय कि मैकनॉटन और अकबर ख़ाँ में बातचीत हो रही थी और अकबर ख़ाँ मैकनॉटन से उसके दुरङ्गी पत्रों का उद्देश पूछ रहा था,

"अकस्मात् एक अफ़ग़ान दौड़ता हुआ अकवर ख़ाँ के सामने आया। आते ही उसने अकवर ख़ाँ को घात में छिपे हुए अंगरेज़ी सिपाहियों का समाचार दिया। इस पर अकवर ख़ाँ और मैकनॉटन दोनों खड़े हो गए फिर कुछ वात चीत हुई। पहली गोली मैकनॉटन ने चलाई और वार खाली गया। दूसरा वार अकवर ख़ाँ का हुआ और मैकनॉटन अपने घृणित पापों के प्रायश्चित रूप उसी ख़ेमे के अन्दर गिर कर ढेर होगया।*

इन घटनाओं के होते हुए भी अनेक अंगरेज़ इतिहास लेखक लिखते हैं कि अकवर ख़ाँ ने दग़ा करके मैकनॉटन को मार डाला।

इस प्रकार अफ़ग़ानियों की राष्ट्रीय आपत्तियों के तीन मुख्य कर्ता शाहशुजा, वर्न्स और मैकनॉटन तीनों का अन्त हुआ। इसके वाद और असंख्य अंगरेज़ों को शीघ्र ही अफ़ग़ानी तलवारों के घाट उतरना पड़ा। वाक़ी की अंगरेज़ी सेना ने अकवर ख़ाँ से प्रार्थना की कि हमें भारत लौटने की इजाज़त दी जाय और वादा किया कि हम यहाँ से जाते ही तुरन्त दोस्त मोहम्मद ख़ाँ को अफ़ग़ानिस्तान लौटा देंगे। अकवर ख़ाँ ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। कुछ अंगरेज़ अफ़सर अपनी स्त्रियों सहित वतौर वन्धकों के काबुल में रख लिए गए। शेष वची खुची अंगरेज़ी सेना ऐन कड़ी सरदी के अन्दर भारत की ओर लौटी। यह यात्रा इन लोगों के लिए युद्ध के मैदान

१६,००० की सेना का अवशेष

---

* *Nairang-i-Afghanistan* by Syed Fida Husain, Reviewed in the Modern Review for February 1907, p. 224.

मोहम्मद अकबर ख़ाँ

[From the " Life of Amir Dost Mohammad Khan," by Mohan Lal, vol. I, London 1846.]

को निस्वत भी कहीं अधिक नाशकर सावित हुई। मार्ग भर में असंख्य अफ़ग़ानी और वलूची दो वर्ष पूर्व अंगरेज़ी सेना के अत्याचारों का अनुभव प्राप्त कर चुके थे। इन लोगों ने अब पिछले ज़ुल्मों का जी खोल कर वदला लिया। अनेक को मार्ग की सरदी और यात्रा के थकान के कारण सरहद की पहाड़ियों में सदा के लिए विश्राम लेना पड़ा। जितने पुरुष, स्त्री और वच्चे कावुल से चले थे, या यह कहना चाहिये कि सोलह हज़ार को उस विशाल सेना में से, जो अफ़ग़ानिस्तान विजय करने के लिए भारत से निकली थी, केवल एक व्यक्ति डॉक्टर व्राइडन थका माँदा जलालावाद तक वच कर ज़िन्दा पहुँचा।

लॉर्ड एलेनव्रु

इसी वीच फ़रवरी सन् १८४२ में लॉर्ड ऑकलैण्ड की जगह लॉर्ड एलेनव्रु भारत का गवरनर जनरल नियुक्त होकर कलकत्ते पहुँच चुका था। शाहशुजा, वर्न्स और मैकनॉटन तीनों की हत्याएँ लॉर्ड एलेनव्रु ही के शासन काल में हुईं।

एलेनव्रु के विचार

शासन नीति में लॉर्ड एलेनव्रु के आदर्श वे दोनों वेल्सली भाई थे, जिनमें से एक गवरनर जनरल मार्किस ऑफ़ वेल्सली के नाम से और दूसरा जनरल वेल्सली—और वाद में ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन—के नाम से व्रिटिश साम्राज्य के इतिहास में प्रसिद्ध हैं। अफ़ग़ान युद्ध के वृतान्त से हट कर हम एक क्षण के लिए एलेनव्रु के विचार दर्शा देना चाहते हैं। गवरनर जनरल नियुक्त होने से ६ वर्ष पहले ५ जुलाई

सन् १८३३ को लॉर्ड एलेनब्रु ने इङ्गलिस्तान के हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स में वक्तृता देते हुए कहा था—

"कोई मनुष्य जिसका होश क़ायम है, हिन्दोस्तान के अन्दर राजनैतिक और सैनिक शक्ति, हिन्दोस्तानियों के हाथों में देने की तजवीज़ नहीं कर सकता। × × ×

"हिन्दोस्तान के अन्दर हमारा अस्तित्व ही इस बात पर निर्भर है कि उस देश में देशवासियों को सैनिक और राजनैतिक अधिकार से बिलकुल दूर रक्खा जाय। × × × हमने भारतीय साम्राज्य तलवार से जीता है और तलवार से ही हमें उसे क़ायम रखना होगा। × × ×"*

इन वाक्यों से और वेल्सली बन्धुओं के नाम लॉर्ड एलेन्ब्रु के अनेक पत्रों से भारतवासियों के प्रति लॉर्ड एलेनब्रु के विचार और भाव स्पष्ट विदित हैं। इङ्गलिस्तान छोड़ने से पहले १५ अक्तूबर सन् १८४१ को एलेनब्रु ने ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन के नाम एक पत्र लिखा, जिससे पता चलता है कि उसकी मुख्य नज़र उस समय पञ्जाब और नैपाल इन दो राज्यों के ऊपर थी। वह जिस तरह बन पड़े इन दोनों को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लेने के लिए उत्सुक था। उसके अनेक पत्रों से यह भी साबित है कि भारतीय नरेशों के साथ जब चाहे सन्धियों को तोड़ देना वह इतना ही न्याय्य

* "No man in his senses would propose to place the political and military power in India in the hands of the natives. . . .

"Our very existence in India depended upon the exclusion of the natives from military and political power in that country. . . . We had won the Empire of India by the sword, and we must preserve it by the same means, . . ."—Lord Ellenborough in the House of Lords, July 5th, 1833.

डाक्टर ब्राइडन

अकेला अंगरेज़ जो सोलह हज़ार की फ़ौज में से ज़िन्दा बच कर जलालाबाद के फाटक तक पहुँचा ।

चित्रकार, लेडी बटलर ।

[By the courtesy of the Trusees, Victoria Memorial, Calcutta.]

समझता था जितना कि उससे पूर्व का कोई भी और गवरनर जनरल।

अफ़ग़ान युद्ध की हारों और विपत्तियों का प्रभाव भारत के नरेशों और भारतीय प्रजा के ऊपर अंगरेज़ों के लिए हितकर न था। लॉर्ड एलेनब्रु ने १७ मई सन् १८४२ को ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन के नाम एक पत्र में गर्व के साथ स्वीकार किया है कि इस अहितकर प्रभाव को दूर करने के लिए मैंने भारतवर्ष भर में एलानों के ज़रिए झूठी ख़बरों के फैलाने में तनिक भी सङ्कोच नहीं किया। इस तरह के झूठे एलान विशेष कर हैदराबाद दक्खिन में, सिन्ध में, नैपाल में, सागर ज़िले में और बुन्देलखण्ड में प्रकाशित कराए गए।

झूठे एलान

पहले अफ़ग़ान युद्ध से सम्बन्ध रखने वाली लॉर्ड एलेनब्रु के समय की एक और घटना उल्लेख करने योग्य है यूरोप के अन्दर क़रीब एक हज़ार वर्ष से मुसलमानों और ईसाइयों में युद्ध चले आते थे। लॉर्ड एलेनब्रु मुसलमानों को अंगरेज़ों का विशेष शत्रु समझता था। उसका विचार था कि मुसलमान कभी अंगरेज़ों का साथ न देंगे। इसलिए वह हिन्दुओं को खुश करके उन्हें मुसलमानों के विरुद्ध अंगरेज़ों की ओर मिलाए रखना चाहता था। अफ़ग़ान युद्ध के समय हिन्दुओं को प्रसन्न करने का लॉर्ड एलेनब्रु को एक बड़ा सुन्दर अवसर हाथ आया।

मुसलमानों का शत्रु

ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी में कहा जाता है महमूद ग़ज़नवी

सोमनाथ मन्दिर के फाटक के दो सुन्दर जड़ाऊ किवाड़ उखड़वा-

सोमनाथ का फाटक और युद्ध का अन्त

कर अपने साथ ग़ज़नी ले गया था। इन किवाड़ों की चित्रकारी इतनी सुन्दर थी कि वे बाद में महमूद के मक़बरे पर लगा दिए गए। लॉर्ड एलेनब्रु ने हुक्म दिया कि ये प्राचीन किवाड़ ग़ज़नी से भारतवर्ष लाकर एक शानदार जुलूस के साथ समस्त हिन्दोस्तान में फिराए जायँ, और अन्त में सोमनाथ के मन्दिर में पहुँच कर अपनी प्राचीन जगह पर फिर से क़ायम कर दिए जायँ।

एलेनब्रु की आज्ञा पालन की गई। सोमनाथ के किवाड़ अफ़ग़ानिस्तान से भारत लाए गए। पञ्जाब में इन किवाड़ों का शानदार जुलूस निकाला गया। लॉर्ड एलेनब्रु ने १६ नवम्बर सन् १८४२ को भारत के समस्त हिन्दू सरदारों, राजाओं, महाराजाओं और समस्त हिन्दू प्रजा के नाम एक विचित्र एलान प्रकाशित किया, जिसमें अंगरेज़ सरकार को हिन्दुओं और हिन्दू धर्म का विशेष समर्थक बतलाया और उन्हें यह सूचना दी कि सोमनाथ के किवाड़ फिर से उसी मन्दिर में लाकर लगा दिए जाएँगे। फिर भी जो किवाड़ अफ़ग़ानिस्तान से आए थे, वे आगरे से आगे न बढ़ सके।

इसका कारण यह था कि उस समय के अंगरेज़ शासकों में दो विचारों के लोग मौजूद थे। एक वे जो लॉर्ड एलेनब्रु के समान मुसलमानों की परवा न करके हिन्दुओं को अपनी ओर मिलाए रखने के पक्ष में थे। दूसरे वे जो मुसलमानों को इस प्रकार नाराज़

कर लेना भी अंगरेज़ी राज के लिए हितकर न समझते थे। लॉर्ड मैकॉले इस दूसरे पक्ष का था। सोमनाथ के इन किवाड़ों के विषय में १८ जनवरी सन् १८४३ को लॉर्ड एलेनब्रु ने ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन को लिखा —

"मुझे हर तरह से विश्वास है कि सोमनाथ के मन्दिर के किवाड़ फिर से स्थापन करने के एलान से असंख्य हिन्दू जनता प्रसन्न और सन्तुष्ट हो गई है। मुझे कोई वजह यह मानने की नज़र नहीं आती कि मुसलमान इससे नाराज़ हुए हों; किन्तु मैं इस विश्वास की ओर से अपनी आँखें बन्द नहीं कर सकता कि मुसलमान जाति जड़ से ही हमारी दुश्मन है, इसलिए हमारी सच्ची नीति हिन्दुओं को अपनी ओर मिलाए रखने की होनी चाहिए, × × ×।"*

इसी तरह के विचार लॉर्ड एलेनब्रु के दूसरे पत्रों में भी भरे हुए हैं, अनेक पत्रों से यह भी साफ़ साफ़ मालूम होता है कि वह औरङ्ग़ज़ेब जैसे मुसलमानों के कृत्यों की याद दिला दिला कर उन्हें हिन्दू धर्म का शत्रु, और अंगरेज़ सरकार को हिन्दू धर्म और हिन्दू जाति का रक्षक दिखलाना चाहता था।

सोमनाथ के किवाड़ अभी आगरे तक भी पहुँचने न पाए थे

---

* "I have every reason to think that the restoration of the gates of the temple of Somnath has conciliated and gratified the great mass of the Hindoo population. I have no reason to suppose that it has offended the Mussalmans, but I can not close my eyes to the belief that, that race is fundamentally hostile to us, and therefore our true policy is to conciliate the Hindoos, ..."—Lord Ellenborough to the Duke of Wellington, January 18, 1843.

कि कई अंगरेज़ों ने एलेनब्रु की इस कारवाई के विरुद्ध शोर मचाना शुरू कर दिया। लॉर्ड मैकॉले ने इंगलिस्तान की पार्लिमेण्ट में वक्तृता देते हुए कहा —

मैकॉले की वक्तृता

"मुसलमानों की संख्या कम है, किन्तु उनका महत्व उनकी संख्या के हिसाब से कहीं अधिक है; कारण यह है कि मुसलमान जाति संयुक्त, जोशीली, महत्वाकांक्षी और युद्ध प्रेमी है। × × × जो मनुष्य हिन्दोस्तान के मुसलमानों के विषय में कुछ भी जानकारी रखता है उसे इसमें सन्देह नहीं हो सकता कि इस प्रकार उनके धर्म का अपमान करने से उनमें अत्यन्त भयङ्कर क्रोध भड़क उठेगा।"*

लॉर्ड एलेनब्रु पर यह इलज़ाम लगाया गया कि उसने मूर्ति-पूजा का समर्थन करके ईसाई धर्म को कलङ्कित किया। वास्तव में न लॉर्ड एलेनब्रु को हिन्दुओं की मूर्ति पूजा से विशेष प्रेम था और न लॉर्ड मैकॉले को मुसलमानों के धर्म से। किन्तु उस समय से ही भारत के हिन्दू और मुसलमानों को एक दूसरे से लड़ाए रखना अंगरेज़ शासकों की भारतीय नीति का एक विशेष अङ्ग रहा है।

अंगरेज़ शासकों की भारतीय नीति

लॉर्ड मैकॉले जैसों के विरोध के कारण लॉर्ड एलेनब्रु की बात

* "The Mohammedans are a minority, but their importance is much more than proportioned to their number : for they are an united, a zelous, an ambitious, a war like class. . . . . Nobody who knows anything of the Mohammedans of India can doubt that this affront to their faith will excite their fiercest indignation."—Lord Macaulay, March 1843.

न चल सकी। हम ऊपर लिख चुके हैं कि सोमनाथ के मन्दिर के किवाड़ आगरे में रोक दिए गए।

राजनैतिक छल

पाठकों को आश्चर्य होगा कि जब कि अफ़ग़ानिस्तान पर हमला करने वाली समस्त अंगरेज़ी सेना में से केवल एक अंगरेज़ ज़िन्दा बच कर हिन्दोस्तान लौट सका, यह प्राचीन किवाड़ अफ़ग़ानिस्तान से यहाँ तक किस प्रकार आ सके। निस्सन्देह इस सम्बन्ध में सब से अधिक चमत्कारिक बात यही है कि जो किवाड़ इतनी धूम धाम के जुलूस के साथ आगरे लाए गए, वह सोमनाथ के मन्दिर के किवाड़ थे ही नहीं। यह समस्त ढोंग और बनावटी किवाड़ों का जुलूस केवल एक राजनैतिक छल था। कम्पनी के शासकों की कूटनीति का इससे सुन्दर उदाहरण और क्या मिल सकता है?

अफ़ग़ान युद्ध का ख़मियाज़ा

इसके बाद प्रथम अफ़ग़ान युद्ध की केवल थोड़ी सी कहानी बाक़ी रह जाती है। युद्ध का ख़र्च दो वर्ष से कम्पनी सरकार के लिए असह्य हो रहा था। १५ सितम्बर सन् १८४१ को लॉर्ड एलेनब्रु ने मलका विक्टोरिया के नाम एक पत्र में लिखा कि अफ़ग़ान युद्ध का ख़र्च इस समय कम्पनी सरकार को साढ़े बारह लाख पाउण्ड (क़रीब सवा करोड़ रुपए) सालाना देना पड़ रहा है। इसके अतिरिक्त क़रीब साढ़े ग्यारह लाख पाउण्ड सालाना उस समय सिन्धु नदी के इस पार नई फ़ौजों पर ख़र्च करना पड़ता था। ब्रिटिश भारतीय सरकार के बजट में सन् १८३९-४० में २४ लाख

पाउण्ड का घाटा हुआ, जो सन् १८४०-४१ में बीस लाख पाउण्ड और बढ़ गया।

लेकिन फिर भी एशिया के अन्दर कम्पनी की सेना की इस ज़बरदस्त ज़िल्लत को धोना आवश्यक था। दोस्त मोहम्मद ख़ाँ अभी तक भारत में क़ैद था और अनेक अंगरेज़ बन्धक अफ़ग़ानिस्तान में मौजूद थे। युद्ध बन्द करने के लिए अफ़ग़ानिस्तान के साथ कोई बाज़ाब्ता सन्धि भी न हुई थी।

दोबारा चढ़ाई

जनरल पोलक एक नई विशाल सेना सहित अफ़ग़ानिस्तान भेजा गया। लॉर्ड एलेनब्रु के नाम ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन के एक पत्र में लिखा है कि काबुल पहुँच कर जनरल पोलक ने अपनी सेना को आज्ञा दी कि काबुल के मुख्य बाज़ार और वहाँ की दो सुन्दर मसजिदों को आग लगा दी जाय। जनरल पोलक की आज्ञा का पालन किया गया। उसके बाद कहा जाता है कम्पनी की सेना ने काबुल के नगर को लूटा और कई इमारतों को ज़मीन से मिला दिया।

युद्ध का अन्त

किन्तु अन्त में अंगरेज़ों को फिर एक बार अफ़ग़ानों के हाथों हार स्वीकार करनी पड़ी। अकबर ख़ाँ और उसके अफ़ग़ानियों ने इस बार भी अंगरेज़ों के साथ काफ़ी उदारता का व्यवहार किया और सन्धि हो गई। दोस्त मोहम्मद ख़ाँ और उसके साथ के अन्य अफ़ग़ान क़ैदी काबुल पहुँचा दिए गए। दोस्त मोहम्मद ख़ाँ फिर अफ़ग़ानिस्तान के तख़्त पर बैठा। युद्ध के समस्त अंगरेज़ बन्धक छोड़ दिए गए। पोलक

को अपने शेष आदमियों सहित अफ़ग़ानिस्तान की सरहद छोड़ कर चले आने की इजाज़त मिल गई। इस प्रकार अफ़ग़ानिस्तान की राष्ट्रीय स्वाधीनता को हरने का अंगरेज़ों का पहला प्रयत्न निष्फल गया। इतिहास लेखक सर जॉन के इस युद्ध के परिणाम के विषय में लिखता है—

"एक महान सच्चाई पाठकों की आँखों के सामने आ जाती है। जब कभी हमारे किसी पाप कार्य के ऊपर परमात्मा का भारी श्राप होता है तो हमारे राजनीतिज्ञों की बुद्धिमत्ता मूर्खता साबित होती है, और हमारी सेनाओं की शक्तिमत्ता निर्बलता बन जाती है क्योंकि सब के कर्मों का फल देने वाला परमात्मा अवश्य हमें भी हमारे पापों का बदला देगा।"*

---

* ". . . The reader recognises one great truth, that the wisdom of our statesmen is but foolishness, and the might of our armies is but weakness, when the curse of God is sitting heavily upon an unholy cause. 'For the Lord God of re-compenses shall surely requite.'"—Kaye's *History of the Afghan War*.

अड़तीसवाँ अध्याय

सिन्ध पर अंगरेज़ों का क़ब्ज़ा

सिन्ध की राजनैतिक स्थिति

सम्राट हुमायूँ के समय से सन् १७४६ तक अर्थात् दो सौ वर्ष से ऊपर सिन्ध भारतीय मुग़ल साम्राज्य का एक सूबा था। सन् १७४० में नादिरशाह ने सिन्ध पर हमला किया। १७४६ में सिन्ध के अमीर दिल्ली सम्राट के स्थान पर अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह को ख़िराज भेजने लगे। इसके बाद क़रीब ६० वर्ष तक के अधिकांश समय में सिन्ध के अमीर अपने देश के सर्वथा स्वाधीन शासक बने रहे।

सिन्ध के साथ ईस्ट इण्डिया कम्पनी का सम्बन्ध १८ वीं सदी के मध्य में प्रारम्भ हुआ। सन् १७५८ ईसवी में अमीर गुलामशाह कल्होर ने कम्पनी को ठट्ठा और औरङ्गबन्दर में कोठियाँ बनाने की इजाज़त दे दी। ठट्ठा उस समय सिन्ध में कपड़े के व्यवसाय का एक विशेष केन्द्र था। सर हेनरी पॉटिञ्जर लिखता है कि उन दिनों नफ़ीस कपड़ों और लुङ्गियों के बुनने वाले ४०,००० कारीगर ठट्ठा में रहते थे, २०,००० अन्य कई प्रकार के कारीगर थे, और इनके अतिरिक्त ६०,००० महाजन, साहूकार, नाज के व्यापारी और अन्य दूकानदार थे। किन्तु कम्पनी की कोठी क़ायम होने के पचास वर्ष के अन्दर अर्थात् सन् १८०६ में ठट्ठे की कुल आबादी घटते घटते केवल २०,००० रह गई।*

कम्पनी की कोठी और ठट्ठे का पतन

अमीर गुलामशाह ने कम्पनी को व्यापार के लिए अनेक प्रकार की सुविधाएँ प्रदान कर दी थीं। किन्तु कम्पनी के एजएटों का व्यवहार इतना अनुचित होने लगा कि सन् १७७५ में गुलामशाह के बेटे सरफ़राज़ ने कम्पनी की कोठियाँ बन्द करवा दीं। सन् १७६६ में कम्पनी का एक नया एजएट नैथन क्रो हैदराबाद पहुँचा। क्रो की प्रार्थना पर उस समय के अमीर फ़तहअली ख़ाँ ने अंगरेज़ों को सिन्ध में व्यापार करने की फिर इजाज़त दे दी और कराची में क्रो को अपने लिए मकान बनाने की भी अनुमति मिल गई। किन्तु

कम्पनी को व्यापार की सुविधाएँ

---

* *Sind Gazetteer*. vol, A. p. 116.

फिर क्रो और उसके गुमाश्तों का व्यवहार सिन्ध के कारीगरों और वहाँ की प्रजा के साथ इतना असह्य हो गया कि सन् १८०२ में क्रो को आज्ञा मिली कि दस दिन के भीतर सिन्ध छोड़ कर चले जाओ।

सिन्ध में कम्पनी का एलची

इसके बाद सन् १८०७ में बम्बई के अंगरेज़ गवरनर ने फिर कम्पनी की ओर से एक एलची सिन्ध भेजा। अमीर गुलामअली, अमीर करमअली और अमीर मुरादअली उस समय सिन्ध के शासक थे। सिन्ध के अमीरों में प्रायः यह विचित्र प्रथा चली आती थी कि कई कई भाई मिल कर प्रेम से एक साथ देश पर शासन करते थे। अंगरेज़ एलची की प्रार्थना पर अमीरों ने अब अंगरेज़ कम्पनी के साथ मित्रता की एक सन्धि कर ली, जिसमें लिखा था—

"यह सन्धि पीढ़ी दर पीढ़ी क़्यामत के दिन तक क़ायम रहेगी और अंगरेज़ सरकार कभी सिन्ध के अमीरों की एक फ़ुट ज़मीन की भी इच्छा न करेगी।"*इत्यादि।

सन् १८०६ की सन्धि

इस सन्धि में लिखा था कि अंगरेज़ सरकार और सिन्ध की सरकार दोनों एक दूसरे के शत्रुओं के विरुद्ध एक दूसरे की मदद करेंगे। किन्तु गवनर जनरल को यह शर्त पसन्द न थी, इसलिए इस सन्धि पर हस्ताक्षर हुए अभी दो वर्ष भी न हुए थे कि सन् १८०६ में एक

* *Dry Leaves from Young Egypt*, by W. J. Eastwick M. P., p. 334.

दूसरा अंगरेज़ स्मिथ सन् १८०७ की सन्धि को रद्द कराने और एक दूसरी सन्धि करने के लिए सिन्ध पहुँचा।

२२ अगस्त सन् १८०६ को अंगरेज़ों और सिन्ध के अमीरों के बीच फिर एक सन्धि हुई, जिसकी चार धाराएँ इस प्रकार थीं—

१—अंगरेज़ सरकार और सिन्ध की सरकार के बीच सदा के लिए दोस्ती (Eternel friendship) क़ायम रहेगी × × × इत्यादि।

२—इन दोनों बादशाहतों के बीच कभी शत्रुता उत्पन्न न होगी।

३—अंगरेज़ सरकार और सिन्ध सरकार दोनों एक दूसरे के यहाँ अपने वकील भेजती रहेंगी। और

४—सिन्ध की सरकार सिन्ध में फ़ान्सीसी क़ौम को बसने न देगी।

इस दूसरी सन्धि के विषय में कप्तान ईस्टविक, जो बाद में अंगरेज़ कम्पनी की ओर से सिन्ध में असिस्टेण्ट रेज़िडेण्ट नियुक्त हुआ, लिखता है—

"ठीक उस समय जब कि हम अपनी मित्रता और शुभ कामना दर्शाने के लिए सिन्ध के दरबार में अपना एक राजदूत भेज रहे थे, उसी समय हमारा जो राजदूत क़ाबुल गया हुआ था, वह गवरनर जनरल के सामने यह योजना पेश कर रहा था कि सिन्ध को विजय कर लिया जाय × × × और सिन्ध का इलाक़ा भारतीय ब्रिटिश राज में मिला लिया जाय।"*

* ". . . at the very moment we were sending an ambassador to the court of Sindh with expressions of friendship and good will, our envoy at Kabul was proposing to the Governor-General to subjugate the country, . . . and incorporate the territory with the British possessions in India."
—*Dry Leaves from Young Egypt*, by an Ex-political, p. 243.

किन्तु सिन्ध को अंगरेज़ी राज में मिलाने का अभी समय न आया था। गवरनर जनरल लॉर्ड मिएटो ने अपने राजदूत की सलाह को अस्वीकार किया।

सन् १८१६ में अंगरेज़ों ने कच्छ पर हमला किया। तीन वर्ष बाद कच्छ पर क़ब्ज़ा कर लिया गया। कच्छ की सरहद सिन्ध से मिली हुई है, इसलिए सिन्ध के साथ फिर नई सन्धि की आवश्यकता अनुभव हुई। सन् १८२० में तीसरी बार सिन्ध के अमीरों के साथ मित्रता की सन्धि की गई।

सन् १८२० की सन्धि

हमें इन सन्धियों और अंगरेज़ों की ओर से उनके हर बार के उल्लङ्घन को विस्तार से बयान करने की आवश्यकता नहीं है। कप्तान ईस्टविक साफ़ लिखता है—

"हम उस समय तक के लिए नित्यस्थायी मित्रता की क़सम खा लेते थे, जब तक कि हमें देश पर क़ब्ज़ा करने और अपने मित्रों का नाश करने और उन्हें क़ैद कर लेने का सुविधाजनक अवसर न मिल जाय।"*

इसके बाद वह समय आया जब जनवरी सन् १८३१ में सर अलेक्ज़ेण्डर बर्न्स, जो उस समय लेफ़्टेनेण्ट बर्न्स था, महाराजा रणजीतसिंह के लिए उपहार लेकर सिन्ध पहुँचा। ऊपर एक अध्याय

दरियाना की सलाह

* ". . . we swore perpetual amity until a convenient opportunity for appropriating the country, and the destruction and imprisonment of our allies."—*Dry Leaves from Young Egypt*, p. 244.

सर अलेक्ज़ेण्डर बर्न्स—बोख़ारा की पोशाक में

[From the Life of Amir Dost Mohammad Khan, by Mohan Lal vol. I, London 1846]

में बयान किया जा चुका है कि उपहार ले जाने के बहाने बर्न्स और उसको भेजने वालों का गुप्त उद्देश सिन्धु नदी के मार्ग की थाह लेना था। सर जेम्स मैकिण्टॉश लिखता है कि सिन्ध का एक हिन्दू व्यापारी, जिसका नाम दरियाना था, बराबर सिन्ध के अमीरों को आगाह करता रहता था कि अंगरेज़ों पर विश्वास न किया जाय और उन्हें मुल्क में घुसने न दिया जाय। वह अमीरों से कहता था—

"इस क़ौम ने जब कभी जिस किसी के साथ शुरू में दोस्ती की, अन्त में वे उसके दुशमन साबित हुए, जिस देश में भी वे अत्यन्त मित्रता की प्रतिज्ञाएँ करते हुए घुसे उसी पर अन्त में उन्होंने क़ब्ज़ा कर लिया।"*

सर जेम्स मैकिण्टॉस इस हिन्दू व्यापारी के विषय में लिखता है कि वह 'एक चालाक कुत्ता' था†।

बर्न्स की सिन्धु यात्रा

सिन्ध के अमीर भी बर्न्स की इस सिन्धु यात्रा पर सन्देह करते थे। वे बर्न्स को इजाज़त देने के विरुद्ध थे। फिर भी अमीरों ने एशियाई तरीक़े पर बर्न्स और उसके साथियों की ख़ूब ख़ातिर तवाज़ो की और उन्हें अन्त में जिस प्रकार बहका कर और डरा कर उनकी रज़ामन्दी हासिल कर ली गई, उसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। बर्न्स अपनी यात्रा के वृत्तान्त में लिखता है कि जिस समय वह महाराजा रणजीतसिंह के लिए उपहार लिए हुए अपने

---

* Sir James Mackintosh in his Journal, dated 9th February, 1812.

† "A shrewd dog"

जहाज़ों में नदी के ऊपर की ओर चढ़ा चला जा रहा था, एक सिन्धी नदी के किनारे खड़ा हुआ अपने पास के साथी से कहने लगा—

"अफ़सोस ! सिन्ध अब जाता रहा, क्योंकि अंगरेज़ों ने दरिया का रास्ता देख लिया है, और यही सिन्ध को विजय करने का मार्ग है !"*

कप्तान ईस्टविक लिखता है—

"यह पता लगा लिया गया कि सिन्धु नदी से जहाज़ जा सकते हैं; अमीरों के जवाहरात को देख कर और जो नज़रें उन्होंने अपने यूरोपियन मेहमानों को भेंट कीं उन्हें देख कर यह भी मालूम हो गया कि सिन्ध के अमीरों के पास ख़ूब धन है।"†

मित्रता बढ़ाने के लिए सन् १८३२ और सन् १८३४ में और नई नई सन्धियाँ की गईं। सिन्धु नदी से अंगरेज़ी जहाज़ों के आने जाने का अधिकार प्राप्त कर लिया गया। सन् १८३४ की सन्धि में लिखा गया—

"दोनों शक्तियाँ, जिनके बीच यह सन्धि हो रही है, प्रतिज्ञा करती हैं कि हम पीढ़ी दर पीढ़ी कभी भी एक दूसरे के इलाक़े को लोभ की दृष्टि से न देखेंगे।"‡

---

* "Alas ! Sindh is now lost, since the English have seen the river which is the road to its conquest."—Burnes' *Travels*, vol. iii.

† *Dry Leaves from Young Egypt*, p. 249.

‡ "The two contracting powers bound themselves from generation to generation never to look with the eye of covetousness on the possessions of each other."—Ibid p. 249.

इसके बाद २६ जून सन् १८३८ को अंगरेज़ कम्पनी, महाराजा रणजीतसिंह और शाहशुजा इन तीनों के बीच एक सन्धि हुई। इस सन्धि का ज़िक्र पहले अफ़ग़ान युद्ध के सम्बन्ध में किया जा चुका है।

सिन्ध के विरुद्ध सन्धि

सिन्ध के अमीरों से इसमें कोई सलाह नहीं ली गई। फिर भी इस सन्धि में ऊपर ही ऊपर यह तय कर लिया गया कि सिन्ध के साथ अंगरेज़ जो भी व्यवहार करें शाहशुजा व रणजीतसिंह को कोई एतराज़ न होगा। इस सन्धि के विषय में इतिहास लेखक सर जॉन के लिखता है—

"२६ जून सन् १८३८ की उस घड़ी से सिन्ध के अमीरों का सर्वनाश शुरू होता है। उस घड़ी से ही वास्तव में सिन्ध के अमीरों की स्वाधीनता ख़त्म हो जाती है।"

उस समय तक जितनी सन्धियाँ सिन्ध के अमीरों के साथ की जा चुकी थीं वे सब अब रद्द क़रार दी गईं। अफ़ग़ानिस्तान पर हमला करने के लिए अंगरेज़ी सेना सिन्ध भेज दी गई। सिन्ध के अमीरों से

अमीरों से ख़िराज़ की मांग

कहा गया कि इस सेना को अपने देश में से होकर अफ़ग़ानिस्तान जाने दो, कम्पनी के जहाज़ों के लिए जलाने की लकड़ी और मार्ग में सेना के लिए रसद इत्यादि का प्रवन्ध करो, मार्ग के ख़ास ख़ास क़िले अंगरेज़ी सेना के हवाले कर दो, और चूँकि यह युद्ध अफ़ग़ानिस्तान के पदच्युत वादशाह शाहशुजा को फिर से गद्दी पर वैठाने के लिए किया जा रहा है और चूँकि पहले किसी समय

सिन्ध अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह को ख़िराज दिया करता था, इस लिए युद्ध के ख़र्च के लिए २१ लाख रुपए नक़द और आइन्दा हमेशा के लिए ३ लाख रुपए प्रति वर्ष तुम अंगरेज़ कम्पनी को दिया करो, इत्यादि ।

इससे पूर्व सन् १८०९ की सन्धि के समय गवरनर जनरल स्वीकार कर चुका था कि अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह को सिन्ध के अमीरों से ख़िराज लेने का कोई हक़ नहीं । इसके अतिरिक्त सिन्ध के अमीरों ने इस समय अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह के लिखे हुए दो प्रतिज्ञापत्र पेश किए, जिन पर अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह के दस्तख़त और मोहर मौजूद थीं और जिनमें लिखा था कि भविष्य में सिन्ध के अमीरों से कभी किसी तरह का कोई ख़िराज न लिया जायगा ।*

किन्तु इनमें से किसी बात का कोई ख़याल नहीं किया गया ।

अंगरेज़ों की ईमानदारी

सिन्ध के अमीरों से कहा गया कि अंगरेज़ों को इस समय ज़रूरत है और दोस्ती केवल इसी शर्त पर क़ायम रह सकती है कि तुम अंगरेज़ों की मदद करो । इस अनुचित व्यवहार पर इतिहास लेखक सर जॉन के लिखता है—

"और इसी का नाम अंगरेज़ों की ईमानदारी है × × × सबसे पहले अंगरेज़ों ने अपने वादों को तोड़ा । उन्होंने सिन्ध के अमीरों को सिखा दिया कि सन्धियों का केवल उस समय तक पालन करना चाहिए जिस

---

* Blue book, p. 31.

समय तक कि उनका पालन करने में फ़ायदा हो। × × × भेड़िए और मेमने के क़िस्से में मेमने को खा जाने के लिए भेड़िए ने जो बहाने गढ़े वे उन बहानों से अधिक चतुराई के न थे जिनका अंगरेज़ सरकार ने अमीरों के साथ अपने समस्त व्यवहार में उपयोग किया।"*

जनवरी सन् १८३९ में हैदराबाद के अमीर नूरमोहम्मद ख़ाँ और कप्तान ईस्टविक के बीच इस सम्बन्ध में जो बात चीत हुई उसका वर्णन पिछले अध्याय में किया जा चुका है।

सिन्ध का राज उस समय दो मुख्य भागों में बँटा हुआ था। ऊपर के भाग की राजधानी ख़ैरपुर थी। नीचे का हिस्सा हैदराबाद दरबार के शासन में था। दोनों में हैदराबाद के अमीर मुख्य समझे जाते थे। फिर भी हैदराबाद के अमीरों और ख़ैरपुर के अमीरों में प्रेम और समानता का व्यवहार था। दोनों एक ही कुल से थे। कप्तान ईस्टविक की बात चीत हैदराबाद के तीनों अमीरों के साथ हुई थी। इसके बाद ख़ैरपुर के अमीर मीर रुस्तम ख़ाँ की बारी आई।

मीर रुस्तम ख़ाँ

मीर रुस्तम ख़ाँ एक अस्सी वर्ष का बूढ़ा और अत्यन्त शान्तिप्रिय बलूची नरेश था। हैदराबाद के अमीर, जिसका वह चचा लगता था, उसका बड़ा

---

* "And this is British justice! . . . . The British were the first to perpetrate a breach of good faith. They taught the Amirs of Sindh that treaties were to be regarded, only so long as it was convenient to regard them. . . . The wolf in the fable did not show greater cleverness in the discovery of a pretext for devouring the lamb than the British Government has shown in all its dealings with the Amirs."—Kaye, *The Calcutta Review*, vol. i. pp. 220-223

आदर करते थे। सर अलेक्ज़ेण्डर वन्र्स अपने यात्रा वृत्तान्त में लिखता है कि अमीर रुस्तम ख़ाँ ने बड़े प्रेम और आदर भाव के साथ वन्र्स और उसके साथियों का स्वागत किया। उसने अपने बूढ़े वज़ीर फ़तहमोहम्मद ख़ाँ गोरी को अस्सी मील, पालकियों, घोड़ों और उपहारों सहित वन्र्स का स्वागत करने के लिए भेजा। तीन सप्ताह तक उसने अंगरेज़ एलची को अपनी राजधानी में रोक कर उसकी खूब ख़ातिरदारी की और बड़ी बड़ी दावतें हुईं। मीर रुस्तम ख़ाँ के चरित्र के विषय में सर अलेक्ज़ेण्डर वन्र्स लिखता है कि उसकी वात चीत अत्यन्त मीठी थी, और वह स्वभाव से उदार, सुशील और सब पर विश्वास करने वाला मनुष्य था।*

मीर रुस्तम ख़ाँ के साथ इससे पूर्व अंगरेज़ कम्पनी की यह स्पष्ट सन्धि हो चुकी थी कि सिन्धु नदी के दाईं ओर या बाईं ओर अंगरेज़ कभी किसी भी स्थान या क़िले पर क़ब्ज़ा करना न चाहेंगे। किन्तु अब अंगरेज़ों को अफ़ग़ान युद्ध की सफलता के लिए भक्खर का क़िला लेने की आवश्यकता अनुभव हुई। यह क़िला सिन्धु नदी के बीच में एक टापू पर बना हुआ था। मीर रुस्तम ख़ाँ ने पिछली सन्धि को याद दिलाई। गवरनर जनरल ने लिखा कि केवल युद्ध के लिए कम्पनी को भक्खर के क़िले की आवश्यकता है और वादा किया कि अफ़ग़ान युद्ध समाप्त होते ही क़िला मीर रुस्तम ख़ाँ को वापस कर दिया जायगा। ईस्टविक लिखता है कि इस गम्भीर और स्पष्ट वादे पर ही क़िला अंगरेज़ों

* Burnes' *Travels*, vol. iii.

के सुपुर्द कर दिया गया और गवरनर जनरल ने बड़ी प्रशंसा के शब्दों में अमीर मीर रुस्तम ख़ाँ को धन्यवाद दिया। किन्तु यह क़िला फिर कभी भी मीर रुस्तम ख़ाँ को वापस नहीं दिया गया।

रुस्तम ख़ाँ के साथ नई सन्धि

२४ दिसम्बर सन् १८३८ को गवरनर जनरल के वादे के ऊपर १० धाराओं की एक नई सन्धि मीर रुस्तम ख़ाँ के साथ और बहुत समझाने बुझाने के बाद ११ मार्च सन् १८३९ को १४ धाराओं की एक नई सन्धि हैदराबाद के अमीरों के साथ होगई।

जिस समय यह नई सन्धि अंगरेज़ों की ओर से पेश की गई तो उनमें से एक अमीर पिछली सब सन्धियाँ सामने रख कर कहने लगा—

"इन सब का अब क्या होगा? जिस दिन से हमने पहली सन्धि की है, हमेशा कोई न कोई नई चीज़ पेश की जाती है। हम आपके साथ दोस्ती क़ायम रखना चाहते हैं, किन्तु हम इस प्रकार लगातार दिक़ किया जाना नहीं चाहते। हमने आपकी सेना को अपने मुल्क में से रास्ता दे दिया और अब आप अपनी सेना को यहाँ क़ायम करना चाहते हैं × × ×। *

फिर भी दोनों सन्धियाँ हो गईं।

ख़ैरपुर की सन्धि में मुख्य मुख्य बात ये थीं —

१—अंगरेज़ कम्पनी और ख़ैरपुर दरबार में सदा के लिए मित्रता क़ायम रहेगी।

* Torrens', *Empire in Asia*, p. 295.

२—अंगरेज़ ख़ैरपुर के राज की रक्षा करेंगे और ख़ैरपुर दरबार हर काम में अंगरेज़ों की सहायता करेगा।

३—अन्य विदेशी सल्तनतों के साथ ख़ैरपुर के अमीर बिना कम्पनी की सलाह इत्यादि के किसी तरह का समझौता या पत्र व्यवहार न करेंगे।

४—मीर रुस्तम ख़ाँ के विरुद्ध अंगरेज़ उसके किसी रिश्तेदार या कुटुम्बी या प्रजा की कोई शिकायत न सुनेंगे और न राज के भीतर के मामलों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप करेंगे।

५—दोनों सरकारों के एलची एक दूसरे के दरबारों में रहा करेंगे, इत्यादि।*

सन्धि पत्र पर दोनों ओर के हस्ताक्षर हो गए। अंगरेज़ी सेना ने भक्खर के क़िले पर क़ब्ज़ा कर लिया। जगह जगह अंगरेज़ी छावनियाँ पड़ गईं। अंगरेज़ राजदूत ख़ैरपुर के दरबार में पहुँच गए। बूढ़े और भोले मीर रुस्तम ख़ाँ के साथ अंगरेज़ों का व्यवहार अब अधिकाधिक धृष्टता का होता गया। ख़ैरपुर के बूढ़े और सम्मानित वज़ीरों का अपमान किया गया। नित्य नई ज़्यादतियाँ होने लगीं, जिनको विस्तार से बयान करना अनावश्यक है। ईस्ट-विक लिखता है—

"प्रत्येक ऐसा कार्य अर्थात् प्रत्येक इस प्रकार की ज़्यादती, जो हम बिना ख़तरे में पड़े कर सकते थे, हमने करनी शुरू कर दी। अधिक उग्र अन्याय, जिनमें यह साफ़ डर था कि हमें सिन्ध के साथ कुसमय युद्ध करना

* *Dry Leaves from Young Egypt*, pp. 252-53.

पड़ जायगा, उस समय तक के लिए मुलतवी कर दिए गए जिस समय तक कि सिन्ध में हमारा प्रभाव क़ायम न हो जाय, अर्थात् दूसरे शब्दों में जिस समय तक कि सिन्ध अंगरेज़ी सत्ता के अधीन न हो जाय। और इसी को हम मित्रता की सन्धि करना कहते हैं।"*

मीर अली मुराद

सिन्ध के अन्दर अब तेज़ी के साथ उसी प्रकार की साज़िशें शुरू हो गईं जिस प्रकार कि समय समय पर भारत के अन्य समस्त राज दरबारों में की जा चुकी थीं। मीर रुस्तम ख़ाँ के एक छोटे भाई मीर अलीमुराद को चुपचाप मीर रुस्तम ख़ाँ के विरुद्ध फोड़ा गया। भारत से बड़े बड़े अभ्यस्त कूटनीतिज्ञ इस काम के लिए सिन्ध के दरबारों में पहुँचे। धीरे धीरे २४ दिसम्बर सन् १८३८ को सन्धि के स्पष्ट विरुद्ध अंगरेज़ों ने मीर अलीमुराद का पक्ष लेकर बात बात में मीर रुस्तम ख़ाँ से झगड़ना शुरू किया।

सिन्ध के अमीरों पर कई नए नए इलज़ाम लगाए गए। कहा गया कि हैदराबाद के अमीर मीर नसीर ख़ाँ ने मुलतान के दीवान सावनमल को अंगरेज़ों के विरुद्ध कोई पत्र लिखा है। इसी प्रकार कहा गया कि मीर रुस्तम ख़ाँ ने शेरसिंह को अंगरेज़ों के विरुद्ध एक पत्र लिखा है। इन पत्रों और इलज़ामों के विस्तार में हमें

---

* "Every step, *i.e.*, every encroachment that could be made without hazard was made; and the more violent aggressions, which obviously could not be inflicted without risking an inopportune war, were suspended until our own influence should be substituted in Sindh; in other words, until Sindh was reduced to a British dependency. And this is what we call making an alliance."—*Dry Leaves from Young Egypt*, pp. 253-54.

पड़ने की आवश्यकता नहीं है। इतिहास लेखक ईस्टविक, जिसे सिन्ध में अंगरेज़ों की राजनैतिक चालों का व्यक्तिगत अनुभव था, लिखता है—

"यह सारा मामला दोपहर की धूप से भी अधिक स्पष्ट है ? मीर अली-मुराद ने इन जाली पत्रों को तैयार किया था।"*

उन सब पत्रों के जाली होने की ईस्टविक ने बड़ी विस्तृत दलीलें दी हैं, जिनकी बिना पर इस समय सिन्ध के अमीरों की रियासत छीनने की योजना की जा रही थी।

इस बीच ३ दिसम्बर सन् १८४० को हैदराबाद के अमीर नूरमोहम्मद ख़ाँ की मृत्यु हो गई।

सिन्ध पर क़ब्ज़ा करने की अंगरेज़ों की प्रबल उत्कण्ठा के उस समय पाँच मुख्य कारण थे।

सिन्ध पर क़ब्ज़ा करने के मुख्य कारण

पहला और सबसे मुख्य कारण यह था कि इतने दिनों सिन्ध में रह कर अंगरेज़ नीतिज्ञ पता लगा चुके थे कि अमीरों के ख़ज़ाने सोने, चाँदी और जवाहरात से लबालब हैं। सर चार्ल्स डिल्क लिखता है—

"अंगरेज़ क़ौम का निकास प्राचीन स्केनडिनेविया के समुद्री लुटेरों से है, सैकड़ों वर्षों की शिक्षा ने भी अंगरेज़ों के ख़ून से उस दोष को दूर नहीं किया। भारत में पहुँचते ही हमें अपनी उत्पत्ति याद आ जाती है। वहाँ पर हमारे आदमी ज्योंही कि किसी देशी नरेश या हिन्दू महल पर दृष्टि

* "Why the whole matter is clearer than the Sun at noon! Mir Ali Murad forged those letters. . . ."—*Dry leaves from Young Egypt*, by Eastwick, M. P., p. 259.

डालते हैं, तुरन्त वे विवश होकर चिल्ला पड़ते हैं, 'सेंध लगाने के लिए यह कैसी अच्छी जगह है !' या 'लूटने के लिए यह कैसा अच्छा मनुष्य है ?'"*

दूसरा कारण यह था कि सिन्ध पर क़ब्ज़ा करके कभी भी आवश्यकता के समय सिन्धु नदी के ज़रिये भारत की उत्तर पश्चिमी सीमा पर फ़ौज भेजी जा सकती थी। लॉर्ड एलेनब्रु ने ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन के नाम अपने पत्रों में इस कारण को बयान किया है।

तीसरा कारण रूस इत्यादि के हमले से अपने भारतीय साम्राज्य को सुरक्षित रखने की चिन्ता थी।

चौथा कारण इतिहास लेखक सर जॉन के ने निम्न लिखित शब्दों में बयान किया है—

"किन्तु सिन्ध के अमीरों को इस प्रकार दण्ड देने का असली कारण यह था कि हाल में अफ़ग़ानों ने अंगरेज़ों को दण्ड दिया था। अपनी महान राजनैतिक यात्रा के इस अवसर पर अंगरेज़ों को आवश्यक मालूम हुआ कि संसार को यह दिखा दिया जाय कि अंगरेज़ भी किसी न किसी को पीट सकते हैं, इसीलिये सिन्ध के अमीरों को पीटने का निश्चय किया गया। × × × गवरनर जनरल ने तय कर लिया कि उन अमीरों को इस उदार नीति का शिकार बनाया जाय, जिन्होंने कि कुछ महीने पहले ऐसे अवसर पर

---

* "It is in India . . . . . we begin to remember our descent from Scandinavian sea-king robbers. Centuries of education have not purified the blood; our men in India can hardly set eyes on a native prince or a Hindoo palace before they cry, 'What a place to break up!' 'What a fellow to loot!'"—*Greater Britain*, by Sir Charles Dilke

हमारी सेना को छोड़ दिया था, जिस अवसर पर यदि वे चाहते तो उसे निर्मूल कर सकते थे।"*

ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन ने ३० मार्च सन् १८४२ को एक पत्र में लॉर्ड एलेनब्रु को सलाह दी कि अफ़ग़ानिस्तान की हार और शर्म को दूर करने और अंगरेज़ों की कीर्ति फिर से क़ायम करने के लिए किसी न किसी भारतीय नरेश पर फ़ौरन् हमला करके उसके राज को कम्पनी के इलाक़े में मिला लिया जाय।

पाँचवाँ कारण मुसलमानों के प्रति एलेनब्रु का विशेष द्वेष और उन पर उसका अविश्वास था।

लॉर्ड एलेनब्रु ने २२ मार्च सन् १८४३ को ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन के नाम एक पत्र लिखा जिसमें उसने स्पष्ट स्वीकार किया है कि सिन्ध के अमीरों पर पत्र व्यवहार के सम्बन्ध में जो इलज़ाम लगाए गए थे वे बेबुनियाद थे। कुछ दिनों बाद इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट के सामने भी यह बात साबित हो गई कि वे सब पत्र जाली थे।

---

* "But the real cause of this chastisement of the Amirs consisted in the chastisement which the British had received from the Afgans. It was deemed expedient at this stage of the great political journey, to show that the British could beat some one, and so it was determined to beat the Amirs of Sindh . . . the Governor-General resolved, that the Amirs who a few months before had spared our army, when they might have annihilated it, should be the victims of this generous policy."—Sir John Kaye in *the Calcutta Review*, vol. i, p. 232

फिर भी २६ अगस्त सन् १८४२ को लॉर्ड एलेनब्रु ने सिन्ध के अमीरों को दण्ड देने के लिए जनरल नेपियर को एक विशाल सेना देकर सिन्ध भेज दिया। ६ सितम्बर सन् १८४२ को सर चार्ल्स नेपियर सिन्ध पहुँचा। हैदराबाद होते हुए वह अलीमुराद के साथ साज़िश पक्की करने के लिए सक्खर पहुँचा। ईस्टविक लिखता है कि—"तुरन्त अंगरेज़ सेनापति ने अलीमुराद के पास उसके हौसले को बढ़ाने के लिये पत्र भेजे। अंगरेज़ सेनापति ने पहले मीर रुस्तम ख़ाँ से गद्दी छीनने का सङ्कल्प कर लिया। उसने × × × उस बूढ़े अमीर को, जो अंगरेज़ों का मित्र था, पदच्युत करने और उसका राज छीन लेने का इरादा कर लिया।"*

साज़िश पक्की करना

नेपियर की सेना के मार्ग में न रोके जाने का कारण यह था कि अभी तक नेपियर ऊपर से अमीरों के साथ मित्रता की दुहाई दे रहा था। १ दिसम्बर सन् १८४२ को अचानक सिन्ध में एक एलान प्रकाशित किया गया, जिसमें पूर्वोक्त जाली पत्रों की बिना पर लोगों को यह सूचना दी गई कि रोहरी से लेकर सब्ज़लकोट तक का मीर रुस्तम ख़ाँ का इलाक़ा कम्पनी सरकार ने ज़ब्त कर लिया। कप्तान ईस्टविक और करनल ऊटरम दोनों ने अपनी अपनी पुस्तकों में इस घोर अन्याय को स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है। मीर रुस्तम ख़ाँ या अन्य अमीरों को जवाबदेही का कोई मौक़ा नहीं दिया गया, न उन्हें उनके अपराध की सूचना तक दी गई।

---

* *Dry Leaves from Young Egypt*, p. 264.

अलीमुराद के ज़रिये अनेक झूठी सच्ची शिकायतें मीर रुस्तम ख़ाँ के विरुद्ध जमा कर ली गईं। कप्तान ईस्टविक लिखता है कि —

"जनरल नेपियर ने खुले तौर पर यह प्रकट किया कि मुझे अमीरों को दमन करने के लिए किसी बहाने की आवश्यकता है; फिर इसमें क्या आश्चर्य हो सकता है कि कुछ न कुछ इस प्रकार के अधम और नीचतम लोग मिल गए, जिन्होंने अपने नरेशों के दुर्व्यवहार की शिकायत की, या अलीमुराद के एजण्टों ने इस सार्वजनिक प्रोत्साहन से लाभ उठा कर जाल साज़ियाँ शुरू कर दीं ?"*

हैदराबाद के अमीरों के विरुद्ध भी २४ इलज़ामों की एक सूची तैयार कर ली गई, जिनके विषय में ईस्टविक लिखता है —

"ये सब थोथे इलज़ाम थे जो केवल एक बहाना ढूँढ़ने के लिए गढ़ लिए गये थे।"†

मीर रुस्तम ख़ाँ पर झूठा इलज़ाम

७ दिसम्बर को बिना अमीरों से बात चीत किए सर चार्ल्स नेपियर ने रोहरी से सब्ज़लकोट तक के इलाक़े पर क़ब्ज़ा करने के लिए अपनी फ़ौज को तैयार करना शुरू किया। १४ दिसम्बर को अमीर

* "The general openly avowed his anxiety to obtain a pretext for coercing them ; and can we wonder that there were found—among the basest and lowest of the people-some to complain of illtreatment at the hands of their rulers, or that the agents of Ali Murad should have taken advantage of such a general encouragement for their fabrications ?"—*Dry Leaves from Young Egypt*, p. 267.

† "Frivolous accusations, which were concocted for the simple purpose of making out a case."—Ibid, p. 269.

रुस्तम ख़ॉ ने सर चार्ल्स नेपियर को पत्र लिखा कि आपसे जो शिकायतें की गई हैं वे सब झूठी हैं और मैं पूर्ववत् अंगरेज़ों के साथ मित्रता क़ायम रखने के लिए उत्सुक हूँ। इस समय एक और नई बात उड़ाई गई कि मीर रुस्तम ख़ाँ ने कहीं पर अंगरेज़ों की डाक लुटवा दी। कप्तान ईस्टविक साफ़ लिखता है कि यह डाक लूटने का काम अलीमुराद के ज़रिए कराया गया था, ताकि मीर रुस्तम ख़ाँ पर एक और झूठा इलज़ाम लगाया जा सके। इस पर ईस्टविक के शब्द हैं —

"यह देख कर कि वे लोग, जो अपने को अंगरेज़ कहते थे, इन असभ्य और द्वेषपूर्ण झूठी बातों को सहन करते थे, हम लज्जा और घृणा से मर जाते हैं।"*

गवरनर जनरल के नाम सर चार्ल्स नेपियर के इस समय के पत्र वास्तव में घृणित और अकथनीय छलों से भरे हुए हैं।

करनल ऊटरम स्पष्ट लिखता है —

"बूढ़े नरेश रुस्तम ख़ाँ ने या उसके किसी भाई ने कभी किसी अंगरेज़ के सर के बाल तक को हानि न पहुँचाई थी; इसके विपरीत, उन्होंने उस समय जब हमें सबसे बड़ी आवश्यकता थी, अपना देश और माल हमारी सेवा के लिए उपस्थित कर दिया था।"†

---

* "One feels sick with shame and disgust that such barbarous and malignant falsehoods could be winked at by men calling themselves Englishmen."—Ibid, p. 271.

† "Neither the venerable Prince, . . . nor any of his brethren had ever injured the hair of a head of any British subject; but they, had in the hour of our greatest need, placed their country and its resources at our

मीर रुस्तम ख़ाँ ने फिर भी शान्ति से निबटारा करना चाहा।

रुस्तम ख़ाँ की सुलह की इच्छा

उसने कई बार सर चार्ल्स नेपियर से मिलने की इच्छा प्रकट की, किन्तु नेपियर ने स्वीकार न किया।

अलीमुराद के विश्वासघात और अंगरेज़ी सेना की सहायता से अब बूढ़े अमीर रुस्तम ख़ाँ को अनेक प्रकार की आपत्तियों में डाला गया, उसका तरह तरह से अपमान किया गया।

इस बीच सक्खर से जनरल नेपियर ने कप्तान स्टैनली को एक नया सन्धि पत्र देकर हैदराबाद के अमीरों के पास भेजा। इस सन्धि पत्र की शर्तें बहुत अपमानजनक थीं। हैदराबाद के अमीरों ने नए सन्धि पत्र को देख कर बातचीत के लिए अपने दूत नेपियर के पास भेजे। नेपियर ने दूतों से बात करने तक से इनकार कर दिया। इसी बीच नेपियर ने अपनी सेना और तोपों सहित अकारण ख़ैरपुर पर चढ़ाई की और बूढ़े रुस्तम ख़ाँ से कहला भेजा कि यदि आप अपनी जान बचाना चाहते हैं तो शीघ्र ख़ैरपुर छोड़ कर हैदराबाद चले जाइये, मैं वहीं आकर अन्य अमीरों के साथ आपसे बातचीत करूँगा। बूढ़े रुस्तम ख़ाँ को नगर छोड़ कर अपनी स्त्रियों और बच्चों सहित ऊँटों पर बैठ कर हैदराबाद की ओर भाग जाना पड़ा।

---

disposal."—*Conquest of Sindh, a commentary*, by Colonel Outram, vol. i, p. 90.

मीर रुस्तम ख़ाँ की आयु इस समय ८५ वर्ष की थी। ईस्ट-विक दुख के साथ लिखता है कि—

अमीरों पर अत्याचार

"हमने ख़ानदानी नरेशों के विरुद्ध, जो कि हमारे मित्र थे, अनेक झूठी बातों के आधार पर उनका सर्वस्व छीन लिया, उन्हें जगह जगह भगाया, उन्हें क़ैद में डाल दिया, यहाँ तक कि सिवाय मौत के और उनके पास इस आपत्ति से छुटकारा पाने का कोई उपाय न रहा।"

नेपियर की सेना ने ख़ैरपुर के नगर को लूटा। इसके बाद नेपियर ने इमामगढ़ के क़िले पर हमला किया, क़िले को तोड़ डाला और नगर को लूट लिया। इमामगढ़ के बाद नेपियर ने हैदराबाद की ओर बढ़ना शुरू किया।

लूट

समाचार पाते ही हैदराबाद के अमीरों ने नेपियर के पास फिर अपने दूत भेजे। नए सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर कर देने को रज़ामन्दी प्रकट की और नेपियर से प्रार्थना की कि आप हैदराबाद की ओर बढ़ कर वृथा रक्तपात से देश को बरबाद न कीजिये। ख़ैरपुर और हैदराबाद के बीच में नौशहरा नामक स्थान पर इन दूतों ने नेपियर से भेंट की। नेपियर ने दूतों के उत्तर में उन्हें हैदराबाद के अमीरों के नाम एक पत्र दिया, जिसमें लिखा था कि आप मीर रुस्तम ख़ाँ को हैदराबाद बुला लीजिए, मैं मेजर ऊटरम को यहाँ से भेजता हूँ, मेजर ऊटरम वहाँ पर मीर रुस्तम ख़ाँ के

हैदराबाद के अमीर

विषय में भी सब बातें तय कर देगा और नए सन्धि-पत्र पर आपके दस्तख़त भी करा लेगा, मैं अभी हैदराबाद की ओर न बढ़ूंगा।

८ फ़रवरी सन् १८४२ को मेजर ऊटरम हैदराबाद पहुँचा। मेजर ऊटरम के कहने के अनुसार अमीरों ने युद्ध से बचने की इच्छा से अपनी मोहरें मेजर ऊटरम के हवाले कर दीं।

हैदराबाद की ओर अंगरेज़ी सेना

किन्तु नेपियर बराबर अपनी सेना सहित हैदराबाद की ओर बढ़ता रहा। हैदराबाद के निकट बलूचियों में खलबली मच गई। हैदराबाद के अमीरों ने मेजर ऊटरम से कहा कि आप अपना आदमी भेज कर जनरल नेपियर को रोकिए, नहीं तो बलूची प्रजा में बेचैनी बढ़ रही है। सन्धि के लिए हमारी मोहरें आपके हाथ में हैं। मेजर ऊटरम ने स्वीकार कर लिया और अपनी ओर से एक अंगरेज़ इस काम के लिए मीर नसीर ख़ाँ के पास भेजा। मीर नसीर ख़ाँ ने ६ फ़रवरी की रात को इस अंगरेज़ को एक तेज़ ऊँट के ऊपर नेपियर के पास रवाना किया। १२ फ़रवरी को सिन्धी ऊँट वाले ने मीर नसीर ख़ाँ को आकर सूचना दी कि ऊटरम के दूत और जनरल नेपियर में मुलाक़ात होगई किन्तु जनरल नेपियर बजाय रुक जाने के अपनी सेना सहित हैदराबाद की ओर बढ़ने लगा।

ऊटरम के वादों पर विश्वास

मीर नसीर ख़ाँ ने तुरन्त ऊटरम को इसकी सूचना दी। उसी दिन तीसरे पहर ऊटरम अमीरों से आकर मिला। ऊटरम ने शपथ खाकर मीर नसीर ख़ाँ को विश्वास दिलाया कि जनरल नेपियर का

उद्देश युद्ध करना या अमीरों का राज छीनना नहीं है। ऊटरम ने अमीरों से कहा कि आप सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर कर दीजिए, मैं इसी समय जनरल नेपियर के नाम एक पत्र लिख कर आपको दे दूँगा, आप उस पत्र को अपने आदमियों के हाथ नेपियर के पास भेज दीजिए, नेपियर तुरन्त हैदराबाद की ओर आने का इरादा छोड़ कर उत्तर की ओर लौट जायगा।

दग़ा

अमीरों ने स्वीकार कर लिया। उन्होंने नेपियर के भेजे हुए सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए। इस सन्धि-पत्र पर अमीर की मुहरें भी लगा दी गईं। ऊटरम ने नेपियर के नाम पत्र लिख कर मीर नसीर ख़ाँ के हवाले किया। तुरन्त एक तेज़ साँड़नी सवार के हाथों यह पत्र नेपियर के पास भेजा गया। साँड़नी सवार ने लौट कर फिर यही आश्चर्यजनक सूचना दी कि ऊटरम के पत्र को पाने के बाद भी जनरल नेपियर ने पूर्ववत् सेना सहित हैदराबाद की ओर अपनी चढ़ाई जारी रक्खी।

इस बीच वृद्ध मीर रुस्तम हैदराबाद पहुँच चुका था। उसकी विपत्तियों को देख कर हैदराबाद की प्रजा और सेना में क्रोध बढ़ता जा रहा था।

इसी समय जनरल नेपियर ने अपनी यात्रा में एक बूढ़े निर-पराध बलूची सरदार हयात ख़ाँ को, जो हैदराबाद की ओर आ रहा था पकड़ कर क़ैद कर लिया। नगर के अन्दर कुछ बलूचियों

ने मेजर ऊटरम पर इसका बदला उतारना चाहा, किन्तु अमीर नसीर ख़ाँ ने उन्हें समझा बुझा कर शान्त कर दिया।

अमीरों का नेपियर से प्रश्न

हैदराबाद के अमीरों ने जनरल नेपियर को फिर एक पत्र भेजा, जिसमें उससे पूछा कि हमारे सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर कर देने के बाद भी आप सेना लेकर हैदराबाद की ओर क्यों आ रहे हैं। नेपियर ने कोई उत्तर न दिया, वह बराबर हैदराबाद की ओर बढ़ता रहा। क़रीब पाँच हज़ार बलूची नेपियर के मुक़ाबले के लिये हैदराबाद के नगर के बाहर जमा हो गए। अमीर नसीर ख़ाँ ने १५ फ़रवरी को सवेरे फिर अपने महल से निकल कर इन क्रुद्ध बलूचियों को शान्त करने का प्रयत्न किया और कहा कि मैं कल फिर अपना एक वकील नेपियर के पास भेजूँगा और प्रयत्न करूँगा कि बिना प्रजा के रक्तपात और बरबादी के शान्ति से सब मामला तय हो जाय।

बलूचियों में रोष

उसी दिन दोपहर को मेजर ऊटरम के सिपाहियों के साथ कुछ बलूचियों का झगड़ा होगया, जिसमें दो बलूची और ऊटरम का एक सिपाही तीन आदमी मारे गए। मेजर ऊटरम ने इस पर नगर छोड़ कर एक जहाज़ में आश्रय लिया। बलूचियों ने दो अंगरेज़ सिपाहियों को क़ैद कर लिया। मीर नसीर ख़ाँ और मीर मोहम्मद ख़ाँ ने दोनों गोरे सिपाहियों को खाना खिला कर फिर स्वतन्त्र कर दिया।

मीर नसीर ख़ाँ का दूसरा वकील अभी सर चार्ल्स नेपियर से

अमीर नसीर ख़ाँ और उसके दो बेटे

[From "Dry Leaves from Young Egypt" by Eastwick]

मिलने भी न पाया था कि १७ फ़रवरी सन् १८४३ को मियानी नामक स्थान पर अमीरों की इच्छा के विरुद्ध नेपियर की सेना में और उन बलूचियों में जो हैदराबाद की रक्षा के लिये जमा हो गए थे, संग्राम शुरू हो गया। मीर नसीर ख़ां का बयान है कि पहला वार नेपियर की ओर से हुआ। इन पाँच हज़ार बलूचियों के अतिरिक्त नसीर ख़ाँ के पास हैदराबाद के क़िले के अन्दर उस समय क़रीब १२ हज़ार बलूची सेना और थी। किन्तु मीर नसीर ख़ाँ ने ऊटरम के बार बार यह विश्वास दिलाने पर कि नेपियर का इरादा शत्रुता करना या अमीरों का राज छीनना नहीं है, उन्हें नेपियर के विरुद्ध शस्त्र उठाने से रोके रक्खा।

मियानी का संग्राम

फिर भी मियानी के मैदान में सुबह चार बजे से लेकर सायङ्काल तक अत्यन्त घमासान संग्राम हुआ। अंगरेज़ों की ओर कुछ गोरी और शेष हिन्दोस्तानी पलटनें थीं। बलूचियों ने अपनी बन्दूकें फेंक कर तलवारों और ढालों से मुक़ाबला करना शुरू किया। एक दूसरे के बाद अनेक अंगरेज़ अफ़सर और सहस्रों अंगरेज़ सिपाही मैदान में कट कट कर गिरने लगे। बार बार अंगरेज़ी सेना को हार कर पीछे हट जाना पड़ा। बलूचियों ने इस वीरता के साथ सामना किया और अंगरेज़ों की ओर हताहतों की संख्या इतनी बढ़ गई कि मेजर वेडिङ्गटन, जो इस समय संग्राम में उपस्थित था,

बलूचियों की वीरता

लिखता है कि एक बार जनरल नेपियर को भी अंगरेज़ों की विजय में सन्देह हो गया।*

अमीरों के कारण अंगरेज़ों की विजय

मियानी के बचे हुए अनेक अंगरेज़ अफ़सरों ने बलूचियों की वीरता की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। करनल वेडिङ्गटन लिखता है कि एक स्थान पर केवल पचास क़दम के अन्दर चार सौ लाशें गिनी गईं। किन्तु अंगरेज़ी सेना की संख्या इन बलूचियों से कहीं अधिक थी। बलूचियों की ओर कोई विशेष नेता भी न था। हैदराबाद के अमीर अभी तक कायरतावश या शान्तिप्रियतावश क़िले के अन्दर बैठे हुए शान्ति के साथ समस्त मामले का निवटारा करने का स्वप्न देख रहे थे। क्योंकि इस बीच मेजर ऊटरम बराबर अपने को अमीरों का दोस्त बता कर उन्हें यह समझा रहा था कि यदि आप शान्ति क़ायम रक्खें तो आपका राज आपके हाथों में पूर्ववत् क़ायम रहेगा। मीर नसीर ख़ाँ मैदान में पहुँचा, किन्तु अपने योधाओं को प्रोत्साहित करने के लिए नहीं, वरन् उन्हें समझा बुझा कर वापस करने के लिए। अन्त में इतिहास लेखक टॉरेन्स के अनुसार ६,००० † वीर बलूचियों की लाशों के ऊपर से १७ फ़रवरी की रात को मियानी के मैदान को तय करते हुए विजयी अंगरेज़ी सेना ने अगले दिन सुबह हैदराबाद में प्रवेश किया।

---

* *Dry Leaves from Young Egypt*, p. 353.

† Torrens' *Empire in Asia*, etc., on the Amirs of Sindh.

अंगरेज़ सेनापतियों के बयानों और प्रकाशित सरकारी रिपोर्टों में झूठ की मात्रा इतनी अधिक है कि अंगरेज़ सेना के हताहतों की ठीक संख्या का पता नहीं चलता। जनरल नेपियर लिखता है कि अंगरेज़ी सेना कुल १,७०० थी, मेजर वेडिङ्गटन इसके विरुद्ध दलीलें देता हुआ लिखता है कि अंगरेज़ी सेना ३,००० थी और मियानी के संग्राम में जीवित बचे हुए जिन अफ़सरों और सिपाहियों में लूट मार का माल बाँटा गया, केवल उनकी संख्या सरकारी रिपोर्ट के अनुसार ४,८५६ थी। जो हो इसमें सन्देह नहीं, कम्पनी के हज़ारों गोरे और देशी सिपाही और अफ़सर मियानी के मैदान में काम आए।

अंगरेज़ी सेना के हताहत

सर रिचर्ड बर्टन ने मियानी के संग्राम में अंगरेज़ों की विजय के सम्बन्ध में एक और रहस्य प्रकट किया है। वह लिखता है :—

अंगरेज़ों की विजय का रहस्य

"न तो उस समय के इतिहास लेखकों से हमें इस बात का पता चलता है, और न हम सरकारी काग़ज़ों से इस बात के जानने की आशा कर सकते हैं कि जिस दोग़ले अफ़सर के सुपुर्द सिन्ध के अमीरों की तोपें थीं उसे किस प्रकार अपनी ओर फोड़ कर तोपों के मुँह इतने ऊँचे करवा दिए गए जिससे गोले अंगरेज़ी सेना को बचा कर दूर जाकर गिरें, न यह पता चलता है कि किस प्रकार टालपुर का वह देशघातक, जोकि अमीरों की सवार सेना का प्रधान सेनापति था, खुल्लम खुल्ला अपनी सेना को मैदान से हटा ले गया, और उसने मैदान से निर्लज्ज होकर भागने की मिसाल दूसरों के

लिए क़ायम कर दी। जब कभी वह दिन आएगा कि हिन्दोस्तान के अन्दर गुप्त सेवाओं के लिए जो धन व्यय किया जाता है, उसका व्यौरेवार हिसाब छापा जायगा तब लोगों को अजीब अजीब बातों का पता चलेगा। इस बीच हममें से जो लोग अपनी ज़िन्दगी में यह देख चुके हैं कि इतिहास किस प्रकार लिखा जाता है, वे इस इतिहास का एक घटिया उपन्यास से अधिक मूल्य नहीं कर सकते।"*

इससे मालूम होता है कि भारतवासियों के समान वीर बलूची भी १७ फ़रवरी को अंगरेज़ों की चाँदी की गोलियों का शिकार होने से न बच सके!

अमीर द्वारा बलूची सेना की बर्ख़ास्तगी

१८ फ़रवरी को सवेरे नगर में प्रवेश करने के बाद जनरल नेपियर ने मेजर ऊटरम की मौजूदगी में मीर नसीर ख़ाँ को फिर यह विश्वास दिलाया कि सिन्ध के अमीरों की सलतनत उन्हें वापस दे दी जायगी, इस शर्त पर कि आप अपनी सेना को बरख़ास्त कर दें और उन्हें नगर से बाहर कर दें। मालूम होता है कि नसीर ख़ाँ के दिल से अब भी अंगरेज़ों का विश्वास न हटा

* "Neither of our authorities tell us, nor can we expect a public document to do so, how the mulatto who had charge of the Amirs' guns had been persuaded to fire high and how the Talpur traitor who commanded the cavalry, openly drew off his men and showed the shameless example of flight. When the day shall come to publish details concerning disbursement of 'Secret Service money in India' the public will learn strange things. Meanwhile those of us who have lived long enough to see how history is written, can regard it as but little better than a poor romance."—*Life of Sir Richard Burton*, by Lady Burton, p. 141.

था। नसीर ख़ाँ ने स्वीकार कर लिया, उसने अपनी बलूची सेना को बरख़ास्त कर दिया। किन्तु बलूची सेना के बरख़ास्त करते ही नेपियर ने मीर नसीर ख़ाँ, मीर शहदाद ख़ाँ और मीर रुस्तम ख़ाँ को क़ैद कर लिया। इसके तीन दिन बाद जनरल नेपियर ने एक पलटन सवार, एक पलटन पैदल, दो तोपों और कुछ अंगरेज़ अफ़सरों सहित हैदराबाद के क़िले में प्रवेश किया।

ज़नानख़ानों पर हमला

नेपियर ने क़ैदी मीर नसीर ख़ाँ से यह कहला भेजा कि मैं केवल क़िले को देखना चाहता हूँ, आप अपने कुछ आदमी साथ कर दीजिये। मीर नसीर ख़ाँ ने दीवान मिठाराम, बहादुर ख़िदमतगार और अख़ूंद वाचाल को नेपियर के पास भेज दिया। जो हृदय विदारक दृश्य अब हैदराबाद के क़िले के अन्दर देखने में आया उसे हम ठीक ठीक दीवान मिठाराम ही के मर्मस्पर्शी शब्दों में नीचे उद्धृत करते हैं। दीवान मिठाराम ने अपने बयान में जिन जिन अंगरेज़ अफ़सरों के नाम दिये थे, कप्तान ईस्टविक ने अपनी पुस्तक में उनके नामों का स्थान छोड़ कर केवल 'साहब' सामने लिख दिया है। हम यह बयान कप्तान ईस्टविक की पुस्तक से ज्यों का त्यों उद्धृत कर रहे हैं। दीवान मिठाराम लिखता है—

"इसके बाद—साहब दूसरे अफ़सरों और सिपाहियों के साथ परलोकवासी मीर करमअली ख़ाँ के ज़नानख़ाने में गया, उसने मिरज़ा ख़ुसरोबेग का गला पकड़ कर उसका अपमान किया, और उसे आज्ञा दी कि ज़नानख़ाने में जो कुछ धन और ज़ेवर हैं वे हमारे हवाले कर दो। इन

ज़ेवरों की क़ीमत १५ लाख रुपए थी। मीर करमअली की बेगमों ने यह दृश्य देख कर—साहब से कहला भेजा कि आप हमें पालकियाँ दिलवा दीजिए और केवल बदलने के लिए तीन तीन जोड़ी कपड़े हर एक के साथ देकर हमें शहर से निकल जाने दीजिये।—साहब ने इनकार कर दिया, मुन्शी अलीअकबर के साथ वह ज़बरदस्ती ज़नानख़ाने में घुस गया, वहाँ पर स्त्रियों के जितने ज़ेवर, जवाहरात, सोने चाँदी के बरतन और कपड़े इत्यादि मिले उसने सब लूट लिये, और जो ज़ेवर स्त्रियाँ अपनी कमर के नीचे और पैरों पर पहने हुई थीं उन तक को उसने खींच कर उतार लिया। अभागी स्त्रियाँ भय और लज्जा के मारे नगर से भाग कर पैदल हैदराबाद से पाँच कोस दूर कहतर पहुँच गईं। और—साहब और—साहब और—साहब ने अमीर मीर नूरमोहम्मद ख़ाँ के ज़नानख़ाने में प्रवेश किया, और उन्हें इसी तरह लूटा, यहाँ तक कि वहाँ की स्त्रियाँ भी इसी प्रकार विवश होकर अपने घरों से भाग कर कुछ दिन बाद पैदल कहतर पहुँच गईं। २२ फ़रवरी सन् १८४३ को अमीर मीर मोहम्मद ख़ाँ को क़िले से लाकर अंगरेज़ी कैम्प में क़ैद कर दिया गया, उसके ज़नानख़ाने में भी इसी प्रकार ज़बरदस्ती घुस कर उसे लूट लिया गया। इसके बाद मीर सोबदार की बेगमों को लूटा गया, वे पैदल भाग कर होसरी चली गईं। —साहब ने मीर सोबदार के लड़के फ़तहअली ख़ाँ से दो क़ीमती कड़े माँगे, जो दे दिए गये। मीर सोबदार के ज़नानख़ाने की एक स्त्री ने कुछ रुपये अपने कमरबन्द में बाँध लिए थे। भागते समय इनमें से कुछ रुपये गिर पड़े, तुरन्त उस स्त्री को पकड़ लिया गया; उसका कमरबन्द काट दिया गया, और रुपये उससे ले लिए गए। इसके बाद एक एक स्त्री को अलग ले

जाकर उसके हाथों, पैरों, नाक और कान से सब ज़ेवर उतार लिए गए। इसके बाद किले में बाहर से आना बन्द कर दिया गया, परलोकवासी मीर नूरमोहम्मद खां और मीर नसीर खां की स्त्रियां अभी उस समय तक क़िले ही में थीं, दो दिन तक उन्हें लगभग बिना पानी के रक्खा गया। मीर नसीर खाँ के बेटे मीर हुसैनअली खाँ और मीर अब्बासअली खाँ क़िले में क़ैद थे। उन्होंने एक आदमी को—साहब के पास पानी के लिए भेजा। उत्तर मिला कि सर चार्ल्स नेपियर की आज्ञा है कि जिस किसी को पानी पीना हो, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, उसे गारद के कमाण्डिङ्ग अफ़सर के बँगले पर जाकर पानी पीना होगा। पूर्वोक्त अमीरों के ज़नानखानों में नौकर चाकर मिला कर कुल पाँच सौ प्राणी थे। अन्त में बड़ी कठिनाई के बाद इन पाँच सौ मनुष्यों के लिए एक मश्क पानी दिया गया, जिससे सब ने अपने गले गीले कर लिए, प्यास किसी की न बुझ सकी। थोड़ी देर बाद—साहब और—साहब कुछ सिपाही लेकर इन ज़नानखानों के दरवाज़ों पर पहुँचे। दरवाज़े बन्द थे, इन लोगों ने कुल्हाड़ों से दरवाज़ों को तोड़ा और वहाँ की स्त्रियों के सब ज़ेवर माँगे। स्त्रियों को विवश होकर अपने सब ज़ेवर उतार देने पड़े। अगले दिन—साहब ने आकर ज़नानखाने का शेष सब सामान निकाल लिया। एक स्त्री ने बच कर निकल जाना चाहा। अकस्मात् वह रेशमी पाजामा पहने हुए थी; क़िले के दरवाज़े पर सिपाहियों ने उसे रोक लिया और उसके सब कपड़े उतरवा लिए। परलोकवासी नूर मोहम्मद खाँ की बेगम ने कुछ कपड़े अपनी एक दासी को दिए कि इन्हें बेच कर मेरे लिए कुछ खाना ले आओ।—साहब के मुन्शी ने उस स्त्री को पकड़ कर उसे पीटा और उससे कपड़े छीन लिए। इसके बाद दो (अंगरेज़)

औरतें क़िले के फाटक पर बैठा दी गईं, और भीतर से जो स्त्री बाहर जाती थी ये दोनों औरतें उसकी तलाशी लेती थीं। सारांश यह कि अमीरों की एक एक चीज़ ले ली गई, उनका सर्वस्व लूट लिया गया! इसके बाद मीर सोबदार ख़ाँ को बाहर लाकर अंगरेज़ी कैम्प में क़ैद कर दिया गया, और पहले दिन मीर नसीर ख़ाँ के बेटों को जो तलवारें दी गई थीं वे उनसे छीन ली गईं। इसके बाद मिरज़ा ख़ुसरो बेग का मकान लूटा गया और उसे ले जाकर अंगरेज़ी कैम्प में क़ैद कर दिया गया। मिरज़ा ख़ुसरो बेग को फिर क़िले में वापस लाया गया। वहाँ पर उसे इतनी बुरी तरह पीटा गया कि वह बहुत देर तक बेहोश रहा। जब उसे होश आया तो बाँध कर फिर अंगरेज़ी कैम्प में पहुँचा दिया गया और वहाँ पर क़ैद कर दिया गया।"*

इतिहास लेखक जे० बी० फैरियर दीवान मिठाराम के इस कथन का पूरी तरह समर्थन करता है।†

महलों की लूटका तख़मीना

एक और अङ्गरेज़ अफ़सर जो १८५७ के विप्लव में लड़ा था, और जिसका बाप उस समय सिन्ध में जनरल नेपियर के साथ था, लिखता है कि विजयी अङ्गरेज़ों ने सिन्ध को बेगमों के कानों और उनकी नाकों से इस बेदरदी के साथ बालियाँ इत्यादि उतारीं कि उनके नाक और कान बुरी तरह कट गए।‡

* Translated from the English translation of Diwan Mitharam's Statement etc., published in, *Dry Leaves from Young Egypt*, by W. J. Eastwick, an ex-political, sometime M. P., pp. 342-44.

† *History of the Afghans*, by J. P. Ferrier, translated by Captain Jesse, London, John Murray, 1858, p. 287.

‡ "The harem ladies were not only plundered of their ornaments they

मीर नसीर ख़ाँ का बयान है कि हैदराबाद के महलों की समस्त लूट का मूल्य क़रीब अठारह करोड़ रुपए था। यह सब धन जहाज़ों में बन्द करके बम्बई भेज दिया गया।

सिन्ध पर अंगरेज़ों का क़ब्ज़ा हो गया। मीर रुस्तम ख़ाँ के राज का एक भाग विश्वासघातक अलीमुराद को दे दिया गया। शेष समस्त सिन्ध अंगरेज़ कम्पनी के राज में मिला लिया गया।

सिन्ध पर अंगरेज़ों का क़ब्ज़ा

इसके सात वर्ष बाद अलीमुराद पर भी यह दोष लगा कर कि तुमने सन् १८४३ में मीर रुस्तम ख़ाँ के विरुद्ध जालसाज़ी की थी, उसका आधा राज उससे छीन लिया गया। ख़ैरपुर की शेष छोटी सी रियासत पर अभी तक अलीमुराद के वंशजों का शासन है।

एक अलीमुराद को छोड़ कर सिन्ध के शेष समस्त अमीरों और उनके पुत्रों को क़ैद करके बेड़ियाँ पहना कर जहाज़ पर बैठा कर अपने राज और देश दोनों से निर्वासित कर दिया गया। उनमें से कुछ को पूना में और कुछ को कलकत्ते, हज़ारीबाग़ आदि स्थानों में क़ैद करके रक्खा गया। बेटों को उनके बापों से पृथक रक्खा गया। कलकत्ते ही में अंगरेज़ों की क़ैद में कुछ दिनों बीमार रह कर मीर नसीर ख़ाँ की मृत्यु हुई। इसी प्रकार पूना में कई वर्ष क़ैद में रहने

अमीरों का शोकजनक अन्त

had on their person, but their noses and ears were horribly mutilated."—Captain S—as quoted by a Traveller, in his letter on the *Conquest of Sindh*, in the *Tribune* of Lahore, September, 1893.

के वाद बूढ़े मीर रुस्तम ख़ाँ की मृत्यु हुई। टालपुर कुटुम्ब के शेष लोग सूरत व अन्य जेलों में धीरे धीरे सड़ सड़ कर मरे।

मीर रुस्तम ख़ाँ का एक लड़का मीर मोहम्मद हुसेन अपने घर की बूढ़ी स्त्रियों और अन्य आश्रितों सहित भूखा प्यासा अपने देश से निर्वासित वहुत दिनों गृहविहीन घूमता रहा। उसके कुछ छोटे भाई सिन्ध में रहे, जिनके विषय में ईस्टविक लिखता है कि—"भूख और प्यास, नङ्ग और सरदी उनके पल्ले पड़ी।"*

हैदरावाद और ख़ैरपुर की वेगमों की हालत और इससे भी अधिक हृदय विदारक थी। सिन्ध के राजकुल की इस दुर्दशा को अत्यन्त मर्मस्पर्शी शब्दों में वर्णन करते हुए ईस्टविक लिखता है—

सिन्ध के राजकुल की दुर्दशा

"× × × ये लोग हमारे मित्र थे × × × हमने इनके चारों तरफ़ कूटनीति और धूर्तता का एक जाल पूर दिया, और उन्हें इस प्रकार की झूठी बातों के पाश में फँसा लिया जिन्हें यदि इस समय प्रकट किया जाय तो सुन कर दिन में भी डर लगने लगे! इङ्गलिस्तान के पुरुषो! जिस स्वतन्त्रता का तुम्हें घमण्ड है उसका चिन्तन करो, और देखो कि तुम्हारे हृदय में उन लोगों के प्रति वास्तविक सहानुभूति उत्पन्न होती है या नहीं, जो अपने देश और अपनी स्वाधीनता की रक्षा के लिए तुम्हारी तलवार से कट कर मर गए, और उन थोड़े से, किन्तु कहीं अधिक अभागे अमीरों के लिए, जो किसी समय तुम्हारे मित्र थे, बल्कि किसी समय तुम पर उपकार करते थे, और जो

* "Hunger and thirst, cold and nakedness, have been their portion."—*Dry Leaves from Young Eygpt*, p. 298.

अब दूर दूर के देशों में बड़े दुख के साथ निर्वासन के दिन काट रहे हैं, जिनके आतिथ्य सत्कार और जिनकी मित्रता की एक समय तुम्हें चाह थी उनके क़ैद रखने वाले जेलरों को आज तुम तनख़ाहें दे रहे हो। इंगलिस्तान की स्त्रियो! सोचो कि बादशाहों की माताएँ और बहिनें, जिनके समस्त आभूषण उतार लिए गए हैं, अपने देश से निर्वासित, गृहविहीन और असहाय, विषैली दलदलों और भीषण जङ्गलों में मारी मारी फिर रही हैं।"*

सिन्ध के मुसलमान अमीरों और उनके बाल बच्चों के साथ ईसाई विजेताओं के इस भीषण व्यवहार की अमानुषिकता को संसार की दृष्टि में कम करने के लिए जनरल सर चार्ल्स नेपियर के भाई सर विलियम नेपियर ने 'सिन्ध की विजय' † नाम से अंगरेज़ी में एक प्रसिद्ध पुस्तक लिख डाली।

प्रसिद्ध इतिहास लेखक सर जॉन के ने एक स्थान पर लिखा है—

* " . . . our own allies . . . victims, round whom was woven a web of cunning villainy, and who were trapped with falsehoods which now make day hideous by their revelation! Men of England! think of your boasted freedom, and let your pulse beat quick for those who died by your sword in defence of their own liberties and homes, and for that smaller, but far more wretched, band, once your friends, once aye! your benefactors, now lingering out a miserable exile in a distant land, whose jailers you now pay, whose hospitality, whose alliance, you once sought. Women of England! think of the mothers and sisters of princes, stripped of their ornaments, torn from their homes, driven to wander houseless and friendless in the wild jungles and poisonous swamps. . . . "—*Dry Leaves from Young Egypt*, by Captain Eastwick, M. P., p. 238.

† *The conquest of Sindh*,—by Sir William Napier.

"हम लोगों में यह एक रिवाज है कि पहले किसी देशी नरेश का राज ले लेते हैं और फिर पदच्युत नरेश या उसके उत्तराधिकारी की बुराइयाँ करने लगते हैं।"*

"हम लोगों का एक रिवाज"

ब्रिटिश भारत के इतिहास में इसके अनेक ही शोकजनक उदाहरण मिलते हैं। किन्तु शायद अंगरेज़ इतिहास लेखकों के लिखे हुए ब्रिटिश भारत के इतिहासों में भी कहीं पर कल्पित घटनाओं और लज्जास्पद झूठों की इतनी अधिक और इतनी भयङ्कर मिसालें न मिलेंगी, जितनी सर विलियम नेपियर कृत "सिन्ध की विजय" में। अपने भाई चार्ल्स नेपियर और उसके साथियों के कारनामों को थोड़ा बहुत जायज़ क़रार देने के लिए विलियम नेपियर ने सिन्ध के अमीरों और वहाँ की प्रजा दोनों के ऊपर अनेक कल्पित और अनसुने दोष लगाए हैं। मिसाल के तौर पर, विलियम नेपियर ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि सिन्ध के अमीर लिखने पढ़ने से सर्वथा अनभिज्ञ थे, वे मादक द्रव्यों के व्यसनी थे, बूढ़े मीर रुस्तम ख़ाँ के विषय में लिखा है कि वह निर्बल, शराबी और व्यभिचारी था, लिखा है कि अमीरों का व्यवहार हिन्दुओं के साथ बहुत बुरा था; बलूची लोग अपने हाथ से अपने बच्चों को मार डालते थे! इत्यादि, इत्यादि।†

विलियम नेपियर की पुस्तक की झूठी बातें

* ". . . it is a custom among us . . . . to take a native ruler's kingdom and then to revile the deposed ruler or his would be successor."—Sir John Kaye's *History of the Sepoy War*, vol. iii, p. 361.

† "And how did these monsters destroy their own children? etc., etc.,"—*Conquest of Sindh*, by Sir William Napier, part ii, p. 348.

वास्तव में इस प्रकार के मिथ्या कलङ्क न केवल नेपियर और उसके साथियों के अमानुषिक अत्याचारों को ही जायज़ क़रार नहीं देते, वलिक सिन्ध के अमीरों और वहाँ की प्रजा के ज़ख़्मों के ऊपर नमक का काम करते हैं। हम इनमें से केवल मुख्य मुख्य इलज़ामों की असत्यता को कुछ निस्पक्ष अंगरेज़ इतिहास लेखकों ही के शब्दों में दर्शाने का प्रयत्न करेंगे।

सिन्ध के अमीरों का चरित्र

सर अलेक्ज़ेण्डर वर्न्स का भाई प्रसिद्ध डॉक्टर जेम्स वर्न्स, जो वहुत दिनों सिन्ध के अमीरों के साथ रह चुका था, लिखता है :—

"जब मैं हैदरावाद जा रहा था तो मार्ग भर में मीर नसीर ख़ाँ के सद्गुणों और उसकी कवित्वशक्ति की प्रशंसा होती रही। मैंने अवसर पाकर मीर नसीर ख़ाँ से प्रार्थना की कि मुझे कृपा कर अपनी रची हुई कविताओं का संग्रह 'दीवाने जाफ़र' देने का अनुग्रह करें।"*

मीर नसीर ख़ाँ 'जाफ़र' के नाम से कविता किया करता था। इतिहास लेखक ईस्टविक लिखता है कि अमीरों के कुल के न केवल समस्त पुरुष ही, वलिक प्रत्येक स्त्री भी फ़ारसी और अरवी लिखना पढ़ना जानती थी।†

अमीरों के मादक द्रव्यों के उपयोग के विषय में डॉक्टर वर्न्स, जो महानों उनमें से एक एक के साथ रहा, लिखता है :—

"आम तौर पर मुसलमान नरेशों की अपेक्षा सिन्ध के अमीर अत्याशी

---

* *Amirs of Sindh*,—by Dr. James Burns, F. R. S.

† *Dry Leaves from Young Egypt*, p. 68.

और आरामतलबी में कम डूबे हुए हैं। × × × मुझे विश्वास है कि इस बात की पूरी तरह जाँच की जा चुकी है कि अमीर कभी भी मदिरा या मादक द्रव्यों का उपयोग नहीं करते। × × × अमीरों के दरबार में कहीं हुक्का दिखाई नहीं देता और न उनके कुटुम्ब में कोई अफ़ीम तक खाता है।"*

कप्तान ईस्टविक, जिसे वर्षों तक सिन्ध में अमीरों के साथ रहने का अवसर मिला और जो वहाँ की प्रजा के हर श्रेणी के लोगों में पूरी तरह मिलता जुलता रहा, लिखता है :—

"मैं सचाई के साथ कह सकता हूँ कि मैंने किसी भी अमीर के विरुद्ध कभी कोई ऐसी बात नहीं सुनी कि जो अधिकांश अंगरेज़ भद्र पुरुषों के विरुद्ध न कही जा सकती हो। × × × जहाँ तक मैंने सुना है, केवल एक मिसाल को छोड़ कर उस कुल के किसी भी व्यक्ति के ऊपर कभी किसी जुर्म का इलज़ाम नहीं लगाया गया × × ×।"†

जिस एक मात्र मिसाल का ईस्टविक ने ज़िक्र किया है वह १५ वर्ष पूर्व की यह घटना थी। कोई स्त्री बाहर से पढ़ाने के लिए मीर रुस्तम ख़ाँ के ज़नानख़ाने में जाया करती थी। राजकुल के एक युवक मोहम्मद ख़ाँ ने उस स्त्री के साथ अनुचित प्रेम दर्शाया। स्त्री के पिता को पता लग गया। उसने महल में घुस कर मुहम्मद ख़ाँ को बुरी तरह घायल कर दिया। मोहम्मद ख़ाँ बच गया। किन्तु मीर रुस्तम ख़ाँ ने इस मामले का पता चलने पर बजाय स्त्री के पिता

* *Amirs of Sindh*,—by Dr. James Burns, p. 67.

† *Dry Leaves from Young Egypt*, p. 68.

को किसी प्रकार का दण्ड देने के, निर्णय किया कि—'इतने घोर पाप के करने वाले के साथ हम कोई सम्बन्ध नहीं रख सकते।' मोहम्मद ख़ाँ को राजधानी से निकाल दिया गया, और फिर इसके बाद ज़िन्दगी भर उसे ख़ैरपुर लौटने की इजाज़त न मिली।*

यह घटना अमीर रुस्तम ख़ाँ के दरबार की है। हैदराबाद दरबार के अमीर नसीर ख़ाँ के जीवन की भी इस प्रकार की घटनाएँ ईस्टविक ने उद्धृत की हैं, जिनसे मालूम होता है कि स्त्री जाति और उनके सतीत्व और मान का सिन्ध के अमीरों को असाधारण ख़याल रहता था।

जिस बूढ़े अमीर मीर रुस्तम ख़ाँ को सर विलियम नेपियर ने 'शराबी' और 'अय्याश' बयान किया है, उसके विषय में पूना का अंगरेज़ सिविल सर्जन डाक्टर पोयर्ट लिखता है—

"ख़ैरपुर का पदच्युत अमीर रुस्तम ख़ाँ, उसका सबसे छोटा लड़का अलीबख़्श, और भतीजा पदच्युत अमीर नसीर ख़ाँ मार्च सन् १८४४ से अब तक मेरी निगरानी में रहे हैं, और मुझे यह तसदीक़ करते हुए अत्यन्त सन्तोष अनुभव होता है कि इन मुसीबतों में भी उनका आचरण अत्यन्त उदार और उत्कृष्ट था। मैं अच्छी तरह कह सकता हूँ कि जब से मुझे उनके परिचय का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, मैंने कभी कोई बात भी ऐसी नहीं देखी जिससे किसी प्रकार की बदपरहेज़ी या अय्याशी का उन पर अणुमात्र भी सन्देह किया जा सके; और मुझे इस बात की परीक्षा के काफ़ी अवसर मिले हैं, जिस समय चाहा मैं उनके पास पहुँच गया हूँ। मीर रुस्तम की उम्र

* Ibid, p. 68.

इस समय ८०. से ऊपर है; उसकी समस्त शक्तियाँ ज्यों की त्यों बनी हुई हैं, उसकी स्मरण शक्ति बहुत अच्छी है; वह अपनी धार्मिक क्रियाओं का ठीक ठीक पालन करता है, उसका रहन सहन परहेज़गारी का है, वह दिन में केवल एक बार खाना खाता है, और सिवाय पानी या दूध के और कोई चीज़ नहीं पीता।"*

करनल ऊटरम ने उस समय के उन समस्त अंगरेज़ राजनैतिक अफ़सरों की, जिन्हें समय समय पर सिन्ध के अमीरों के साथ रहने का अवसर मिला, इस विषय में गवाहियाँ जमा की हैं, और लिखा है कि वे सब गवाह एकमत से इस बात का समर्थन करते हैं कि सर विलियम नेपियर ने अपनी पुस्तक के अन्दर अमीरों के ऊपर जो जो इलज़ाम लगाए हैं वे सब के सब सर्वथा कल्पित हैं।†

मादक द्रव्यों से अमीरों को नफ़रत

इसके बाद हम केवल एक और अंगरेज़ कप्तान गॉर्डन की राय नीचे उद्धृत करते हैं जो बहुत दिनों तक हैदराबाद में अमीरों के साथ रहा। वह ऊटरम को लिखता है—

"आपके प्रश्न के उत्तर में मैं लिखता हूँ कि सिन्ध के अमीर हद दरजे के परहेज़गार मनुष्य हैं, वे शराब और हर प्रकार की मदिरा से बहुत सख़्त परहेज़ करते हैं, तम्बाकू से भी उन्हें बड़ी प्रबल घृणा है, वे तम्बाकू की गन्ध तक सहन नहीं कर सकते। इसलिए तम्बाकू और शराब पीने के विषय में हम में से बहुतों के लिए, जिन्हें कि अपनी अधिक उच्च सभ्यता

* *The Conquest of Sindh; a Commentary;* by Colonel Outram, part ii, p. 524.

† "Ibid, part ii.

मीर रुस्तम ख़ाँ

[From " Dry Leaves from Young Egypt, " by Eastwick.]
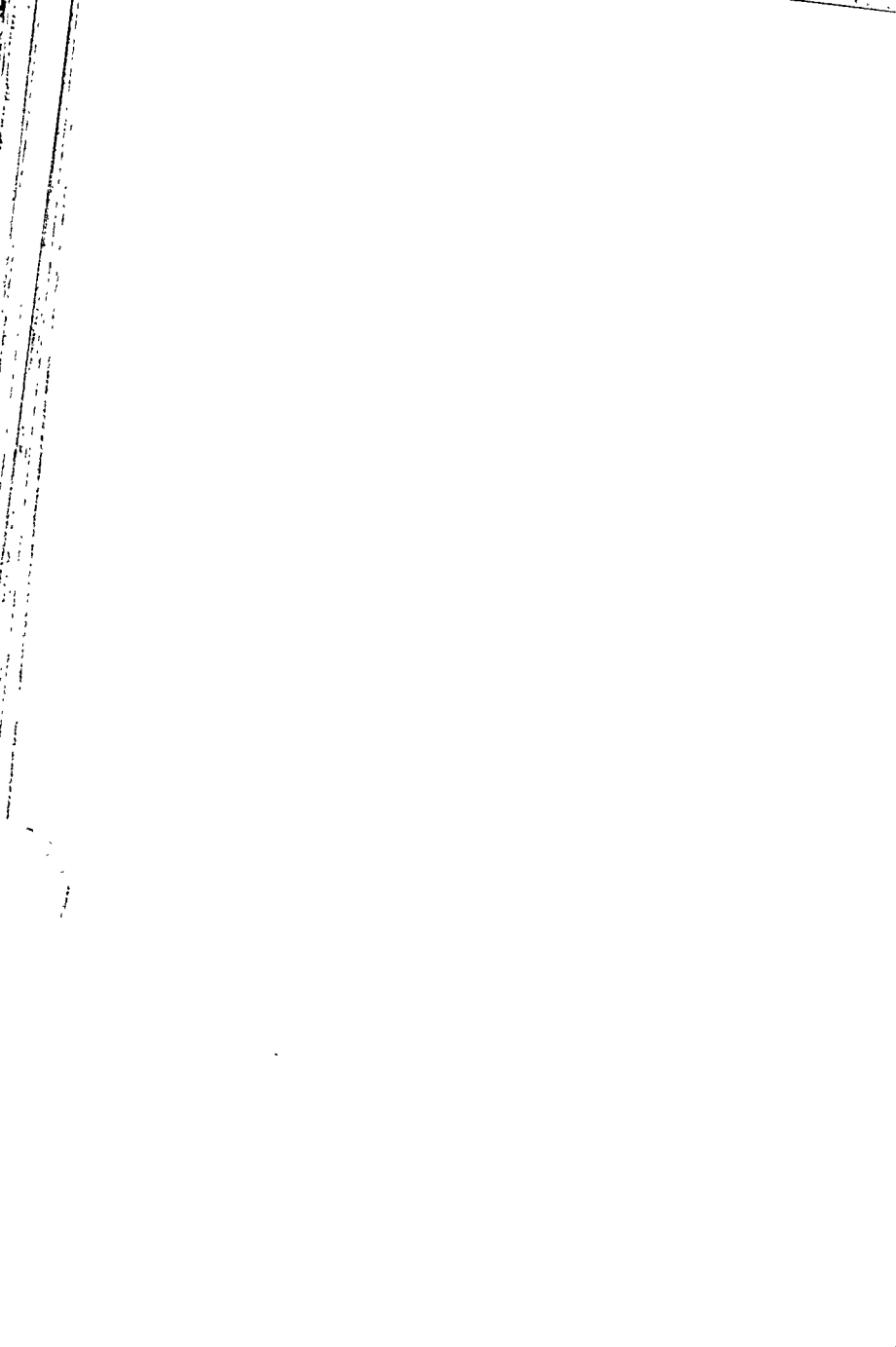
और अधिक संयमी सदाचार का घमण्ड है; सिन्ध के अमीर एक आदर्श हैं।"*

मीर रुस्तम ख़ाँ की मृत्यु

मीर रुस्तम ख़ाँ के विषय में ईस्टविक लिखता कि—"मीर रुस्तम प्रेम और आदर के योग्य मनुष्य था × × × उसके अन्दर मानव सहृदयता भरी हुई थी, वह सुशील, शान्त स्वभाव, दयावान और हद्द दरजे का सहनशील था।"

अमीरों के उच्च और आदर्श चरित्र के विषय में इससे अधिक सम्मतियाँ उद्धृत करने की आवश्यकता नहीं है। पूना जेल के अन्दर मीर रुस्तम ख़ाँ की शोकजनक मृत्यु को वर्णन करते हुए ईस्टविक लिखता है —

"मीर रुस्तम के जीवन के अन्त के दिनों को उन लोगों के हाथों क़ैद ने कड़ुवा कर दिया था जिनके ऊपर उसने इतने अधिक उपकार किए थे। शीघ्र ही अत्याचारों के इस ढेर के नीचे दब कर बूढ़ा मीर रुस्तम समाप्त हो गया।"

ईस्टविक लिखता है कि मीर रुस्तम ख़ाँ के पिता मीर सोहराब की मृत्यु सौ वर्ष को आयु में गिर कर हुई थी। मीर सोहराब कभी

---

* "I observe, therefore, in reply to your query, that the Amirs are the most temperate of men, rigidly abstaining from wine and every kind of liquor while to smoking also, they have a strong aversion and can not even endure the smell of tobacco. In regard, therefore, to smoking and drinking, the Amirs are examples to most of us, who boast a higher civilization, and a more self-denying morality."—*Dry Leaves from Young Egypt* p. 286.

सिवाय पानी के और कोई चीज़ न पीता था, और वह भी दिन में केवल एक वार। "निस्सन्देह मीर रुस्तम उसी आयु को प्राप्त होता किन्तु अंगरेज़ों के हाथों उसने जो अन्याय सहन किए, उन अन्यायों ने उसके अन्यथा सबल शरीर को तोड़ डाला।" फिर भी मीर रुस्तम की आयु मृत्यु के समय ८५ से ऊपर थी।

अमीरों का शासन प्रबन्ध

"अपने यहाँ के न्यायशासन में", ईस्टविक लिखता है कि, "अमीर दया की ओर अधिक झुकते थे, रक्त बहाने के वे अत्यन्त विरुद्ध थे।"*

हेड्ल ने बम्बई सरकार के नाम अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि सिन्ध में व्यापारियों की इतनी अच्छी तरह रक्षा की जाती है और उनके व्यापार को इतनी उत्तेजना दी जाती है कि दूसरे प्रान्तों और दूसरे देशों से व्यापारी लोग जा जा कर इन अमीरों के राज में बसते हैं।†

सिन्ध का समस्त व्यापार हिन्दुओं के हाथों में था, जिसमें खास कर कराची के अन्दर मोतियों का व्यापार बड़ा लाभ दायक था।

ईस्टविक लिखता है—

"सिन्ध के अमीरों के शासन में हैदराबाद का नगर अत्यन्त धन सम्पन्न और आबाद होगया। × × × और उस समय, जब कि भारत के

---

* "In the administration of justice the Amirs erred on the side of clemency. They were most averse to the sheding of blood."—Ibid, p 68.

† *Amirs of Sindh*, by Dr. J. Burnes, p. 16.

अन्दर स्वयं हमारे इलाक़ों में चारों ओर लूट और रक्तपात का दौर था, सिन्ध में शान्ति और सुशासन क़ायम था।"*

ईस्टविक के अनुसार सिन्ध के अमीरों की प्रजा खुशहाल और सन्तुष्ट थी। किसान से लगान अधिकतर नाज के रूप में लिया जाता था और राज का भाग सदा के लिए नियत था। इसी कारण उन दिनों सिन्ध की समस्त भूमि हरी भरी और पैदावार से लहलहाती हुई नज़र आती थी।

खेती और आबपाशी

आबपाशी के लिए सिन्ध के मुसलमान अमीरों की बनवाई हुई सिन्धु नदी की लम्बी नहर, जिसे फुलैली कहते हैं, अभी तक मौजूद है। यह नहर निर्माण कला का एक अत्यन्त सुन्दर नमूना है। इसका एक चमत्कार यह है कि इसमें जगह जगह इस तरह पर ढाल दिया गया है कि ब्रिटिश भारत की अन्य नहरों के समान इसे समय समय पर साफ़ कराने और मिट्टी निकलवाने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

धार्मिक सद्भावना

अमीरों की तुच्छ से तुच्छ प्रजा भी दाद फ़रियाद लेकर अपने नरेश के पास तक पहुँच सकती थी। हैदराबाद में अधिकांश आबादी मुसलमानों की थी, फिर भी कच्छ, गुजरात और राजपूताने के अनेक धनाड्य हिन्दू व्यापारी हैदराबाद में रहते थे। उन सबके साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया जाता था। दिवाली के रोज़ हैदराबाद

* *Dry Leaves from Young Egypt*, p. 242

के समस्त नगर में यहाँ तक कि प्रत्येक मसजिद और मक़बरे में और सिन्धु नदी के दोनों तटों पर बड़े ज़ोर की रोशनी की जाती थी। ईस्टविक लिखता है कि दिवाली की रात को भक्खर के क़िले का दृश्य अत्यन्त मनोरम होता था और चारों ओर जल में दीपक और लक्ष्मी की मूर्तियाँ तख़्तों के ऊपर बहती हुई दिखाई देती थीं।*

कम्पनी के शासन का प्रारम्भ

इस सब के विपरीत कम्पनी का शासन प्रारम्भ होते ही सिन्ध का सारा नक़शा बदल गया। "ज़मीन की पैदावार कम होने लगी, जगह जगह खेती बन्द हो गई, सैनिक शासन प्रारम्भ हो गया, हर श्रेणी के लोगों में असन्तोष फैल गया, जो लगान अमीर बिना किसी प्रयत्न के वसूल कर लेते थे, उसे वसूल करने में नए शासकों को कठिनाई होने लगी।†

दग़ा और लूट का दौर

बड़े बड़े सिन्धी कर्मचारियों की जगह अंगरेज़ अफ़सर नियुक्त कर दिए गए। जनरल नेपियर सिन्ध का पहला गवरनर हुआ। ईस्टविक लिखता है कि—"चारों ओर दग़ाबाज़ी और लूट शुरू हो गई।"‡ प्रजा के जान माल की कोई हिफ़ाज़त न रही। लगान की पद्धति अत्यन्त बिगड़ गई। किसान के ऊपर भार इतना बढ़ा दिया गया

---

* "*Dry Leaves from Young Egypt*, p. 89.

† Ibid, p. 71.

‡ "Then began a system of universal fraud and peculation."—*Dry Leaves from Young Egypt*, p. 306.

कि जो लगान सन् १८४३ में ६, ३७, ६३७ रुपए था वह १८४८ में २७, ४०, ७२२ रुपए हो गया और सन् १८५० में २६, ८३, ७५० ।

सन् हेनरी पॉटिञ्जर, जिसकी अपेक्षा सिन्ध के साथ अंगरेज़ों के सम्पर्क और व्यवहारों से कोई दूसरा अंगरेज़ अधिक परिचित न था और जो बाद में मद्रास का गवरनर हुआ, लिखता है—

"मेरी राय में चाहे हम किसी तरह की भी दलील क्यों न दें, सिन्ध के अमीरों के साथ हमारे व्यवहार से जो कलङ्क हमारी ईमानदारी और हमारी आबरू पर लग चुका है वह किसी तरह नहीं धुल सकता।"*

अन्त में हम सिन्ध के विजेता जनरल सर चार्ल्स नेपियर के ही कुछ शब्द उसके अपने कृत्य के विषय में उद्धृत करते हैं। जनरल नेपियर लिखता है—

सिन्ध विजय पर जनरल नेपियर के उद्गार

"भारत में ज़्यादती अंगरेज़ों की ओर से की गई × × × कभी किसी भी बड़ी क़ौम ने इससे अधिक नीच और क्रूर अन्याय के लिए अपनी शक्ति का उपयोग नहीं किया। भारत (सिन्ध) की विजय करने में हमारा लक्ष्य, हमारे समस्त अत्याचारों का लक्ष्य धन था—पैसा था; कहा गया है कि पिछले साठ वर्ष के अन्दर एक हज़ार मिलियन पाउण्ड (यानी क़रीब दस अरब रुपया) भारत से निचोड़ा जा चुका है। इस धन का एक एक शिलिङ्ग ख़ून में से उठाया गया है, उसे पोंछा गया है और हत्यारों ने उसे अपनी जेबों में रख लिया है; किन्तु हम इस धन को चाहे कितना भी क्यों न पोंछें और धोवें उस पर से

* "No reasoning can, in my opinion, remove the fowl stain it (the case of the Amirs) has left on our faith and honour;"—Sir Henry Pottinger's letter to the *Morning Chronicle*, 8th January 1844.

'खून का दाग़ नहीं मिट सकता'। यह दाग़ उस पर सदा के लिए क़ायम रहेगा; और यदि आसमान पर कोई ख़ुदा है, जिसके सामने कि किसी 'क़ौम के व्यापारिक हित' नहीं देखे जाते तो निस्सन्देह हमें कभी न कभी अपने पाप का दण्ड मिलेगा, अन्यथा हम ख़ुदा को जो कुछ समझ बैठे हैं और आशा करते हैं वह सब मिथ्या है। 'तिजारती माल बनाने वाली एक महान क़ौम' की दृष्टि में न्याय और धर्म मज़ाक़ की चीज़ें हैं, इस तरह की क़ौम का सच्चा ख़ुदा 'धन' है। सम्भव है मेरा विचार विचित्र प्रतीत हो, किन्तु वास्तव में मैं, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के स्वेच्छाचारियों की अपेक्षा, स्वेच्छाचारी नैपोलियन को अधिक पसन्द करता हूँ। जो मनुष्य चक्रवर्ती राज का आकांक्षी होता है वह आम तौर पर पराजित क़ौमों के भले के लिए शासन करता है; किन्तु जिन लोगों को चक्रवर्ती लूट की आकांक्षा होती है वे केवल अपने को धनी बनाने के लिए शासन करते हैं, उन्होंने दस करोड़ मनुष्यों के सुख का नाश कर दिया है। पहला मनुष्य स्वर्ग से गिरा हुआ फ़रिश्ता हो सकता है, किन्तु दूसरा मनुष्य नरक में पैदा हुआ शैतान है!"*

---

* "The English were the aggressors in India, . . . and a more base and cruel tyranny never wielded the power of a great nation. Our object in conquering India (Sindh?), the object of all our cruelties, was money—lucre; a thousand millions sterling are said to have been squeezed out of India in the last sixty years Every shilling of this has been picked out of blood, wiped, and put into the murderers' pockets; but, wipe and wash the money as you will, the 'damned spot' will not 'out.' There it sticks for ever, and we shall yet suffer for the crime, as sure as there is a God in heaven, where the 'commercial interests of the nation' find no place, or, heaven is not what we hope and believe it to be. Justice and religion are mockeries in the eyes of 'a great manufacturing country,' for the true God of such a nation is Mammon. I may be singular, but, in truth, I prefer the

ईस्टविक चकित होकर लिखता है कि—"क्या ये उसी मनुष्य के शब्द हो सकते हैं जो रक्त की नदी में से चल कर हैदराबाद के ख़ज़ानों तक पहुँचा था।"

सिन्ध की स्वाधीनता का अन्त

जो हो, सिन्ध की स्वाधीनता का अन्त हो गया और अंगरेज़ी माल की खपत के लिए एक नई विशाल मण्डी और इङ्गलिस्तान के 'लड़कों' की जीविका के लिए एक नया क्षेत्र तैयार हो गया।

इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट ने गवरनर-जनरल एलेनबरा, सर चार्ल्स नेपियर और अंगरेज़ी सेना के लिए अंगरेज़ क़ौम की ओर से धन्यवाद का प्रस्ताव पास किया।

---

despotic Napoleon to the despots of the East India Company. The man ambitious of universal power generally rules to do good to subdued nations; but the men ambitious of universal peculation rule only to make themselves rich, to the destruction of happiness among a hundred-millions of people. The one may be a fallen angel; the other is a hell-born devil!"—*Lights and Shades of Military Life*, edited by Sir Charles Napier, pp. 297, 298.

उन्तालीसवाँ अध्याय

अन्य भारतीय नरेशों के साथ एलेनब्रु का व्यवहार

सींधिया

मराठा मण्डल के पाँच मुख्य स्तम्भों में सबसे अधिक बलवान सींधिया था। माधोजी सींधिया के अधीन एक बार क़रीब क़रीब समस्त मुग़ल साम्राज्य के शासन की बाग इस कुल के हाथों में आ गई थी। कम्पनी के शासकों की सदा से इस राज पर आँखें थीं। माधोजी सींधिया के उत्तराधिकारी दौलतराव सींधिया को पङ्गुल करने के जो अनेक प्रयत्न किए गए, उनका ज़िक्र पिछले अध्यायों में किया जा चुका है। ग्वालियर राज के विरुद्ध लॉर्ड बेंटिङ्क की साज़िशों का ज़िक्र भी ऊपर आ चुका है। फिर भी सन् १८४३ तक महाराजा

सींधिया अंगरेज़ कम्पनी का बाज़गुज़ार न था। सन् १८३२ की पार्लिमेण्ट की एक रिपोर्ट में दर्ज है—"द्वीपप्राय के अन्दर अकेला सींधिया ही एक ऐसा नरेश है जिसने अभी तक अपनी ज़ाहिरा स्वाधीनता क़ायम रक्खी है।"* उस समय तक अंगरेज़ों और सींधिया के बीच जितनी सन्धियाँ हुई थीं उनसे महाराजा सींधिया की स्वाधीनता में कोई अन्तर न पड़ता था, और न कम्पनी सरकार को महाराजा सींधिया के शासन में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार था।

ग्वालियर दरबार का सुशासन

७ फ़रवरी सन् १८४३ को महाराजा जङ्कोजी सींधिया की अचानक मृत्यु हो गई। जङ्कोजी के कोई औलाद न थी। कहा जाता है, विधवा महारानी की आयु केवल ११ वर्ष की थी। महारानी ने समस्त ग्वालियर दरबार की सम्मति से अपने एक निकट सम्बन्धी भागीरथराव को, जिसकी आयु उस समय आठ वर्ष की थी, गोद ले लिया। भागीरथराव जयाजीराव सींधिया के नाम से ग्वालियर की गद्दी पर बैठा। महारानी बालक जयाजीराव की ओर से रीजण्ट नियुक्त हुई। किन्तु महारानी की आयु भी कम थी, इसलिए राज का समस्त प्रबन्ध दरबार के सुपुर्द किया गया। उस समय के ऐतिहासिक उल्लेखों से स्पष्ट है और स्वयं लॉर्ड एलेनबु ने अपने

* "Within the Peninsula, Sindhia is the only Prince who preserves the semblance of independence."—*Report of the Select Committee of the House of Commons, 1832.*

पत्रों में स्वीकार किया है कि ग्वालियर दरबार बड़ी योग्यता और सफलता के साथ राज का समस्त कारबार चला रहा था।

फिर भी इतिहास लेखक जॉन होप लिखता है—

"चूँकि लॉर्ड एलेनब्रु ने इस बात का पक्का इरादा कर लिया था कि पहले सींधिया राज के अधिकारों की अवलेहना की जाय और फिर उस राज की स्वाधीनता छीन ली जाय, इसलिए ज़रूरी तौर पर लॉर्ड एलेनब्रु के लिए पहला काम यह था कि महारानी की बाल्यावस्था का बहाना लेकर उसे अलग करदे और उसकी जगह किसी ऐसे मनुष्य को रीजण्ट बना दे, जो ख़ुशी से हर बात में अंगरेज़ सरकार का कहना मान ले। शुरू में लॉर्ड एलेनब्रु ने अपना यह इरादा दूसरों पर ज़ाहिर नहीं किया। रीजण्ट चुनने का अधिकार ग्वालियर दरबार को था। दरबार की कौन्सिल के अन्दर उस समय केवल एक व्यक्ति ऐसा था जो अपनी क़ौम के हित के विरुद्ध काररवाई करने को राज़ी हो सकता था। यह व्यक्ति मामा साहब कहलाता था। इसलिए यद्यपि अभी तक यह उसूल चला आता था कि रेज़िडेण्ट रियासत के इस तरह के मामलों में हस्तक्षेप न करे, फिर भी अब इस उसूल का उल्लङ्घन करके मामा साहब के चुने जाने के लिए एलेनब्रु ने अपनी शक्ति भर कोशिश की।"*

* "As Lord Ellenborough had firmly resolved, though his resolution was not then made known, first to disregard the rights of this state, and afterwards deprive it of its independence, the preliminary step would necessarily be to set aside the Maharanee on the ground of her infancy, and to put up in her place as Regent a person who would cheerfully do the bidding of the British Government. The election was in the hands of the Durbar. Now there was only one individual in that council who would lend himself to carry out an anti-national policy, and he was called the mama Saheb. Accordingly the Resident laid aside the principle of non-intervention which

महाराजा जङ्कोजी की मृत्यु का समाचार सुनते ही लॉर्ड एलेनब्रु ने आगरे की ओर प्रस्थान किया; और बिना किसी कारण आगरे के निकट ग्वालियर राज की सरहद पर कम्पनी की फ़ौजें जमा कर लीं। आगरे में बैठ कर वहाँ से लॉर्ड एलेनब्रु ने ग्वालियर दरबार के अन्दर साज़िशें शुरू कीं।

अनुचित हस्तक्षेप

ग्वालियर दरबार उस समय नाबालिग़ महाराजा और रीजराट महारानी की ओर से राज प्रबन्ध करने के लिए दादा ख़ासजीवाला नामक एक मनुष्य को सर्व सम्मति से प्रधान मन्त्री नियुक्त करना चाहता था। दादा ख़ासजीवाला योग्य, ईमानदार और सर्वप्रिय था। इसके विरुद्ध जिस मनुष्य को एलेनब्रु बढ़ाना चाहता था वह अयोग्य, अविश्वास्य और ग्वालियर के लोगों में अत्यन्त अप्रिय था। फिर भी ठीक उस समय जब कि प्रधान मन्त्री का चुनाव होने वाला था, लॉर्ड ऐलेनब्रु का एक पत्र ग्वालियर पहुँचा, जिसमें लिखा था—

दादा ख़ासजीवाला

"गवरनर-जनरल ख़ुश होगा यदि रीजराट का पद मामा साहब को दे दिया जाय।"*

राज की हालत उस समय निर्बल थी। कोई प्रौढ़ और प्रभाव

---

hitherto had guided his conduct and strained every nerve to effect this man's election."—*Sketch of the House of Sindhia*, by John Hope p. 42

* "The Governor General would gladly see the Regency conferred upon the Mama Saheb."—Lord Ellenborough

शाली नीतिज्ञ दरबार में न था। अंगरेज़ी सेना सरहद पर पड़ी हुई थी। इस सब पर दरबार के अन्दर अंगरेज़ रेज़िडेण्ट की साज़िशें। परिणाम यह हुआ कि रीजण्ट के रूप में नहीं, किन्तु प्रधान मन्त्री के रूप में राज की बाग एक बार मामा साहब के हाथों में दे दी गई। किन्तु मामा साहब अधिक दिनों तक राज सत्ता अपने हाथों में न रख सका। अंगरेज़ रेज़िडेण्ट के साथ उसकी साज़िशों के कारण शीघ्र ही सारा दरबार उसके विरुद्ध हो गया। महारानी की इच्छा के विरुद्ध रेज़िडेण्ट के उकसाने पर उसने अपनी एक छै वर्ष की भतीजी का महाराजा जयाजीराव के साथ विवाह कर देना चाहा। क़रीब पन्द्रह दिन इस पर दरबार के नीतिज्ञों में परामर्श होता रहा। अन्त में २० मई सन् १८४३ को समस्त दरबारियों और महारानी ने एक मत से मामा साहब को पदच्युत कर दिया। मामा साहब को महारानी की आज्ञानुसार ग्वालियर छोड़ कर चला जाना पड़ा। २४ मई सन् १८४३ को मामा साहब ग्वालियर से रवाना हुआ। २६ मई को महारानी ने राज के समस्त दरबारियों और सरदारों को आज्ञा दी कि आप लोग मिलकर मामासाहब की जगह दूसरा मन्त्री चुनें। दरबार ने दादा ख़ासजीवाला को सर्व सम्मति से मन्त्री नियुक्त किया।

अंगरेज़ों का दूत मामा साहब

लॉर्ड एलेनब्रु ने अब यह एक नया बहाना गढ़ा कि सींधिया राज और अंगरेज़ी इलाक़े की मिली हुई सरहद पर कई जगह विद्रोह खड़े हो रहे हैं और डाके

एलेनब्रु का नया बहाना

पड़ रहे हैं, जिन्हें ग्वालियर दरबार दमन करने में असमर्थ है। इतिहास लेखक जॉन होप ने इस बहाने के थोथेपन और उसके झूठ को बड़ी सुन्दरता के साथ साबित किया है। उसने लिखा है कि ठीक उस समय जब कि लॉर्ड एलेनब्रु ने सींधिया राज के प्रबन्ध में यह दोष निकाला, बुन्देल खण्ड में जो कि अंगरेज़ों के अधीन था और सागर व नरबदा के अंगरेज़ी इलाकों में जिनको सरहदें सींधिया की सरहद से मिली हुई थीं पिछले दो वर्ष से अनेक विद्रोह हो रहे थे, और जगह जगह डाके पड़ रहे थे। यहाँ तक की सींधिया की राजधानी ग्वालियर से केवल सौ मील दूर कुछ लोग खिमलासा नामक एक धनसम्पन्न नगर को जो अंगरेज़ी इलाके में था, नाश कर देना चाहते थे और सींधिया की दो हज़ार सबसीडीयरी सेना द्वारा अंगरेज़ खिमलासा की रक्षा करने में लगे हुए थे। इसी समय अंगरेज़ी इलाके के एक दूसरे नगर बालाबेहूत (?) को कुछ विद्रोही जला देना चाहते थे और ग्वालियर की विधवा महारानी की सेना बालाबेहूत की रक्षा कर रही थी। निस्संदेह यदि विद्रोहियों या डाकुओं का दमन करने की अयोग्यता के कारण किसी राज के शासन प्रबन्ध में एक पड़ोसी एक नरेश को हस्तक्षेप करने का अधिकार दिया जा सकता है तो लॉर्ड एलेनब्रु को ग्वालियर के शासन में हस्तक्षेप करने के बजाय ग्वालियर दरबार को कम्पनी के शासन में हस्तक्षेप करने का अधिकार मिलना चाहिए था। किन्तु लॉर्ड एलेनब्रु के लिए कोई भी बहाना काफ़ी था।

ग्वालियर का अंगरेज़ रेज़िडेण्ट करनल स्पायर्स एलेनब्रु के दिल का आदमी न था। इसलिए स्पायर्स को

रेज़िडेण्ट स्लीमैन

फ़ौरन् ग्वालियर से हटा कर उसकी जगह करनल स्लीमैन को, जिसकी बाबत उस समय के इतिहास से साफ़ पता चलता है और उन दिनों यह बात मशहूर थी कि उसका भारत के ठगों और डाकुओं पर बहुत बड़ा प्रभाव था, रेज़िडेण्ट नियुक्त करके ग्वालियर भेजा गया। यह स्लीमैन आगे चलकर अवध के अन्दर भी अपनी कूटनीति के लिए ख़ासा प्रसिद्ध हुआ।

लॉर्ड एलेनब्रु ने मलका विक्टोरिया के नाम १३ अगस्त सन् १८४३ के एक पत्र में स्वीकार किया है कि दादा

दादा ख़ासजीवाला की सर्वप्रियता

ख़ासजीवाला एक अत्यन्त योग्य शासक था। ग्वालियर की सेना की तनख़ाहें कुछ दिनों से चढ़ी हुई थीं। दादा ख़ासजीवाला ने तमाम पिछली तनख़ाहें अदा कर दीं और भविष्य में ठीक समय पर सब को तनख़ाहें मिलने का प्रबन्ध कर दिया। मामासाहब ने राज के अनेक योग्य पदाधिकारियों को लॉर्ड एलेनब्रु के इशारे पर बरख़ास्त कर दिया था। दादा ख़ासजीवाला ने इन सब को फिर से अपने अपने पदों पर बहाल कर दिया। ग्वालियर राज की सेना में उस समय कई यूरोपियन और अर्ध यूरोपियन अफ़सर थे। इनमें से कुछ ने अपनी मातहत सेना को दरबार के विरुद्ध भड़काना शुरू किया। कहीं कहीं छोटे मोटे विद्रोह भी हो गए। दादा ख़ासजीवाला ने इनमें से कई अफ़सरों को बरख़ास्त करके रियासत से बाहर निकाल दिया।

राजमाता और महाराजा जयाजीराव ये दोनों भी दादा से प्रसन्न थे। यही सब बातें थीं जिनके कारण दादा ख़ासजीवाला अंगरेज़ों की नज़रों में खटक रहा था। लॉर्ड एलेनब्रु ने अपने पूर्वोक्त पत्र में महारानी विक्टोरिया को सूचना दी कि मैंने दादा ख़ासजीवाला और ग्वालियर दरबार को दमन करने के लिए क़रीब बारह हज़ार सेना और तोपख़ाना आगरे में जमा कर लिया है, व और सेना जमा की जा रही है।

ख़ासजीवाला पर झूठा इलज़ाम

दादा ख़ासजीवाला पर अब एक और विचित्र इलज़ाम लगाया गया। वह यह कि तुमने रीजएट महारानी के नाम एलेनब्रु के किसी एक पत्र को बीच में रोक लिया। इस इलज़ाम की बिना पर लॉर्ड एलेनब्रु ने महारानी और ग्वालियर दरबार को लिखा कि दादा ख़ासजी वाला को फ़ौरन् अंगरेज़ों के हवाले कर दिया जाय। निस्सन्देह एक स्वाधीन राज के प्रधान मन्त्री पर इस तरह का इलज़ाम अत्यन्त लचर और बेमाइने था। लॉर्ड एलेनब्रु की माँग भी न्याय, नीति और सन्धियों सब के विरुद्ध थी।

ख़ासजीवाला की गिरफ़्तारी

महारानी और ग्वालियर दरबार दोनों ने एक मत से लॉर्ड एलेनब्रु की इस माँग पर एतराज़ किया, और लॉर्ड एलेनब्रु से उस पर फिर से विचार करने की प्रार्थना की। एलेनब्रु अपनी ज़िद पर डटा रहा। वह काफ़ी सेना सरहद पर जमा कर चुका था। स्वयं ग्वालियर के अन्दर करनल स्लीमैन की साज़िशें जारी थीं महारानी

की प्रार्थना के उत्तर में एलेनब्रु ने साफ़ युद्ध की धमकी दी। कातर महारानी ने एलेनब्रु को सन्तुष्ट करने के लिए अपने योग्य मन्त्री और संरक्षक निर्दोष दादा ख़ासजीवाला को क़ैद तक कर लिया और उसकी जगह रामराव फलकिया को मन्त्री नियुक्त कर दिया फिर भी लॉर्ड एलेनब्रु को सन्तोष न हो सका। उसने दो विशाल सेनाएँ एक सींधिया राज के उत्तर में और दूसरी पूर्व में जमा कीं। युद्ध में अब कोई कसर बाक़ी न रही। ग्वालियर दरबार युद्ध से बचना चाहता था। विवश होकर दरबार ने दादा ख़ासजीवाला को लॉर्ड एलेनब्रु के सुपुर्द कर दिया। लॉर्ड एलेनब्रु ने दादा को क़ैद कर लिया। दस वर्ष बाद बनारस में अंगरेज़ों की क़ैद के अन्दर सींधिया के इस वफ़ादार मन्त्री दादा ख़ासजीवाला की मृत्यु हुई।

एलेनब्रु का वास्तविक इरादा

एलेनब्रु की माँग अब पूरी हो चुकी थी। फिर भी उसे संतोष न हुआ। मलका विक्टोरिया के नाम एलेनब्रु के १६ दिसम्बर सन् १८४३ के पत्र से पता चलता है कि वह शुरू से पञ्जाब पर हमला करना चाहता था और इस विचार से कि पञ्जाब पर हमला करने के समय सींधिया की सन्नद्ध सेना अंगरेज़ों को पीछे से दिक़ न करे, वह जिस तरह हो सके, पहले सींधिया की सेना का नाश कर देना चाहता था।

नया मन्त्री रामराव फलकिया एलेनब्रु से मिलने के लिए आगरे भेजा गया। एलेनब्रु ने रामराव फलकिया से एक और नई बात

छेड़ी। उसने कहा कि कुछ वर्ष हुए बरहानपुर में दौलतराव सींधिया और अंगरेज़ों के दरमियान जो सन्धि हुई थी उसमें यह तय हो गया था कि यदि किसी समय महाराजा सींधिया अपने यहाँ के किसी विद्रोह को दमन करने या अपने शत्रुओं को परास्त करने के लिए अंगरेज़ सरकार से सेना की सहायता माँगे तो अंगरेज़ उसकी मदद करेंगे। इस धारा के अनुसार लॉर्ड एलेनब्रु ने रामराव फलकिया को सूचना दी कि चूँकि ग्वालियर राज में इस समय विद्रोह मौजूद है, इसलिए अंगरेज़ सरकार ने महाराजा जयाजीराव सींधिया की सहायता के लिए अपनी सेना ग्वालियर भेजने का निश्चय कर लिया है। किन्तु न महाराजा सींधिया पर उस समय कोई आपत्ति थी और न महाराजा जयाजीराव ने या उसकी माता महारानी ने या ग्वालियर दरबार में किसी ने भी अंगरेज़ों से सहायता माँगी थी। इसके जवाब में लॉर्ड एलेनब्रु ने रामराव फलकिया से कहा कि महाराजा के नाबालिग़ होने के कारण महाराजा की आवश्यकताओं को समझने का अधिकार केवल अंगरेज़ गवरनर जनरल को है। रामराव फलकिया इस उत्तर को सुन कर चकित रह गया। इसका अर्थ केवल यह था कि अब तक की तमाम सन्धियों और प्रतिज्ञापत्रों को रद्दी के टोकरे में फेंक कर लॉर्ड एलेनब्रु एक स्वाधीन, किन्तु नाबालिग़ नरेश के राज पर हमला करने के लिए कटिबद्ध था, और उसका कुछ न कुछ इलाक़ा हज़म कर लेना चाहता था।

इतिहास लेखक होप ने लिखा है कि बरहानपुर की जिस सन्धि

का लॉर्ड एलेनब्रु ने ज़िक्र किया था वह सन्धि तक अंगरेज़ों ही की इच्छा के अनुसार कुछ समय पहले रद्द क़रार दी जा चुकी थी। अर्थात् एलेनब्रु का सारा बहाना सिर से पाँव तक झूठा था।

ग्वालियर पर हमला

इस प्रकार बिना किसी कारण के लॉर्ड एलेनब्रु ने महाराजा सींधिया के राज में घुस कर राजधानी ग्वालियर पर हमला किया। ग्वालियर दरबार इस हमले के लिए तैयार न था। २६ दिसम्बर सन् १८४३ को महाराजपुर और पनियार नामक स्थानों पर दो प्रसिद्ध संग्राम हुए जिनमें टॉरेन्स के अनुसार अंगरेज़ी सेना को असाधारण हानि सहनी पड़ी। फिर भी एलेनब्रु ने कम्पनी की पुरानी पद्धति के अनुसार कुछ अपनी सेना के बल और कुछ कूटनीति के बल जयाजीराव सींधिया की सेना पर अन्त में विजय प्राप्त की। इतिहास लेखक होप लिखता है कि सींधिया की सबसीडोयरी सेना, जिसके कुछ सैनिक ठीक उसी गाँव के रहने वाले थे, जिस गाँव में महाराजा जयाजीराव सींधिया का जन्म हुआ था, अपने स्वामी के विरुद्ध अंगरेज़ों की ओर लड़े। जॉन होप ने यह भी बयान किया है कि किस प्रकार इन दोनों लड़ाइयों के बाद अंगरेज़ों ने सींधिया की सेना और प्रजा के साथ अनेक तरह के अत्याचार किए, किस प्रकार लोगों को मकानों के अन्दर बन्द करके बाहर से आग लगा दी गई और सींधिया के इस तरह के अफ़सरों को जिन्होंने हार स्वीकार कर ली थी, दग़ा देकर मरवा डाला गया। होप ने इस समस्त मामले के सम्बन्ध में लॉर्ड एलेनब्रु के झूठ, उसकी

कूटनीति और उसकी स्वार्थमय भूपिपासा को अच्छी तरह प्रकट किया है।

लॉर्ड एलेनब्रु ने अपने १६ फ़रवरी सन् १८४४ के एक पत्र में बतलाया है कि यदि इस समय वह समस्त सींधिया राज को अंगरेज़ी राज में मिलाने का प्रयत्न करता तो उसे डर था कि अन्य भारतीय नरेश कम्पनी के विरुद्ध भड़क उठेंगे, इसलिए एक नई सन्धि कर ली गई। ग्वालियर की सवसीडीयरी सेना की संख्या बढ़ा दी गई। उसके ख़र्च के लिए सींधिया से कई नए ज़िले ले लिए गए। विधवा महारानी के हाथों से सब सत्ता छीन ली गई। तय कर दिया गया कि जब तक महाराजा जयाजीराव नाबालिग़ है, एक कौन्सिल राज का समस्त प्रबन्ध करे। कौन्सिल के लिए अंगरेज़ रेज़िडेण्ट की आज्ञाओं का मानना आवश्यक कर दिया गया। महारानी के लिए उसके अधिकारों के बदले में तीन लाख रुपए सालाना की पेनशन मंजूर कर दी गई। इस प्रकार कम से कम दस साल के लिए ग्वालियर राज का प्रबन्ध अंगरेज़ शासकों के हाथों में आ गया।

नई सन्धि

जिन अन्य भारतीय नरेशों के साथ लॉर्ड एलेनब्रु का व्यवहार उल्लेखनीय है, उनमें से एक कैथल का राजा था। कैथल सतलज के इस पार करनाल से ३० मील पर एक सिख रियासत थी जिसने दुर्भाग्यवश सन् १८०६ में कम्पनी सरकार के साथ मित्रता की सन्धि कर ली थी। कैथल के राजा की मृत्यु होगई, उसके कोई पुत्र न था। किन्तु रानी को गोद

कैथल पर क़ब्ज़ा

लेने का अधिकार था। लॉर्ड एलेनब्रु ने फ़ौरन् तीन सौ सिपाहियों का एक दस्ता कैथल पर ज़बरदस्ती क़ब्ज़ा करने के लिए भिजवा दिया। एलेनब्रु लिखता है कि राजकुल के लोगों और दरबारियों ने अंगरेज़ी सेना को अकस्मात् अपनी राजधानी में देख कर सत्याग्रह शुरू कर दिया। इतने में आस पास की प्रजा शस्त्र लेकर राजधानी में जमा हो गई। उन्होंने अंगरेज़ी सेना को मार कर पीछे हटा दिया। बचे खुचे अंगरेज़ सिपाहियों को करनाल लौट आना पड़ा।

यह घटना १० अप्रैल सन् १८४३ की थी। १४ अप्रैल को अठारह सौ नई सेना थानेश्वर में जमा की गई। १६ अप्रैल को इस सेना ने कैथल में प्रवेश किया। किन्तु मलका विक्टोरिया के नाम लॉर्ड एलेनब्रु के एक पत्र में लिखा है कि १५ तारीख़ ही को कैथल की सशस्त्र प्रजा विधवा महारानी का साथ छोड़ कर वहाँ से चल दी और कैथल दरबार के कुछ मन्त्री और नगर के कुछ व्यापारी अंगरेज़ों की ओर चले आए। सारांश यह कि कैथल पर अंगरेज़ कम्पनी का क़ब्ज़ा हो गया।

रणजीतसिंह की मृत्यु और पंजाब में अराजकता

इससे कहीं अधिक विशाल राज जिसमें लॉर्ड एलेनब्रु ने अपने षड्यन्त्र रचने शुरू किए, पंजाब का राज था। सन् १८३९ में महाराजा रणजीतसिंह की मृत्यु हुई। रणजीतसिंह का एक पुत्र खड़गसिंह पंजाब का राजा हुआ। किन्तु रणजीतसिंह के मरते ही समस्त पंजाब में विद्रोहों, हत्याओं और अराजकता का

बाज़ार गरम हो गया। इस अराजकता के सम्बन्ध में दिसम्बर सन् १८४३ की 'ब्रिटिश फ्रेण्ड ऑफ़ इण्डिया' नामक लन्दन की एक पत्रिका ने लिखा था—

"× × × हमें ज़बरदस्त सन्देह है कि कम्पनी ने रिशवतें दे देकर इन उपद्रवों को खड़ा करवाया है और उन्हें भड़काया है। × × × एक धन-लोलुप कम्पनी जिसके पास किराए की एक सेना है, बिना लूट मार के नहीं रह सकती × × × चूँकि इस समय ज़रूरी तौर पर इङ्गलिस्तान की तमाम शक्ति इन उपद्रवों की जड़ में है, इसलिए हमें बिलकुल साफ़ दिखाई दे रहा है कि लाहौर का नगर लूटा जायगा और वहाँ के राज के टुकड़े टुकड़े किए जायँगे।"*

एलेनब्रु की योजनाएँ

ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन और लॉर्ड एलेनब्रु के अनेक पत्रों से स्पष्ट है कि बहुत दिनों पहले से पञ्जाब के ऊपर अंगरेज़ों के दाँत थे और लॉर्ड एलेनब्रु ने महाराजा खड़गसिंह और शेरसिंह के अनुयायियों, कर्मचारियों और सरदारों को सिख राज के विरुद्ध अपनी ओर फोड़ने के अनेक प्रयत्न किए। अफ़ग़ानों और सिखों को एक दूसरे के विरुद्ध भड़काया गया और लड़ाया गया। एक पत्र में लॉर्ड एलेनब्रु ने लिखा है कि मैंने जलालाबाद पर सिखों को इसलिए

* ". . . we strongly suspect the Company's corrupt influence has been employed in framing and fomenting these plots, . . . a mercenary Company, wielding a hireling army, can not live but by plunder . . . we see too clearly, that backed as it necessarily now is, by all the resources of Britain, Lahore will be sacked, the Kingdom rent in pieces."—*The British Friend of India*, December 1843, pp. 247, 248.

क़ब्ज़ा कर लेने दिया ताकि प्रधान सिख सेना लाहौर और अमृतसर से हट कर जलालाबाद की ओर चली जाय और मुझे राजधानी लाहौर पर हमला करने का मौक़ा मिल जाय। जनरल वेञ्चुरा नामक एक यूरोपियन अफ़सर उन दिनों पञ्जाब की सेना में अंगरेज़ों का गुप्तचर था। २० अक्तूबर सन् १८४३ को लॉर्ड एलेनब्रु ने ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन को लिखा कि मुझे आशा है कि एक दो वर्ष के अन्दर ही पञ्जाब हमारे हाथों में आ जायगा। सन् १८४४ में राजा हीरासिंह लाहौर दरबार का प्रधान मन्त्री था। अंगरेज़ों ने सिख सेना को राजा हीरासिंह के विरुद्ध भड़काया और जम्मू के राजा गुलाबसिंह को लाहौर दरबार के विरुद्ध उकसाया। लॉर्ड एलेनब्रु को आशा थी कि नवम्बर सन् १८४५ तक मुझे लाहौर पर हमला करने का अवसर मिल जायगा। इस सम्बन्ध में एलेनब्रु के पत्र पढ़ने योग्य और पाश्चात्य कूटनीति का एक सुन्दर नमूना हैं।

देशद्रोहियों का असफल प्रयत्न

मई सन् १८४४ में जब कि बालक दलीपसिंह लाहौर की गद्दी पर था, अंगरेज़ों ने भाई भीमसिंह, अतरसिंह और काश्मीरासिंह के अधीन एक सेना थानेश्वर से दलीपसिंह और उसके मन्त्री राजा हीरासिंह पर हमला करने के लिए लाहौर भिजवाई। ७ मई को फ़ीरोज़पुर के निकट इस सेना का लाहौर दरबार की सेना के साथ संग्राम हुआ, जिसमें भीमसिंह, अतरसिंह और काश्मीरासिंह तीनों देशद्रोही मारे गए। अतरसिंह उस अजीतसिंह का भाई था, जिसने

रणजीतसिंह के पुत्र महाराजा शेरसिंह की हत्या की थी। अंगरेज़ हीरासिंह की जगह अतरसिंह को मन्त्री बनाना चाहते थे। काश्मीरासिंह के विषय में कहा जाता है कि वह महाराजा रणजीतसिंह का दत्तक पुत्र था। सम्भव है कि उसे दलीपसिंह की जगह गद्दी देने का विचार रहा हो। अंगरेज़ों की यह कारखाई महाराजा रणजीतसिंह के साथ उनकी सन्धि का स्पष्ट उल्लङ्घन थी। लॉर्ड एलेनब्रु के उपद्रव पञ्जाब के अन्दर इसके बाद भी जारी रहे, किन्तु उनका फल पकने से पहले ही उसे भारत छोड़ कर इङ्गलिस्तान चला जाना पड़ा। फिर भी जाने से पहले वह पञ्जाब की सरहद पर देशी और अंगरेज़ी फ़ौजों, तोपों, किश्तियों, पुल बाँधने के सामान इत्यादि आगामी युद्ध की समस्त सामग्री का पूरा इन्तज़ाम कर गया था।

दक्खिन हैदराबाद के विरुद्ध एलेनब्रु ने अनेक साज़िशें कीं।

निज़ाम पर दाँत

मुसलमानों के वह विरुद्ध था ही। निज़ाम को आर्थिक कठिनाइयों में फँसा कर, और उसे क़र्ज़े दे देकर एलेनब्रु धीरे धीरे उसके ज़रखेज़ राज को हड़प लेना चाहता था। हैदराबाद के क़रीब आधे क़िले उन दिनों वीर और वफ़ादार अरब सिपाहियों के संरक्षण में थे। एलेनब्रु इन अरबों को निज़ाम के राज से निकाल देना चाहता था।

मलका विक्टोरिया के नाम एलेनब्रु के १३ अगस्त सन् १८४३ के एक पत्र में लिखा है—

"निज़ाम की सरकार की आर्थिक कठिनाइयों के कारण पुराने मन्त्री ने

इस्तीफ़ा दे दिया है। इन कठिनाइयों का परिणाम यह होता नज़र आता है कि हम निज़ाम को दस लाख रुपए क़र्ज़ देंगे और उसके बदले में निज़ाम का समस्त राज यदि सदा के लिए नहीं तो अनेक वर्षों के लिए अंगरेज़ों के शासन में आ जायगा। यह क़र्ज़ हमें फ़ौज को देने के लिए और कुछ साहूकारों और दूसरे लोगों के क़र्ज़ अदा करने के लिए देना पड़ेगा। मैंने कई बातों पर निज़ाम का फ़ैसला पूछा है। चन्द रोज़ के अन्दर उसका फ़ैसला मालूम हो जायगा।"

किन्तु लॉर्ड एलेनब्रु उत्तरीय भारत में इतना फँसा हुआ था कि अपने अल्प शासन काल के अन्दर वह निज़ाम राज के विषय में अपनी इच्छा पूरी न कर सका।

जेतपुर की रियासत

एक और छोटी सी रियासत जेतपुर नाम की बुन्देलखण्ड में थी, जिसके स्वतन्त्र अस्तित्व को लॉर्ड एलेनब्रु ने समाप्त कर दिया। केवल जिसकी लाठी उसकी भैंस के सिद्धान्त पर २७ नवम्बर सन् १८४२ को लॉर्ड एलेनब्रु ने जेतपुर के दोनों क़िलों पर क़ब्ज़ा कर लिया और ७ दिसम्बर को जेतपुर का राज अपने हाथों में लेकर बुन्देलखण्ड के ही एक दूसरे राजा को, जो अंगरेज़ों के कहने में था सौंप दिया। जेतपुर का पहला राजा क़रीब दस साथियों सहित राज छोड़ कर भाग गया। इस काम में मेजर स्लीमैन ने एलेनब्रु को सबसे अधिक सहायता दी।

अपने से पूर्व के अन्य गवरनर जनरलों के समान एलेनब्रु भी

अवध के नवाव से समय समय पर खूब धन चूसता रहा।

अवध से क़र्ज़

१६ सितम्बर सन् १८४२ को ऐलेनब्रु ने ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन को लिखा—

"मैंने अवध के बादशाह से और दस लाख रुपये बतौर क़र्ज़ वसूल कर लिए हैं।"

दिल्ली सम्राट की नज़रें बन्द

दिल्ली सम्राट की प्राचीन मान मर्यादा को लॉर्ड ऐमहर्स्ट के समय से लेकर प्रायः प्रत्येक गवरनर जनरल ने थोड़ा बहुत आघात अवश्य पहुँचाया। अंगरेज़ शासक इस बात को अच्छी तरह समझते थे कि यदि उस समय किसी एक व्यक्ति के झण्डे के नीचे भारत के हिन्दू और मुसलमान मिलकर फिर से अपनी स्वाधीनता के लिए हाथ पैर मार सकते थे, तो वह व्यक्ति केवल दिल्ली का मुग़ल सम्राट ही हो सकता था। दिल्ली सम्राट के मान पर वार करना उस समय भारत के राष्ट्रीय मान पर वार करना था। सम्राट बहादुरशाह उस समय दिल्ली के तख़्त पर था। सन् १८४२ तक यह नियम चला आता था कि जो कोई अंगरेज़ दिल्ली सम्राट से मिलने जाता था वह अपनी पदवी के अनुसार कुछ न कुछ नज़र सम्राट के सामने पेश करता था। इस नियम के अनुसार प्रत्येक गवरनर जनरल मुलाक़ात के समय एक सौ एक अशरफ़ी सम्राट की नज़र किया करता था। लॉर्ड एलेनब्रु ने सन् १८४२ में सम्राट के सामने अंगरेज़ों की ओर से इस प्रकार नज़रों का पेश किया जाना क़तई बन्द कर दिया।

एलेनब्रु की हार्दिक इच्छा यह भी थी कि यदि हो सके तो दिल्ली के नगर और क़िले पर क़ब्ज़ा करके उसे ब्रिटिश भारत की राजधानी बनाया जाय। किन्तु ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन ने अपने २७ सितम्बर सन् १८४२ के पत्र में उसे आगाह कर दिया कि मुग़ल सम्राट और उसके कुल के मान में इससे अधिक हस्तक्षेप करना अंगरेज़ी राज के लिए ख़तरनाक साबित हो सकता है। इस पत्र के उत्तर में १८ दिसम्बर सन् १८४२ को लॉर्ड एलेनब्रु ने ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन को लिखा—

एलेनब्रु की दिल्ली पर क़ब्ज़ा करने की इच्छा

"× × × मैं पहले ही आपके समान इस नतीजे को पहुँच चुका था कि कोई ऐसा काम करना जिससे यह मालूम हो कि हम बूढ़े सम्राट के साथ अत्याचार कर रहे हैं, उचित न होगा। यह सम्भव है कि मेरा उत्तराधिकारी सम्राट के उत्तराधिकारी के साथ कोई ऐसा समझौता कर सके जिससे दिल्ली का क़िला हमारे हाथों में आ जाय। साम्राज्य की पुरानी राजधानी का हमारे हाथों में होना और हमारा वहीं से बैठ कर शासन चलाना मुझे सदा से एक बहुत बड़ा लक्ष्य प्रतीत हुआ है।"*

केवल ढाई साल गवरनर जनरल रहने के बाद १ अगस्त सन्

* " . . . I had already come to your conclusion that it would be an unadvisable step to do anything having the appearance of violence towards the old King. With his successor, my successor may be able to make some arrangement for the transfer to us of the citadel. To have in our hands the ancient seat of Empire, and to administer the Government from it, has ever seemed to me to be a very great object."—Ellenborough to the Duke of Wellington, December, 18, 1842.

लॉर्ड एलेनब्रु की वापसी

१८४४ को लॉर्ड एलेनब्रु ने अपनी पदवी का भार लॉर्ड हार्डिञ्ज को सौंप दिया। जाने से पहले एलेनब्रु ने इस देश की ग़रीब प्रजा के लिए नमक का महसूल तक बढ़ा दिया। फ़ौज के लिए नई बारगों और छावनियों के बनवाने में उसने इतना अधिक खर्च किया कि कहा जाता है, कम्पनी के डाइरेक्टर उससे असन्तुष्ट हो गए, और यह भी उसके इतने जल्दी वापस बुला लिए जाने का एक कारण था। दूसरा कारण डाइरेक्टरों के उससे नाराज़ होने का यह बताया जाता है कि वह मुसलमानों को नाराज़ करके हिन्दुओं को खुश करना चाहता था। डाइरेक्टरों में सम्भवतः लॉर्ड मैकॉले की राय के आदमी अधिक थे। वास्तव में, इस विषय में अंगरेज़ी शासन की तराज़ू का पलड़ा कभी भी देर तक एक ओर को झुका हुआ नहीं रहा। एलेनब्रु के समय से आज तक इस विषय में ब्रिटिश राजनीति बारी बारी कभी एक ओर और फिर कभी दूसरी ओर को झुकती दिखाई दी है।

चालीसवाँ अध्याय

पहला सिख युद्ध

युद्ध के श्रीगणेश का श्रेय

महाराजा रणजीतसिंह के समय से ही कम्पनी के शासकों के पञ्जाब पर दाँत लगे हुए थे। लॉर्ड एलेनब्रु ने रणजीतसिंह की मृत्यु के बाद पञ्जाब के अन्दर विद्रोह खड़े करने और अराजकता फैलाने का पूरा प्रयत्न किया। सिखों के साथ युद्ध करने की उसने तैयारी भी कर ली थी। किन्तु सिख युद्ध के श्रीगणेश करने का श्रेय गवरनर जनरल सर हेनरी हार्डिञ्ज को प्राप्त हुआ। यही सर हेनरी हार्डिञ्ज के शासन काल की सबसे अधिक महत्वपूर्ण घटना थी।

लॉर्ड एलेनब्रु ने १७ जून सन् १८४४ को एक पत्र में अपने मित्र मेजर ब्रॉडफुट को लिखा—

"तुमने सुना होगा कि डाइरेक्टरों ने मुझे वापस बुला लेना उचित समझा है। मेरा उत्तराधिकारी मेरे तमाम विचारों को पूरा करेगा। यह मेरा अत्यन्त विश्वस्त मित्र है, और पिछले तीस साल से समस्त सार्वजनिक प्रश्नों पर मैं उसके साथ पत्र व्यवहार करता रहा हूँ।"

सिख युद्ध की तय्यारी

निस्सन्देह गवरनर जनरल हार्डिञ्ज ने एलेनब्रु के काम को ज्यों का त्यों जारी रक्खा। गवरनर जनरली का पद सँभालते ही उसने पञ्जाब की सरहद पर युद्ध की तैयारी और अधिक ज़ोरों के साथ शुरू कर दी। सतलज नदी के दाईं ओर उस समय महाराजा रणजीतसिंह के बालक पुत्र महाराजा दलीपसिंह का राज था, और बाईं ओर फ़ीरोज़पुर, लुधियाना, अम्बाला और मेरठ, चार जगह अंगरेज़ों की मुख्य छावनियाँ थीं। एलेनब्रु के जाते समय फ़ीरोज़पुर की छावनी में ४,५९६ सिपाही और बारह तोपें थीं, हार्डिञ्ज ने इसे बढ़ा कर १०,४७२ सिपाही और २४ तोपें कर दीं। लुधियाने की छावनी में ३,०३० सिपाही थे, जिन्हें हार्डिञ्ज ने बढ़ा कर ७,२३५ कर दिए। अम्बाले की छावनी में हार्डिञ्ज से पहले ४,११३ सिपाही और २४ तोपें थीं, जिन्हें हार्डिञ्ज ने बढ़ा कर १२, ९७२ सिपाही और ३२ तोपें कर दीं। मेरठ की छावनी में ५,८७३ सिपाही और १८ तोपें थीं, जिनकी जगह हार्डिञ्ज ने ९,८४४ सिपाही और २५ तोपें कर दीं। इस प्रकार इन चार छावनियों के अन्दर १७,६१२ सिपाहियों और ६६ तोपों को बढ़ा कर हार्डिञ्ज ने ४०,५२३ सिपाही और ९४ तोपें कर दीं। ख़ासकर लुधियाना और फ़ीरोज़पुर को

छावनियों को, जो दोनों सतलज के ऊपर थीं, उसने खूब मज़बूत कर लिया। सितम्बर सन् १८४५ में उसने ५६ बड़ी बड़ी किश्तियाँ फ़ीरोज़पुर के निकट मँगाकर जमा कर लीं। लॉर्ड एलेनब्रु का विचार नवम्बर सन् १८४५ तक इस सब तैयारी को पूरा कर लेने का था। हार्डिञ्ज ने इस मियाद के अन्दर ही तमाम तैयारी पूरी कर ली।

देश द्रोही लालसिंह

अब पञ्जाब पर हमला करने के लिए केवल एक बहाने की आवश्यकता थी। महाराजा दलीपसिंह के नाबालिग़ होने के कारण उसकी माता रानी झिन्दाँ राज का अधिकतर कारबार चलाती थीं। कहा जाता है कि प्रधान मन्त्री राजा लालसिंह महारानी झिन्दाँ का प्रेमपात्र और लाहौर दरबार में सब से अधिक प्रभावशाली था। कम्पनी के प्रतिनिधियों ने अपना मतलब पूरा करने के लिए अब लाहौर दरबार के कई मुख्य मुख्य व्यक्तियों को नाबालिग़ दलीप सिंह, महारानी झिन्दाँ और अपने देश तीनों के विरुद्ध अपनी ओर मिला लिया। इनमें सब से पहला व्यक्ति प्रधान मन्त्री राजा लाल सिंह था। फ़ीरोज़पुर की छावनी में उन दिनों एक कप्तान निकल्सन रहता था। इतिहास लेखक कनिङ्घम लिखता है —

"यह बात उस समय काफ़ी असन्दिग्ध और प्रसिद्ध थी कि लालसिंह का फ़ीरोज़पुर के अंगरेज़ एजण्ट कप्तान निकल्सन के साथ पत्र व्यवहार था, किन्तु निकल्सन की अकाल मृत्यु के कारण अब यह पक्की तरह मालूम नहीं

हो सकता कि लालसिंह से क्या क्या वादे किए गए और उसे क्या क्या आशाएँ दिलाई गईं।"*

बहुत सम्भव है कि अदूरदर्शी और स्वार्थी लालसिंह को दलीपसिंह की जगह पञ्जाब की गद्दी का लालच दिया गया हो। जो हो, लालसिंह की विश्वासघातकता के और अधिक सुबूत देने की आवश्यकता नहीं है।

देश द्रोही तेजसिंह

दूसरा प्रमुख व्यक्ति, जिसे अंगरेज़ों ने अपनी ओर फोड़ा, सरदार तेजसिंह नाम का सहारनपुर के ज़िले का रहने वाला एक ब्राह्मण था। यह तेजसिंह नाबालिग़ महाराजा दलीपसिंह की समस्त सेनाओं का प्रधान सेनापति था। धन के लोभ में आकर तेजसिंह भी अपने स्वामी और देश दोनों को बेचने के लिए तैयार हो गया।

देश द्रोही गुलाब सिंह

तीसरा ज़बरदस्त देशद्रोही, जिसने पञ्जाब को विदेशियों के हाथों में सौंप दिया, जम्मू का राजपूत राजा गुलाबसिंह था। वास्तव में राजपूत इतिहास के अन्दर दूरदर्शी नीतिज्ञ प्रायः कम देखने में आते हैं। १६ वीं सदी के शुरू तक तरह तरह की अय्याशी और बदचलनी के कारण राजपूतों के चरित्र का पूरी तरह पतन हो

---

* "It was sufficiently certain and notorious at the time that Lal Singh was in communication with Captain Nicolson, the British agent at Ferozepur but owing to the untimely death of that officer, the details of the overtures made and expectation held out, can not now be satisfactorily known."—*History of the Sikhs*, by Captain Cunningham, p. 305.

चुका था। राजा गुलाबसिंह ने सिख क़ौम, अपने देश और अपने स्वामी महाराजा रणजीतसिंह के नाबालिग़ पुत्र, तीनों के साथ दग़ा करके अंगरेज़ों का साथ दिया, जिसके इनाम में उसे और उसके वंशजों को बाद में काशमीर की विशाल रियासत प्रदान की गई।

भारतीय चरित्र का पतन

वास्तव में भारतीय चरित्र का वह पतन, जिसके कारण अंगरेज़ों ने इस देश में अपना साम्राज्य क़ायम कर पाया, किसी भी दूसरे प्रान्त के इतिहास में इतनी बार और इतने ज़ोरों के साथ नहीं चमकता जितना पञ्जाब के इतिहास में। आज से सौ वर्ष पूर्व का एक अंगरेज़ अफ़सर लिखता है —

"हमें फ़ौरन् यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि भारत के एक एक संग्राम में हमारी विजय का कारण इतना अधिक हमारे अपने शानदार कारनामे नहीं हैं जितना कि एशियाई चरित्र की निर्बलता। × × × उसी उसूल पर हमें यह निश्चित समझ लेना चाहिए कि जब कभी भारत की आबादी का बीसवाँ हिस्सा भी इतना दूरदर्शी और इतना चालाक हो जायगा जितने कि हम हैं, तो हमें फिर उसी तेज़ी के साथ पीछे हट कर पहले की तरह एक तुच्छ चीज़ बन जाना पड़ेगा।"*

---

* "We must at once admit that our conquest of India was, through every struggle more owing to the weakness of the Asiatic character than to the bare effect of our own brilliant achievements; . . . . . on the same principle we may set down as certain, that whenever one twentieth part of the population of India becomes as provident and as scheming as ourselves, we shall run back again, in the same ratio of velocity, the same course of our original insignificance."—Carnaticus, in the *Asiatic Journal*, May, 1821.

निस्सन्देह पञ्जाब के राजनैतिक पतन का मुख्य कारण पञ्जाब के उस समय के राजनैतिक नेताओं और प्रभावशाली कुलों के चरित्र का आश्चर्य जनक पतन था। विशेष कर महाराजा रणजीत-सिंह के उत्तराधिकारियों का चरित्र काफ़ी गिर चुका था, जिस पर हम अधिक कहना नहीं चाहते। राजकुल से उतर कर लालसिंह, तेजसिंह और गुलाबसिंह सिख साम्राज्य के तीन मुख्य स्तम्भ थे और ये तीनों ही स्वार्थ, विश्वासघात और देशद्रोह की मूर्ति साबित हुए।

मेजर ब्रॉडफ़ुट

तैयारी पूरी करने के बाद हार्डिंञ्ज के चित्त में आक्रमण करने का कोई बहाना ढूंढ़ निकालने की चिन्ता उत्पन्न हुई। लुधियाना, पंजाब और ब्रिटिश भारत की सरहद पर था। मेजर ब्रॉडफुट लुधियाने में गवरनर जनरल का एजण्ट था। सिखों को भड़का कर या जिस तरह हो सके, आक्रमण का बहाना ढूंढ़ने का काम ब्रॉडफुट को सौंपा गया। एलेनब्रु इंगलिस्तान से बैठा हुआ पंजाब के मामले में इतना अधिक शौक़ ले रहा था कि ७ मई सन् १८४५ को उसने एक पत्र द्वारा लन्दन से ब्रॉडफुट को सावधान किया कि—"आप जहाँ तक हो सके, लाहौर दरबार के विविध दलों में मेल न होने दें।" ब्रॉडफुट अपने मालिकों की इच्छा को योग्यता के साथ पूरा करता रहा।

सतलज नदी के इस पार कुछ इलाक़ा महाराजा पटियाला इत्यादि कई सिख नरेशों का था और ये सब नरेश अंगरेज़ सरकार के संरक्षण में थे। कुछ थोड़ा सा इलाक़ा लाहौर दरबार का था

जिससे अंगरेज़ों का कोई सम्बन्ध न था। महाराजा रणजीतसिंह के साथ कम्पनी की जो सन्धि हो चुकी थी उसमें अंगरेज़ों ने यह वादा किया था कि हम रणजीतसिंह के इस इलाक़े में किसी तरह का हस्तक्षेप न करेंगे। इतिहास लेखक कप्तान कनिङ्गम लिखता है—

"मेजर ब्रॉडफ़ुट की सब से पहली कारवाइयों में से एक यह थी कि उसने यह एलान कर दिया कि लाहौर दरबार का वह इलाक़ा, जो सतलज के इस पार है, उतना ही अंगरेज़ों के संरक्षण में है जितना कि पटियाला और अन्य नरेशों के इलाक़े; और यदि महाराजा दलीपसिंह की मृत्यु हुई या उसे तख़्त से उतार दिया गया तो अंगरेज़ कम्पनी को इस इलाक़े के ज़ब्त कर लेने का अधिकार होगा। इस बात की सूचना बाज़ाब्ता सिख दरबार को नहीं दी गई, किन्तु सब को इसका पता था, और मेजर ब्रॉडफ़ुट ने इसी पर अमल किया × × ×।

"इसके अलावा (सतलज पर) पुल बाँधने के लिए जो किश्तियाँ बम्बई में तैयार कराई गई थीं वे सन् १८४५ की पतझड़ में फ़ीरोज़पुर की ओर रवाना कर दी गईं। मेजर ब्रॉडफ़ुट ने यह ज़ाहिर करने के लिए कि इन सशस्त्र किश्तियों को हमले का डर है हुकुम दिया कि सिपाहियों की ज़बरदस्त गारदें हिफ़ाज़त के लिए फ़ीरोज़पुर तक इन किश्तियों के साथ जायँ। किश्तियों के फ़ीरोज़पुर पहुँचते ही उसने अपने आदमियों को पुल बनाने का अभ्यास कराना शुरू किया। इन सब बातों से उसने क़रीब क़रीब यह ज़ाहिर कर दिया कि युद्ध शुरू हो गया है।"*

---

* Cunningham's *History of the Sikhs*, pp. 297, et seq.

निस्सन्देह ब्रॉडफुट का लक्ष्य किसी तरह सिखों को भड़का कर उनकी ओर से युद्ध शुरू कराना था।

उधर गवरनर जनरल हार्डिञ्ज युद्ध का बहाना न मिलने से बेचैन हो रहा था।

२३ अक्तूबर सन् १८४५ को उसने लॉर्ड एलेनब्रु के नाम एक पत्र में लिखा—

"किन्तु पञ्जाब या तो सिखों का होना चाहिए और या अंगरेज़ों का; × × × देर करना केवल इस प्रश्न के निबटारे को कुछ दिनों के लिए टालना है; साथ ही हमें याद रखना चाहिये कि अभी तक उन्होंने युद्ध का कोई कारण हमारे हाथों में नहीं दिया।"*

इससे नौ महीने पहले २३ जनवरी सन् १८४५ को उसने लॉर्ड एलेनब्रु को एक और पत्र में लिखा था—

बहाने की तलाश

"यदि अपने मित्र (पञ्जाब) को उसकी इस विपत्ति की अवस्था में हड़प जाने के लिए हमारे पास वजह भी हो, तो भी हम इस समय तैयार नहीं हैं और उस समय तक तैयार नहीं हो सकते जब तक कि लू न चलने लगे और सतलज ज़ोर से न बहने लगे। × × × किन्तु यदि यह महीना अक्तूबर का भी होता और हमारी सेना बिलकुल तैयार होती, तो भी हम पञ्जाब पर हमला करने का बहाना क्या ले सकते थे?

"आत्म रक्षा हमसे यह चाहती है कि हम सिखों की सेना को तितर

* "The Punjab must, however, be Sikh or British; . . . The delay is merely a postponement of the settlement of the question; at the same time we must bear in mind that as yet no cause of war has been given."—Sir Henry Harding to Lord Ellenborough, October 23, 1845.

बितर कर दें; किन्तु × × × हम अपने उस दोस्त के इलाक़े पर क़ब्ज़ा जमा लेने का बहाना क्या बताएँगे, जिसने कि हमारी विपत्ति के समय में हमें अपनी बिगड़ी हुई अवस्था फिर से सुधारने में मदद दी थी ?"*

निस्सन्देह सिख युद्ध करना न चाहते थे, सिख निर्दोष थे, अंगरेज़ युद्ध के लिए उत्सुक थे, और आगामी युद्ध का एक मात्र कारण कम्पनी की साम्राज्य पिपासा थी।

कहा जाता है कि मार्च सन् १८४५ के लगभग पहले सिखों ने अपनी सरहद से निकल कर अंगरेज़ी इलाक़े पर हमला किया; अर्थात् सिख सवार सेना सतलज पार करके हरीकेपत्तन के निकट तलवण्डी नामक ग्राम पर आ पहुँची। कम्पनी के अफ़सरों ने और मेजर ब्रॉडफ़ुट ने इस घटना को सिख सेना का कम्पनी के इलाक़े पर हमला करना ज़ाहिर किया है। किन्तु सुप्रसिद्ध इतिहास लेखक कनिङ्घम से पता चलता है कि वास्तव में यह घटना क्या थी।

राई का पहाड़

कनिङ्घम लिखता है कि सतलज के इस पार कोटकपूरा नाम का एक नगर लाहौर दरबार के राज में था। वहाँ पर नगर की रक्षा के लिए लाहौर दरबार की ओर से कुछ सवार पुलिस रहा करती थी। इस पुलिस

---

* "Even if we had a case for devouring our ally in his adversity, we are not ready and could not be ready until the hot winds set in and the Sutlaj becomes a torrent, . . . but on what plea could we attack the Punjab if this were the month of October, and we had our army in readiness ?

"Self preservation may require the dispersion of this Sikh army; . . . but . . . how are we to justify the seizure of our friend's territory, who in our adversity assisted us to retrieve our affairs ?"—Harding to Ellenborough, January 23, 1845.

की समय समय पर तबदीली होती रहती थी। इस मौक़े पर कुछ सिख सवार फ़ीरोज़पुर के निकट सतलज पार करके इन संरक्षकों की जगह लेने के लिए कोटकपूरा जा रहे थे। सतलज पार करने के लिए इन लोगों ने अंगरेज़ सरकार से पहले से इजाज़त नहीं ली थी। कनिङ्घम का मत है कि इतने थोड़े से सवारों के लिए, जो इस तरह के काम के लिए जा रहे हों, सन्धि के अनुसार इजाज़त की कोई आवश्यकता न थी। फिर भी मेजर ब्रॉडफुट ने, जो केवल झगड़ा मोल लेना चाहता था, इन सिख सवारों को सतलज पार कर वापस लौट जाने की आज्ञा दी। सिख अफ़सर लड़ना न चाहते थे, उन्होंने मेजर ब्रॉडफुट का कहना मान लिया। वे पीछे लौट पड़े, इस पर भी मेजर ब्रॉडफुट की तसल्ली न हुई। उसने सेना सहित उनका पीछा किया। ठीक उस समय जब कि सिख सवार नदी को पार कर लौट रहे थे, अंगरेज़ी सेना उनके पीछे आ पहुँची। अंगरेज़ी सेना ने बिना कारण सिख सवारों पर गोली चला दी। सिख दलपति को इस बात की चिन्ता थी कि मैं अकारण अपने दरबार को अंगरेज़ों के साथ युद्ध में घसीटने का कारण न बन जाऊँ। इसलिए बिना अंगरेज़ी सेना की गोलियों का जवाब दिए वह शान्ति के साथ नदी पार कर पीछे लौट गया और यह छोटा सा मामला यहीं समाप्त हो गया। फिर भी अपने मतलब के लिए इस राई का पहाड़ बनाया गया। यह समस्त बयान कप्तान कनिङ्घम का है।*

* Cunningham's *History of the Sikhs*, p. 296.

लाहौर दरबार अपनी सरहद के ऊपर कम्पनी की युद्ध की तैयारियों को और इन सब बातों को अच्छी तरह देख रहा था। वह अब समझ गया कि अंगरेज़ों का इरादा शान्ति क़ायम रखने का नहीं है।

सन्धि का लगातार उल्लंघन

लाहौर दरबार को अंगरेज़ों के विरुद्ध और भी कई शिकायतें थीं। उनकी एक शिकायत थी कि कई बार अंगरेज़ों ने पिछली सन्धि का उल्लंघन किया। निस्सन्देह ये शिकायतें अत्यन्त गम्भीर थीं। फिर भी हमें उनके विस्तार में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। सिखों की शिकायतों में से एक शिकायत यह भी थी कि फ़ीरोज़पुर का नगर वास्तव में लाहौर दरबार का था, और अंगरेज़ों की प्रार्थना के अनुसार कुछ शर्तों पर उन्हें दे दिया गया था। इन शर्तों में से एक यह थी कि अंगरेज़ एक नियमित संख्या से अधिक सेना वहाँ पर न रक्खेंगे। फिर भी अंगरेज़ बिना लाहौर दरबार की इजाज़त के फ़ीरोज़पुर की सेना को बेतहाशा बढ़ाते चले गए। लाहौर दरबार का कहना था कि सन्धि के अनुसार सिख कर्मचारियों इत्यादि के सतलज पार करने में अंगरेज़ों को किसी तरह की बाधा न डालनी चाहिए थी, किन्तु अंगरेज़ इस विषय में लगातार सन्धि का उल्लंघन करते रहे और बार बार लाहौर के उन कर्मचारियों का अपमान करते रहे जो सतलज पार करते थे, इत्यादि।

अहसान फ़रामोशी

उस समय के सरकारी और ग़ैर सरकारी लेखकों ने अंगरेज़ों के ऊपर महाराजा रणजीतसिंह के अनेक एहसानों को मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है।

अंगरेज़ों को प्रसन्न करने के लिए रणजीतसिंह ने अपने देशवासियों के साथ और आपत्ति में पड़े हुए जसवन्तराव होलकर के साथ विश्वासघात किया; और वह भी ऐसे अवसर पर जब कि यदि रणजीतसिंह होलकर का साथ दे जाता तो बहुत सम्भव, बल्कि क़रीब क़रीब निश्चित है कि अंगरेज़ी साम्राज्य की जड़ें भारत से उसी समय उखड़ गई होतीं। * दलीपसिंह के गद्दी पर बैठने के समय गवरनर जनरल ने उसे रणजीतसिंह का न्याय उत्तराधिकारी स्वीकार कर लिया था और वादा किया था कि अंगरेज़ किसी दूसरे हक़दार का पक्ष न लेंगे। लेकिन रणजीतसिंह के साम्राज्य को नष्ट करने, दलीपसिंह को उसके पैतृक राज से वञ्चित रखने और पञ्जाब को अंगरेज़ी साम्राज्य में मिलाने के लिए इस समय साजिशों का एक विशाल जाल पूरा जा रहा था।

सिख सेना को भड़काने के प्रयत्न

नवम्बर सन् १८४५ का महीना निकट आ रहा था लॉर्ड एलेनब्रु के अनुमान के अनुसार अंगरेज़ों की तैयारी पूरी हो चुकी थी। अक्तूबर सन् १८४५ में सर हेनरी हार्डिञ्ज ने कलकत्ते से पञ्जाब की ओर प्रस्थान किया। सरहद से ऊपर अंगरेज़ी फ़ौजों के जमा होने और गवरनर जनरल के उस ओर प्रस्थान करने से सिख पूरी तरह समझ गए कि अंगरेज़ों का इरादा क्या है। अभी तक भी लाहौर दरबार शान्ति और धैर्य के साथ सब बातों को बरदाश्त कर रहा था। इसी कारण अंगरेज़ों को हमला करने का कोई ज़ाहिरा

* *The Career of Major Broadfoot*, p. 268.

बहाना हाथ न आ रहा था। अब हार्डिञ्ज ने लालसिंह और तेजसिंह पर ज़ोर दिया कि जिस तरह हो सके, सिख सेना को भड़का कर उससे अंगरेज़ी इलाक़े पर फ़ौरन् हमला करा दिया जाय, ताकि अंगरेज़ों को युद्ध छेड़ने का बहाना मिल सके। सिखों को भड़काने के लिए सेना में अनेक गुप्तचर नियुक्त किए गए। अन्त में देशघातक लालसिंह और तेजसिंह ने कुछ सिख सेना को भड़का कर उससे अंगरेज़ी सरहद पर हमला करवा दिया। कप्तान कनिङ्घम इस विषय में लिखता है—

"यदि सिख सेनाओं के चतुर पञ्चों को अंगरेज़ों की सैनिक तैयारियाँ दिखाई न दे गई होतीं तो वे लालसिंह और तेजसिंह जैसे धनक्रीत मनुष्यों के कपटपूर्ण भड़काने की ओर कुछ भी ध्यान न देते, सिख सेना से ताने दे देकर पूछा गया कि क्या तुम ख़ालसा राज की सीमाओं को कम होते हुए और लाहौर के मैदान पर दूरवर्ती यूरोप के बाशिन्दों का क़ब्ज़ा होते हुए चुपचाप बैठे देखते रहोगे? उन लोगों ने उत्तर दिया कि हम लोग गुरु गोविन्द के राज की समस्त प्रजा की रक्षा करने में अपने प्राण न्योछावर कर देंगे, और आगे बढ़ कर हमला करने वालों की सरहद के अन्दर उनसे युद्ध करेंगे।"*

---

* "Had the shrewd committees of the armies observed no military preparations on the part of the English, they would not have heeded the insidious exhortations of such mercenary men as Lal Singh and Tej Singh, . . . the men were tauntingly asked whether they would quietly look on while the limits of the Khalsa dominion were being reduced, and the planes of Lahore occupied by the remote strangers of Europe, they answered that they would defend with their lives all belonging to the Commonwealth of Govind, and that they would march and give battle to the invaders on their own ground."—*History of the Sikhs*, by Cunningham, p. 299.

ज़ाहिर है कि सीधे और वीर सिख सिपाहियों के साथ कितनी नीच चाल चली गई। जिन लोगों को वे अपने नेता समझ रहे थे वे ही उनके सर्वनाश के लिए उत्सुक थे और उसकी तदबीरें कर रहे थे।

वीर सिख सिपाहियों के साथ नीच चालें

कप्तान निकलसन ने मेजर ब्रॉडफुट के नाम २३ नवम्बर सन् १८४५ के एक पत्र में साफ़ लिखा है कि राजा लालसिंह ने अंगरेज़ों की इच्छा के अनुसार सिख सेना को भड़का कर उससे अंगरेज़ी सरहद पर हमला करवाया। निस्सन्देह उस समय के लाखों ग़रीब सिख सिपाहियों की सच्ची वीरता, उनके बढ़े हुए धार्मिक उत्साह और उनके आत्मोत्सर्ग के मुक़ाबले में सिख नेताओं के कपट, उनके नीच स्वार्थ, उनके देशद्रोह और उनके विश्वासघात का दृश्य अत्यन्त दुखकर है।

सारांश यह कि ठीक नवम्बर सन् १८४५ के मध्य में लालसिंह ही के अधीन सिख सेना लाहौर से चल पड़ी। इस सेना ने सतलज नदी को पार किया और अंगरेज़ों को पञ्जाब 'हड़पने' का बहाना हाथ आया। वास्तव में सारा नाटक पहले से निश्चित था।

पञ्जाब हड़पने का बहाना

हैदरअली, दौलतराव सींधिया और अन्य भारतीय नरेशों के समान महाराजा रणजीतसिंह ने भी अनेक यूरोपियन अफ़सरों को अपनी सेना में नौकर रख रक्खा था। ये यूरोपियन अफ़सर सङ्कट के समय अपने हिन्दोस्तानी मालिकों की ओर प्रायः कभी भी नमक

रणजीतसिंह के यूरोपियन नौकर

हलाल साबित नहीं हुए। इन्हीं में एक जनरल वेञ्चुरा इस समय लाहौर सेना के अन्दर अंगरेज़ों का ख़ास गुप्तचर था। सिखों की सैनिक कौन्सिल ने सब से पहला दूरदर्शिता का कार्य यह किया कि इस तरह के समस्त यूरोपियन अफ़सरों को अपनी सेना से बरख़ास्त कर दिया। किन्तु अपने घर के भेदियों का उन्हें उस समय तक भी पता न था।

युद्ध का एलान

युद्ध का काफ़ी बहाना मिल गया। १३ दिसम्बर सन् १८४५ को गवरनर जनरल सर हेनरी हार्डिञ्ज ने महाराजा दलीपसिंह के साथ युद्ध का एलान किया और इस एलान द्वारा सतलज के इस पार के दलीपसिंह के तमाम इलाके को कम्पनी के राज में मिला लिया। पञ्जाब के सरदारों और पञ्जाब की प्रजा के नाम गवरनर जनरल का यह एलान, इस तरह के अन्य राजनैतिक एलानों के समान, झूठ और छल से भरा हुआ था। इस एलान द्वारा पञ्जाब के जागीरदारों, ज़मींदारों, सरदारों और वहाँ की प्रजा को बहका कर और प्रलोभन दे देकर बालक दलीपसिंह के विरुद्ध करने की पूरी चेष्टा की गई।

सरकारी उल्लेखों से मालूम होता है कि गवरनर जनरल हार्डिञ्ज को उस समय सिखों के दिल्ली पर हमला करने की आशङ्का थी। इसलिए दिल्ली में सेना बढ़ा दी गई और चारों ओर की सड़कों की रक्षा का विशेष प्रबन्ध किया गया।

यदि राजा लालसिंह अंगरेज़ों से मिला न होता तो सिख सेना के सतलज पार करते ही वह फ़ीरोज़पुर की अंगरेज़ी छावनी

पर हमला करता। किन्तु वह सिखों को उलटा मुदकी की ओर बढ़ा ले गया। १८ दिसम्बर सन् १८४५ को मुदकी

मुदकी का संग्राम

में दोनों ओर की सेनाओं के बीच घमासान युद्ध हुआ। अंगरेज़ इतिहास लेखकों का कथन है कि जिस भयङ्कर वीरता के साथ सिखों ने अंगरेज़ी सेना का मुक़ावला किया, और जितनी ज़बरदस्त हानि अंगरेज़ों को सहनी पड़ी, उससे इसमें कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता कि यदि सिख सेना के साथ विश्वासघात न किया जाता तो मुदकी के ऐतिहासिक मैदान में अंगरेज़ी सेना का एक सिपाही भी ज़िन्दा न बचता। किन्तु राजा लालसिंह और तेजसिंह की कोशिशों से सिख सिपाहियों को छर्रे की जगह सरसों और बारूद की जगह रँगा हुआ आटा तोपों में भर कर दे दिया गया। स्वभावतः मुदकी का मैदान अंगरेज़ों के हाथों में रहा।

मुदकी की लड़ाई के बाद सिख सेना वहाँ से हट कर फ़ीरोज़शहर पहुँची। फ़ीरोज़शहर में फिर एक ज़बरदस्त संग्राम हुआ, जिसमें एक बार विजय सिखों की रही। कहा जाता है कि फ़ीरोज़शहर

फ़ीरोज़शहर का संग्राम

में अंगरेज़ों को जितनी भारी हानि सहनी पड़ी उतनी भारत के किसी भी दूसरे मैदान में नहीं सहनी पड़ी थी। स्वयं गवरनर जनरल हार्डिञ्ज, जो अपनी सेना के साथ था, इतना घबरा गया कि उस दिन रात को उसने अंगरेज़ अफ़सरों और उनके बाल बच्चों को पीछे हटा लेने का पूरा प्रबन्ध कर लिया। शेष अंगरेज़

दिया जायगा और आपका रुतबा बढ़ा कर न केवल सतलज के इस पार की रियासतों में सबसे ऊँचा कर दिया जायगा, बल्कि हिन्दोस्तान के बड़े से बड़े और प्राचीन महाराजाओं के तुल्य आपकी पदवी कर दी जायगी ।*

विलियम एडवर्ड्स को अपने उद्देश में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई ।

अंगरेज़ी सेना के सतलज पार कर लाहौर की ओर बढ़ने से पहले अलीवाल और सुबराँव नामक स्थानों पर दो और लड़ाइयाँ लड़ी गईं ।

अलीवाल की लड़ाई

इन दोनों लड़ाइयों में अलोवाल की लड़ाई अधिकतर एक कपोलकल्पित लड़ाई थी । बुडीवाल में अंगरेज़ी सेना का सामान सिख सेना ने छीन लिया था । इस घटना को किसी तरह खींच तान कर भी अंगरेज़ों को विजय नहीं कहा जा सकता । थोड़ी देर बाद अलीवाल में सिख सिपाहियों का एक छोटा सा दस्ता चला जा रहा था । अंगरेज़ी सेना के कुछ सिपाहियों ने उनके पीछे गोली चला दी । दोनों ओर से थोड़ी सी फट फट हुई । फ़ीरोज़शहर की हार के कारण अंगरेज़ों के युद्ध बल का उस समय चारों ओर मज़ाक़ उड़ रहा था । फ़ौरन् अलीवाल की इस छोटी सी घटना

assurance of present rewards and future pensions, and the immediate decision of any law suits in which the deserters might be engaged in the British provinces."—Cunningham's *History of the Sikhs*, page 311.

* *Reminiscences of a Bengal Civilian*, pp. 92, 93.

को बढ़ा कर अंगरेज़ों की एक शानदार विजय ज़ाहिर किया गया। एक अंगरेज़ लेखक जो मौक़े पर मौजूद था, लिखता है कि—"अलीवाल की लड़ाई सरकारी पत्रों की लड़ाई थी, क्योंकि जब तक हम लोगों ने सरकारी रिपोर्ट नहीं पढ़ी थी तब तक हममें से किसी को यह भी पता न था कि हम कोई लड़ाई लड़ चुके हैं!"*

सुबरॉव की लड़ाई

सुबरॉव की लड़ाई नीति की दृष्टि से अंगरेज़ी क़ौम के लिए और भी अधिक लज्जाजनक थी। इतिहास लेखक विलियम एडवर्ड्स लिखता है कि "जिस समय गवरनर जनरल फ़ीरोज़पुर में था उस समय राजा लालसिंह के गुप्तचरों ने आकर सिख सेना की स्थिति इत्यादि के विषय में गवरनर जनरल को बड़ी क़ीमती ख़बरें दीं। सिखों ने बड़ी वीरता के साथ जान लड़ा कर युद्ध किया। किन्तु उन्हें किश्तियों के पुल की ओर हटा दिया गया। यह बात पहले से तय हो चुकी थी कि संग्राम शुरू होते ही सिखों के नेता राजा लालसिंह और तेजसिंह स्वयं पुल के पार पहुँच कर पुल को तोड़ डालेंगे, उन्होंने ऐसा ही किया।"†

सुबरॉव के मैदान में अकेले लालसिंह और तेजसिंह ही असहाय

* "Aliwal was the battle of the despatch, for none of us knew we had fought a battle until the particulars appeared in a document . . . . . *Wanderings of a Naturalist in India*, by Andrew Leith Adams M. D. etc.

† *Reminiscences of a Bengal Civilian*, pp. 99, 100.

सिख सिपाहियों के साथ विश्वासघात करने वाले न थे। विलियम एडवर्ड्स और आगे चल कर लिखता है—

सिखों के विश्वास घातक नेता

"मुदकी, फ़ीरोज़शहर और अलीवाल में सिखों की पराजय के बाद सिख सेना का विश्वास राजा लालसिंह, तेजसिंह और अपने अन्य नेताओं पर से बिलकुल उठ गया। वे उन पर यह दोष लगाने लगे कि ये लोग सिखों के नाश के लिए अंगरेज़ सरकार के साथ मिले हुए हैं। उन्होंने अब जम्मू के राजा गुलाबसिंह को अपना नेता बनने के लिए बुला भेजा। राजा गुलाबसिंह ने स्वीकार कर लिया और अपनी एक बहुत बड़ी विश्वस्त पहाड़ी सेना लेकर लाहौर आ पहुँचा। लाहौर दरबार को उसने यह समझाया कि मैं अपनी इस सेना से लाहौर के क़िले की रक्षा कर लूँगा, क़िले के अन्दर की सिख सेना को सतलज नदी (सुबराँव) की ओर भेज दिया जाय। × × × गुलाबसिंह ने इस सिख सेना से ज़ोर देकर यह भी कह दिया कि जब तक मैं तुमसे न आ मिलूँ तब तक अंगरेज़ों पर हमला करने का प्रयत्न न करना। यह कह कर वह एक न एक बहाना लेकर अपना जाना टलाता रहा। वह अच्छी तरह जानता था कि उचित समय पर अंगरेज़ हमला करके सुबराँव जीत लेंगे।"*

इतिहास लेखक कनिङ्घम ने भी साफ़ लिखा है कि अंगरेज़ों और सिख सेना के नेताओं में यह पहले से तय हो चुका था कि अंगरेज़ों के हमला करने पर सिख नेता अपनी फ़ौज को छोड़ कर अलग हो जायँ, उसे कट जाने दें, सतलज पार करने में अंगरेज़ों

* Ibid, p. 104.
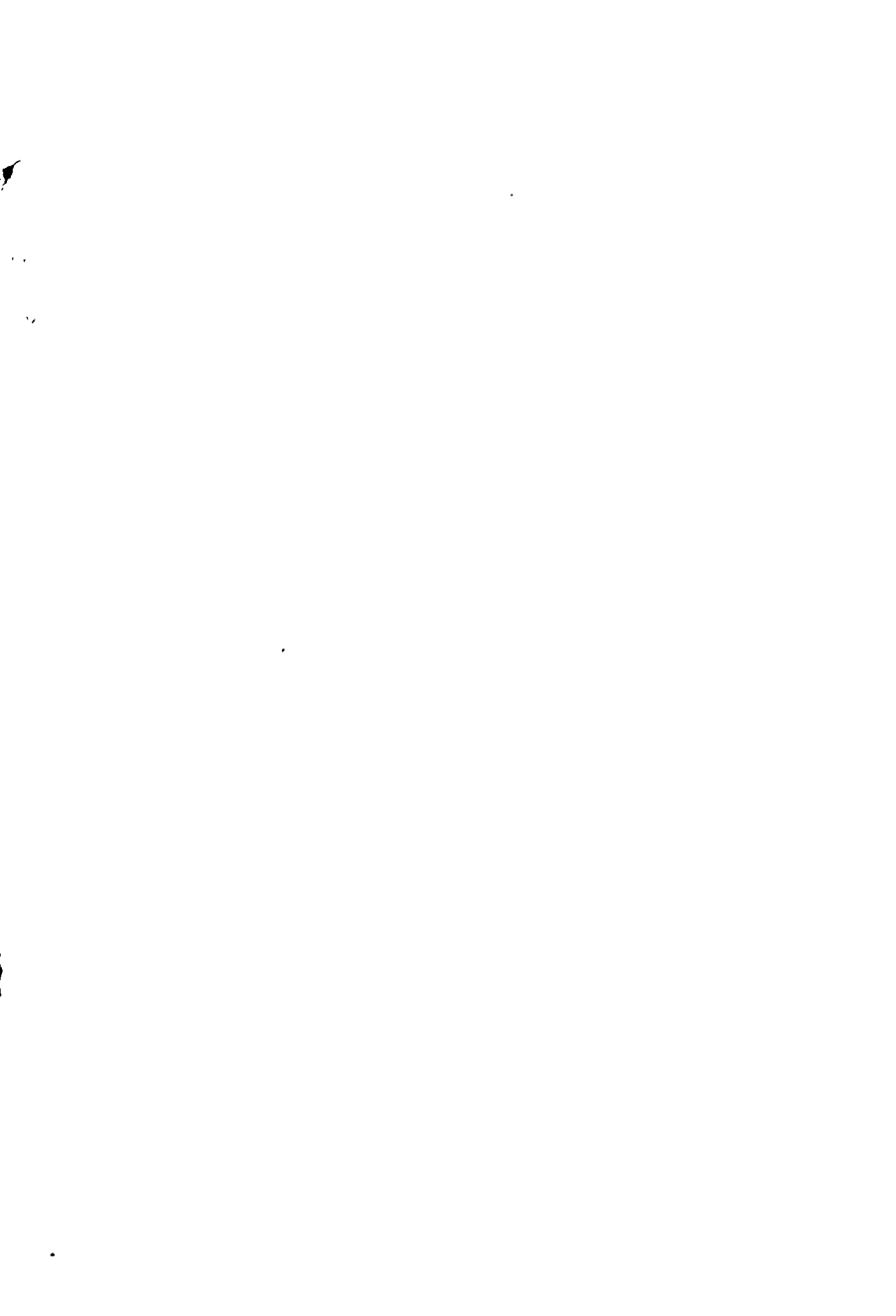
शामसिंह अटारीवाला

[By Courtesy of the Curator Central Museum, Lahore.]

का विरोध न करें और लाहौर तक की सड़क अंगरेज़ी सेना के लिए खोल दें।*

कनिङ्घम ने विस्तार के साथ लिखा है कि किस प्रकार सुबरॉव

सिख सैनिकों की असीम वीरता

में विश्वासघाती नेताओं ने सिख सेना को ले जाकर ऐसे स्थान पर पहुँचा दिया जहाँ पर कि नदी को पार कर सकना असम्भव था। वहाँ पर अंगरेज़ी सेना ने उन्हें दोनों ओर से घेर कर उन पर हमला किया; फिर भी एक भी सिख सिपाही विदेशियों की शरण आने के लिए तैयार न हुआ। निर्दय नेताओं ने अपनी इस वीर सेना का सर्वनाश कर देने के उद्देश से तोपख़ाने सहित उन्हें नदी के अन्दर बढ़ा दिया और वहाँ पर अपनी आँखों के सामने अंगरेज़ी सेना के हाथों उनका वध करवाया। यहाँ तक कि सतलज नदी लाशों से भर गई और नदी का जल ख़ून से रँग गया। इस प्रकार सुबरॉव के मैदान में सतलज नदी के ऊपर देशद्रोही लालसिंह, तेजसिंह और गुलाबसिंह ने रणजीतसिंह के क़ायम किए हुये साम्राज्य, पञ्जाब की स्वाधीनता और वीर तथा अजेय सिख क़ौम, तीनों का ख़ून करवा डाला!

उस समय के देशभक्त और वफ़ादार सिख सरदारों में शाम-

शामसिंह अटारी वाला

सिंह अटारी वाले का नाम सदा के लिये स्मरणीय रहेगा। कनिङ्घम लिखता है—

"किन्तु बूढ़े शामसिंह को अपनी प्रतिज्ञा का

* *History of the Sikhs*, p 324.

स्मरण रहा। उसने शोग की पोशाक (कोरे सफ़ेद वस्त्र) धारण किए और अपने आस पास के सब सैनिकों को यह याद दिला कर कि गुरु ने युद्ध में मरने वाले वीरों से अनन्त सुख का वादा किया है, उसने बार बार उन्हें अपने चारों ओर जमा कर लिया और गुरु के नाम पर प्राण न्योछावर करने के लिये प्रेरित किया। अन्त में अपने इन्हीं देशबन्धुओं की लाशों के ढेर के ऊपर वह भी स्वयं शहीद होकर गिर पड़ा।"*

सिखों की तोपें

प्रथम सिख युद्ध में सिखों की २२० तोपें अंगरेज़ों के हाथ लगीं। इनमें से ८० तोपों के विषय में गवरनर-जनरल ने लिखा कि इतनी बड़ी तोपें उस समय यूरोप में कहीं भी मौजूद न थीं, उनकी मार अंगरेज़ी तोपों के मुक़ाबले में कहीं अधिक दूर तक जाती थी, पीछे को धक्का कम लगता था और चलाने के समय जितनी जल्दी अंगरेज़ी तोपें गरम हो जाती थीं उतनी जल्दी ये न होती थीं।

लाहौर दरबार के साथ सन्धि

सुबरांव की लड़ाई के बाद १२ फ़रवरी सन् १८४६ को गवरनर-जनरल हार्डिञ्ज सतलज पार कर लाहौर की ओर बढ़ा। मेजर ब्रॉडफुट के पद पर इस समय मेजर लॉरेन्स था जो बाद में सर हेनरी लॉरेन्स के नाम से विख्यात हुआ। लाहौर में देशद्रोही राजा गुलाबसिंह ने इस सुन्दरता के साथ समस्त प्रबन्ध कर रक्खा था कि मार्ग में किसी ने भी एक गोली अंगरेज़ी सेना पर न चलाई। फिर भी विलियम एडवर्ड्स लिखता है कि पञ्जाब पर क़ब्ज़ा जमाने के लिए

* Ibid, p. 327.

गवरनर जनरल को अंगरेज़ी सेना बिलकुल थोड़ी मालूम हुई। गवरनर जनरल सिखों की वीरता देख चुका था। इसलिए उसे यह भी विश्वास न था कि देश भर में समस्त सिख क़ौम आसानी से अंगरेज़ों की अधीनता स्वीकार कर लेगी। उसने लाहौर दरबार के साथ सन्धि कर लेना ही उचित समझा।

मार्च सन् १८४६ में लाहौर दरबार के साथ पहली सन्धि की गई। पञ्जाब का कुछ इलाक़ा लाहौर दरबार और बालक दलीप-सिंह से छीन कर अंगरेज़ी राज में मिला लिया गया, और शेष के ऊपर देशद्रोही लालसिंह को वज़ीर की हैसियत से शासक नियुक्त कर दिया गया।

देशद्रोहियों को पुरस्कार

किन्तु शीघ्र ही इस सन्धि को तोड़ कर एक दूसरी सन्धि की आवश्यकता अनुभव हुई। मालूम होता है कि लालसिंह को कुछ और अधिक इनाम की आशा थी। गुलाबसिंह को उसके देशद्रोह के पारितोषिक रूप काश्मीर का विशाल राज, शेख़ इमामुद्दीन से छीन कर, एक करोड़ रुपया लेकर दे दिया गया। लालसिंह का असन्तोष और भी अधिक बढ़ा। कहा जाता है कि उसने गुलाब-सिंह के काश्मीर पर क़ब्ज़ा करने में बाधाएँ डालीं। अन्त में लाहौर ही में एक दूसरी सन्धि की गई, जिसे भैरोंवाल की सन्धि कहा जाता है। यह सन्धि १६ दिसम्बर सन् १८४६ को की गई। इस सन्धि के अनुसार रानी झिन्दाँ को पन्द्रह हज़ार पाउण्ड अर्थात् डेढ़ लाख रुपये सालाना की पेनशन देकर राज प्रबन्ध से

अलग कर दिया गया। लालसिंह की भी सत्ता समाप्त कर दी गई। बाद में उसे क़ैद करके देहरादून भेज दिया गया। दलीपसिंह के नाबालिग़ रहने के समय तक के लिए आठ सरदारों की एक कौन्सिल बना दी गई। तेजसिंह इस कौन्सिल का एक सदस्य रहा। यह तय कर दिया गया कि यह कौन्सिल अंगरेज़ रेज़िडेण्ट की हिदायतों के अनुसार राज का समस्त प्रबन्ध करे। युद्ध के दण्ड रूप एक बहुत बड़ी रक़म लाहौर दरबार से वसूल की गई; दरबार की सेना का एक बड़ा भाग तोड़ दिया गया; और उसकी जगह कम्पनी की सेना पञ्जाब में नियुक्त की गई, जिसका ख़र्च लाहौर दरबार पर डाला गया।

हार्डिञ्ज को इनाम

पञ्जाब की स्वाधीनता का इस प्रकार अन्त करने के इनाम में गवरनर जनरल सर हेनरी हार्डिञ्ज को 'लॉर्ड' की उपाधि और कम्पनी की ओर से असहाय भारतवासियों के दिये हुये टैक्सों में से तीन हज़ार पाउण्ड सालाना की आजीवन पेनशन अता की गई।

जम्मू का नाम लेना अपशकुन

इस युद्ध में राजा गुलाबसिंह के विश्वासघात की याद में आज तक पञ्जाब के अनेक लोग 'जम्मू' शहर का नाम लेना अपशकुन समझते हैं, और उसे 'बड़ा शहर' कह कर पुकारते हैं।

गवरनर जनरल लॉर्ड हार्डिञ्ज के शासन-काल की शेष मुख्य-मुख्य घटनाएँ बहुत थोड़े में वर्णन की जा सकती हैं। शिवाजी के

राजा प्रतापसिंह, सतारा

[From "Story of Satara," by B. D. Basu.]

वंशज सतारा के निर्दोष और पदच्युत राजा प्रतापसिंह को उसने बनारस के अन्दर ऐसी बुरी स्थिति में रक्खा कि राजा प्रतापसिंह की रानी बीमार होकर मर गई, प्रतापसिंह का स्वास्थ्य बेहद बिगड़ गया, उसके अंगरेज़ जेलर मेजर कारपेंटर तक ने प्रतापसिंह की निर्दोषता को तसदीक़ करते हुये गवरनर जनरल से दया की सिफ़ारिश की, फिर भी लॉर्ड हार्डिञ्ज ने परवा न की और अक्तूबर सन् १८४७ में राजा प्रतापसिंह घुल घुल कर मर गया। अंगरेज़ इतिहास-लेखक लडलो लिखता है "यह पापकर्म लॉर्ड हार्डिञ्ज के नाम के साथ सदा के लिए लगा रहेगा।"* नैपाल के अन्दर अराजकता, हत्याओं और साज़िशों का वैसा ही बाज़ार गरम किया गया जैसा सिख युद्ध से पहले पञ्जाब में। उस समय से ही नैपालियों में एक मसल मशहूर है कि—'सौदागर के साथ साथ बन्दूक़ चलती है और इञ्जील के साथ साथ सङ्गीन।' किन्तु नैपाल में क्षेत्र इतनी आसानी से तैयार न हो सका। अवध के बादशाह को भी 'तम्बीह' करने के लिए लॉर्ड हार्डिञ्ज लखनऊ पहुँचा, किन्तु वहाँ भी मामला पकने में अभी कुछ देर थी।

हार्डिञ्ज के शासन काल की अन्य घटनाएँ

लॉर्ड हार्डिञ्ज अपने आपको एक धर्मनिष्ठ ईसाई प्रकट करता था। अक्तूबर सन् १८४६ में उसने एक क़ानून पास किया कि रविवार के दिन कोई किसी से

हार्डिञ्ज की धर्मनिष्ठा

* "With this evil deed Lord Harding's name is inseparably connected."
—*British India*, by Ludlow, vol. ii, p. 154.

काम न ले। यूरोपियन सिपाहियों के लिए उसने हिन्दोस्तान में अनेक नई सुविधाएँ पैदा कर दीं। अन्त में १८ जनवरी सन् १८४८ को उसने भारत से प्रस्थान किया और लॉर्ड डलहौज़ी उसकी जगह गवरनर जनरल नियुक्त हुआ।

इकतालीसवाँ अध्याय

दूसरा सिख युद्ध

भारत के अन्दर अंगरेज़ी साम्राज्य को विस्तार देने वालों में डलहौज़ी का नाम सब से अन्तिम है; अर्थात् डलहौज़ी के शासनकाल के पश्चात् भारत के मानचित्र में कोई और हिस्सा लाल नहीं रँगा गया। ऊपर लिखा जा चुका है कि लॉर्ड ऑकलैण्ड के समय में इंगलिस्तान के अन्दर लॉर्ड लैण्ड्सडाउन के मकान पर वहाँ के मन्त्रियों और ख़ास ख़ास नीतिज्ञों की एक सभा हुई, जिसमें यह निश्चय किया गया कि हमें भारत में अपने मित्र देशी नरेशों के राज्यों को जिस तरह बन पड़े अपने साम्राज्य में मिला मिला कर अपनी वार्षिक आय को बढ़ाना चाहिए।* इसी निश्चित नीति के

लॉर्ड डलहौज़ी की निश्चित नीति

* *Memoir of General John Briggs*, p. 279.

अनुसार लॉर्ड डलहौज़ी ने एक एक कर भारत के रहे सहे देशी राज्यों का ख़ात्मा करना शुरू कर दिया।

इनमें दो सब से बड़े राज्य, पञ्जाब और बरमा थे, जिनमें सब से पहले हम पञ्जाब की कहानी संक्षेप में बयान करते हैं।

पञ्जाब में असन्तोष

लॉर्ड हार्डिञ्ज अपने समय में पञ्जाब की अवस्था को देखते हुए पञ्जाब को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लेने का साहस न कर सका था। फिर भी १६ दिसम्बर सन् १८४६ वाली भैरोंवाल की सन्धि पर जिस प्रकार अमल किया जा रहा था उससे मालूम होता था कि पञ्जाब के लोगों को भड़का कर दूसरे सिख युद्ध के लिए बहाने पैदा किए जा रहे हैं, ताकि अन्त में मौक़ा पाकर पञ्जाब की स्वाधीनता का अन्त कर दिया जाय। सर फ़ेडरिक करी इस समय लाहौर का रेज़िडेण्ट था। उसके पत्रों से प्रकट है कि वह आरम्भ से ही बालक दलीपसिंह और सिख राज दोनों का शत्रु था और दोनों को समूल नष्ट कर देना चाहता था। रेज़िडेण्ट की हैसियत से भैरोंवाल की सन्धि के अनुसार करी ही इस समय पञ्जाब का क्रियात्मक शासक था। राज के एक एक महकमें में उच्च और ज़िम्मेवार पदों से देशवासियों को निकाल कर उसने उनकी जगह अंगरेज़ भरती करने शुरू कर दिए। पञ्जाबियों में असन्तोष बढ़ने लगा और उन्हें यह सन्देह होने लगा कि अंगरेज़ों का इरादा महाराजा दलीपसिंह के बालिग़ हो जाने पर भी सन्धि की शर्तों के अनुसार पञ्जाब का राज उसे सौंप देने का नहीं है, वरन् वे पञ्जाब पर स्वयं क़ब्ज़ा करने की

फ़िक्र में हैं। रेज़िडेण्ट करी के समस्त व्यवहार से इस सन्देह को अधिकाधिक पुष्टि मिलती गई।

मुलतान की घटना

इस समय की पञ्जाब की घटनाओं में सबसे मुख्य मुलतान की घटना थी। यहाँ तक कि यह घटना ही दूसरे सिख युद्ध का मुख्य कारण बताई जाती है।

सावनमल का योग्य शासन

मुलतान का प्रान्त महाराजा रणजीतसिंह ने सन् १८१८ में अपने साम्राज्य में शामिल किया था। दीवान सावनमल को लाहौर दरबार की ओर से वहाँ का शासक नियुक्त किया गया था। मुलतान प्रान्त की आमदनी उस समय ३५ लाख रुपए वार्षिक थी, जिसमें से १७½ लाख वार्षिक सावनमल को लाहौर के ख़ज़ाने में जमा कराने पड़ते थे। अपने प्रान्त के शेष समस्त शासन प्रबन्ध में दीवान सावनमल पूर्णरूप से स्वतन्त्र था। कम्पनी की सरकारी रिपोर्टों में दर्ज है कि दीवान सावनमल के सुयोग्य शासन में मुलतान की भौतिक और आर्थिक स्थिति में बहुत बड़ी उन्नति हुई। उसने कई नहरें खुदवाईं, बहुत से बञ्जर इलाक़े को ज़रख़ेज़ बना दिया, कृषि, व्यापार और कारीगरी को ख़ूब उन्नति दी, यहाँ तक की आस पास के इलाक़ों से अनेक लोग आ आकर मुलतान प्रान्त में बसने लगे; और उस प्रान्त का वैभव दिनों दिन बढ़ता चला गया।

दीवान मूलराज

सावनमल की मृत्यु के बाद उसका बेटा मूलराज मुलतान का शासक हुआ। देशद्रोही लालसिंह उस समय बालक दलीपसिंह की ओर से लाहौर दरबार

का कर्ता धर्ता था। उसने मूलराज से बाप की गद्दी पर बैठने के लिए १८ लाख की रक़म बतौर नज़राने के माँगी। दीवान मूलराज ने एक नियत समय के अन्दर यह रक़म पूरी कर देने का वादा किया। किन्तु इसके बाद ही अंगरेज़ों के प्रताप से लाहौर दरबार के अन्दर नित्य नए उपद्रव खड़े होने लगे। कुछ दिनों तक यह भी पता न चलता था कि राज की वास्तविक वाग किसके हाथों में है, अंगरेज़ों के या सिखों के। मूलराज ने ऐसी स्थिति में १८ लाख रुपए नज़राने के भेजना उचित न समझा। पहले सिख युद्ध और लाहौर की पहली सन्धि के बाद लालसिंह ने अपने भाई भगवानसिंह के अधीन एक सेना मूलराज को ज़ेर करने और उससे यह रक़म वसूल करने के लिए मुलतान भेजी। मालूम होता है कि अंगरेज़ और लालसिंह दोनों मूलराज को हटा कर उसकी जगह भगवानसिंह को मुलतान की दीवानी देना चाहते थे किन्तु भगवानसिंह की सेना को मूलराज के मुक़ाबले में हार खाकर लौट आना पड़ा। फिर भी मुलतान प्रान्त का एक इलाक़ा जुन्नक (?), जिसकी आय आठ लाख रुपए सालाना थी, दीवान मूलराज से छीन कर भगवानसिंह को दे दिया गया।

कुछ दिनों बाद दीवान मूलराज को हिसाब साफ़ करने के लिए लाहौर बुलाया गया। मूलराज को सन्देह हुआ, फिर भी वह लाहौर आया। सब बातें तय हो गईं। मूलराज अपने पद पर बहाल रक्खा गया और मुलतान लौट गया।

इसके बाद भैरोंवाल की सन्धि हुई। इस सन्धि को चन्द महीने

भी न बीतने पाए थे कि अंगरेज़ों ने फिर दीवान मूलराज को हटा कर उसकी जगह अपना एक आज्ञाकारी अनुचर नियुक्त करने की आवश्यकता अनुभव की। दीवान मूलराज को अब इस उद्देश से दिक़ किया जाने लगा ताकि वह तङ्ग आकर अपने पद से इस्तीफ़ा दे दे। मुलतान प्रान्त की आमदनी इस समय ३६¾ लाख रुपए सालाना थी, जिसमें लाहौर दरबार का ख़िराज़ १७½ लाख था। इसे बढ़ा कर अब १९¾ लाख कर दिया गया और यह तय कर दिया गया कि दो साल बाद १९¾ लाख से बढ़ा कर इस ख़िराज़ को २५ लाख कर दिया जाय, और उसके तीन साल बाद ३० लाख।* इतना ही नहीं, मुलतान प्रान्त के शासन में दीवान मूलराज की सहायता के लिए ज़बरदस्ती दो अंगरेज़ कमिश्नर, नौ अंगरेज़ कलेक्टर और सात अंगरेज़ जज नियुक्त करके मुलतान भेजने की तजवीज़ की गई। दीवान मूलराज का शासन प्रबन्ध इतना सुन्दर था; उसकी प्रजा इतनी सुखी, सन्तुष्ट और समृद्ध थी कि उस समय के अंगरेज़ लेखकों तक ने इन सब बातों को स्वीकार किया है। मूलराज का वीरोचित आत्म सम्मान और उसकी प्रजापालकता दोनों में से किसी ने भी उसे इजाज़त न दी कि वह अपने यहाँ के शासन में इस अनुचित हस्तक्षेप को गवारा करे। विवश होकर नवम्बर सन् १८४७ में वह लाहौर पहुँचा। वहाँ पर उसने अंगरेज़ रेज़िडेण्ट से प्रार्थना की कि दीवानी के पद

मूलराज के शासन में अंगरेज़ों का हस्तक्षेप

---

* *Notes on the Revenues and Resources of the Punjab*, by Elliots, p 41

से मेरा इस्तीफ़ा स्वीकार किया जाय। जॉन लॉरेन्स इस समय लाहौर का रेज़िडेण्ट था। किन्तु अंगरेज़ अभी तक मुलतान का शासन मूलराज के हाथों से लेने के लिए तैयार न हो पाए थे। दीवान मूलराज को समझा बुझा कर फिर मुलतान वापस कर दिया गया।

मूलराज की बर्ख़ास्तगी

इसके बाद सर फ्रेडरिक करी रेज़िडेण्ट नियुक्त होकर लाहौर पहुँचा। उसने मूलराज को और अधिक दिक़ करना शुरू कर दिया। वास्तव में मुलतान प्रान्त का धन वैभव उस समय अत्यन्त बढ़ा हुआ था। पञ्जाब के समस्त प्रान्तों में अंगरेज़ों के सब से अधिक उसी पर दाँत थे। रेज़िडेण्ट करी अब जिस तरह हो सके, दीवान मूलराज से झगड़ा मोल लेने के लिए कृतनिश्चय था। ये सब बातें करी और अन्य अंगरेज़ों के उस समय के पत्र व्यवहार से स्पष्ट हैं। करी ने लाहौर दरबार से दीवान मूलराज पर इस्तीफ़ा देने के लिए फिर से ज़ोर दिया। इस बार उसका इस्तीफ़ा मंजूर कर लिया गया। काहनसिंह मान नामक एक मनुष्य तीस हज़ार रुपए सालाना तनख़ाह पर मूलराज की जगह मुलतान का शासक नियुक्त किया गया। यह भी तय कर दिया गया कि दो अंगरेज़ अफ़सर एक एगन्यू और दूसरा एण्डरसन, काहनसिंह के साथ मुलतान जायँ और इन दोनों की सलाह से काहनसिंह शासन का समस्त कार्य करे।

काहनसिंह, एगन्यू और एण्डरसन कुछ सेना सहित १८ अप्रैल

सन् १८४८ को मुलतान पहुँचे। १६ अप्रैल को दीवान मूलराज ने शासन का भार बाज़ाब्ता काहनसिंह के सुपुर्द कर दिया। एगन्यू ने फ़ौरन् नगर के सब दरवाज़ों के ऊपर अंगरेज़ी गारद नियुक्त कर दी। उसी दिन नगर के क़रीब समस्त मुलतानी सिपाहियों को बरख़ास्त करके उनकी जगह गोरे नियुक्त कर दिए गए। मुलतान निवासी समझ गए कि शासन की बाग काहनसिंह के हाथों में नहीं, बल्कि वास्तव में विदेशियों के हाथों में चली गई। इन विदेशियों के विरुद्ध असन्तोष समस्त पञ्जाब में बढ़ता जा रहा था। १६ अप्रैल ही को जब कि एगन्यू अपने घोड़े पर चढ़ रहा था, दो मुलतानी सवारों ने जिन्हें उसी दिन बरख़ास्त किया गया था, तेज़ी से आकर एगन्यू पर वार किया। एगन्यू बुरी तरह घायल होगया। किन्तु काहनसिंह ने फ़ौरन् बीच में पड़ कर एगन्यू को मरने से बचा लिया।

क्रीतदास काहनसिंह

एगन्यू और एण्डरसन के रहने के लिए नगर के बाहर एक ईदगाह तजवीज़ की गई। मूलराज नगर छोड़ कर चला गया। किन्तु अनेक मुलतानी सिपाहियों ने, जो १६ तारीख़ को बरख़ास्त किए गए थे, २० अप्रैल को सुबह ईदगाह को आकर घेर लिया। गोरी सेना के अतिरिक्त काहनसिंह के साथ एक हिन्दोस्तानी सेना भी थी। इस सेना के सब सिपाही अब मुलतानियों की ओर जा मिले; किन्तु उनके सरदार अधिकतर काहनसिंह और उसके विदेशी साथियों की

मुलतान का संग्राम

ओर रहे। एगन्यू और एण्डरसन दोनों उस दिन के संग्राम में मार डाले गए। काहनसिंह ज़ख्मी होकर क़ैद कर लिया गया। निस्सन्देह इस दुर्घटना का मुख्य कारण था मुलतानियों की स्वाधीनता पर हमला और उनमें से सहस्रों निरपराधों की जीविका का छीन लिया जाना।

महारानी झिन्दाँ कौंर के साथ अन्याय

पञ्जाब को हड़प जाने के लिए अभी और अधिक सङ्गीन बहानों की ज़रूरत थी। लाहौर में बैठे बैठे रेज़िडेण्ट करी ने महाराज दलीपसिंह की माता, महारानी झिन्दाँ कौंर पर यह विचित्र इलज़ाम लगाया कि मुलतान के विद्रोह में झिन्दाँ कौंर का हाथ था। रेज़िडेण्ट करी ने स्वयं अपने पत्रों में स्वीकार किया है कि महारानी के विरुद्ध उसके पास कोई सुबूत न था। न कोई तहक़ीक़ात की गई और न यह मामला लाहौर दरबार या कौन्सिल के सामने तक पेश किया गया। केवल अंगरेज़ रेज़िडेण्ट के हुकुम से १५ मई सन् १८४८ को महाराजा रणजीतसिंह की विधवा महारानी और महाराजा दलीपसिंह की माता, झिन्दाँ कौंर को शेख़ुपुरे के महल से क़ैद करके तुरन्त बनारस भेज दिया गया। हुकुम दे दिया गया कि महारानी झिन्दाँ कौंर बिना अपने अंगरेज़ पहरेदार की इजाज़त के न किसी से पत्र व्यवहार करे और न किसी से किसी तरह का सम्बन्ध रक्खे!

समस्त पञ्जाब और विशेष कर समस्त सिख जाति महारानी झिन्दाँ कौंर को अपनी माता के समान समझती थी। विधवा

महारानी के साथ इस प्रकार के व्यवहार को देखते ही समस्त सिख जाति में एक आग सी लग गई।

महारानी की गिरफ़्तारी

१५ मई को महारानी को क़ैद किया गया। २५ मई को रेज़िडेण्ट करी ने गवरनर जनरल को लिखा कि ख़ालसा सेना महारानी की गिरफ़्तारी की ख़बर सुनते ही भड़क उठी, सिख सिपाही चिल्लाने लगे कि 'महारानी झिन्दाँ कौंर हमसे जुदा कर दी गई, बालक दलीपसिंह अंगरेज़ों के हाथों में है, अब हम किसके लिए लड़ें और किसके झण्डे के नीचे जमा हों!' समस्त सिख जाति अब दीवान मूलराज और उसके विद्रोही सिपाहियों के साथ सहानुभूति अनुभव करने लगी।

सिखों में असन्तोष

लाहौर के सिख सरदार भी इस अत्याचार को देख कर क्रोध और दुख से भर गए। लाहौर कौन्सिल के प्रमुख सदस्य राजा शेरसिंह ने समस्त पञ्जाब में एक एलान प्रकाशित किया, जिसके शुरू में लिखा था—

"पञ्जाब के तमाम बाशिन्दों को, तमाम सिखों को, और वास्तव में तमाम दुनियां को अच्छी तरह मालूम है कि फ़िरङ्गियों ने स्वर्गवासी महान् महाराजा रणजीतसिंह की विधवा महारानी के साथ कितने ज़ुल्म, ज़्यादती और बेजा ज़बरदस्ती का व्यवहार किया है।

"लोगों की माता महारानी को क़ैद करके और हिन्दोस्तान भेज कर फ़िरङ्गियों ने सन्धि को तोड़ डाला है, इत्यादि।"

यहाँ तक कि अफ़ग़ानिस्तान के अमीर दोस्तमोहम्मद ख़ाँ की सहानुभूति भी इस समय पञ्जावियों के साथ थी। दोस्तमोहम्मद ख़ाँ ने कप्तान एवट के नाम एक पत्र में लिखा—

अमीर दोस्तमोहम्मद की सहानुभूति

"इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि सिखों में असन्तोष दिन प्रति दिन बढ़ता जा रहा है। कुछ को नौकरी से बरख़ास्त कर दिया गया है, कुछ को जलावतन करके हिन्दोस्तान भेज दिया गया है, ख़ास कर महाराजा दलीपसिंह की माँ को क़ैद कर लिया गया है और उनके साथ बेजा सलूक किया गया है। तमाम मज़हबों के लोग इस तरह के सलूक को बेजा समझते हैं, और छोटे और बड़े दोनों इसकी निस्बत मर जाने को बेहतर समझते हैं, इत्यादि।"

निस्सन्देह महारानी झिन्दाँ कौर के साथ अंगरेज़ों का अत्याचार दूसरे सिख युद्ध के कारणों में से एक मुख्य कारण था।

सिख युद्ध का मुख्य कारण

समस्त सिख साम्राज्य के अन्दर इस समय दो सरदार सब से अधिक दबङ्ग और स्वतन्त्रताप्रिय मालूम होते थे। एक मुलतान का दीवान मूलराज और दूसरा हज़ारा प्रान्त का शासक सरदार चतरसिंह अटारीवाला। जिस तरह इस समय दीवान मूलराज को दिक़ किया जा रहा था, उसी तरह बूढ़े सरदार चतरसिंह अटारी वाले को भी दिक़ किया जा रहा था।

हज़ारा का प्रान्त पहले काश्मीर में शामिल था और राजा

गुलाबसिंह को दिया जा चुका था। बाद में कुछ और इलाके के बदले यह प्रान्त राजा गुलाबसिंह से लेकर महाराजा दलीपसिंह के अधीन कर दिया गया। लाहौर कौन्सिल के प्रसिद्ध सदस्य राजा शेरसिंह का पिता सरदार चतरसिंह अटारी वाला इस प्रान्त का नाज़िम नियुक्त किया गया। सरदार चतरसिंह उस समय पञ्जाब का बहुत सम्माननीय व्यक्ति था।

चतरसिंह अटारी वाला

सरदार चतरसिंह की बेटी की सगाई महाराजा दलीपसिंह के साथ हो चुकी थी। जुलाई सन् १८४८ में विवाह की बातचीत होने लगी। रेजिडेण्ट करी ने बिना किसी कारण के चतरसिंह को लिख दिया कि—"बिना रेज़िडेण्ट की रज़ामन्दी व मंज़ूरी के" विवाह नहीं किया जा सकता! रेज़िडेण्ट की ओर से कप्तान ऐबट उस समय सरदार चतरसिंह को सलाह देने के लिए हज़ारा में रहता था। कप्तान ऐबट ने सरदार चतरसिंह के साथ इतना बुरा व्यवहार करना शुरू कर दिया कि जिसे कोई भी सम्माननीय मनुष्य सहन नहीं कर सकता। स्वयं रेजिडेण्ट करी ने अपने पत्रों में कप्तान ऐबट के अनुचित व्यवहार और सरदार चतरसिंह के निर्दोष होने को स्वीकार किया है।

दलीपसिंह के विवाह में हस्तक्षेप

कप्तान ऐबट की शरारतें और साज़िशें हद को पहुँच गईं। हज़ारा प्रान्त में अधिकतर आबादी मुसलमानों की थी। ये सब लोग वीर और सशस्त्र थे। कप्तान ऐबट ने उनमें ख़ूब धन ख़र्च

करना शुरू किया, और उन्हें यह समझाया कि सिख क़ौम सदा से मुसलमानों की शत्रु है। कप्तान ऐबट ने इन भोले, किन्तु युद्ध प्रेमी मुसलमानों को सिखों के विरुद्ध भड़का कर उनसे यह वादा किया कि यदि तुम सिख राज को मिटाने में अंगरेज़ों की मदद दोगे तो सिखों से बदला निकालने का तुम्हें काफ़ी मौक़ा दिया जायगा! सरदार चतरसिंह हरीपुर में रहता था। ६ अगस्त सन् १८१८ को कप्तान ऐबट के उकसाने पर आस पास के मुसलमानों ने आकर हरीपुर को घेर लिया। नगर की रक्षा के लिए कुछ सेना चतर-सिंह के अधीन हरीपुर में रहती थी। करनल कैनोरा नामक एक अंगरेज़ इस सेना का अफ़सर था। सरदार चतरसिंह ने करनल कैनोरा को नगर की रक्षा का हुकुम दिया। करनल कैनोरा ने चतर सिंह का हुकुम मानने से इनकार कर दिया। इतना ही नहीं, बल्कि करनल कैनोरा ने अपनी तोपें भर कर, स्वयं उनके बीच में खड़े होकर, यह साफ़ कह दिया कि यदि चतरसिंह का कोई आदमी निकट आएगा तो मैं उस पर वार करूँगा। सरदार चतरसिंह ने अपने कुल पैदल सिपाही करनल कैनोरा से तोपें छीनने के लिए भेजे। कैनोरा ने अपने एक हवलदार को इन सिपाहियों पर गोली चलाने का हुकुम दिया। पञ्जाबी हवलदार ने इनकार कर दिया। इस पर बाग़ी करनल ने हवलदार को क़त्ल कर डाला। इतने ही में दो पैदल सिपाहियों ने अपनी बन्दूक़ों से नमकहराम करनल कैनोरा का ख़ात्मा कर दिया।

ऐबट की साम्प्रदायिक शरारतें

कप्तान ऐवट को और अधिक बहाना मिल गया। उसने चतरसिंह के विरुद्ध मुसलमानों की एक सेना जमा करनी शुरू कर दी। रेज़िडेण्ट करी ने कप्तान ऐवट के नाम अपने एक निजी पत्र में करनल कैनोरा की हत्या के सम्बन्ध में सरदार चतरसिंह को निरपराध और कैनोरा को साफ़ अपराधी स्वीकार किया है। फिर भी करी और ऐवट दोनों भीतर ही भीतर सरदार चतरसिंह और सिख राज दोनों के नाश का संकल्प कर चुके थे।

सरहद के मुसलमानों को सिखों के विरुद्ध भड़काना

कप्तान ऐवट ने हज़ारा प्रान्त के सब मुसलमान सरदारों को जमा किया; उन्हें पुराने मज़हबी झगड़ों की याद दिलाई और सिख राज के नष्ट करने में उनसे स्पष्ट मदद चाही। प्रान्त भर में उसने इस विषय के खुले परवाने जारी कर दिए। कप्तान ऐवट इससे पूर्व दीवान ज्वालासहाय और सरदार झण्डासिंह आदि पञ्जाब के कई अन्य प्रान्तीय शासकों का इसी प्रकार सत्यानाश कर चुका था।

सरदार चतरसिंह ने वार वार लाहौर दरबार और रेज़िडेण्ट करी से कप्तान ऐवट की इन हरकतों की, शिकायत की। किन्तु कोई सुनवाई न हुई। लाचार होकर बूढ़े सरदार चतरसिंह को अपने देश, धर्म और ख़ालसा राज की रक्षा के लिए तैयार हो जाना पड़ा।

रेज़िडेण्ट करी की वास्तविक इच्छा

अब हम फिर मुलतान की ओर आते हैं। रेज़िडेण्ट करी ने लाहौर दरबार पर ज़ोर दिया कि दरबार की सेना भेज कर दीवान मूलराज को दण्ड

दिया जाय। किन्तु भैरोंवाल की सन्धि के अनुसार दरबार की अधिकांश सेना बरख़ास्त की जा चुकी थी। उसकी जगह लाहौर, जालन्धर और फ़ीरोज़पुर में कम्पनी की सेनाएँ रहती थीं। इन अंगरेज़ी सेनाओं का ख़र्च लाहौर दरबार से लिया जाता था, और सन्धि में यह तय हो चुका था कि देश के अन्दर के विद्रोहों को दमन करने और शान्ति कायम रखने में ये सेनाएँ सदा दरबार को मदद देंगी। इस सहायता के बदले में ही लाहौर दरबार ने इन सेनाओं का ख़र्च देना स्वीकार किया था। इस अवसर पर लाहौर दरबार ने रेज़िडेण्ट से प्रार्थना की कि कम्पनी की इन सेनाओं में से जितनी आवश्यक हों, मुलतान के विद्रोह को दमन करने के लिए भेज दी जायँ। रेज़िडेण्ट ने, भैरोंवाल की सन्धि का साफ़ उल्लङ्घन कर कम्पनी की उन फ़ौज़ों में से जो वास्तव में लाहौर दरबार ही की फ़ौजें थीं, एक भी सिपाही मुलतान भेजने से इनकार कर दिया। साथ ही उसने दरबार को यह धमकी दी कि यदि दरबार की निजी सेना मुलतान के विद्रोह को दमन न कर सकी तो पञ्जाब का राज ज़ब्त कर लिया जायगा। वास्तव में रेज़िडेण्ट करी को मुलतान के विद्रोह से बढ़ कर बहाना डलहौज़ी को वास्तविक इष्टसिद्धि का न मिल सकता था। लाहौर, जालन्धर और फ़ीरोज़पुर की फ़ौज वास्तव में लाहौर दरबार की सहायता के लिए न थीं, वरन् उसके सर्वनाश के लिए रक्खी गई थीं।

रेज़िडेण्ट करी की ज़िद्द पर लाहौर दबार ने सरदार चतरसिंह के पुत्र राजा शेरसिंह को दरबार की सेना सहित मूलराज को
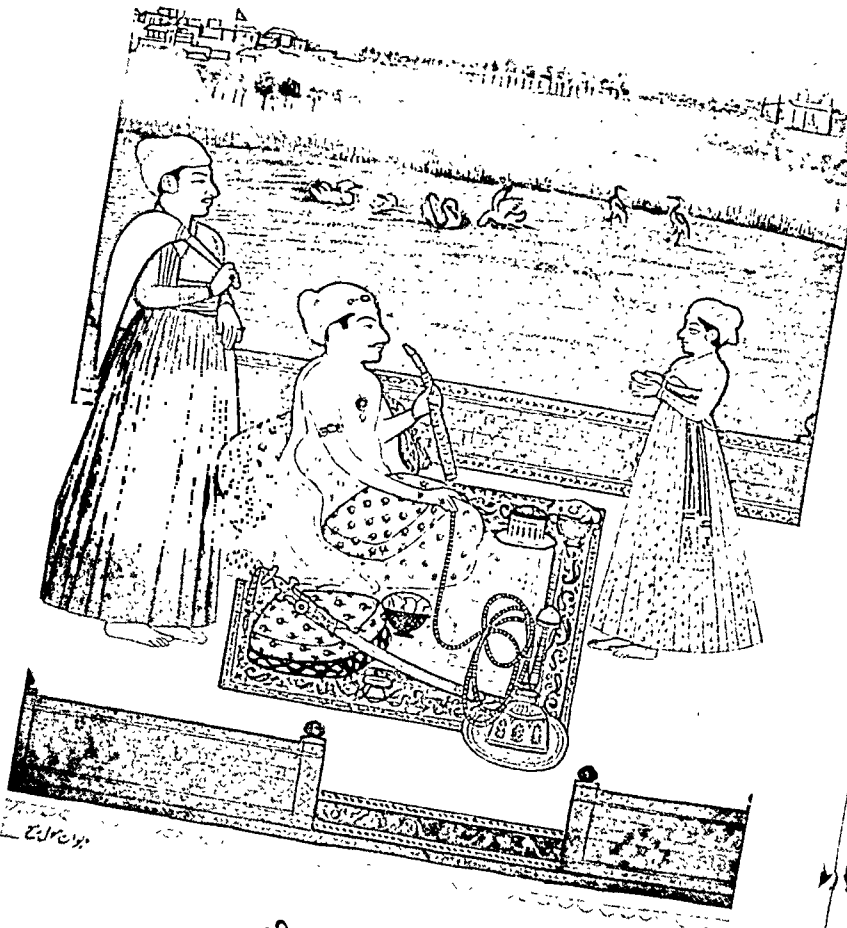
दीवान मूलराज
[By courtesy of the Trustees, Victoria Memorial, Calcutta.]

दमन करने के लिए भेजा। रेज़िडेण्ट की आज्ञा से मेजर एडवर्ड्स शेरसिंह के साथ हो लिया। मेजर एडवर्ड्स ने सरहद के अनेक मुसलमानों को हिन्दुओं और सिखों के ख़िलाफ़ भड़काकर उनकी एक नई सेना तैयार की। नवाब बहावलपुर की सेना भी इस समय एडवर्ड्स के साथ आ मिली। मार्ग में मेजर एडवर्ड्स ने सरदार फ़तहख़ाँ तवाना को एक पत्र लिखा कि आप अपने आदमियों को जमा करके डेरागाज़ीख़ाँ और बन्नू के सिखों को लूट लीजिए और उन्हें मार डालिए। फ़तहख़ाँ और मूलराज का पहले से कुछ झगड़ा चला आता था। उसने एडवर्ड्स की बात मान ली। एडवर्ड्स ने फ़तहख़ाँ को डेरागाज़ीख़ाँ और बन्नू का शासक नियुक्त कर दिया। किन्तु ज्योंही फ़तहख़ाँ ने सिखों को लूटने के लिए आदमी जमा किए, सिखों ने उसे मार डाला।

लाहौर दरबार की मजबूरी

दीवान मूलराज की सेना के साथ एडवर्ड्स और शेरसिंह की सेनाओं के कई संग्राम हुए, जिनके विस्तार में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। किनेरी (?) और सद्दूसाम (?) की लड़ाइयों में मालूम होता है एडवर्ड्स की जीत रही। इसके पश्चात् मुलतान के मोहासरे का समय आया। एडवर्ड्स ने इस मोहासरे के लिए रेज़िडेण्ट करी से सहायता चाही। करी ने सहायता भेजने से इनकार कर दिया। इस बीच बहावलपुर और पञ्जाब से हज़ारों हिन्दू, मुसलमान और सिख आकर मूलराज के झण्डे के नीचे जमा होने लगे। अन्त

मूलराज के साथ संग्राम

में एक दिन मूलराज ने क़िले से निकल कर एडवर्ड्स और उसके साथियों को बुरी तरह शिकस्त दी। एडवर्ड्स को अपनी जान बचा कर मुलतान से भाग आना पड़ा। लिखा है कि यदि एडवर्ड्स के सिख साथी समय पर उसकी सहायता न करते तो एडवर्ड्स के लिए जान बचा कर आ सकना असम्भव था।

एडवर्ड्स की जालसाज़ी

राजा शेरसिंह को भी मूलराज के विरुद्ध सफलता प्राप्त न हो सकी। शेरसिंह की सिख सेना मूलराज से जा मिली। मालूम होता है कि शेरसिंह भी मूलराज की ओर जा मिलता, किन्तु एडवर्ड्स ने बड़ी चाल से शेरसिंह की ओर से मूलराज के चित्त में अविश्वास बनाए रक्खा। एक मुसलमान लेखक सर चार्ल्स नेपियर के नाम अपने ६ अक्तूबर सन् १८४८ के पत्र में लिखता है—

"एडवर्ड्स बड़ी मेहनत से जनरल शेरसिंह की ओर से इस तरह के जाली ख़त लिखता रहा है कि जो मूलराज के हाथों में पड़ जायँ और जिनसे उसके चित्त में शेरसिंह की ओर से सन्देह उत्पन्न हो जाय। इस काम में एडवर्ड्स को थोड़ी बहुत सफलता भी प्राप्त हुई है, और मूलराज एडवर्ड्स पर हमला करने से रुक रहा है।"*

राजा शेरसिंह के लाहौर से चलते समय तक सरदार चतर-

* "Edwardes has been busy, writing false letters from General Sher Singh, to fall into the hands of Mool Raj to create suspicion, in which he partially succeeded and prevented Mool Raj attacking him."—*Life of Sir Charles Napier*, vol. iv, p. 129.

सिंह और कप्तान ऐबट के बीच झगड़ा अधिक न बढ़ा था। कप्तान ऐबट और उसके साथियों ने इसके बाद हज़ारा निवासियों से यह वादा किया कि यदि तुम चतरसिंह को बाहर निकालने में अंगरेज़ों को मदद दोगे तो तुम्हारा तीन साल का लगान माफ़ कर दिया जायगा। मामला इस हद को पहुँचा कि शेरसिंह को मुलतान छोड़ कर अपने पिता की मदद के लिए उत्तर को ओर चला जाना पड़ा। मुलतान का क़िला एक काफ़ी मज़बूत क़िला था। उसे विजय करना इतना आसान न था। अगस्त सन् १८४८ में सर चार्ल्स नेपियर ने अपने भाई के नाम एक पत्र में लिखा—

मुलतान का मोहासरा

"यदि एडवर्ड्स ने मूलराज को हरा दिया तो उसे कोई ख़तरा नहीं; किन्तु यदि मूलराज जीत गया तो एडवर्ड्स की हालत ख़तरनाक हो जायगी; × × × यदि मूलराज के आदमी ईमानदार रहे तो एडवर्ड्स मुलतान नहीं ले सकता; यदि वे बेईमान साबित हुए तो मुलतान का नगर स्वयं ही अपने दरवाज़े खोल देगा।"*

सितम्बर सन् १८४८ में मुलतान का मोहासरा हटा लिया गया।

मुलतान के मोहासरे की असफलता के कारण सिखों की

* "If he (Lt, H. B. Edwardes) beats Mool Raj, he will be safe; but if Mool Raj gets an advantage Edwardes' position will be dangerous, . . . If Mool Raj's men are true, Edwardes can not take Multan; if they are false the town will open its gates."—Ibid, vol. iv, p. 105

हिम्मत बढ़ गई। अंगरेज़ों के विरुद्ध असन्तोष समस्त पञ्जाब में फैला हुआ था। सब लोग ख़ालसा राज की रक्षा के लिए चतरसिंह और शेरसिंह के झण्डे के नीचे आ आ कर जमा होने लगे। यही दूसरे सिख युद्ध का प्रारम्भ था।

दूसरे सिख युद्ध का प्रारम्भ

पहले सिख युद्ध में लालसिंह; तेजसिंह और गुलाबसिंह जैसे देशद्रोहियों की मदद से अंगरेज़ों को सफलता प्राप्त हुई थी। इस बार सिख सरदारों तक को अंगरेज़ों की दुरङ्गी चालों का इतना काफ़ी परिचय मिल चुका था कि सिखों में अब इस प्रकार के देशद्रोही मिल सकना कठिन था। जिस मुसलमान लेखक का हम ऊपर ज़िक्र कर चुके हैं वह सर चार्ल्स नेपियर के नाम अपने पत्र में लिखता है—

"सन् १८४६ की अपेक्षा इस समय पञ्जाब को क़ाबू में करना कई गुना ज़्यादा कठिन है × × × उस समय × × × सिख सरदारों ने हमारे वादों पर विश्वास कर लिया था, बल्कि हमसे रिशवतें तक ले ली थीं, किन्तु अब वे रिशवतें स्वीकार न करेंगे। जिस तरह का उनके साथ व्यवहार किया गया है उससे उनके चित्तों में ज़बरदस्त घृणा उत्पन्न हो गई है। यदि कोई असाधारण बात, कि जिसकी इस समय मुझे आशा नहीं है, सिखों को रोकने वाली न हुई, तो एक एक सिख हमारे विरुद्ध निकल पड़ेगा।"*

---

* "It is now many more times more difficult to subdue Punjab than 1846 . . . then . . . the Sirdars accepted promises, nay took bribes, too, but now they will not take bribes, and animated with great hatred for the way they were treated, . . . the Sikhs will turn out to a man, unless

इस कमी को पूरा करने के लिए अंगरेज़ों ने इस बार पञ्जाब और सरहद के मुसलमानों को सिखों के विरुद्ध भड़काया। सिखों और मुसलमानों के पुराने आपसी झगड़ों के अनेक झूठे और सच्चे क़िस्से उनके सामने रक्खे गए। फ़क़ीर अज़ीज़ुद्दीन महाराजा रणजीतसिंह का एक अत्यन्त विश्वस्त मन्त्री था। अज़ीज़ुद्दीन का भाई नूरुद्दीन इस समय लाहौर की रीजेन्सी कौन्सिल का एक सदस्य था। यह नूरुद्दीन अंगरेज़ों की बातों में आकर उनसे मिल गया। नूरुद्दीन का लड़का शम्सुद्दीन गोविन्दगढ़ के क़िले का थानेदार था। उसने सिख राज के साथ विश्वासघात करके दूसरे सिख युद्ध में गोविन्दगढ़ का क़िला अंगरेज़ों के हवाले कर दिया, और वह भी ऐसे सङ्कट के समय जब कि कहा जाता है कि यदि शमशुद्दीन अंगरेज़ों से न मिल जाता तो सम्भव है, अंगरेज़ों के लिए परिणाम अत्यन्त नाशकर होता।* कहा जाता है कि अधिकतर ऐसे लोगों ही की सहायता से अंगरेज़ों ने दूसरे सिख युद्ध में सिखों पर विजय प्राप्त की।

मुसलमानों को भड़काना

इस युद्ध के अनेक संग्रामों को विस्तार से वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है। अक्तूबर सन् १८४८ में, जब कि मूलराज छै महीने तक सफलता के साथ अंगरेज़ों का मुक़ाबला कर चुका था,

शेरसिंह की वीरता

something extraordinary may happen to present, which I can not vouch for at present."—Ibid, vol. iv, p. 125.

* *The Punjab Chiefs*, (New Edition) 1890, vol. i, p. 1100.

पञ्जाब के सिख सरदारों ने चतरसिंह के झण्डे के नीचे जमा होकर अपने देश को विदेशियों के पञ्जे से छुड़ाने का प्रयत्न प्रारम्भ किया। अंगरेज़ पहले ही अपनी फ़ौजें चारों ओर जमा कर चुके थे। मुलतान का फिर से मोहासरा शुरू किया गया। उसी पुरानी कूटनीति से काम लिया गया। सबसे मशहूर लड़ाइयाँ रामनगर, चिलियानवाला और गुजरात की लड़ाइयाँ थीं। राजा शेरसिंह ने अपनी वीरता और युद्ध कौशल से अंगरेज़ कमाण्डर-इन-चीफ़ लॉर्ड गफ़ के छक्के छुड़ा दिए।

चिलियानवाला का संग्राम

जनवरी सन् १८४९ में चिलियानवाला के मैदान में सिख सेना की संख्या अंगरेज़ी सेना से कम थी; फिर भी अंगरेज़ों को बड़ी ज़िल्लत के साथ ज़बरदस्त हार खानी पड़ी। अंगरेज़ों के २३,००० से ऊपर आदमी चिलियानवाला के मैदान में घायल हुए और मारे गए। २६ अंगरेज़ अफ़सर मारे गए और ६६ घायल हुए। कम्पनी की कई पैदल रेज़िमेण्टें बेकार हो गईं। उनके झण्डे तक उनके हाथों से छीन लिए गए। किन्तु चिलियानवाला की विजय हिन्दोस्तान की भूमि पर सिख जाति की अन्तिम विजय थी। अनेक अंगरेज़ इतिहास लेखकों ने इस युद्ध के समय की सिखों की वीरता और उनके युद्ध कौशल की खुले शब्दों में प्रशंसा की है और इन दोनों गुणों में उन्हें अंगरेज़ी सेना से कहीं बढ़ा हुआ स्वीकार किया है। चिलियानवाला के बाद ही न जाने क्यों और कैसे शेरसिंह और अन्य सिख सरदारों में बहुत बड़ा मतभेद उत्पन्न होगया। शेरसिंह

यदि चाहता तो उस समय गफ़ और उसकी सेना के अस्तित्व को ख़ाक में मिला सकता था। किन्तु ऐसा करने के बजाय वह लाहौर की ओर बढ़ा।

गुजरात का संग्राम

मार्ग में गुजरात नामक स्थान पर दोनों ओर की सेनाओं में फिर एक घमासान युद्ध हुआ। इस बीच अंगरेज़ों को अपनी कूटनीति के लिए काफ़ी मौक़ा मिल चुका था। गुजरात के मैदान ही में पञ्जाब की स्वाधीनता और सिखों की राजसत्ता दोनों का ख़ात्मा हो गया। उधर मुलतान में भी ९ महीने तक वीरता के साथ मुक़ाबला करने के बाद दीवान मूलराज को अपने तईं अंगरेज़ों के हवाले कर देना पड़ा। कहते हैं कि किसी ने दग़ा से मूलराज के मेगज़ीन में आग लगा दी थी।

पञ्जाब की स्वाधीनता का अन्त

२९ मार्च सन् १८४९ को गवरनर जनरल लॉर्ड डलहौज़ी ने एक एलान प्रकाशित किया, जिसमें सिखों की हुकूमत का आइन्दा के लिए ख़ात्मा कर दिया गया। पञ्जाब पर अंगरेज़ों की हुकूमत क़ायम हो गई, और पञ्जाब ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य का एक प्रान्त बन गया।

राष्ट्रीयता का अभाव

यह एक बात ध्यान देने योग्य है कि जब कि पञ्जाब के अनेक मुसलमान अंगरेज़ों के बहकाए में आकर विदेशी आक्रामकों का साथ दे रहे थे, उसी समय अफ़ग़ानिस्तान का अमीर दोस्तमोहम्मद ख़ाँ सिखों और लाहौर दरबार के साथ पूर्ण सहानुभूति प्रकट कर रहा था।

इतना ही नहीं, बल्कि लॉर्ड डलहौज़ी का कथन है कि दोस्तमोहम्मद ख़ाँ और उसके पठान सिखों को मदद तक दे रहे थे। हमें यह भी याद रखना चाहिए कि ठीक उसी समय बहावलपुर और अन्य स्थानों के हज़ारों मुसलमान दीवान मूलराज के झण्डे के नीचे आ आकर जमा हो रहे थे। फिर भी यदि पहले सिख युद्ध में तेजसिंह और लालसिंह मौजूद थे तो दूसरे सिख युद्ध में शम्सुद्दीन और नूरुद्दीन मौजूद थे। हिन्दू या मुसलमान, इसमें सन्देह नहीं कि अन्य भारत वासियों के समान पञ्जावियों और विशेषकर उच्च और मध्यम श्रेणी के पञ्जावियों का चरित्र उस समय वेहद गिरा हुआ था; राष्ट्रीयता के भाव का उनमें अभाव था; यही कारण था कि शासन की योग्यता, अपूर्व वीरता, युद्ध कौशल और साहस के होते हुए भी वे अल्पसंख्यक, कायर, अकुशल, किन्तु चालाक विदेशियों के एक दो झोंकों के सामने निस्सत्व होकर गिर पड़े।

मेजर ईवन्स बेल के विचार

मेजर ईवन्स बेल का मत है कि पंजाब में जो कुछ उपद्रव खड़े हो गए थे उनके कारण उन्हें शान्त कर लेने के बाद भी पंजाब को कम्पनी के राज में मिला लेने का डलहौजी को कोई अधिकार न था। उसका कथन है :—

"सन् १८४६ के युद्ध के बाद ब्रिटिश भारत के साथ पञ्जाब के भावी सम्बन्ध को तय करने में लॉर्ड डलहौज़ी की काररवाई बिलकुल इस प्रकार थी—एक आदमी रुपए के बदले में एक कष्टकर और ख़तरनाक जायदाद प्रबन्ध की ज़िम्मेवारी किसी नाबालिग़ मालिक की ओर से अपने ऊपर ले

लेता है। उस आदमी को पहले से पूरी तरह बता दिया जाता है और आगाह कर दिया जाता है कि इस जायदाद के प्रबन्ध करने और नाबालिग़ की रक्षा करने में तुम्हे अमुक अमुक कष्टों और आपत्तियों का सामना करना पड़ेगा, फिर भी उन कष्टों और आपत्तियों के पैदा होते ही वह इस बात का एलान कर देता है कि आइन्दा के लिए अपने प्रयत्नों और अपने संरक्षण के बदले में नाबालिग़ की तमाम जायदाद और माल असबाब पर मैं अपना क़ब्ज़ा जमाता हूँ, और यह उस सूरत में जब कि संरक्षक का जो कुछ ख़र्च हो उसको पूरा करने के लिए और अपने फ़र्ज़ के अदा करने में जो कुछ उसे नुक़सान सहना पड़े उस सबके भरने के लिए उस संरक्षक के हाथों में काफ़ी ज़मानत पहले ही से दे दी गई हो।"*

इसी विद्वान लेखक ने बड़े विस्तार के साथ दिखलाया है कि लॉर्ड डलहौज़ी का २९ मार्च वाला एलान कल्पित और झूठी बातों से भरा हुआ था। लाहौर दरबार ने सन्धि का या अपने वादों का कभी भी उल्लङ्घन नहीं किया था और लॉर्ड डलहौज़ी का

* "Lord Dalhousie's procedure in settling the future relations of the Punjab with British India after the Campaign of 1849, just amounts to this — a guardian, having undertaken for a valuable consideration, a troublesome and dangerous trust, declares, on the first occurrence of those troubles and dangers, of which he had full knowledge and forewarning, that as a compensation for his exertions and a protection for the future, he shall appropriate his Ward's estate and personal property to his own purposes. And this, although the guardian holds ample security in his own hands for the repayment of any outlay, and the satisfaction of any damages he might have incurred, in executing the conditions of the trust."—*Retrospects and Prospects of Indian Policy*, by Major Evans Bell, p. 142.

नाबालिग़ महाराजा दलीपसिंह का राज छीन कर उसे अंगरेज़ी राज में मिला लेना एक ज़बरदस्त राजनैतिक अन्याय था।* किन्तु राज नीति में और विशेष कर पाश्चात्य राजनीति में इस तरह के न्याय और अन्याय के विचारों के लिए शायद कोई स्थान नहीं।

* Ibid, chapter vi.

बयालीसवाँ अध्याय

दूसरा बरमा युद्ध

लॉर्ड डलहौज़ी के शासन की एक और महत्वपूर्ण घटना बरमा देश के साथ कम्पनी का दूसरा युद्ध था। इस युद्ध के लिए वास्तव में इतना बहाना भी न था जितना दूसरे सिख युद्ध के लिए।

बहाने की कमी

जून सन् १८५१ में 'मॉनर्क' नामक एक अंगरेज़ी जहाज़ मोलमई से चलकर रङ्गून पहुँचा। जहाज़ के अंगरेज़ कप्तान का नाम शेपर्ड था। रङ्गून का बन्दरगाह बरमा के राज में था। रङ्गून पहुँचने के बाद दो मुक़दमें रङ्गून की बरमी अदालत में कप्तान शेपर्ड के विरुद्ध दायर किये गए। पहला मुक़दमा चट्टग्राम के रहने वाले हाजिम नामक एक मनुष्य ने दायर किया। हाजिम की शिकायत यह थी कि

कप्तान शेपर्ड का मुक़दमा

कप्तान शेपर्ड ने मोलमई और रङ्गून के बीच में मेरे एक भाई यूसुफ़ मल्लाह को समुद्र में फेंक दिया। दूसरा मुक़दमा यूसुफ़ के एक दूसरे भाई दीवानअली ने दायर किया। दीवानअली की शिकायत यह थी कि यूसुफ़ को जब समुद्र में फेंका गया उस समय उसके पास ५००) रु० नक़द मौजूद थे, और कप्तान शैपर्ड ने उसे समुद्र में फेंकने से पहले उससे यह रक़म छीन ली।

बरमी अदालत के सामने कप्तान शैपर्ड पर नर हत्या और लूट दोनों का मुक़दमा चलाया गया। जहाज़ के अन्य लोगों की गवाहियाँ ली गईं। अन्त में शैपर्ड दोनों जुर्मों का दोषी साबित हुआ। अदालत ने नर हत्या के अपराध में उस पर ४६ पाउण्ड जुरमाना किया और इसके अतिरिक्त दीवानअली को शैपर्ड से ५५ पाउण्ड हरजाना दिलवाया। इस प्रकार कप्तान शैपर्ड को अपने समस्त अपराध के बदले में कुल १०१ पाउण्ड अर्थात् क़रीब एक हज़ार रुपए देकर छुटकारा मिल गया।

अगस्त सन् १८५१ में इसी तरह की एक दूसरी घटना हुई।

कप्तान लुई का मुक़दमा

'चैम्पियन' नामक एक दूसरा अंगरेज़ी जहाज़ मॉरीशस से रङ्गून पहुँचा। इस जहाज के कप्तान लुई के विरुद्ध दो बङ्गाली कुलियों ने नरहत्या और और कई सङ्गीन जुर्मों की शिकायत की। कप्तान लुई दोषी पाया गया और उस पर ७० पाउण्ड जुरमाना करके छोड़ दिया गया।

इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि रङ्गून की बरमी अदालत

को इन दोनों गोरे अपराधियों का मुक़दमा सुनने और उन्हें दण्ड देने का पूरा अधिकार था। इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि जो दण्ड इन्हें दिये गए वे अपराध के मुक़ाबले में बहुत ही हलके थे। फिर भी कप्तान शेपर्ड और कप्तान लुई दोनों ने भारत पहुँच कर कम्पनी सरकार से शिकायत की। बरमा एक स्वाधीन देश था। भारत की कम्पनी सरकार को बरमी अदालत के फ़ैसले के विरुद्ध अपील सुनने का कोई अधिकार न था, किन्तु लॉर्ड डलहौज़ी बरमा के साथ छेड़ छाड़ का बहाना ढूँढ़ रहा था। उसने फ़ौरन् फ़ैसला कर दिया कि इन दोनों अंगरेज़ों को मिला कर ६१० पाउण्ड बतौर हरजाने के बरमा सरकार से दिलवाए जायँ ; ३५० पाउण्ड कप्तान शेपर्ड को और ५६० पाउण्ड कप्तान लुई को। हमें स्मरण रखना चाहिये कि इन दोनों से मिला कर बरमी अदालत ने केवल १७१ पाउण्ड दण्ड के वसूल किए थे, और वह भी इतने सङ्गीन जुर्मों के लिये।

डलहौज़ी का हस्तक्षेप

सन् १८४० से उस समय तक जितना पत्र व्यवहार अंगरेज़ सरकार और बरमा सरकार के दरमियान हुआ करता था वह तेनासरई के कमिश्नर की मारफ़त हुआ करता था। यह उचित या अनुचित माँग भी तेनासरई के कमिश्नर की मारफ़त ही बरमा दरबार तक पहुँचाई जा सकती थी। बात इतनी छोटी सी थी कि यदि इसके लिए किसी विशेष दूत की आवश्यकता भी थी तो कोई

युद्ध के लिये अंगरेज़ी जहाज़ों की रवानगी

भी सिविल अफ़सर काफ़ी हो सकता था। किन्तु लॉर्ड डलहौज़ी का उद्देश कुछ और ही था। फ़ौरन् विना वरमा दरबार के साथ किसी तरह का पत्र व्यवहार किए या कुछ पूछे गिने दो अंगरेज़ी युद्ध के जहाज़ कमाण्डर लैम्बर्ट के अधीन यह ६१० पाउण्ड वरमा दरवार से वसूल करने के लिये कलकत्ते से रङ्गून भेज दिये गए। इन जहाज़ों में से एक का नाम 'फ़ॉक्स' (अर्थात् लोमड़ी) और दूसरे का नाम 'सरपेण्ट' (अर्थात् साँप) था। युद्ध के जहाज़ों का रङ्गून भेजना ही एक प्रकार से युद्ध छेड़ना था।

डलहौज़ी की हिदायतें

कमाण्डर लैमवर्ट के हाथ एक पत्र वरमा के महाराजा के नाम भेजा गया और लैम्बर्ट को यह हिदायत कर दी गई कि यदि रंगून का वरमी शासक अंगरेज़ सरकार की माँग को पूरा न करे तो वह पत्र महाराजा के पास भेज दिया जाय। इस युद्ध के सम्बन्ध के पार्लिमेण्ट के काग़ज़ों में साफ़ लिखा है कि कमाण्डर लैम्बर्ट के नाम लॉर्ड डलहौज़ी की प्रकट हिदायतें कुछ और थीं और उसे गुप्त ज़बानी हिदायतें कुछ और दी गईं।

अंगरेज़ बाशिन्दों की शिकायतें

नवम्बर सन् १८५१ के अन्त में कमाण्डर लैम्बर्ट अपने दोनों जहाज़ों सहित रंगून पहुँचा। पहुँचते ही उसने रंगून के अंगरेज़ बाशिन्दों से, जिनमें से अधिकतर व्यापारी थे, रंगून दरबार के विरुद्ध अनेक शिकायतें जमा कीं। २७ नवम्बर को उसने रंगून के वरमी शासक के पास एक अत्यन्त धृष्टतापूर्ण पत्र भेजा। २८ नवम्बर को उसने

रंगून के गवरनर की मारफ़त बरमा के महाराजा के नाम कम्पनी सरकार का पत्र रवाना कर दिया। जो शिकायतें कहा जाता है कि रंगून के अंगरेज़ वाशिन्दों ने बरमा दरबार के विरुद्ध या रंगून के गवरनर के विरुद्ध लिख कर लैम्बर्ट के हाथों में दीं, उनकी संख्या ३८ थी। कोई भी निष्पक्ष मनुष्य उन शिकायतों का कोड़ी भर मूल्य नहीं कर सकता। इन पर शिकायत करने वालों के कोई हस्ताक्षर न थे। अधिकतर शिकायतों की कोई तारीख़ तक न थी। प्रसिद्ध अंगरेज़ राजनीतिज्ञ कॉबडेन ने, जिसने पार्लिमेण्ट के सरकारी कागज़ों से लेकर दूसरे बरमा युद्ध का एक निष्पक्ष इतिहास लिखा है इन ३८ शिकायतों की सूची को 'बेहूदा' (Absurd) बतलाया है। लॉर्ड एलेनब्रु तक ने ६ फ़रवरी सन् १८५२ को इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट के सामने कहा कि जिस श्रेणी के लोगों ने लैम्बर्ट के सामने शिकायतें पेश कीं वे किसी तरह भी विश्वसनीय नहीं कहे जा सकते। किसी तरह की कोई जाँच इन 'बेहूदा' शिकायतों की नहीं की गई। कमाण्डर लैम्बर्ट को विश्वास था कि बरमा दरबार मेरी इन शिकायतों को मञ्जूर न करेगा और न हरजाना देना स्वीकार करेगा। इस प्रकार लैम्बर्ट को आशा थी कि डलहौज़ी को बरमा के साथ युद्ध प्रारम्भ करने का आसानी से बहाना मिल जायगा। उसने बरमा दरबार को पत्र में लिख दिया था कि पाँच सप्ताह के अन्दर इसका उत्तर मेरे पास पहुँच जाना चाहिए।

किन्तु कमाण्डर लैम्बर्ट की दिली आशा पूरी न हुई। पांच

सप्ताह के अन्दर अन्दर पहली जनवरी सन् १८५२ को बरमा के महाराजा का उत्तर कमाण्डर लैम्बर्ट के पास पहुँच गया। बरमा का बौद्ध महाराजा अंगरेज़ों के साथ लड़ना न चाहता था। उसने बिना जाँच लैम्बर्ट की सब शिकायतों को सच मान लिया, राज की ओर से क्षतिपूर्ति का वादा किया और अपनी सच्चाई और मित्रता प्रकट करने के लिए रङ्गून के शासक को फ़ौरन् बदल कर उसकी जगह दूसरा गवरनर नियुक्त कर दिया। १ जनवरी सन् १८५२ को लैम्बर्ट ने भारत सरकार के नाम एक पत्र में लिखा कि—"बरमा की सरकार ने रङ्गून के शासक को बरख़ास्त कर दिया है और कम्पनी की माँग को पूरा करने का वादा किया है। मेरी सम्मति में बरमा का बादशाह सच्चा है और उसकी सरकार अपने वादों को पूरा करेगी।"

बरमा दरबार की शान्तिप्रियता

४ जनवरी सन् १८५२ को नया शासक रंगून पहुँचा। कमाण्डर लैम्बर्ट को अब जिस तरह हो सके, नए शासक के साथ झगड़ा मोल लेने की चिन्ता हुई।

रंगून का नया शासक

५ जनवरी को लैम्बर्ट ने एडवर्ड्स नामक अपने एक आदमी को इस नए शासक के पास भेजकर यह दरयाफ़्त करवाया कि कमाण्डर लैम्बर्ट भारत सरकार की सब शिकायतों और माँगों का एक ब्योरेवार पत्र आपके पास भेजना चाहता है, आप उस पत्र को कब लेने के लिए तैयार होंगे। बरमी शासक ने उत्तर में कहला भेजा कि पत्र कल ही मेरे पास भेज दिया

जा सकता है, या जब कमाण्डर लैम्बर्ट को सुविधा हो। एडवर्ड्स के ज़बानी कहने पर नए बरमी शासक ने अंगरेज़ों की ओर कई छोटी छोटी शिकायतें भी हाथ के हाथ दूर कर दीं।

युद्ध का काफ़ी बहाना

अगले दिन कमाण्डर लैम्बर्ट ने बजाय एक पत्र भेजने के पाँच अंगरेज़ फ़ौजी अफ़सरों का एक डेपुटेशन ठीक दोपहर के समय रंगून के नए शासक के पास भेजा। बरमी शासक से बातचीत केवल एक पत्र भेजने की हुई थी। वह उस समय डेपुटेशन से मुलाक़ात करने के लिये तैयार न था। फिर भी उसने उन्हें मुलाक़ात के लिए बुला लिया। बाद में कमाण्डर लैम्बर्ट ने डलहौज़ी को यह शिकायत लिख कर भेजी कि—"डेपुटेशन के लोगों को पूरा पाव घण्टा धूप में इन्तज़ार करना पड़ा।" बस, बरमा के साथ युद्ध छेड़ने के लिए काफी बहाना मिल गया!

बरमी जहाज़ की गिरफ़्तारी

कमाण्डर लैम्बर्ट ने रंगून के नए शासक से अब किसी तरह का जवाब तलब करने की ज़रूरत महसूस न की; और न बरमा दरबार को किसी तरह की कोई सूचना दी गई। लैम्बर्ट ने तुरन्त रंगून के समस्त अंगरेज़ बाशिन्दों को सूचना दी कि आप लोग अपनी स्त्रियों और बच्चों समेत आज शाम तक नगर छोड़कर अंगरेज़ी जहाज़ों पर आ जायँ। बरमा के महाराजा का एक जहाज़ बन्दरगाह में कुछ दूर ऊपर खड़ा हुआ था। लैम्बर्ट ने उसी दिन शाम को इस बरमी जहाज़ को पकड़ लिया। उसी दिन लैम्बर्ट ने अंगरेज़ सरकार की

ओर से बरमा सरकार के साथ युद्ध का एलान कर दिया और रंगून का मुहासरा शुरू कर दिया। बरमी जहाज़ का पकड़ना ही वास्तव में युद्ध का श्रीगणेश था। कॉबडेन लिखता है—

"रंगून के शासक का व्यवहार इसके बाद बहुत कम महत्व का विषय रह जाता है—राजनीतिज्ञ लोग, इतिहास लेखक, और धर्म अधर्म की विवेचना करने वालों के लिए प्रश्न यह है कि बरमी शासक का व्यवहार चाहे कुछ भी क्यों न रहा हो, जब हम यह जानते थे कि बरमा के महाराजा का भाव हमारी ओर मित्रता का था, तब क्या हमारे लिए बरमी क़ौम के साथ युद्ध प्रारम्भ कर देना न्याय्य था ?"*

राजकर्मचारियों की प्रार्थना

रंगून के वाशिन्दे और राज कर्मचारी लैम्बर्ट के इस व्यवहार को देख कर चकित रह गए। राज कर्मचारियों ने बड़ी नम्रता के साथ और बार बार लैम्बर्ट से प्रार्थना की कि आप बरमा के सरकारी जहाज़ को छोड़ दें और बरमा दरबार के साथ आपकी जो कुछ शिकायतें हैं, एक बार मित्र भाव से उनके निबटारे का हमें अवसर दें।

गोलाबारी

किन्तु कमाण्डर लैम्बर्ट ने एक न सुनी। ६ जनवरी को बरमी जहाज़ पकड़ा गया। तीन दिन तक कमाण्डर लैम्बर्ट के आदमियों ने उसे बन्दरगाह के अन्दर रक्खा। इन तीन दिन के अन्दर भी बरमी कर्मचारियों ने अपनी

* "The conduct of the Governor of Rangoon is now a subject of minor importance—the question for the statesman, the historian and the

ओर से कोई काररवाई युद्ध की न की। १० जनवरी को लैम्बर्ट ने इस जहाज़ को रंगून के बन्दरगाह से बाहर ले जाना चाहा। मजबूर होकर बरमी कर्मचारियों ने लैम्बर्ट को सूचना दी कि यदि जहाज को बन्दरगाह से बाहर ले जाने की कोशिश की गई तो उसकी रक्षा के लिए गोली चलाना हमारा पवित्र कर्तव्य हो जायगा। इस पर भी १० जनवरी के साढ़े नौ बजे सुबह अंगरेज़ी जहाज़ 'फ़ॉक्स' बरमी जहाज़ को, जिसे 'यल्लो शिप' कहते थे अपने साथ बाँध कर बन्दरगाह से बाहर निकला। बन्दरगाह के बरमी संरक्षकों को विवश होकर गोली चलानी पड़ी। जवाब में जहाज़ 'फ़ॉक्स' के ऊपर से रंगून नगर के ऊपर गोले बरसाए गए। स्वयं अंगरेज़ों के सरकारी कागज़ों में दर्ज है कि इस गोलेबारी के कारण सहस्रों निरपराध बरमियों की मृत्यु हुई। कॉबडेन लिखता है—

"आशा की जा सकती थी कि एक युद्ध के जहाज़ को ले जाकर और असंख्य बरमियों की हत्या करके ९९० पाउण्ड के दावे का काफ़ी हरजाना अंगरेज़ों को मिल चुका था। किन्तु युद्ध का एलान बराबर जारी रहा।"

नई माँगें

कॉबडेन ने दिखलाया है कि जो पत्र व्यवहार इस समय अंगरेज़ों और बरमियों के दरमियान हुआ उस सब में बरमियों की ओर से न्याय, निष्कपटता और सुजनता और अंगरेज़ों की ओर से इनके विपरीत गुण साफ़ दिखाई देते थे। तथापि गवरनर जनरल लॉर्ड डलहौज़ी ने इस सब

moralist is, were we justified, whatever his behaviour was, with the known friendly disposition of the King, in commencing war with the Burmese nation?"—*How Wars are Got up in India*, by Cobden, p. 55.

मामले की ख़बर पाते ही एक और ज़बरदस्त सेना बरमा की ओर रवाना की और पिछली माँगों के अतिरिक्त इस बार दस लाख रुपए नक़द बतौर हरजाने के बरमा दरबार से तलब किए। कॉबडेन ने उस पत्र को जो इस समय डलहौज़ी ने बरमा दरबार के नाम भेजा—"राजनीति, धर्म और तर्क तीनों के विरुद्ध"* बतलाया है।

बरमा महाराजा का नम्र पत्र

ठीक उस समय जिस समय कि लॉर्ड डलहौज़ी रंगून के लिए और अधिक सेना रवाना कर रहा था, बरमा के बौद्ध महाराजा का एक अत्यन्त शान्त,नम्र और मित्रता सूचक पत्र, लैम्बर्ट के ७ जनवरी के पत्र के उत्तर में, लॉर्ड डलहौज़ी के नाम रंगून से कलकत्ता जा रहा था। किन्तु डलहौज़ी को इस पत्र का इन्तज़ार कहाँ हो सकता था। ११ अप्रैल सन् १८५२ को ईस्टर रविवार के दिन अंगरेज़ी युद्ध के जहाज़ों ने रंगून और डाला के तटों के बराबर बराबर गोलेबारी शुरू कर दी।

विध्वंस और क़त्लेआम

दूसरे बरमा युद्ध की अनेक लड़ाइयों के विस्तार में पड़ने को आवश्यकता नहीं है। बरमी जाति इस युद्ध के लिए बिलकुल तैयार न थी। कॉबडेन लिखता है—

---

* "An unstatesman like, immoral, and illogical production."—Ibid, p. 78.

"उसे युद्ध कहा ही नहीं जा सकता। युद्ध की अपेक्षा उसे विध्वंस, क़त्लेआम या एक बला कहना अधिक उचित होगा।"*

युद्ध के दिनों में निरपराध बरमी प्रजा का ख़ूब संहार किया गया और ख़ूब लूट खसोट हुई। अन्त में बरमी साम्राज्य का सब से अधिक उपजाऊ और विशाल प्रान्त 'पगू' से प्राचीन पुस्तकों में 'स्वर्ण भूमि' कहा गया है, जिसमें पृथ्वी के ऊपर धन ही धन और पृथ्वी के नीचे असंख्य सोने की कानें छिपी हुई थीं, बरमा के बौद्ध महाराजा से छीन कर कम्पनी के भारतीय साम्राज्य में मिला लिया गया। यही लॉर्ड डलहौज़ी और उसके साथियों की हार्दिक कामना थी। दिसम्बर सन् १८५२ में यह प्रान्त अंगरेज़ों के शासन में आया। ५० वर्ष के अंगरेज़ी शासन ने उसे संसार के सब से अधिक धनसम्पन्न प्रदेशों की श्रेणी से गिरा कर सब से अधिक निर्धन देशों की श्रेणी में पहुँचा दिया।

कॉबडेन ने इस युद्ध के कारणों, उसकी प्रगति और उसके परिणाम के विषय में बड़े मार्मिक शब्दों में लिखा है—

कॉबडेन के विचार

"ये युद्ध हिन्दोस्तानियों के ख़र्च से चलाए जाते हैं। × × × बंगाल के अर्धनग्न किसानों को कप्तान शेपर्ड और कप्तान लुई के दावों की वसूली से क्या विशेष लाभ था, कि इन दावों के कारण जो युद्ध खड़ा हो गया उसका सब ख़र्च इन किसानों के सर पर डाला जाय?"

* "A war it can hardly be called. A rout, a massacre, or a visitation, would be a more appropriate term."—Ibid, p. 98.

"शुरू में लॉर्ड डलहौज़ी ने हज़ार पाउण्ड से कम का बरमियों से दावा किया; इसके बाद रंगून के शासक ने हमारे अफ़सरों की जो हतक की उसके लिए गवरनर से माफ़ी माँगने के लिए कहा गया; इसके बाद लॉर्ड डलहौज़ी ने अपनी माँगों को बढ़ा कर एक लाख पाउण्ड नक़द कर दिया और बरमा के महाराजा के वज़ीरों से माफ़ी माँगने के लिए कहा, फिर बरमा के राज पर हमला कर दिया गया; इस पर नक़दी और माफ़ियों की सब माँगें एकाएक बन्द हो गईं, और लॉर्ड डलहौज़ी पिछली तमाम बातों के 'बदले' और 'हरजाने' में पगू का प्रान्त ले लेने के लिए राज़ी हो गया।"*

बरमा युद्ध पर अमरीकन सेनेटर

दिसम्बर सन् १८५२ में संयुक्त राज अमरीका की सेनेट में वक्तृता देते हुए सेनेट के एक सदस्य जनरल कैस ने इसी युद्ध के विषय में कहा था—

"हिन्दोस्तान की एक और देशी रियासत एक ज़बरदस्त व्यापारी मण्डली की बढ़ौती का शिकार हो गई। और उसके अस्सी लाख अथवा एक करोड़ लोग अंगरेज़ों की असंख्य भारतीय प्रजा में शामिल

---

* "These wars are carried on at the expense of the people of India. . . . What exclusive interest had the half-naked peasant of Bengal in the settlement of the claims of Captains Shepperd and Lewis, that he should alone be made to bear the expense of the war which grew out of them ?"

"Lord Dalhousi begins with a claim on the Burmese for less than a thousand pounds; which is followed by the additional demand of an apology from the Governor of Rangoon for the insult offered to our officers; next his terms are raised to one hundred thousand pounds, and an apology from the King's ministers; then follows the invasion of the Burmese territory; when, suddenly, all demands for pecuniary compensation and apologies cease, and His Lordship is willing to accept the cession of Pegu as a 'compensation' and 'reparation' for the past."—Ibid, by Cobden, pp. 101-104.

कर लिए गए। और आप क्या समझते हैं कि इस युद्ध का क्या कारण रहा होगा जिसके परिणाम रूप अंगरेज़ अभी हाल ही में बरमा के राज को हड़प गए? × × × यदि हमारे पास अत्यन्त अकाट्य गवाहियाँ न होतीं, तो हम इस सच्ची लूट के क़िस्से पर विश्वास करने से इनकार कर देते। किन्तु यह एक निर्विवाद घटना है कि इंगलिस्तान का बरमा के साथ युद्ध करने और बरमा के राजनैतिक अस्तित्व को मिटाने का कारण यह था कि बरमा ने ९१० पाउण्ड की एक विवादास्पद रक़म अदा नहीं की थी। × × × दूसरी क़ौमों को संयम और निस्वार्थता का उपदेश देना इस जाति को ख़ूब शोभा देता है!"*

पगू प्रान्त पर कम्पनी का क़ब्ज़ा

लॉर्ड डलहौज़ी के इस युद्ध का वृत्तान्त हमने कॉवडेन की पुस्तक से लिया है। कॉवडेन ने अपनी पुस्तक की भूमिका में लिखा है कि उसने तमाम हाल पार्लिमेण्ट के सरकारी काग़ज़ों से लिया है। कॉवडेन ने यह भी लिखा है, "मुझे सन्देह है कि दूसरे बरमा युद्ध के सरकारी काग़ज़ों में काट छाँट की गई है।" निस्सन्देह यदि इस

---

* "Another of the native Powers of Hindostan has fallen before the march of a great commercial corporation and its 8,000,000 or 10,000,000 of people have gone to swell the immense congregation of British subjects in India. And what do you think was the cause of the war which has just ended in the swallowing up of the Kingdom of Burmah? . . . Had we not the most irrefragable evidence we might well refuse credence to this story of real rapacity. But the fact is indisputable that England went to war with Burmah, and annihilated its political existence, for the nonpayment of the disputed demand of £s. 910. . . . Well does it become such a people to preach homilies to other nations upon disinterestedness and moderation."—Speech by General Cass in the Senate of the United States, December 1852.

युद्ध का सच्चा वृत्तान्त बरमियों से सुना जाय तो वह इससे भी कहीं अधिक भयङ्कर और अन्यायपूर्ण होगा। इतिहास लेखक लडलो लिखता है कि पगू पर क़ब्ज़ा करना अंगरेज़ों के लिए इतना सरल न था। अप्रैल सन् १८५५ तक बरमियों और अंगरेज़ों में बराबर लड़ाई झगड़े होते रहे। अन्त में बरमा की राजधानी आवा में किसी तरह (?) एक क्रान्ति हुई। एक दूसरा महाराजा बरमा की गद्दी पर बैठा और पगू का प्रान्त अंगरेज़ कम्पनी को हज़म होगया।

तेंतालीसवाँ अध्याय

डलहौज़ी की भू-पिपासा

"लैप्स" की नीति

दूसरे सिख युद्ध और दूसरे बरमा युद्ध के अतिरिक्त और कोई युद्ध लॉर्ड डलहौज़ी के शासन काल में नहीं लड़ा गया ; फिर भी बिना युद्ध के डलहौज़ी ने आठ अन्य हिन्दोस्तानी राज्यों के अस्तित्व का अन्त कर दिया और एक और विशाल राज को अंग भंग कर डाला । जिस नीति के अनुसार इनमें से सात राज्यों अर्थात् सतारा, नागपुर, झाँसी, सम्बलपुर, जैतपुर, तञ्जोर और करनाटक को अंगरेज़ी राज में मिलाया गया उसे अंगरेज़ी में "लैप्स" कहते हैं । "लैप्स" का अर्थ यह था कि जिन देशी नरेशों ने कम्पनी के साथ मित्रता की सन्धि कर रक्खी थी, अथवा जिनके पूर्वजों की सहायता से कम्पनी ने भारत में अपना राज क़ायम किया था, उनमें से किसी के मर जाने पर यदि उसके कोई पुत्र न हो तो उसकी समस्त रियासत पर अंगरेज़

कम्पनी का हक़ हो जाता था और कम्पनी तुरन्त उस पर क़ब्ज़ा कर लेती थी।

पुत्र न होने की सूरत में अपने किसी नज़दीकी रिश्तेदार को गोद लेने का हक़ प्रत्येक भारतवासी को धर्मशास्त्रों के अनुसार सदा से प्राप्त रहा है। पति के पुत्रहीन मरने पर उसकी विधवा को गोद ले लेने का हक़ होता है। यह हक़ और गोद लेने की प्रथा अत्यन्त प्राचीन समय से भारत में चली आती है। किन्तु पूर्वोक्त "लैप्स" की नीति के अनुसार किसी भी भारतीय नरेश को, जिसने दुर्भाग्यवश एक वार अंगरेज़ों के साथ मित्रता कर ली हो, या उसकी विधवा महारानी को गोद लेने का कोई हक़ न था। गोद लिए हुए पुत्र को गद्दी का अधिकारी न माना जाता था, और न सिवाय आत्मज पुत्र के किसी भाई, भतीजे, चचा, पुत्री आदिक को गद्दी का हक़दार माना जाता था। इस विचित्र नीति पर अमल करके लॉर्ड डलहौज़ी ने इन रियासतों के साथ कम्पनी की पहली समस्त सन्धियों और अहदनामों को उठा कर ताक़ पर रख दिया।

यह नीति वास्तव में सन् १८३४ से प्रारम्भ हुई। उस वर्ष कम्पनी के डाइरेक्टरों ने भारत सरकार को लिखा—

"जब कभी किसी गोद लेने की क्रिया को मंज़ूर करना या न करना आपके हाथों में हो, आपको बहुत ही कम कभी मंज़ूरी देनी चाहिए, आमतौर पर नहीं, और जब कभी आप मंज़ूरी दें तो वह आपका विशेष अनुग्रह समझा जाना चाहिए।"*

---

* "Whenever it is optional with you to give or to withold your

इसी नीति के अनुसार लॉर्ड डलहौज़ी के पूर्व कोलाबा, माण्डवी और अम्बाला की रियासतों पर क़ब्ज़ा किया जा चुका था। लॉर्ड डलहौज़ी ने और अधिक ज़ोरों के साथ इस नीति पर अमल किया। निस्सन्देह यदि लॉर्ड डलहौज़ी के बाद ही सन् १८५७ का विप्लव न हुआ होता तो सम्भव है भारत के अन्दर एक भी हिन्दू या मुसलमान देशी रियासत न बची होती।

सतारा के राजा से वादा

सब से पहला भारतीय राज, जिसे इस नीति के अनुसार लॉर्ड डलहौज़ी ने ज़ब्त किया, सतारा का राज था। सन् १८१८ में पेशवा बाजीराव की सत्ता का नाश करने के लिए जो प्लान कम्पनी ने प्रकाशित किया था उसमें मराठा मण्डल के शेष समस्त नरेशों और जागीरदारों से यह वादा किया गया था कि आपके और आपके उत्तराधिकारियों के अधिकारों में कभी किसी तरह का हस्तक्षेप न किया जायगा। सतारा के राजा शिवाजी के वंशज थे। सतारा के राजा के नाम का उस समय पेशवा के विरुद्ध उपयोग करने के लिए सतारा के राजा से यह साफ़ वादा किया गया कि पेशवा की सत्ता को अन्त कर मराठा साम्राज्य का आधिपत्य फिर से आपको प्रदान कर दिया जायगा और सतारा ही को समस्त मराठा साम्राज्य की मुख्य राजधानी बना दिया जायगा।*

---

consent to adoptions, the indulgence should be the exception and not the rule, and should never be granted but as a special mark of approbation."—Court of Directors of the East India Company, 1834.

* *The Bakhar or Historical Sketch*, by Balwant Rao Chitnavis, translated into English, by Dr. Milne.

पूर्वोक्त एलान और सतारा के राजा की मदद से ही अंगरेज़ों ने पेशवा बाजीराव का नाश किया। बाद में सतारा के राजा के साथ प्रतिज्ञाओं और उस एलान के अन्य सब वादों को तोड़ दिया गया। रॉबर्ट नाइट नामक एक अंगरेज़ लिखता है—

अंगरेज़ों का वचन भंग

"एलान के वादों और सतारा के राजा की पुनः स्थापना, इन दोनों ने मिल कर पेशवा का नाश कर दिया; और अब हमारा जान बूझ कर उन वादों से पीछे हटना, जो हमने उस समय किए थे, एक ऐसा कार्य है जिसे कोई भी ईमानदार आदमी निन्दनीय ठहराये बिना नहीं रह सकता, चाहे इस वचन भङ्ग के लिये ऊपरी दलीलें कैसी भी क्यों न दी जायँ।"*

राजा का नाम प्रतापसिंह था। प्रतापसिंह उस समय नाबालिग़ था। युद्ध के बाद प्रतापसिंह को महाराजा स्वीकार किया गया और कप्तान ग्रॉएट डफ़ को प्रतापसिंह के बालिग़ होने के समय तक राज-कार्य चलाने के लिये रेज़िडेण्ट नियुक्त करके सतारा भेज दिया गया। बालिग़ होने पर प्रतापसिंह बुद्धिमान और योग्य शासक निकला। अपनी इस योग्यता और बुद्धिमत्ता के कारण ही वह अपने अंगरेज़ मित्रों की नज़रों में और अधिक खटकने लगा। बम्बई

राजा प्रतापसिंह की योग्यता

* "The assurances of the proclamation, and the reinstatement of the Raja of Satara, ruined the Peshwa; and our deliberate withdrawal now from the pledges then given, merits the reprobation of every conscientious man, however spacious the arguments upon which the withdrawal has been recommended."—*The Inam Commission Unmasked*, by Robert Knight, pp. 45, 46.

के गवरनर सर रॉवर्ट ग्रॉएट ने फ़ैसला किया कि प्रतापसिंह को कुचल दिया जाय। फ़ौरन् एक षड्यन्त्र रचा गया। निरपराध प्रतापसिंह को क़ैद करके बनारस भेज दिया गया और उसके भाई को उसकी जगह सतारा के तख़्त पर बैठा दिया गया।

प्रतापसिंह की मृत्यु पर हॉबहाउस

सन् १८४८ के क़रीब दोनों भाइयों की मृत्यु होगई। दोनों में से किसी के भी आत्मज पुत्र न था। किन्तु दोनों के दत्तक पुत्र मौजूद थे। २४ दिसम्बर सन् १८४७ को राजा प्रतापसिंह की मृत्यु पर आलोचना करते हुए इङ्गलिस्तान के भारत मन्त्री हॉवहाउस ने लॉर्ड डलहौज़ी को एक पत्र में लिखा —

"सतारा के पदच्युत राजा की मृत्यु निस्सन्देह बड़े ही अच्छे अवसर पर हुई है। मैंने सुना है कि वर्त्तमान राजा का स्वास्थ्य भी बहुत ख़राब है; और यह कदापि असम्भव नहीं है कि हमें शीघ्र ही उसके राज के भाग्य का फ़ैसला करना पड़े। मेरी यह निश्चित राय है कि वर्त्तमान राजा के पुत्र-विहीन मरने पर दत्तक पुत्र को स्वीकार न किया जाय और इस छोटे से राज को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया जाय। यदि यह प्रश्न मेरे मन्त्री रहते हुए तय हो गया तो मैं इस कार्य को पूरा करने में कोई कसर उठा न रक्खूँगा।"*

* "The death of the Ex-Raja of Satara certainly comes at a very opportune moment. The reigning Raja is, I hear, in very bad health, and it is not at all impossible we may soon have to decide upon the fate of his territory. I have a very strong opinion that on the death of the present prince without a son, and no adoption should be permitted, this petty principality should be merged in the British Empire; and if the question is

सतारा का अपहरण

इसी आदेश के अनुसार लॉर्ड डलहौज़ी ने, सतारा के राजा के मरते ही, तमाम पिछली सन्धियों का उल्लङ्घन करके, राजा के पुत्र न होने का बहाना लेकर, और गोद लेने की प्राचीन प्रथा को नाजायज़ कह कर, ज़बरदस्ती सतारा के राज पर कम्पनी का क़ब्ज़ा जमा लिया।

ग़दर के सत्रह वर्ष बाद सन् १८७४ ई० में सतारा की विधवा रानी ने इस अन्याय के विरुद्ध महारानी विक्टोरिया के नाम एक प्रार्थना पत्र भेजा, किन्तु उसका परिणाम क्या हो सकता था!

नागपुर का अन्तिम राजा

नागपुर के अन्तिम राजा तीसरे राघोजी भोंसले की मृत्यु ११ दिसम्बर सन् १८५३ को हुई। इतिहास से पता चलता है कि राघोजी समझदार और नेक नरेश था। उसका शासन प्रबन्ध अत्यन्त सराहनीय था। किन्तु लॉर्ड डलहौज़ी ने राजा की मृत्यु के बाद ही उसके चरित्र पर अनेक झूठे और लज्जाजनक इलज़ाम लगाने शुरू कर दिए।

राजा का दत्तक पुत्र

राघोजी के कोई पुत्र न था। विधवा महारानी ने विधिवत् यशवन्तराव नामक अपने एक नज़दीकी रिश्ते-दार को गोद ले लिया। यशवन्तराव ही ने पुत्र की तरह परलोकवासी राजा का श्राद्ध किया।

---

decided in my "day of sextonship," I shall leave no stone unturned to bring about that result."—Letter from Hobhouse to Lord Dalhousie, 24th December, 1847.

लॉर्ड डलहौज़ी ने सन् १८२६ की सन्धि की अवहेलना करते हुए २८ जनवरी सन् १८५४ को यह एलान कर दिया कि नागपुर के तख़्त का कोई हक़दार न होने के कारण नागपुर का समस्त राज अंगरेज़ कम्पनी के क़ब्ज़े में आगया।

नागपुर का अपहरण

मेजर ईवन्स बेल ने इस अन्याय को बयान करते हुए लिखा है कि केवल १० वर्ष पूर्व अर्थात् सन् १८४४ में नागपुर के रेज़िडेण्ट के एक पत्र के उत्तर में गवरनर जनरल ने यह साफ़ स्वीकार किया था कि पुत्र न होने की सूरत में राजा को और राजा की मृत्यु हो जाने पर उसके कुटुम्बियों को गोद लेने का पूर्ण अधिकार है। किन्तु केवल दस वर्ष के अन्दर अंगरेज़ शासकों के उसूल बदल गए थे। राघोजी के कुटुम्बियों और विधवा रानियों से किसी तरह की राय नहीं ली गई और न उनसे कोई पूछ ताछ की गई। उन्हें यह भी नहीं बतलाया गया कि किन कारणों से अंगरेज़ सरकार ने उनके और उनके कुल के पैतृक अधिकारों का क्षण भर के अन्दर अन्त कर दिया। उन्हें केवल यह सूचना दे दी गई कि तुम्हारा राज अब अंगरेज़ी साम्राज्य में मिला लिया गया।

अंगरेज़ शासकों के उसूलों में परिवर्तन

२८ जनवरी सन् १८५४ के एलान में लॉर्ड डलहौज़ी ने यह निर्लज्ज झूठ तक लिख दिया कि "रानियाँ दत्तक यशवन्तराव को गद्दी देना पसन्द नहीं करतीं और यशवन्तराव को गद्दी न देना अंगरेज़ सरकार का रानियों के ऊपर उपकार करना है!"

गवरनर जनरल की कौन्सिल का एक सदस्य जनरल लो किसी कारण इस अत्याचार के विरुद्ध था। उसने भौंसले कुल की ओर डलहौज़ी के इस अन्याय को बड़े ज़ोरदार शब्दों में स्वीकार किया है। फिर भी इङ्गलिस्तान के उदार से उदार नीतिज्ञों ने इस कार्य के लिए लॉर्ड डलहौज़ी की खूब प्रशंसा की।

इंगलिस्तान में डलहौज़ी की प्रशंसा

नागपुर राज का एक भाग इससे पूर्व ही अंगरेज़ी राज में मिला लिया जा चुका था। शेष समस्त भाग भी अब कम्पनी के भारतीय राज में शामिल कर लिया गया।

किन्तु लॉर्ड डलहौज़ी और उसके अंगरेज़ साथियों की धन-लोलुपता यहीं पर समाप्त नहीं हुई। इतिहास लेखक सर जॉन के लिखता है कि नागपुर के राजमहल का सारा असबाब, यहाँ तक कि घोड़े, हाथी, ऊँट, बैल, गाय इत्यादि और रानियों के तमाम ज़ेवर और जवाहरात, घर का समान, बरतन और पहनने के कपड़े तक ज़बरदस्ती बाहर निकाल कर नीलाम कर दिए गए! सर जॉन के लिखता है कि उस दिन सीताबल्डी में शाही हाथी, घोड़े और सवारी के बैल मांस के दामों बेचे गए! अस्सी वर्ष की वृद्धा राजपितामही महारानी बङ्काबाई इस अपमान को देख कर इतनी दुखी हुई कि एक बार उसने कह दिया कि यदि महल का सामान बाहर निकाला गया तो मैं महल में आग लगा दूँगी। फिर भी सामान बाहर निकाल लिया गया। महल के भीतर का फ़र्श तक खोद डाला

नागपुर में महलों की लूट

गया। रानियों के ज़ेवर, जवाहरात और सोने चाँदी के जड़ाऊ बर्तन और अन्य क़ीमती सामान कलकत्ते ले जाकर नीलाम किया गया। नागपुर में क़रीब ६०० हाथी, घोड़े, ऊँट और बैल १३,००० रुपए में नीलाम हुए। यह नीलाम अधिकतर ४ सितम्बर को हुआ। कलकत्ते की 'हैमिल्टन ऐण्ड कम्पनी' नामक एक अंगरेज़ कम्पनी को इस नीलाम का ठेका दिया गया। एक एक जोड़ी बैलों को और शाही घोड़ों की पाँच पाँच रुपए में बेंची गई। हाथी सौ रुपए में और करोड़ों के जवाहरात लाखों और सहस्रों में नीलाम कर दिए गए।

पाप का प्रायश्चित

नागपुर का राजकुल छत्रपति शिवाजी के वंश से था। इसी कुल ने उस समय, जब कि नाना फड़नवीस और हैदरअली जैसे देशभक्त नीतिज्ञ विदेशियों से भारत को स्वाधीन रखने के विकट प्रयत्न कर रहे थे, विदेशियों का साथ देकर कम्पनी के भारतीय साम्राज्य के कोमल अङ्कुरों को नष्ट होने से बचाया था। इसी पाप के प्रायश्चित्त रूप इस कुल के एक नरेश को निर्वासित होकर अकेले देश देश और जङ्गल जङ्गल घूमना पड़ा और दूसरे के कुटुम्बियों, रानियों और उत्तराधिकारी को इस प्रकार ज़िल्लत सहनी पड़ी।

नागपुर की रुई

एक इतिहास लेखक लिखता है कि नागपुर राज के अन्दर रुई अधिक और उत्तम उत्पन्न होती थी। इङ्गलिस्तान को अपनी बढ़ती हुई कपड़े की कारीगरी के लिए रुई की आवश्यकता थी। इसीलिए नागपुर पर क़ब्ज़ा करना उस समय आवश्यक था।

वही लेखक यह भी लिखता है कि नागपुर पर क़ब्ज़ा जमाने से पहले राज के अनेक कर्मचारियों को अंगरेज़ों ने रिशवतें देकर अपनी ओर करने का प्रयत्न किया, किन्तु "इसमें आसानी से सफलता न मिल सकी।"*

झाँसी की रियासत

पेशवा सत्ता के दिनों में पेशवा का एक सूबेदार झाँसी के राज पर शासन किया करता था। धीरे धीरे सूबेदार का पद पैतृक हो गया, किन्तु पेशवा का आधिपत्य झाँसी के राजा के ऊपर बराबर बना रहा।

सन् १८१७ में कम्पनी ने झाँसी के राजा रामचन्द्रराव के साथ मित्रता की सन्धि की, जिसमें कम्पनी सरकार ने वादा किया कि झाँसी का समस्त राज "सदा के लिए" राजा रामचन्द्रराव, उसके उत्तराधिकारियों और वंशजों के शासन में पैतृक रूप से रहने दिया जायगा।"†

२१ नवम्बर सन् १८५३ को झाँसी के राजा गङ्गाधरराव का देहान्त हुआ। गङ्गाधरराव की आयु मृत्यु के समय बहुत थोड़ी थी। मृत्यु के पहले उसने विधिवत् दामोदरराव नामक एक बालक को गोद ले लिया। दामोदरराव गङ्गाधरराव के ही कुल का और गङ्गाधरराव का अत्यन्त नज़दीकी रिश्तेदार था।

मेजर ईवन्स बेल लिखता है :—

"× × × गोद लेने का संस्कार बिलकुल ठीक ठीक हिन्दू शास्त्र की

---

*". . . They were not easily seduced . . . "—*Calcutta Review*, vol. 38, 1863, pp. 230-31.

† Aitchison's *Treaties*, etc, revised edition.

मर्यादा के अनुसार किया गया, अंगरेज़ अफ़सर संस्कार में मौजूद थे, और राजा ने अपने मरने से पहले बाज़ाब्ता पत्र द्वारा अंगरेज़ सरकार को उसकी सूचना दे दी।"*

झाँसी का अपहरण

फिर भी लॉर्ड डलहौज़ी ने २७ फ़रवरी सन् १८५४ को फ़ैसला किया कि दत्तक पुत्र को राज का कोई अधिकार नहीं। १३ मार्च सन् १८५४ को एक एलान द्वारा झाँसी की रियासत ज़बरदस्ती कम्पनी के राज में मिला ली गई। इतिहास लेखक मेजर ईवन्स बेल ने अपनी पुस्तक 'दी एम्पायर इन इण्डिया' में लॉर्ड डलहौज़ी के इस अन्याय को बड़े स्पष्ट शब्दों में और विस्तार के साथ बयान किया है।

झाँसी की प्रजा और राजकुल के साथ कम्पनी के इस घोर अन्याय का ही फल था कि सन् १८५७-५८ के विप्लव में झाँसी की प्रसिद्ध रानी लक्ष्मीबाई ने शस्त्र धारण कर, अद्भुत वीरता के साथ अंगरेज़ी सेना का मुक़ाबला किया। किन्तु रानी लक्ष्मीबाई के चरित्र और इस विषय का अधिक सम्बन्ध एक अगले अध्याय से है।

सम्बलपुर का अपहरण

सम्बलपुर का ज़िला, जो इस समय बिहार और उड़ीसा प्रान्त में है, इससे पूर्व मध्यप्रान्त में शामिल था। सन् १८४६ में लॉर्ड डलहौज़ी ने इसी 'लैप्स' के सिद्धान्त के अनुसार सम्बलपुर के स्वतन्त्र, किन्तु निर्बल राज पर अपना क़ब्ज़ा जमाया।

* *Empire in India*,—by Major Evans Bell, pp 212-13.

जेतपुर का अपहरण

जेतपुर का छोटा सा राज बुन्देलखण्ड में था। सन् १८४९ ही में इसी प्रकार जेतपुर को भी ख़त्म किया गया।

तञ्जोर का अपहरण

तञ्जोर का रहा सहा इलाक़ा सन् १८५५ में इसी प्रणाली के अनुसार कम्पनी के राज में मिला लिया गया। तञ्जोर की विधवा महारानी कामक्षी बाई ने मद्रास गवरमेण्ट के विरुद्ध मद्रास की सुप्रीम कोर्ट में इस बात की नालिश की कि मेरे पति की वैय्यक्तिक सम्पत्ति को भी मद्रास गवरमेण्ट ने ज़ब्त कर लिया है, वह मुझे दिलवा दी जाय। मद्रास की सुप्रीम कोर्ट ने फ़ैसला रानी के हक़ में किया। मद्रास गवरमेण्ट ने इस फ़ैसले के विरुद्ध इङ्गलिस्तान की प्रीवी कौन्सिल के सामने अपील की। प्रीवी कौन्सिल के विद्वान जजों ने फ़ैसला दिया कि यद्यपि अंगरेज़ सरकार को तञ्जोर पर क़ब्ज़ा करने का कोई क़ानूनी अधिकार हासिल न था, और रानी के साथ ज़बरदस्त अन्याय किया गया है, फिर भी यह मामला राजनैतिक है और अदालत को इसमें दख़ल देने का कोई हक़ नहीं; इसलिए मद्रास सुप्रीम कोर्ट का फ़ैसला रद्द किया जाता है और रानी का दावा ख़ारिज !

करनाटक का अपहरण

मद्रास का नगर और उसके आस पास का तमाम इलाक़ा किसी समय करनाटक की मुसलमान सलतनत में शामिल था। कम्पनी ने सबसे पहले मद्रास और कड्लोर करनाटक के नवाब से प्राप्त किए। उसके बाद नवाब मोहम्मदअली वालाजाह ने पूना माली का

तालुक़ा और और कई तालुक़े अंगरेज़ कम्पनी को प्रदान कर दिए। सन् १७६३ में नवाब ने चिङ्गलपुट की जागीर, जिसकी आमदनी उस समय १८ लाख रुपये सालाना थी, अपने मित्र अंगरेज़ों को दे दी। इन तमाम इलाक़ों के लिए कम्पनी के नाम नवाब के दरबार से बाज़ाब्ता सनदें जारी को गईं। इसके बहुत समय बाद तक अंगरेज़ कम्पनी करनाटक के नवाब को इन इलाक़ों के लिए ख़िराज देती थी और वहाँ पर रहने वाले अंगरेज़ अपने को नवाब की प्रजा कहते थे। नवाब मोहम्मद अली अन्य भारतीय नरेशों के विरुद्ध अंगरेज़ों का सदा मददगार रहा। फिर भी मोहम्मदअली के बेटे उमदतुलउमरा की मृत्यु पर करनाटक का बहुत सा इलाक़ा और नवाब के अनेक अधिकार ज़बरदस्ती कम्पनी ने अपने हाथों में ले लिए। किंतु सन् १८०१ की सन्धि में भी कम्पनी और नवाब करनाटक का यह नाम मात्र का सम्बन्ध क़ायम रक्खा गया। सन् १८५५ के अक्तूबर मास में नवाब मोहम्मद गौस का देहान्त हुआ और उसके उत्तराधिकारी अज़ीम जाह को अंगरेज़ों ने नवाब स्वीकार करने ही से इनकार कर दिया। मद्रास के गवरनर लॉर्ड हैरिस ने लॉर्ड डलहौज़ी को लिखा कि—"करनाटक के नवाब की सत्ता केवल एक दिखावटी तमाशा है, किन्तु किसी भी समय वह हमारे विरुद्ध विद्रोह और आन्दोलन का एक केन्द्र बन सकती है। इसलिए इस तमाशे को जारी रखना अब बुद्धिमत्ता नहीं है।" इत्यादि।

डलहौज़ी ने हैरिस की राय को पसन्द किया। करनाटक का

समस्त रहा सहा इलाक़ा अंगरेज़ी राज में मिला लिया गया; और भारत के एक और प्राचीन राजकुल का अन्त हुआ।

इतिहास लेखक लडलो लिखता है—

"जिस समय से गवरनर जनरल ने अपनी इस अपहरण नीति का एलान किया, उस समय से ही भारतीय नरेशों में पुत्रविहीन मौतें इतनी अधिक होने लगीं कि जिसे देख कर मनुष्य को आश्चर्य हुए बिना नहीं रह सकता।"*

उस समय की भारतीय रियासतों और उनके अन्दर कम्पनी के कारनामों का कोई सच्चा इतिहास किसी भारतवासी के हाथ का लिखा हुआ नहीं मिलता, इसलिए इतिहास लेखक लडलो के आश्चर्य को हल कर सकना अब असम्भव है।

मुसलिम रियासतें

हिन्दू, सिख, बौद्ध या मुसलमान किसी भी धर्म के भारतीय नरेश डलहौज़ी के चङ्गुल से न बच सके। उसके भारत आगमन के समय दो विशाल मुसलमान राज भारत में मौजूद थे। उत्तर में अवध का राज और दक्खिन में निज़ाम की रियासत। इनमें से प्रत्येक की वार्षिक आमदनी कई करोड़ रुपए थी। अवध हिन्दोस्तान के सबसे अधिक ज़रख़ेज़ हिस्सों में गिना जाता था और बरार में अनेक धातुओं की कानें थीं।

---

* "One can not fail to be struck with the frequency of death without heirs among Indian sovereigns from the moment when the policy of annexation is proclaimed by a Governor-General,"—Ludlow's *British India*, vol. ii, p. 190.

रॉवर्ट नाइट ने सन् १८८० में लिखा था कि सन् १८५१ के क़रीब अंगरेज़ सरकार की प्रधान नीति यह थी कि जब भी मौक़ा मिल सके देशी रियासतों की संख्या को कम किया जाय और हैदराबाद और अवध के नाश में यदि देरी हुई तो केवल पञ्जाब और बरमा के युद्धों के कारण हुई।*

सवसीडीयरी सेना देने से इनकार

सन् १८०० की सन्धि के अनुसार हैदराबाद के निज़ाम को सबसीडीयरी सेना के ख़र्च के लिए एक बहुत बड़ी रक़म प्रति वर्ष कम्पनी को देनी होती थी। बरार का प्रान्त दूसरे मराठा युद्ध के बाद नागपुर के राजा से छीन कर निज़ाम को दे दिया गया था। उस समय से बराबर बरार के अन्दर निज़ाम के विरुद्ध उपद्रव चले आते थे। कहा जाता है कि बरार के हिन्दू देशमुख प्रायः निज़ाम के विरुद्ध विद्रोह करते रहते थे। इतिहास लेखक लॉयल लिखता है कि बरार के शहरों में आए दिन ही हिन्दू और मुसलमानों में झगड़े होते रहते थे, किन्तु ये झगड़े निज़ाम के शेष राज में और कहीं सुनने में न आते थे। इन उपद्रवों को शान्त करने के लिए गवरनर जनरल ने सबसीडीयरी सेना देने से इनकार कर दिया; यद्यपि यह सेना वास्तव में निज़ाम ही की सेना थी, निज़ाम ही के ख़र्च से रक्खी गई थी, और जिस सन्धि द्वारा यह सेना निज़ाम के इलाक़े में रक्खी गई थी, उसमें यह साफ़ दर्ज था कि इस सेना का उद्देश निज़ाम के इलाक़े में शान्ति क़ायम रखना

* The *Statesman*, July 1, 1880 p 162.

और निज़ाम को हर तरह की सहायता देना है। बरार के उपद्रवों को शान्त करने के लिए निज़ाम पर ज़ोर दिया गया कि वह बरार के अन्दर विशेष सेना रक्खे। यह नई सेना भी कम्पनी ही की थी, इसके भी अफ़सर अंगरेज़ थे और अंगरेज़ों ही के वह नियन्त्रण में थी; फिर भी इसका ख़र्च निज़ाम पर डाला गया।

निज़ाम की मुसीबतें

इन सब का परिणाम यह हुआ कि निज़ाम का ख़र्च और उसकी मुसीबतें दोनों बढ़ती चली गईं। सबसीडीयरी सेना का ख़र्च अदा करने के लिए निज़ाम को धन की कमी होने लगी। हैदराबाद के अन्दर कई नई अंगरेज़ी कम्पनियाँ खोली गईं जो निज़ाम को क़र्ज़ देने के लिए राज़ी होगईं। मजबूरन् इन अंगरेज़ बैङ्किङ्ग कम्पनियों के निज़ाम को बार बार क़र्ज़ लेना पड़ा, और अन्य मुसीबतों के साथ साथ निज़ाम का क़र्ज़ा भी बढ़ता चला गया। इन विदेशी साहूकार कम्पनियों का धन भी यदि सब नहीं तो अधिकतर हैदराबाद ही से कमाया हुआ था।

बरार का अपहरण

६ जून सन् १८५१ को लॉर्ड डलहौज़ी ने निज़ाम के नाम एक अत्यन्त धृष्टतापूर्ण पत्र लिखा। निज़ाम के राज में थोड़े से ऐसे क़िले रह गए थे जो दरबार के वफ़ादार अरब सिपाहियों के हाथों में थे। ये वीर अरब कहीं भी अंगरेज़ों के क़ाबू में न आए थे। लॉर्ड डलहौज़ी ने निज़ाम को धमकी दी कि फ़ौरन् इन अरबों को बरख़ास्त कर दिया जाय। और यद्यपि कम्पनी का एक पैसा क़र्ज़ भी निज़ाम के ज़िम्मे न था,

निज़ाम के जो कुछ क़र्ज़ थे वे व्यक्तिगत कम्पनियों के क़र्ज़ थे, फिर भी "अपने क़र्ज़ों की अदायगी में" निज़ाम से उसका एक तिहाई राज अर्थात् बरार का उपजाऊ प्रान्त फ़ौरन कुछ वर्षों के लिए पट्टे पर तलब किया गया। निज़ाम ने बहुतेरे एतराज़ किए, किन्तु अंगरेज़ी फ़ौज ने बरार पर क़ब्ज़ा कर लिया। लॉर्ड डलहौज़ी ने सञ्जीदगी के साथ यह एलान किया कि बरार बाद में निज़ाम को लौटा दिया जायगा। इसके क़रीब पचास वर्ष बाद गवरनर जनरल लॉर्ड करज़न ने बरार के पट्टे को मौजूदा अंगरेज़ सरकार के नाम स्थायी कर लिया। निज़ाम के पास स्वीकार करने के सिवा कोई चारा न था।

भारत भर में सब से अच्छी रुई बरार के प्रान्त में पैदा होती है।

सब से अन्तिम भारतीय राज, जिसे लॉर्ड डलहौज़ी ने अंगरेज़ी राज में शामिल किया, अवध का राज था। लॉर्ड डलहौज़ी के इस कार्य को वर्णन करने से पहले कुछ वर्ष पूर्व की एक और हास्यजनक घटना को वर्णन करना अप्रासङ्गिक न होगा।

डलहौज़ी की माँ का नवाब अवध से परिचय

डलहौज़ी का पिता एक समय कम्पनी की भारतीय सेना का कमाण्डर-इन-चीफ़ था। अपने समय के अन्य अंगरेज़ अफ़सरों के समान वह एक बार लखनऊ के नवाब से भेंट करने गया। कमाण्डर-इन-चीफ़ ने अवध के नवाब से अपनी अर्धाङ्गिनी का परिचय कराया। सम्भवतः कमाण्डर-इन-चीफ़ का उद्देश अपनी पत्नी को महल में भिजवा कर बेगमों से कुछ नज़रें कमाना था। पुरुषों से स्त्रियों का

इस प्रकार परिचय कराने का रिवाज भारत में न था। अवध नरेश कमाण्डर-इन-चीफ़ का मतलब न समझ सका। वह यह समझा कि कमाण्डर-इन-चीफ़ अपनी बीवी को नवाब के हाथों बेचना चाहता है। निस्सन्देह अवध के नवाब को इस तरह का सौदा रुचिकर न हो सकता था। थोड़ी देर के बाद उसने अपने मुलाज़िमों से कहा—"काफ़ी हो चुका ! इस औरत को यहाँ से हटाओ !"*

अवध के नवाब वज़ीर

अंगरेज़ों और अवध का इतिहास पूर्व के कई अध्यायों में दिया जा चुका है। उसे यहाँ पर संक्षेप में दोहराना अप्रासङ्गिक न होगा। आरम्भ में अवध का राज विशाल मुग़ल साम्राज्य का एक अंग था। अवध के नवाब दिल्ली सम्राट के पैतृक वज़ीर समझे जाते थे। धीरे धीरे मुग़ल साम्राज्य की निर्बलता के अन्तिम दिनों में अवध नरेश बहुत दरजे तक उस साम्राज्य से स्वतन्त्र होते चले गए।

कम्पनी और नवाब अवध का सम्बन्ध

कम्पनी के साथ अवध के नवाब का सम्बन्ध सन् १७६४ में प्रारम्भ हुआ। आरम्भ में अवध के नवाब को अपनी सल्तनत की रक्षा के लिए सल्तनत के अन्दर कम्पनी की सेना रखने की सलाह दी गई। इस सेना के ख़र्च के लिए सोलह लाख रुपए वार्षिक नवाब से लिए जाने लगे। धीरे धीरे इस सबसीडीयरी

---

*. *The Life and Opinions of General Sir Charles James Napier, G. C. B.,* —by Lieutenant-General Sir W. Napier, K. C. B., 2nd Edition 1857. vol. iv, p. 296.

सेना की संख्या बढ़ने लगी। उसके ख़र्च के लिए रक़म भी बढ़ती चली गई। यहाँ तक कि इस विशाल सेना के ख़र्च के लिए रुहेल-खण्ड और दोआब का इलाक़ा, जिसकी बचत उस समय दो करोड़ रुपए सालाना थी, नवाब से ले लिया गया।

सन् १८०१ में अवध के नवाब और कम्पनी के बीच एक और नई सन्धि हुई, जिसमें अंगरेज़ों ने वादा किया कि नवाब का शेष समस्त राज पीढ़ी दर पीढ़ी उसके शासन में क़ायम रहेगा और अंगरेज़ उसमें कभी किसी तरह का दख़ल न देंगे। किन्तु इसी सन्धि की एक धारा यह भी थी कि—"अंगरेज़ सरकार नवाब वज़ीर के समस्त इलाक़े को बाहर के आक्रमणों और भीतर के विद्रोहों से रक्षा करने का वादा करती है।" वास्तव में यही धारा अवध की समस्त भावी मुसीबतों की जड़ साबित हुई।

१८०१ की सन्धि

इसके बाद समय समय पर अंगरेज़ गवरनर जनरलों ने अपने भारतीय युद्धों के लिए करोड़ों रुपए, कभी बतौर क़र्ज़ के और कभी बतौर सहायता के, अवध के नवाब से वसूल किए। असंख्य अंगरेज़ शासकों और अफ़सरों की व्यक्तिगत आर्थिक कठिनाइयों को दूर करने के लिए भी अवध के ख़ज़ाने ने समय समय पर कामधेनु का काम दिया। वास्तव में अवध और करनाटक इन दो राज्यों से धन चूस चूस कर ही अधिकतर कम्पनी के बाल साम्राज्य ने भारत में अपने शरीर को हृष्ट पुष्ट किया।

अवध से क़रज़े

आए दिन की नित्य नई माँगों के कारण अवध के नवाब की आर्थिक कठिनाई बढ़ती चली गई। एक अंगरेज़ रेज़िडेण्ट लखनऊ के दरबार में रहने लगा। शासन के छोटे से छोटे मामलों में नित्य नए हस्तक्षेप होने लगे। कई छोटे छोटे इलाक़ों का शासन नवाब से कह कर अंगरेज़ अफ़सरों को सौंप दिया गया। इन अंगरेज़ अफ़सरों ने स्थान स्थान पर अपने क़ानून जारी कर दिये। इस अनुचित हस्तक्षेप के कारण प्रजा में दुख और दारिद्र्य बढ़ने लगा। नवाब ने प्रजा की दशा सुधारने के अनेक प्रयत्न किये। हर बार कम्पनी के प्रतिनिधियों ने इन प्रयत्नों को सफल होने से रोक लिया।

अंगरेज़ों का अनुचित हस्तक्षेप

अवध के शासन में कम्पनी के प्रतिनिधियों के इस अनुचित हस्तक्षेप और उसके परिणामों को वर्णन करते हुए सर हेनरी लॉरेन्स लिखता है—

हस्तक्षेप के परिणाम

"हमारे भारतीय इतिहास में अवध का अध्याय हमारे लिए एक कलङ्ककर अध्याय है। उससे हमें यह भयङ्कर चेतावनी मिलती है कि जो राजनीतिज्ञ एक बार धर्म अधर्म के सीधे नियम को छोड़ कर उसकी जगह क्षणिक उपयोगिता या अपने विचार के अनुसार 'अपने राष्ट्रीय हित' की दृष्टि से काम करने लगता है तो वह किस हद तक पहुँच सकता है। अवध के इतिहास के प्रत्येक लेखक ने जो घटनाएँ बयान की हैं उन सबसे यही सिद्ध होता है कि उस प्रान्त में अंगरेज़ों का दख़ल देना जिस दरजे अंगरेज़ों के नाम पर कलङ्क था उस दरजे तक ही अवध दरबार

और वहाँ की प्रजा के लिए नाशकर था। × × × हम जिधर भी नज़र डालते हैं, हमें अपने हस्तक्षेप के नाशकर परिणाम स्पष्ट अक्षरों में लिखे हुए दिखाई देते हैं। × × × यदि कहीं पर भी कुशासन क़ायम रखने के लिए कोई पक्की तरकीब की जा सकती है "तो वह यह है कि नरेश देशी हो, उसका वज़ीर देशी हो, दोनों की पुष्टि के लिए विदेशी सङ्गीनें हों और एक अंगरेज़ रेज़िडेण्ट उन्हें पीछे से चलाने वाला हो।"*

अवध के असहाय नवाब

जब कि एक ओर अवध के शासन में इस प्रकार पद पद पर हस्तक्षेप किया जा रहा था, दूसरी ओर अवध के नवाब को दिल्ली के दरबार से तोड़ने की पूरी कोशिशें जारी थीं। कम्पनी के प्रतिनिधि इस बात के लिए चिन्तित मालूम होते थे कि अवध के नरेश दिल्ली की ओर से सर्वथा स्वाधीन हों! यहाँ तक कि मार्किस ऑफ़ हेस्टिंग्स ने अवध के 'नवाब-वज़ीर' को 'अवध के बादशाह' की उपाधि दी और इसके बाद नवाब के उत्तराधिकारियों को इसी उपाधि से

* "Oude affords but a discreditable chapter in our Indian annals, and furnishes a fearful warning of the lengths to which a statesman may be carried, when once he substitutes expediency and his own view of public advantage, for the simple rule of right and wrong. The facts furnished by every writer on Oude affairs all testify to the same point, that British interference with that province has been as prejudicial to its Court and people as it has been disgraceful to the British name. . . . . In short, wherever we turn, we see written in distinct characters the blighting influences of our interference. . . . If ever there was a device for insuring mal government it is that of a Native Ruler and Minister, both relying on foreign bayonets, and directed by a British Resident."—Sir Henry Lawrence, In the *Calcutta Review*, for January, 1845.

पुकारा गया। किन्तु ज्यों ज्यों मुग़ल दरबार की ओर से अवध के नवाबों की स्वतन्त्रता बढ़ती गई, उतना उतना ही अंगरेज़ कम्पनी की ओर से उनकी परतन्त्रता बढ़ती चली गई; यहाँ तक कि अवध के अदूरदर्शी भारतीय नरेश कम्पनी की मित्रता के चङ्गुल में पड़ कर थोड़े ही दिनों में सर्वथा पङ्गुल होगए।

अवध निवासियों में असन्तोष

नवाब पर बार बार यह इलज़ाम लगाया जाने लगा कि तुम्हारा राज-प्रबन्ध ठीक नहीं, तुम्हारी प्रजा असन्तुष्ट है। वास्तव में जो कुछ कुप्रबन्ध या असन्तोष उस समय अवध में मौजूद था, वह अंगरेज़ों ही का जान बूझ कर पैदा किया हुआ था। लॉर्ड हेस्टिंग्स लिखता है—

"वास्तव में इस प्रकार का शासन क़ायम करने का, जिससे प्रजा सुखी हो, एक मात्र सच्चा और कारगर उपाय यही हो सकता था कि अंगरेज़ रेज़िडेण्ट को वापस बुला लिया जाय और नवाब को अपने राज के प्रबन्ध में आज़ाद छोड़ दिया जाय। इस प्रकार, उस इलाक़े के असन्तोष का सारा पाप कम्पनी के सर पर है।"*

सन् १८३७ में नवाब के साथ एक नई सन्धि की गई, जिससे नवाब को और भी अधिक जकड़ दिया गया।

*"As a matter of fact, the true and effectual way of introduction of a administration which would render the people happy would have been t call British Resident back and to give the Nabob a free hand in the adminis ation of his dominion, Thus the whole guilt of unrest in his territory res on the head of the Company."—Charles Ball's *History of the Indian Mutin* vol. i, p. 152.

नवाब वाजिदअली शाह का शासन

सन् १८४७ में नवाब वाजिदअली शाह तख़्त पर बैठा। वाजिद-अली शाह नौजवान, उत्साही और समझदार था। उसने अवध के शासन में अनेक सुधार किए। वह समझ गया कि अवध की सल्तनत का वास्तविक रोग क्या है। जिस अभागे वाजिदअली शाह के ऊपर विषय लोलुपता के असंख्य झूठे और द्वेषपूर्ण इलज़ाम लगाए जा चुके हैं, उसने तख़्त पर बैठते ही सबसे पहले अपनी रही सही सेना को सुधारने और उसे फिर से मज़बूत करने के ज़ोरदार प्रयत्न प्रारम्भ किए। सेना के अनुशासन के लिए उसने अनेक नए और कठोर नियम बनाए। उसने रोज़ अपने सामने फ़ौज से क़वायद करवानी शुरू की।

सेना का संगठन

लखनऊ दरबार की समस्त पलटनों को प्रति दिन सूर्योदय से पहले क़वायद के मैदान में जमा हो जाना पड़ता था। नवाब वाजिदअली शाह स्वयं सूर्योदय से पूर्व सेनापति की वर्दी पहन कर, घोड़े पर सवार होकर मैदान में पहुँच जाता था। यदि किसी पलटन को आने में देर होती थी तो उससे दो हज़ार रुपए जुरमाना वसूल किया जाता था। इतिहास लेखक मेटकॉफ़ लिखता है कि वाजिदअली शाह अपने नियमों का इतना पाबन्द था कि यदि कभी किसी कारण-वश उसे देर होती थी तो इतनी ही रक़म जुरमाने की वह स्वयं अदा करता था।* किन्तु वाजिदअलीशाह को प्रायः कभी भी देर

---

* *Native Narrative of the Mutiny*, by Metcalf, p. 32, 33.

न होती थी। दोपहर तक सारी पलटनें क़वायद करती थीं, और वाजिदअली शाह बराबर घोड़े पर सवार मैदान में मौजूद रहता था।

कम्पनी के प्रतिनिधियों को अवध के नवाब की ये हरकतें कहाँ पसन्द आ सकती थीं! अनेक तरह से ज़ोर डालकर नवाब को इस कार्य से रोका गया। यहाँ तक कि वाजिदअली शाह को विवश होकर क़वायद के मैदान में जाना बन्द कर देना पड़ा।

वाज़िदअली शाह पर ज़बर्दस्ती

थोड़े ही दिनों बाद डलहौज़ी का समय आया। अवध की हरी भरी भूमि का प्रलोभन डलहौज़ी के लिए कोई साधारण प्रलोभन न था। अवध के विषय में पार्लिमेण्ट की रिपोर्टों में दर्ज है—

अवध का मनोरम प्रदेश

"इस सुन्दर भूमि में हर जगह ज़मीन की सतह से बीस .फुट नीचे और कहीं कहीं दस .फुट नीचे विपुल जल भरा हुआ है। यह प्रदेश अत्यन्त मनोरम और वैभवपूर्ण है। उसमें लम्बे और ऊँचे बाँसों के जङ्गल के जङ्गल हैं, मैदानों में आम के वृक्षों की ठण्डी छाया है, खेत हरी भरी पैदावार से लहलहाते हैं। स्वयं प्रकृति ने वहाँ की भूमि को अत्यन्त सुन्दर बनाया है; उस पर इमली के वृक्षों का घना साया, सन्तरे के बाग़ों की सुगन्ध, इञ्जीर के दरख़्तों का गहरा रङ्ग और फूलों की रज की सुन्दर और व्यापक .ख़ुशबू वहाँ के दृश्य को और भी अधिक वैभव प्रदान करती रहती है!"

निस्सन्देह अवध का धन वैभव उस समय कल्पनातीत था।

इसी कारण डलहौज़ी के लिए इस प्रलोभन को जीत सकना असम्भव हो गया। किन्तु अवध के अपहरण के लिए उतना भी बहाना न मिल सका जितना नागपुर, झाँसी या सतारा के लिए। अवध के नवाबों ने सदा अंगरेज़ों की मदद की थी। सन्धि का वे सदा ईमानदारी के साथ पालन करते रहे थे। वाजिदअली शाह अपने पूर्वाधिकारी का आत्मज था, और वाजिदअली शाह के अनेक पुत्र लखनऊ के महल में मौजूद थे। फिर भी सन् १८५६ में लॉर्ड डलहौज़ी ने अपने इस निश्चय का एलान कर दिया कि अवध की सल्तनत कम्पनी के राज में मिला ली जायगी। इसका कारण यह बताया गया कि नवाब अपने शासन में उचित सुधार नहीं कर रहा है या करने के अयोग्य है!

डलहौज़ी का प्रलोभन

निस्सन्देह डलहौज़ी का यह कार्य सन् १८०१ और १८३७ की सन्धियों का साफ़ उल्लङ्घन था।

लॉर्ड डलहौज़ी की आज्ञा से लखनऊ का रेज़िडेण्ट ऊटरम महल में वाजिदअली शाह से मिलने गया। ऊटरम ने नवाब के सामने एक पत्र पेश किया, जिसमें लिखा था कि मैं ख़ुशी से अपनी सल्तनत कम्पनी को देने के लिए राज़ी हूँ। रेज़िडेण्ट ऊटरम ने उस पत्र पर दस्तख़त करने के लिए नवाब पर ज़ोर दिया। नवाब ने पत्र पढ़ कर दस्तख़त करने से साफ़ इनकार कर दिया। रिशवतों और धमकियों के ज़रिए वाजिदअली शाह के दस्तख़त कराने का प्रयत्न किया गया। तीन

अवध का अपहरण

दिन गुज़र गए, वाजिदअली शाह ने फिर भी दस्तख़त करने से इनकार किया। इस पर कम्पनी की सबसीडीयरी सेना ने सब सन्धियों को ख़ाक में मिलाकर लखनऊ के महल में ज़बरदस्ती प्रवेश किया। कम्पनी की मर्यादा के अनुसार महलों को लूटा गया, बेगमों का अपमान किया गया, वाजिदअली शाह को क़ैद करके कलकत्ते भेज दिया गया, और समस्त अवध पर कम्पनी का कब्ज़ा हो गया।

वाजिदअली शाह पर झूठे कलङ्क

इसी समय के निकट वाजिदअली शाह के शासन और उसके चरित्र पर तरह तरह के झूठे कलङ्क लगा कर अनेक पुस्तकें लिखवाई गईं। इनमें एक प्रसिद्ध पुस्तक लॉर्ड डलहौज़ी के जीवन चरित्र के रचयिता आरनॉल्ड की लिखी हुई है। हमें इन रद्दी पुस्तकों और उनके झूठे इलज़ामों पर बहस करने की आवश्यकता नहीं है। सर जॉन केके शब्दों में कम्पनी की यह एक प्रथा थी कि जिस देशी नरेश का राज छीना जाता था उसे जन सामान्य की दृष्टि में गिराने के लिए उसके चरित्र पर अनेक झूठे दोष लगाये जाते थे। किन्तु दुर्भाग्यवश आरनॉल्ड जैसों की पुस्तकों के आधार पर अनेक उपन्यास रचे गए। वाजिदअली शाह के कल्पित पाप इतिहास से इतिहास में नक़ल किए जाने लगे और आज तक वाजिदअली शाह के असंख्य देशनिवासी तक इनमें से अनेक गन्दे इलज़ामों को सच्चा मानते चले आ रहे हैं।

हमारा कदापि यह अभिप्राय नहीं है कि वाजिदअली शाह के

जीवन में अय्याशी लेशमात्र भी न थी, या यह कि उसका व्यक्तिगत चरित्र सर्वथा एक आदर्श चरित्र था। किन्तु हम उस भारतीय नरेश के साथ केवल न्याय और सत्य की दृष्टि से निम्न लिखित बातों का प्रतिपादन करते हैं—

वाजिदअली शाह का चरित्र

एक यह कि वाजिदअली शाह का अय्याशी का ज़माना केवल उस समय प्रारम्भ हुआ, जिस समय अंगरेज़ गवरनर जनरल और रेज़िडेण्ट के हस्तक्षेप द्वारा उसे अपनी फ़ौज को क़वायद कराने तक से रोका गया। उस ज़माने में भी वाजिदअली शाह की अय्याशी की निस्बत जितनी बातें कही जाती हैं, उनमें ६० फ़ीसदी कल्पित और मिथ्या हैं। और उनमें सत्य की मात्रा कदापि उससे अधिक नहीं है जितनी संसार के ६० फ़ीसदी नरेशों के जीवन में पाई जाती है और जितनी क्लाइव, वारन हेस्टिंग्स जैसे अनेक गवरनर जनरलों के जीवन में कहीं अधिक पतित और असभ्य रूप में पाई जाती थी। साथ ही इस अनुचित हस्तक्षेप से पहले वाजिदअली शाह का जीवन एक नरेश की हैसियत से असाधारण संयम का जीवन था।

दूसरी बात यह कि वाजिदअली शाह शुजाउद्दौला के बाद अवध का पहला नवाब था जिसने अपनी सल्तनत को अंगरेज़ों के प्रभाव से मुक्त करने का विचार किया, और यही उसकी आपत्तियों और उस पर झूठे कलङ्कों का कारण हुआ।

वाजिदअली शाह की स्वाधीनता

वाजिदअली शाह की सर्वप्रियता

तीसरी बात यह कि सन् १८५७ के विप्लव ने, जिसका ज़िक्र अगले अध्याय में किया जायगा, पूरी तरह साबित कर दिया कि नवाब वाजिदअली शाह अपनी हिन्दू और मुसलमान प्रजा में सर्वप्रिय था, और कम्पनी का हस्तक्षेप अवध के अन्दर किसी भी अवध निवासी को रुचिकर न था।

ताल्लुक़ेदारों के साथ ज़ुल्म

अवध के नवाबों के अधीन अधिकांश बड़े बड़े ज़मींदार और ताल्लुकेदार हिन्दू थे। कम्पनी की सत्ता जमते ही इनमें से अधिकांश की ज़मीनें छीनी जाने लगीं, उनके गाँव ज़ब्त किए जाने लगे, उनके क़िले गिराए जाने लगे। सर जॉन के लिखता है कि इन प्राचीन पैतृक ज़मींदारों के साथ 'घोर अन्याय' (a cruel wrong) किया गया। समस्त अवध के अन्दर वह ज़बरदस्ती और बरबादी शुरू हो गई जिसका परिणाम सन् १८५७ के भयङ्कर विप्लव में दिखाई दिया।

अधिकांश अंगरेज़ इतिहास लेखकों ने अत्यन्त स्पष्ट और ज़ोरदार शब्दों में अवध के नरेश और अवध की प्रजा के प्रति डलहौज़ी के इस अन्याय की घोरता को स्वीकार किया है।

इनाम कमीशन

भारत की शेष समस्त छोटी बड़ी ज़मींदारियों के लिए लॉर्ड डलहौज़ी ने इनाम कमीशन नाम की एक जाँच कमेटी क़ायम की। इस कमेटी ने समस्त भारत की लगभग ३५ हज़ार जागीरों और इनामों की जाँच की और दस

वर्ष के अन्दर उनमें से क़रीब २१ हज़ार को ज़ब्त करके कम्पनी के राज में मिला लिया।

इसके २३ वर्ष बाद के दूसरे अफ़ग़ान युद्ध और ३० वर्ष बाद के तीसरे बरमा युद्ध से पहले और कोई नया इलाक़ा ब्रिटिश भारतीय राज में नहीं मिलाया गया। वास्तव में लॉर्ड डलहौज़ी के अन्तिम दिनों में कम्पनी के राज की सीमाएँ उस हद को पहुँच गईं कि जहाँ से दूरदर्शी लोगों को निकटवर्ती महान आपत्ति की झलक दिखाई देने लगी और उस आपत्ति के आते ही भारत के अंगरेज़ शासकों की इस अपहरण नीति को एक गहरा धक्का लगा।

चवालीसवाँ अध्याय

सन् १८५७ की क्रान्ति से पहले

लार्ड कैनिङ्ग

मार्च सन् १८५६ में लॉर्ड डलहौज़ी की जगह लॉर्ड कैनिङ्ग ने भारत की गवरनर जनरली का पद ग्रहण किया। लॉर्ड कैनिङ्ग के समय की सब से अधिक महत्त्व की घटना सन् १८५७ की वह प्रसिद्ध क्रान्ति थी, जिसकी प्रचण्ड ज्वाला में एक वार इस देश के अन्दर अंगरेज़ी राज और अंगरेज़ी क़ौम का अस्तित्त्व तक भस्मीभूत होता हुआ मालूम होता था।

प्लासी का बदला

सन् ५७ का विप्लव भारत में अंगरेज़ी राज के इतिहास की सब से ज़बरदस्त और सबसे महत्त्वपूर्ण घटना थी। उस विप्लव के कारणों को ठीक ठीक समझने के लिए हमें उससे ठीक सौ वर्ष पूर्व के इतिहास पर एक

दृष्टि डालनी होगी। सन् १८५७ के विप्लव की नींव वास्तव में सन् १७५७ में प्लासी के मैदान में रक्खी गई थी। जो अनेक तरह की आवाज़ें सन् १८५७ के असंख्य संग्रामों में भारतीय सिपाहियों के मुख से निकलती हुई सुनाई देती थीं, उनमें एक आवाज़ यह भी थी—"आज हम प्लासी का बदला चुकाने वाले हैं!" मई और जून के महीनों में दिल्ली के हिन्दोस्तानी अखबारों में यह पेशीनगोई छपी थी कि ठीक प्लासी की शताब्दी के दिन अर्थात् २३ जून सन् १८५७ को भारत के अन्दर अंगरेज़ी राज का अन्त हो जायगा। इस पेशीनगोई का उत्तर से दक्खिन और पूर्व से पच्छिम तक समस्त भारत में एलान कर दिया गया, और इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि विप्लव में भाग लेने वाले भारतवासियों के दिलों पर इसका बहुत भारी प्रभाव पड़ा।

प्लासी से वेलोर के ग़दर तक

प्लासी के समय से ही अनेक भारतवासियों के दिलों में अंगरेज़ों और अंगरेज़ी राज के विरुद्ध क्रोध और असन्तोष के भाव बढ़ते जा रहे थे। क्लाइव के समय से लेकर डलहौज़ी के समय तक जिस प्रकार कम्पनी के प्रतिनिधियों ने अपने गम्भीर वादों और दस्तख़ती सन्धि-पत्रों की ख़ाक परवा न कर भारत के अगणित राजकुलों को पददलित किया और उनकी रियासतों को एक एक कर अंगरेज़ी राज में शामिल किया, जिस प्रकार देश के प्राचीन उद्योग धन्धों को नष्ट कर लाखों भारतवासियों से उनकी जीविका छीनी, जिस प्रकार असहाय बेगमों और रानियों के महलों में घुस कर उन्हें

लूटा और उनका अपमान किया, जिस प्रकार ज़मींदारों की ज़मींदारियाँ ज़ब्त करके, असंख्य प्राचीन घरानों का ख़ात्मा किया और गोरखपुर और बनारस के समान लाखों भारतीय किसानों को उनकी पैतृक ज़मीनों से बाहर निकाल कर गृहविहीन बना दिया, इस सबकी शोकास्पद कहानी पिछले अध्यायों में वर्णन की जा चुकी है। निस्सन्देह इन सब बातों के कारण भारतीय नरेशों और भारतीय प्रजा दोनों में अंगरेज़ों के विरुद्ध असन्तोष की आग भीतर ही भीतर सुलग रही थी। सन् १७८० के क़रीब पूना दरबार के प्रधान मन्त्री नाना फ़ड़नवीस और मैसूर राज के स्वामी हैदरअली का मिलकर, दिल्ली सम्राट और अन्य भारतीय नरेशों को अपनी ओर कर, अंगरेज़ों को भारत से निकालने का प्रयत्न करना इसी असन्तोषाग्नि का एक रूप और सन् १८५७ के विप्लव का पेशख़ेमा था। सन् १८०६ का वेलोर का विद्रोह भी इसी अग्नि का एक छोटा सा स्वरूप था।

राजघरानों के प्रति डलहौज़ी का बर्ताव

इसके बाद डलहौज़ी का समय आया। डलहौज़ी के समय में कम्पनी और इंगलिस्तान के नीतिज्ञों की साम्राज्य-पिपासा हद को पहुँच गई। डलहौज़ी ने महाराजा रणजीतसिंह के साथ कम्पनी की सन्धियों को ख़ाक में मिलाकर पञ्जाब पर हमला किया, लाहौर दरबार के अन्दर फूट डलवाई, दलीपसिंह और उसकी विधवा माता महारानी झिन्दाँ को पञ्जाब और भारत दोनों से देश निकाला दिया, और पञ्जाब के उर्वर प्रान्त को कम्पनी

के राज में शामिल कर लिया। डलहौज़ी ने निरपराध बरमा के साथ युद्ध छेड़ कर पगू के प्रान्त को बरमा राज से पृथक कर लिया। भारतीय नरेशों में गोद लेने की प्राचीन प्रथा का तिरस्कार कर डलहौज़ी ने सतारा, झाँसी, नागपुर इत्यादि अनेक रियासतों का अन्त कर उन्हें अंगरेज़ी राज में शामिल कर लिया। नवाब के 'कुशासन' का बहाना लेकर उसने सन् १८५६ में अवध की ज़रखेज़ सल्तनत को कम्पनी के राज में मिला लिया, नवाब वाजिदअली शाह को क़ैद करके कलकत्ते भेज दिया और भारत के सैकड़ों पुराने ताल्लुक़ेदारों और ज़मींदारों की पैतृक जागीरें छीन कर उन्हें कङ्गाल बना दिया।

साधारण प्रजा के साथ अंगरेज़ों का बर्ताव

यह सब व्यवहार तो भारतीय नरेशों और सरदारों के साथ हुआ। किन्तु साधारण प्रजा के साथ भी अंगरेज़ों का व्यवहार अनेक प्रकार से दिन प्रति दिन अधिकाधिक धृष्ट और असह्य होता जा रहा था। स्थान स्थान पर अंगरेज़ अफ़सर अपने सामने से घोड़े पर आने वाले हिन्दोस्तानियों को घोड़े से उतर कर चलने के लिए विवश करते थे। उनके धार्मिक और सामाजिक रिवाज की भी परवा न की जाती थी।

सहारनपुर का अंगरेज़ी अस्पताल

लॉर्ड डलहौज़ी के शुरू के दिनों में सहारनपुर में एक नया अंगरेज़ी अस्पताल बना, जिसमें हर मज़हब के पुरुष और स्त्री रोगियों को आने की आज्ञा दी गई। सहारनपुर के अंगरेज़ हाकिमों ने यह

एलान प्रकाशित किया कि हर जात के रोगी, पुरुष और स्त्री, यहाँ तक कि परदानशीन स्त्रियाँ भी इलाज के लिए इसी अस्पताल में आवें और कोई देशी हकीम या वैद्य न किसी रोगी को दवा दे और न किसी का इलाज करे।

इस एलान के प्रकाशित होते ही सहारनपुर की जनता में तहलका मच गया। लोगों के भाव यहाँ तक बिगड़े कि अफ़सरों को अपना एलान वापस ले लेना पड़ा।*

इस तरह के अनुचित व्यवहार की और भी अनेक मिसालें दी जा सकती हैं।

अंगरेज़ों के अनुचित व्यवहार की कुछ मिसालें

फिर भी मोटे तौर पर सन् १८५७ की क्रान्ति के पाँच मुख्य कारण कहे जा सकते हैं—

१—दिल्ली सम्राट के साथ अंगरेज़ों का लगातार अनुचित व्यवहार।

२—अवध के नवाब और अवध की प्रजा के साथ अत्याचार।

३—डलहौज़ी की अपहरण नीति।

४—अन्तिम पेशवा बाजीराव के दत्तक पुत्र नाना साहब के साथ कम्पनी का अन्याय। और

५—भारतवासियों को ईसाई बनाने की आकांक्षा और भारतीय सेना में ईसाई मत प्रचार।

इनमें से एक एक कारण को थोड़े विस्तार के साथ बयान करना आवश्यक है।

---

* *Narrative of the Indian Revolt*, p. 359.

दिल्ली सम्राट और अंगरेज़

सम्राट शाहआलम के समय तक, जो सन् १७५६ से १८०६ तक दिल्ली के तख़्त पर रहा, भारत में रहने वाले समस्त अंगरेज़ अपने तईं दिल्ली सम्राट की प्रजा कहा करते थे। सम्राट के फ़रमानों द्वारा ही अंगरेज़ कम्पनी को अपनी तिजारती कोठियाँ बनाने के लिये कलकत्ता, मद्रास, सूरत आदिक में जागीरें मिलीं। उन जागीरों के लिए अंगरेज़ दिल्ली दरबार को बराबर ख़िराज देते थे और गवरनर जनरल से लेकर छोटे से छोटे तक जो अंगरेज़ सम्राट के दरबार में जाता था वह शेष दरबारियों के समान आदाब बजा लाता था, सम्राट को नज़र पेश करता था, और अपने स्थान पर अदब के साथ खड़ा रहता था। हर गवरनर जनरल की मुहर में "दिल्ली के बादशाह का फ़िदवी ख़ास" (अर्थात् विशेष नौकर) ये शब्द खुदे रहते थे। शाहआलम ने सबसे पहले १७६५ में क्लाइव को बङ्गाल और बिहार की दीवानी के अधिकार प्रदान किए।

सम्राट शाहआलम और माधोजी सींधिया

इसके बाद धीरे धीरे दिल्ली सम्राट के दरबार में साज़िशें और ख़ानेजङ्गियाँ बढ़ती गईं। दिल्ली सम्राट का बल घटता गया और अंगरेज़ कम्पनी का बल बढ़ता गया। माधोजी सींधिया ने दिल्ली पर चढ़ाई करके भारत सम्राट के बल को फिर से थोड़ा बहुत स्थापित किया और सम्राट, उसकी राजधानी और आस पास के इलाक़े की सैनिक रक्षा का भार अपने हाथों में लिया। सम्राट शाहआलम की लिखी हुई एक फ़ारसी कविता अभी तक

प्रचलित है, जिसमें उसने माधोजी सींधिया को अपना "फ़रज़न्द जिगरबन्दे मन" कहा है और उसकी दिल से तारीफ़ की है।* कम्पनी ने भारत में अपना राज जमाने के लिये मराठों की बढ़ती हुई सत्ता को कुचलना आवश्यक समझा। यह दूसरे मराठा युद्ध का समय था।

लेक का इक़रारनामा

जनरल लेक ने कम्पनी की ओर से एक "इक़रारनामा" लिखकर अपने दस्तख़तों से शाहआलम के सामने पेश किया, जिसमें कम्पनी ने शाहआलम से यह वादा किया कि हम समस्त देश पर आपका प्राचीन क्रियात्मक आधिपत्य फिर से क़ायम कर देंगे, इत्यादि। अभागा, निर्बल और अदूरदर्शी शाहआलम फिर अंगरेज़ों की चालों में आ गया। शाहआलम ही की मदद से अंगरेज़ों ने सन् १८०४ में मराठों को दिल्ली से निकाल दिया, अपने तई सम्राट की वफ़ादार और फ़रमाँबरदार प्रजा ज़ाहिर किया, सम्राट के निजी ख़र्च के लिए १२ लाख रुपए सालाना का तुरन्त प्रबन्ध कर दिया और राजधानी की सैनिक रक्षा का भार अपने हाथों में ले लिया। उस समय तक भी अंगरेज़ दिल्ली सम्राट के देशव्यापी मान, मराठों और अफ़ग़ानों के बल और अपनी निर्बलता के कारण दिल्ली सम्राट और उसके ऊपरी मान को क़ायम रखना और अपने तई सम्राट की प्रजा ज़ाहिर करना आवश्यक समझते थे।

---

* माधोजी सींधिया फ़रज़न्द जिगरबन्दे मन, हस्त मसरूफ़ तलाफ़ीए सितमगारि-ए-मा।

भारत सम्राट और उसके हितचिन्तकों को सबसे पहला सन्देह अंगरेज़ों की नीयत के विषय में उस समय हुआ जिस समय कि लॉर्ड वेलसली ने यह तजवीज़ की कि शाहआलम और उसके दरबार को दिल्ली के लाल क़िले से हटा कर मुङ्गेर के क़िले में लाकर रक्खा जाय। लिखा है कि वृद्धा शाहआलम इस तजवीज़ को सुनते ही क्रोध से भर गया। लॉर्ड वेलसली को अपनी तजवीज़ के वापस ले लेने में ही कुशल दिखाई दी। किन्तु अनेक दिल्ली निवासियों के चित्त उसी समय से अंगरेज़ों की ओर से सशङ्क हो गये। दिल्ली के अन्दर १८५७ के विप्लव का एक प्रकार यही बीजारोपण था। इसके बाद ही सन् १८०६ में शाहआलम की मृत्यु हुई।

लॉर्ड वेलसली की तजवीज़

शाहआलम के बाद अकबरशाह दिल्ली के तख़्त पर बैठा। इससे पहले सीटन दिल्ली में कम्पनी के रेज़िडेण्ट की हैसियत से रहा करता था। सीटन जब कभी दरबार में जाता था तो निम्न श्रेणी के एक भारतीय अमीर के समान सम्राट के सामने बाक़ायदा 'तसलीम, कोरनिश और मुजरा' किया करता था और सम्राट-कुल के प्रत्येक बच्चे की ओर यथोचित मान दर्शाता था। किन्तु सीटन के बाद चार्ल्स मेटकॉफ़ रेज़िडेण्ट नियुक्त हुआ। मेटकॉफ़ ने तुरन्त अपने अंगरेज़ मालिकों की आज्ञा से सम्राट अकबरशाह की ओर अपना व्यवहार बदल दिया और अनेक ऐसी हरकतें करनी शुरू कर दीं जो सम्राट और उसके दरबार के लिए अपमानजनक थीं।

सम्राट अकबरशाह

सम्राट और उसके हितचिन्तकों के दिलों में अंगरेज़ों की ओर से घृणा बढ़ती चली गई। दिल्ली में अंगरेज़ों के विरुद्ध असन्तोष फैलने का यह दूसरा कारण हुआ।

सम्राट अकबरशाह ने अपने एक पुत्र मिरज़ा सलीम को, जिसे मिरज़ा जहाँगीर भी कहते थे, युवराज नियुक्त करना चाहा। कहा जाता है, मिरज़ा सलीम अंगरेज़ों से घृणा करता था। अंगरेज़ों ने किसी बहाने मिरज़ा सलीम को इलाहाबाद भेज कर वहाँ नज़रबन्द कर दिया। सम्राट-दरबार का बल अनेक आन्तरिक कारणों से पहले ही क्षीण हो रहा था। सम्राट ने इसके बाद अपने एक दूसरे बेटे मिरज़ा नीली को युवराज बनाने का प्रयत्न किया। अंगरेज़ों ने इसका भी विरोध किया। सन् १८३७ में सम्राट अकबरशाह की मृत्यु हुई और अन्त में सम्राट बहादुरशाह अपने पिता के सिंहासन पर बैठा।

राजा राममोहन राय

जनरल लेक ने सम्राट शाहआलम को जो 'इक़रारनामा' लिख कर दिया था वह अभी तक पूरा न किया गया था। सम्राट अकबरशाह ने उस इक़रारनामे की शर्तों को पूरा कराना चाहा, किन्तु उसे भी सफलता न हो सकी। इस पर अकबरशाह ने राजा राम मोहन राय को अपना एलची नियुक्त करके इङ्गलिस्तान भेजा। वहाँ पर भी राजा राममोहन राय की किसी ने न सुनी और इङ्गलिस्तान के शासकों ने कम्पनी की मुहर लगे हुए 'इक़रारनामे' को क़दर रद्दी काग़ज़ से अधिक न की। इस बात की ख़बर जब दिल्ली पहुँची तो वहाँ के

लोगों को अंगरेज़ों के रहते दिल्ली और दिल्ली के सम्राट-कुल के भविष्य के सम्बन्ध में तरह तरह की गहरी शङ्काएँ होने लगीं।

सम्राट बहादुरशाह और अंगरेज़

सम्राट बहादुरशाह ने भी 'इक़रारनामे' की एक शर्त के अनुसार अपने ख़र्च की रक़म को बढ़वाना चाहा। इस बीच दिल्ली और उसके पास के इलाक़े के ऊपर कम्पनी का पञ्जा कसता जा रहा था, और वह दिल्ली सम्राट, जो कुछ समय पहले समस्त भारत के ख़ज़ानों का मालिक समझा जाता था, अब अपने सहस्रों कुटुम्बियों और आश्रितों सहित बड़ी आर्थिक कठिनाई के साथ दिल्ली के क़िले के अन्दर दिन बिता रहा था। सम्राट को उत्तर मिला कि यदि आप अपने और अपने वंशजों के समस्त रहे सहे अधिकार विधिवत् कम्पनी को सौंप दें तो ख़र्च की रक़म बढ़ा दी जायगी। बहादुरशाह ने स्वीकार न किया। दिल्ली के अन्दर अंगरेज़ों के विरुद्ध असन्तोष के बढ़ने का यह तीसरा ज़बरदस्त कारण हुआ।

सम्राट की नज़रें बन्द

प्रत्येक ईद को, नौरोज़ को और सम्राट की साल गिरह के दिन गवरनर जनरल और कमाण्डर-इन-चीफ़ दोनों सम्राट के दरबार में हाज़िर होकर या रेज़िडेण्ट द्वारा सम्राट के सामने नज़रें पेश किया करते थे। सन् १८३७ में बहादुरशाह के तख़्त पर बैठने के समय भी ये नज़रें पेश की गई थीं। किन्तु इसके कुछ वर्ष बाद लॉर्ड एलेनब्रू ने गवरनर जनरल बनते ही इन नज़रों का पेश किया जाना बन्द कर दिया। यह नज़र का बन्द किया जाना पूर्वोक्त असन्तोष का चौथा

कारण गिना जा सकता है। इसी तरह की और भी अनेक बातों में अंगरेज़ों ने पद पद पर दिल्ली सम्राट का अपमान करना शुरू कर दिया।

जवाँबख़्त को युवराज बनाने का प्रश्न

सन् १८३९ में सम्राट बहादुरशाह के पुत्र युवराज दाराबख़्त की मृत्यु हुई। सम्राट उसके बाद बेगम ज़ीनत महल के पुत्र शाहज़ादे जवाँबख़्त को युवराज नियुक्त करना चाहता था। सन् ५७ में साबित हो गया कि ज़ीनतमहल की योग्यता और सङ्गठन शक्ति दोनों असाधारण थीं और जवाँबख़्त एक होनहार और ख़ुद्दार युवक था। अंगरेज़ ज़ीनतमहल और उसके पुत्र दोनों के विरुद्ध थे। रेज़िडेण्ट और गवरनर जनरल के उस समय के पत्रों से ज़ाहिर है कि वह भविष्य के लिए हिन्दोस्तान के 'बादशाह' की उपाधि को ही तोड़ देने की चिन्ता में थे। गवरनर जनरल ने गुप्त साज़िश द्वारा बहादुरशाह के एक दूसरे पुत्र मिरज़ा फ़ख़रू से एक अहदनामा लिखवा लिया, जिसमें एक शर्त यह थी कि यदि मुझे युवराज बनवा दिया गया तो तख़्त पर बैठते ही मैं, दिल्ली का लाल क़िला छोड़ कर, जहाँ अंगरेज़ कहेंगे वहाँ जाकर रहने लगूँगा। बहादुरशाह को जब इसका पता चला तो उसने एतराज़ किया। फिर भी कहा जाता है कि बहादुरशाह की इच्छा के विरुद्ध मिरज़ा फ़ख़रू ही के युवराज नियत होने का दिल्ली में एलान कर दिया। यह समय लॉर्ड डलहौज़ी का समय था। राजधानी के अन्दर अंगरेज़ों के विरुद्ध गहरे असन्तोष का यह पाँचवा कारण हुआ।

सन् १८५८ में मिरज़ा फ़खरू की भी मृत्यु हो गई। रेज़िडेण्ट टॉमस मेटकॉफ़ बहादुरशाह के दरबार में मिलने गया। बहादुरशाह के उस समय नौ बेटे थे, जिनमें सब से होनहार और होशियार मिरज़ा जवाँबख़्त समझा जाता था। बहादुरशाह ने एक पत्र रेज़िडेण्ट को दिया जिसमें लिखा था कि जवाँबख़्त को युवराज बनाया जाय। इस पत्र के साथ एक अलग पत्र था, जिस पर बाक़ी आठों शहज़ादों के दस्तख़त थे और यह लिखा था कि हम सब जवाँबख़्त के युवराज बनाए जाने से ख़ुश हैं और यही चाहते हैं।

मिरज़ा क़ोयाश के साथ साज़िश

इस पर अंगरेज़ों ने इन आठ शहज़ादों में से एक मिरज़ा क़ोयाश को फिर अपनी ओर फोड़ा। मिरज़ा क़ोयाश से गवरनर जनरल के नाम एक गुप्त पत्र लिखाया गया। इस अवसर पर गवरनर जनरल ने रेज़िडेण्ट को लिखा :—

"सम्राट के ऊपरी वैभव और ऐश्वर्य के अनेक भूषण उतर चुके हैं, जिससे उस वैभव की पहली सी चमक दमक नहीं रही, और सम्राट के वे अधिकार, जिन पर तैमूर के कुल वालों को घमण्ड था, एक दूसरे के बाद छिन चुके हैं, इसलिए बहादुरशाह के मरने के बाद क़लम के एक झोंके में 'बादशाह' की उपाधि का अन्त कर देना कुछ भी कठिन नहीं है। बादशाह की नज़र, जो गवरनर जनरल और कमाण्डर-इन-चीफ़ देते थे, बन्द हुई। कम्पनी का सिक्का जो बादशाह के नाम से ढाला जाता था वह भी बन्द कर दिया गया। गवरनर जनरल की मोहर में जो पहले "बादशाह का

फ़िदवी ख़ास" (बादशाह का विशेप नौकर) ये शव्द रहते थे वे निकाल दिए गए। और हिन्दोस्तानी रईसों को मनाही कर दी गई कि वे भी अपनी मोहरों में बादशाह के प्रति ऐसे शव्दों का उपयोग न करें। इन सब बातों के बाद अब गवरमेण्ट ने फ़ैसला कर लिया है कि दिखावे की अब कोई बात भी ऐसी बाक़ी न रक्खी जाय जिससे हमारी गवरमेण्ट बादशाह के अधीन मालूम हो। इस लिए दिल्ली के 'बादशाह' की उपाधि एक ऐसी उपाधि है जिसका रहने देना या न रहने देना गवरमेण्ट की इच्छा पर निर्भर है।"*

क़ोयाश के साथ शर्तें

गवरनर जनरल ने शहज़ादे जवाँबख़्त के विरुद्ध मिरज़ा क़ोयाश को युवराज स्वीकार किया। सम्राट को इसकी सूचना दे दी गई, और मिरज़ा क़ोयाश से ये तीन शर्तें कर ली गईं—(१) तुम्हें 'बादशाह' के स्थान पर केवल 'शहज़ादा' कहा जाया करेगा (२) तुम्हें दिल्ली का क़िला ख़ाली करना होगा और (३) एक लाख मासिक के स्थान पर तुम्हें १५ हज़ार रुपए मासिक ख़र्च के लिए मिला करेंगे।

इस समाचार को पाते ही सम्राट बहादुरशाह और दिल्ली निवासियों के दिलों में क्रोध की आग भड़क उठी। यह छठा और अन्तिम कारण था जिसने दिल्ली वालों को विप्लव के लिए कटिबद्ध कर दिया, और वे जिस तरह हो, अंगरेज़ों के पंजे से देश को आज़ाद करने के उपाय सोचने लगे। यह घटना सन् १८५६ की थी। इसके अगले वर्ष ही भारत में इस ओर से उस ओर तक आग लगी हुई दिखाई दी।

* ख्वाजा हसन निज़ामी कृत "देहली की जांकनी"

अवध के साथ अत्याचार

विप्लव का दूसरा मुख्य कारण था अवध के नवाब और अवध की प्रजा के ऊपर कम्पनी के अत्याचार। विप्लव से केवल एक वर्ष पहले बिना किसी बहाने के अवध की समस्त सल्तनत के अंगरेज़ी राज में मिला लिए जाने और नवाब वाजिदअली शाह के निर्वासित कर कलकत्ते भेजे जाने का ज़िक्र पिछले अध्याय में किया जा चुका है। लिखा जा चुका है कि किस प्रकार कम्पनी की सेना ने ज़बरदस्ती लखनऊ पर क़ब्ज़ा किया, महल को लूटा और बेगमों का अपमान किया। अवध के मुसलमान नवाब के अधीन अधिकांश बड़े बड़े ज़मींदार और ताल्लुक़ेदार हिन्दू थे। इन असंख्य ज़मींदारों और ताल्लुक़ेदारों की पैतृक ज़मींदारियां बिना किसी कारण छीन ली गईं और उनमें से अनेक को दरबदर घूमने पर विवश किया गया। इतिहास लेखक के लिखता है कि बहुत कम पुराने ज़मींदार या तालुक़ेदार इस अन्याय से बच सके। इतिहास से पता चलता है कि अवध के सहस्रों ग्रामों के लाखों किसान नवाब वाजिदअली शाह और उसके कुटुम्बियों की इस विपत्ति का हाल सुन कर रो पड़ते थे और सहस्रों ग्राम निवासी अपने गृह विहीन ज़मींदारों और ताल्लुक़ेदारों से मिल कर उनके साथ सहानुभूति प्रकट करते थे। नवाब से लेकर छोटे से छोटे किसान तक सब कम्पनी की नई अमलदारी से दुखी थे। कम्पनी की फ़ौज के अधिकांश हिन्दोस्तानी सिपाही अवध ही से लिए जाते थे, इसलिए अवध निवासियों के साथ लॉर्ड डलहौज़ी के अत्याचारों ने समस्त

अवध और अंगरेज़ी फ़ौज दोनों के अन्दर गहरे असन्तोष के बीज बो दिए।

डलहौज़ी की अपहरण नीति

तीसरा मुख्य कारण लॉर्ड डलहौज़ी की व्यापक अपहरण नीति थी। एक दूसरे के बाद सतारा, पञ्जाब, झाँसी, नागपुर, पगू, सिक्किम, सम्बलपुर इत्यादि रियासतों के अपहरण का ज़िक्र पिछले अध्यायों में किया जा चुका है। इन भारतीय रियासतों को आम तौर पर जिस प्रकार कम्पनी के राज में मिलाया जाता था और उसका जो नतीजा होता था उसके विषय में मद्रास कौन्सिल का सदस्य जॉन सलीवन लिखता है—

"जब किसी देशी रियासत का अन्त किया जाता है, तो वहाँ के नरेश को हटा कर एक अंगरेज़ उसकी जगह नियुक्त कर दिया जाता है। उस अंगरेज़ को कमिश्नर कहा जाता है। तीन या चार दर्जन ख़ानदानी देशी दरबारियों और मन्त्रियों के स्थान पर कमिश्नर के तीन वा चार सलाहकार नियुक्त हो जाते हैं। प्रत्येक देशी नरेश जिन सहस्रों सैनिकों का पालन करता है उनकी जगह हमारी सेना के चन्द सौ सिपाही नियुक्त कर दिए जाते हैं। वह पुराना छोटा सा दरबार लोप हो जाता है, वहाँ का व्यापार ढीला पड़ जाता है, राजधानी वीरान हो जाती है, लोग निर्धन हो जाते हैं, अंगरेज़ फलते फूलते हैं और स्पञ्ज की तरह गङ्गा के किनारे से धन खींच कर उसे टेम्स के किनारे जाकर निचोड़ देते हैं।"*

---

* "Upon the extermination of a native state, an Englishman takes the place of the sovereign under the name of Commissioner; three or four of his associates displace as many dozen of the native official aristocracy, while

इन रियासतों के अपहरण का ज़िक्र करते हुए इतिहास लेखक लडलो लिखता है —

"निस्सन्देह यदि इस तरह के हालात में जिन नरेशों की रियासतें अंगरेज़ी राज में मिला ली गईं उनके पक्ष में अंगरेज़ों के विरुद्ध भारतवासियों के भाव न भड़क उठते तो भारतवासियों को मनुष्यत्व से गिरा हुआ कहा जाता। निस्सन्देह एक भी स्त्री ऐसी न होगी जिसे इन रियासतों के अपहरण ने हमारा शत्रु न बना दिया हो, एक भी बच्चा ऐसा न होगा जिसे हमारे इन कार्यों के कारण फ़िरङ्गी राज के विरुद्ध आरम्भ से घृणा की शिक्षा न दी जाती हो।"*

निस्सन्देह सन् १८५७ तक भारतवासी 'मनुष्यत्व से इतने गिरे हुए' न थे।

लॉर्ड डलहौज़ी के उस 'इनाम कमीशन' का ज़िक्र भी पिछले अध्याय में किया जा चुका है कि जिसने १० वर्ष के अन्दर भारत की २१ हज़ार प्राचीन ज़मींदारियाँ ज़ब्त कर लीं और समस्त भारत के अन्दर सहस्रों पुराने घरानों को बरबाद कर दिया।

some hundreds of our troops take the place of the many thousands that every native chief supports. The little court disappears, trade languishes, the capital decays, the people are impoverished, the Englishman flourishes, and acts like a sponge, *drawing up riches from the banks of the Ganges*, and squeezing them down upon the banks of the Thames."—*A plea for the Princes of India*, by John Sullivan, Member of the Madras Council, p. 67.

* "Surely, the natives of India must be less than men if their feelings could not be moved under such circumstances in favour of the victims of annexation, and against the annexer. Surely there was not a woman whom such annexations did not tend to make our enemy, not a child whom they did not tend to train up in hatred to the *Firangee* rule"— Ludlow's *Thoughts on the Policy of the Crown*, pp. 35, 36.

निस्सन्देह इन काररवाइयों ने देश भर के अन्दर लाखों भारत-वासियों को अंगरेज़ों की ओर से दुखी और बेज़ार कर दिया था।

नाना साहब के साथ अन्याय

चौथा कारण पेशवा बाजीराव के दत्तक पुत्र सुप्रसिद्ध नाना साहब के साथ कम्पनी का अन्याय था। सन् १८५१ में अन्तिम पेशवा बाजीराव की मृत्यु हुई। बाजीराव के राज के बदले में कम्पनी ने सन् १८१८ में उसे "उसके, उसके कुटुम्बियों और उसके आश्रितों के पोषण के लिए" आठ लाख रुपए सालाना देते रहने का वादा किया था। सन् १८२७ में बाजीराव ने नाना धुन्धपन्त को गोद लिया। नाना की आयु उस समय तीन वर्ष की थी। कानपुर के पास बिठूर में पेशवा के साथ उस समय लगभग आठ हज़ार पुरुष, स्त्री और बच्चे रहा करते थे। इन सबका पोषण इसी आठ लाख रुपए सालाना की पेनशन से होता था। बाजीराव के मरते ही गवरनर जनरल डलहौज़ी ने इस पेनशन को बन्द कर दिया। बाजीराव की मृत्यु के पहले की पेनशन के ६२ हज़ार रुपए कम्पनी की ओर बाक़ी थे। डलहौज़ी ने इसे भी देने से इनकार किया। नाना साहब को यह भी नोटिस दे दिया गया कि बिठूर की जागीर भी तुमसे जिस समय चाहें छीन ली जायगी।

समस्त अंगरेज़ इतिहास लेखक स्वीकार करते हैं कि इससे पूर्व युवक नाना साहब का व्यवहार अंगरेज़ों के प्रति बहुत ही अच्छा था। सर जॉन के लिखता है कि नाना—

"शान्त स्वभाव और आडम्बर रहित युवक था, उसमें कोई भी बुरी

आदत नहीं थी और वह अंगरेज़ कमिश्नर की सलाह मानने के लिए सदा तैयार रहता था।"*

नाना की मेहमाँ नवाज़ी

कानपुर के समस्त अंगरेज़ और उनकी मेमें नाना साहब के महल में जाकर ठहरती रहती थीं। नाना उनकी खूब ख़ातिर तवाज़ो करता था और चलते समय क़ीमती दुशाले और आभूषण उनको भेंट करता रहता था। नाना के हाथी, घोड़े और गाड़ियाँ सदा अंगरेज़ों की सेवा के लिए खड़ी रहती थीं। फिर भी लॉर्ड डलहौज़ी ने बाजीराव के मरते ही नाना साहब की पेनशन को बन्द कर दिया। नाना ने अपने ख़र्च, कठिनाइयाँ और कम्पनी की सन्धियों को दर्शाते हुए डलहौज़ी के पास प्रार्थना पत्र भेजा कि पेनशन जारी रक्खी जाय। नाना ने इङ्गलिस्तान के शासकों से अपील की और अपना एक योग्य वकील अज़ीमुल्लाँ ख़ाँ को इस कार्य के लिए विलायत भेजा। किन्तु वहाँ पर भी नाना के साथ किसी ने न्याय न किया। सर जॉन के, चार्ल्स बॉल, ट्रेवेलियन और मार्टिन चारों प्रसिद्ध अङ्गरेज़ इतिहास लेखक स्वीकार करते हैं कि न्याय नाना के पक्ष में था। परिणाम यह हुआ कि उसी समय से युवक नाना साहब के चित्त में अंगरेज़ों की ओर से घृणा उत्पन्न हो गई और वह अपने को और अपने देश को अंगरेज़ों के पंजे से छुड़ाने की तदबीरें सोचने लगा।

* "Quiet, unostentatious young man, not at all addicted to any extravagant habits, and invariably showing a ready disposition to attend to the advice of the British Commissioner."—*History of the Sepoy War* by Sir John Kaye, vol. i. p. 101.

विप्लव का पाँचवाँ कारण था भारतवासियों को ईसाई बनाने की आकांक्षा और विशेष कर हिन्दोस्तानी सेनाओं में अंगरेज़ अफ़सरों का ईसाई मत प्रचार। सन् ५७ के बहुत पहले से अनेक बड़े बड़े अंगरेज़ नीतिज्ञों को भारतवासियों के ईसाई हो जाने में ही अपने राज की स्थिरता दिखाई देती थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अध्यक्ष मिस्टर मैङ्गल्स ने सन् १८५७ में पार्लिमेण्ट के अन्दर कहा था :—

भारतवासियों को ईसाई बनाने की आकांक्षा

"परमात्मा ने हिन्दोस्तान का विशाल साम्राज्य इङ्गलिस्तान को सौंपा है, इसलिए ताकि हिन्दोस्तान के एक सिरे से दूसरे सिरे तक ईसा मसीह का विजयी झण्डा फहराने लगे। हममें से हर एक को अपनी पूरी शक्ति इस काम में लगा देनी चाहिए, ताकि समस्त भारत को ईसाई बनाने के महान कार्य में देश भर के अन्दर कहीं पर भी किसी कारण ज़रा भी ढील न होने पाए।"*

यह वाक्य ब्रिटिश भारतीय राजनीति की दृष्टि से उस समय के सब से अधिक ज़िम्मेदार अंगरेज़ नीतिज्ञ का है। उसी समय के निकट एक दूसरे विद्वान अंगरेज़ रेवरेण्ड कैनेडी ने लिखा :—

"हम पर कुछ भी आपत्तियाँ क्यों न आएँ जब तक भारत में हमारा

* "Providence has entrusted the extensive Empire of Hindustan to England in order that the banner of Christ should wave triumphant from one end of India to the other. Every one must exert all his strength that there may be no dilatoriness on any account in continuing in the country the grand work of making all India Christian."—Mr. Mangles, Chairman of the Directors of the East India Company, in the House of Commons. 1857.

साम्राज्य क़ायम है तब तक हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हमारा मुख्य कार्य इस देश में ईसाई मत को फैलाना है। जब तक रास कुमारी से लेकर हिमालय तक सारा हिन्दोस्तान ईसा के मत को ग्रहण न कर ले और हिन्दू और मुसलमान धर्मों की निन्दा न करने लगे तब तक हमें लगातार प्रयत्न करते रहना चाहिए। इस कार्य के लिए हम जितने भी प्रयत्न कर सकें, हमें करने चाहिएँ और हमारे हाथों में जितने अधिकार और जितनी सत्ता है, उसका इसी के लिए उपयोग करना चाहिए।"*

इसी तरह के और भी वाक्य उस समय के अनेक अंगरेज़ नीतिज्ञों, शासकों और विद्वानों के उद्धृत किए जा सकते हैं। यही विचार लॉर्ड मैकॉले के लेखों में पाया जाता है और यही एक दरजे तक ब्रिटिश भारतीय शिक्षा प्रणाली की जड़ में मौजूद है।

धार्मिक भावों पर आघात

कारण स्पष्ट है। अंगरेज़ नीतिज्ञ इस बात को समझते थे कि किसी जाति को देर तक पराधीन रखने के लिए उसमें किसी प्रकार का राष्ट्रीय अभिमान या अपनी श्रेष्ठता या अपने प्राचीनत्व की आन का विचार नहीं रहने देना चाहिए; और कम से कम उस समय भारत वासियों को सब से अधिक अभिमान अपने धर्म का था, धर्म ही

* "Whatever misfortunes come on us, as long as our Empire in India continues, so long let us not forget that our chief work is the propagation of Christianity in the land until Hindostan, from Cape Comorin to the Himalayas, embraces the religion of Christ and until it condemns the Hindu and the Moslem religions, our efforts must continue persistently. For this work, we must make all the efforts we can and use all power and all the authority in our hands; . . . "—Rev. Kennedy, M. A.

उनकी मुख्य आन थी; इसलिए भारतवासियों को धर्मच्युत कर देना उनके राष्ट्रीय अभिमान और हौसलों को एक दीर्घ काल के लिए अन्त कर देना था। अनन्त काल तक उन्हें विदेशी राज के भक्त और उसकी विनीत प्रजा बनाए रखने का यही सब से अच्छा उपाय हो सकता था।

मज़हबी जोश के साथ ईसाई मत प्रचार

मद्रास के गवरनर की हैसियत से लॉर्ड विलियम वेरिटङ्क ने जिस प्रकार अपने प्रान्त और विशेष कर वहाँ की सेना के अन्दर ईसाई मत प्रचार को सहायता और उत्तेजना दी उसी का परिणाम सन् १८०६ की वेलोर के सिपाहियों की बग़ावत थी, जिसका ज़िक्र ऊपर एक अध्याय में किया जा चुका है। गवरनर जनरल होने के बाद भी लॉर्ड वेरिटङ्क की यह नीति इसी प्रकार जारी रही। सन् १८३२ में एक नया क़ानून पास किया गया जिसका मतलब यह था कि जो भारतवासी ईसाई हो जायँ, उनका अपनी पैतृक सम्पत्ति पर पूर्ववत् अधिकार बना रहे। अंगरेज़ी राज के स्थापन होने के साथ साथ असंख्य प्राचीन मन्दिरों और मस्जिदों की माफ़ी की जागीरें छिन गईं। क़ैदियों के लिए जेल खाने में अपने धर्म का पालन कर सकना असम्भव कर दिया गया। लॉर्ड डलहौज़ी ने भारतवासियों की गोद लेने की प्राचीन धार्मिक प्रथा को नाजायज़ क़रार दिया, और भी अनेक इस तरह के कार्य किए गए जो भारतवासियों के धार्मिक नियमों और उनके धार्मिक रस्म रिवाज के स्पष्ट विरुद्ध थे। स्वयं लॉर्ड कैनिङ्ग ने

लाखों रुपए ईसाई मत प्रचारकों में वितरण किए। भारतीय ख़ज़ाने से पादरी बिशपों और आर्क बिशपों को बड़ी बड़ी तनख़्वाहें मिलने लगीं। दफ़्तरों के अन्दर अनेक अंगरेज़ अफ़सर अपने भारतीय मातहतों पर ईसाई होने के लिए ज़ोर देने लगे।

अनेक अंगरेज़ ईसाई पादरी अपनी वक्तृताओं और पत्रिकाओं में हिन्दू और मुसलमान धर्मों की घोर निन्दा करने लगे और दोनों धर्मों के पूज्य पुरुषों के लिए अनुचित शब्दों का उपयोग करने लगे।

२२ मार्च सन् १८३२ को पार्लिमेण्ट की सिलेक्ट कमेटी के सामने गवाही देते हुए कप्तान टी० मैकेन ने बयान किया—

"× × × बहुत से योग्य भारतीय मुसलमानों ने मुझसे बयान किया है कि गवर्नमेण्ट ईसाई पादरियों के साथ बड़ी रिआयतें करती है और ये पादरी लोग उनके धार्मिक रिवाज़ों की गलियों तक में निन्दा करने में हद को पहुँच जाते हैं। इनमें से एक पादरी हिन्दू मुसलमान जनता को व्याख्यान देते हुए कह रहा था—'तुम लोग मोहम्मद के ज़रिए अपने पापों की माफ़ी की आशा करते हो, किन्तु मोहम्मद इस समय दोज़ख़ में है और यदि तुम लोग मोहम्मद के उसूलों पर विश्वास करते रहोगे तो तुम सब भी दोज़ख़ जाओगे।"*

ईसाई पादरियों के विरुद्ध इस तरह की शिकायतें उन दिनों बहुत आम थीं।

* Evidence by Captain T. Macan, before the Commons Committee, 22nd March, 1832.

सन् १८४९ में पञ्जाब पर कम्पनी का क़ब्ज़ा हुआ। उसके बाद पञ्जाब को एक आदर्श ईसाई प्रान्त बनाने के लिए विशेष कोशिशें की गईं। सर हेनरी लॉरेन्स, सर जॉन लॉरेन्स, सर रॉबर्ट मॉण्ट गूमरी, डॉनेल्ड मेकलिऑड, करनल एडवर्ड्स इत्यादि पञ्जाब के प्रसिद्ध अंगरेज़ शासक सब उसी राय के थे। इन में से अनेक की राय यह थी कि पञ्जाब में शिक्षा का सारा कार्य ईसाई पादरियों के हाथों में दे दिया जाय, सरकार की ओर से ईसाई, मदरसों को धन की पूरी सहायता दी जाय और अंगरेज़ सरकार अपने स्कूल बन्द कर दे। गवरनर जनरल लॉर्ड डलहौज़ी और कम्पनी के डाइरेक्टर भी इन लोगों के साथ सहमत थे। इनमें से कुछ की राय यह भी थी कि सरकारी स्कूलों और कॉलेजों में इञ्जील और ईसाई मत की शिक्षा दी जाया करे, अंगरेज़ सरकार हिन्दू धर्म और इसलाम को किसी तरह की सहायता, उत्तेजना या स्वीकृति न दे, किसी सरकारी महकमें में किसी भी हिन्दू या मुसलमान त्योहार की छुट्टी न दी जाय, अपने न्यायालयों में अंगरेज़ सरकार हिन्दू या मुसलिम धर्मशास्त्रों और धार्मिक रिवाजों को कोई स्थान न दे, हिन्दुओं या मुसलमानों के धार्मिक कीर्तन बन्द कर दिए जायँ, इत्यादि।*

पञ्जाब को ईसाई बनाने की कोशिश

ज़ाहिर है कि भारत की विचित्र परिस्थिति में उस समय के

---

* *Memorandum on The Elimination of all Un-Christian Principles from the Government of British India*, by Sir Herbert Edwards.

शासकों की यह नीति इस खुले रूप में देर तक न चल सकी; किन्तु ईसाई धर्म प्रचार के पक्ष में प्रयत्न बराबर जारी रहे। धीरे धीरे इन धर्मोन्मत्त शासकों का ध्यान हिन्दोस्तानी सिपाहियों की ओर गया।

फ़ौज में ईसाई मत प्रचार

इतिहास लेखक नॉलेन लिखता है कि अंगरेज़ सरकार सिपाहियों के धार्मिक भावों की अवहेलना करने लगी और बात बात में उनके धार्मिक नियमों आदिक का उल्लङ्घन किया जाने लगा। यहाँ तक कि कम्पनी की सेना के अनेक अंगरेज़ अफ़सर खुले तौर पर अपने सिपाहियों का धर्म परिवर्तन करने के कार्य में लग गए। बङ्गाल की पैदल सेना के एक अंगरेज़ कमाण्डर ने अपनी सरकारी रिपोर्ट में लिखा है कि "मैं लगातार २८ वर्ष से भारतीय सिपाहियों को ईसाई बनाने की नीति पर अमल करता रहा हूँ और ग़ैर ईसाइयों की आत्माओं को शैतान से बचाना मेरे फ़ौजी कर्तव्य का एक अङ्ग रहा है।" "कॉज़ेज़ ऑफ़ दी इण्डियन रिवोल्ट" नामक पत्रिका का भारतीय रचयिता लिखता है—

"सन् १८५७ के शुरू में हिन्दोस्तानी सेना के बहुत से करनल सेना को ईसाई बनाने के अत्यन्त घोर तथा दुष्कर कार्य में लगे हुए पाए गए। उसके बाद यह पता चला कि इन जोशीले अफ़सरों में से अनेक × × × न रोज़ी के ख़याल से फ़ौज में भरती हुए थे, न इसलिए भरती हुए थे कि फ़ौज का कार्य उनकी प्रकृति के अत्यन्त अनुकूल था, बल्कि उनका केवल मात्र और एक मात्र उद्देश्य यही था कि इस ज़रिये से लोगों को ईसाई बनाया जाय। फ़ौज को उन्होंने ख़ास तौर पर इसलिए चुना क्योंकि शान्ति के दिनों में

फ़ौज के अन्दर सिपाहियों और अफ़सरों दोनों को हद दरजे की फ़ुरसत रहती है, और वहाँ पर बिना ख़र्च, परिश्रम इत्यादि के या बिना गाँव गाँव भटकने के हर तरफ़ बहुत बड़ी संख्या में गैर ईसाई मिल सकते हैं। × × × इन लोगों ने हिन्दू और मुसलमान अफ़सरों और सिपाहियों में प्रचार करना और उनमें ईसाई पुस्तकों के अनुवाद और पत्रिकाएँ बाँटना शुरू किया। शुरू में सिपाहियों ने कभी घृणा के साथ और कभी उदासीनता के साथ यह सब बरदाश्त कर लिया। किन्तु जब इन लोगों का कार्य बराबर जारी रहा, जब इनके ईसाई बनाने के प्रयत्न दिन प्रति दिन अधिकाधिक गहरे और क्लेशकर होते गए, तो दोनों धर्मों के सिपाही चौंक उठे। × × × इस अरसे में ये विचित्र अफ़सर जिन्हें 'मिशनरी करनल' और 'पादरी लेफ्टेनेण्ट' कहा जाने लगा था, चुप न बैठे। सिपाहियों की सहनशीलता से इनका साहस और बढ़ गया और वे पहले की अपेक्षा और अधिक जोश दिखलाने लगे। हिन्दू धर्म और इसलाम की वह पहले से अधिक ज़ोरदार शब्दों में निन्दा करने लगे। पहले से अधिक जोश के साथ वे इन अविश्वासी लोगों पर ज़ोर देने लगे कि अपने तैंतीस करोड़ कुरूप देवी देवताओं को छोड़ कर उनकी जगह एक सच्चे परमात्मा की, उसके बेटे ईसा के रूप में पूजा करो मोहम्मद और राम को अभी तक वे केवल ऐसे वैसे मनुष्य कहा करते थे अब वे उन्हें बड़े दग़ाबाज़ और पक्के धूर्त बतलाने लगे। × × × धीरे धी इन धर्म प्रचारक करनलों ने सिपाहियों को रिशवतें दे देकर उन्हें ईसा बनाना शुरू किया, और ईसाई बनने वालों को तरक्की तथा दूसरे इना का भी लालच दिया। इस नापाक काम में उन्होंने निर्लज्जता के साथ अप अफ़सरी के प्रभाव का उपयोग किया। सिपाहियों ने एतराज़ किया, उ

यूरोपियन अफ़सरों ने वादा किया कि हर सिपाही को, जो अपना धर्म छोड़ देगा हवलदार बना दिया जायगा, हर हवलदार को सूबेदार मेजर बना दिया जायगा, इत्यादि। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय सिपाहियों में बहुत बड़ा असन्तोष फैलने लगा।"*

* "At the beginning of the present year (1857) a great many colonels in the India army were detected in a task not less monstrous and arduous than that of Christianizing it. It has afterwards transpired that some of these earnest . . . worthies . . . entered the army; not as a means of subsistence, not as the theatre of exertion most congenial to their temperament, but solely and wholly for the purpose of conversion. The army was specially selected, as in times of peace it affords the utmost leisure to both soldiers and commanders. And as there heathens may be found in great abundance on all sides, without the trouble and expense, and other et cetras, or scampering from village to village. . . . . they began preaching and distributing tracts and translations among the Hindoo and Mohammedan officers and soldiers. In the beginning the were tolerated, sometimes with disgust, and sometimes with indifference. When, however, the thing continued, when the evangelizing endeavours became more serious and troublesome day by day, the Sepoys of either presuation felt alarmed . In the meantime, the 'Missionary Colonels,' and 'Padre Lieutenants' as these curious Militaries were called, were not inactive. Emboldened by the toleration of the Sepoys, they grew more violent than ever. They were louder in their denunciations of Hinduism and Islam. They were warmer in their exhortations to the unbelievers, to substitute the worship of the one true God in his son Jesus, or the thirty three millions of their hideous deities, Mohammed and Rama, hitherto mere so-so beings, turned sublime imposters and unmitigated black-guards . . . By and by the proselytizing Colonels tempted the Sepoys to Christianity with bribes and offered promotions and other rewards to converts. They unblushingly used their influence as officers in this unholy affair. The Sepoys protested, and their European officers promised to make every Sepoy that forsook his religion a Havildar, every Havildar, a Subedar Major, and so on! Great discontent was the consequence."—*Causes of the Indian Revolt*, by A Hindoo of Bengal. Dated

विप्लव के ठीक बाद पूर्वोक्त पत्रिका लन्दन से प्रकाशित हुई। इसके बाद इस भारतीय क्रान्ति और उसके कारणों के ऊपर असंख्य पुस्तकें, पत्रिकाएँ और लेख इङ्गलिस्तान और भारत में प्रकाशित हुए; किन्तु किसी लेखक को भी पूर्वोक्त पत्रिका के गम्भीर इलज़ामों को असत्य कहने का साहस न हो सका।

अंगरेज़ शासकों का सलूक

इसी पत्रिका का अंगरेज़ सम्पादक मैलकम लुइन, जो मद्रास सुप्रीम कोर्ट का जज और मद्रास कौन्सिल का सदस्य रह चुका था, अपने तजरुवे से भारतवासियों के साथ उस समय के अंगरेज़ शासकों के सलूक को वर्णन करते हुए भूमिका में लिखता है—

"समाज के सदस्यों की हैसियत से हम दोनों, अर्थात् अंगरेज़ और हिन्दोस्तानी एक दूसरे से अनभिज्ञ हैं, हमारा एक दूसरे से वही सम्बन्ध रहा है जो कि मालिकों और गुलामों में होता है। हमने हर एक ऐसी चीज़ पर अपना अधिकार जमा लिया है जिससे कि देशवासियों का जीवन सुखमय हो सकता था, प्रत्येक ऐसी वस्तु जो कि देशवासियों को समाज में उभार सकती थी या मनुष्य की हैसियत से उन्हें ऊँचा कर सकती थी, हमने उनसे छीन ली है। हमने उन्हें जाति भ्रष्ट कर दिया है। उनके उत्तराधिकार के नियमों को हमने रद्द कर दिया है, उनकी विवाह की संस्थाओं को हमने बदल दिया है। उनके धर्म के पवित्रतम रिवाजों की हमने अवहेलना की है। उनके मन्दिरों की जायदादें हमने ज़ब्त कर ली हैं। अपने सरकारी उल्लेखों

Calcutta the 18th August, 1857, published from London, by Edward Stanford 6 Charing Cross.

में हमने उन्हें काफ़िर (हीदन) कह कर कलङ्कित किया है। उनके देशी नरेशों के राज हमने छीन लिए हैं और उनके अमीरों और रईसों की जायदादें ज़ब्त कर ली हैं। अपनी लूट खसोट से हमने देश को बरबाद कर दिया है, और लोगों को सता सता कर उनसे मालगुज़ारी वसूल की है। हमने संसार के सबसे प्राचीन उच्च कुलों को निर्मूल कर देने और उन्हें गिरा कर पैरिया बना देने का प्रयत्न किया है।"*

भारतीय धर्मों की श्रेष्ठता

इसके बाद भारतवासियों को ईसाई बनाने के प्रयत्न के अनौचित्य और भारतीय धर्म और भारतीय सभ्यता की श्रेष्ठता को वर्णन करते हुए मैलकम लुइन लिखता है :—

"× × × नहीं, यदि वृक्ष की परख उसके फलों से की जाती है, यदि इङ्गलिस्तान और भारत के अलग अलग सदाचारों को वहाँ के धर्मों की कसौटी मान लिया जाय, तो भारत का सर मुक़ाबले में ऊँचा रहेगा।"†

---

* "We are ignorant of each other, as members of society; the bond of union has been that of Spartan and Helot. Grasping everything that could render life desirable, we have denied to the people of the country all that could raise them in society, all that could elevate them as men; we have insulted their caste; we have abrogated their laws of inheritance; we have changed their marriage institutions, we have ignored the most sacred rites of their religion; we have delivered up their pagoda-property to confiscation; we have branded them in official records as 'heathens'; we have seized the possessions of their native princes, and confiscated the estates of their nobles, we have unsettled the country by our exactions, and collected the revenue by means of torture; we have sought to uproot the most ancient aristocracy of the world, and to degrade it to the condition of pariahs

• • •

† " . . . Nay, if a tree be known by its fruits, if the morals of England

सैनिकों के प्रति सामान्य व्यवहार

अपने भारतीय सिपाहियों के साथ कम्पनी और कम्पनी के अफ़सरों का सामान्य व्यवहार भी बहुत अच्छा न था। सामान, वेतन, रहने के मकान इत्यादि के विषय में सिपाहियों की ओर से अनेक शिकायतें बार बार की जा चुकी थीं, किन्तु उन पर यथोचित ध्यान कभी न दिया गया था। परिणाम यह हुआ कि हिन्दोस्तानी सिपाहियों के दिल अंगरेज़ों की ओर से भीतर ही भीतर असन्तोष और क्रोध से भर गए। सन् १८५७ की क्रान्ति का यह पाँचवाँ और एक तरह सबसे ज़बरदस्त कारण था।

चिनगारी की प्रतीक्षा

पूर्वोक्त पाँचों कारणों ने मिलकर समस्त भारत के अन्दर अंगरेज़ी राज के विरुद्ध हर श्रेणी के लोगों में ज़बरदस्त स्फोटक सामग्री जमा कर रक्खी थी। केवल किसी ऐसे योग्य नेता की आवश्यकता थी जो इस सामग्री से लाभ उठा कर समस्त देश को स्वाधीनता के एक महान संग्राम के लिए तैयार कर सके और सौ वर्ष से जमे हुए विदेशी शासन को उखाड़ कर फेंक सके; या कोई अकस्मात् चिनगारी इस मामले पर पड़ कर देश में एक भयङ्कर आग लगा दे, परिणाम फिर चाहे कुछ भी क्यों न हो।

सन् १८५७ की क्रान्ति वास्तव में भारत के हिन्दू और मुसलमान

---

and of India are to be held as the tests of their respective creeds, India would not loose by the comparison."—Malcolm Lewin in the Preface to *Causes of Indian Revolt*.

नरेशों और भारतीय जनता की ओर से देश को विदेशियों की राजनैतिक अधीनता से मुक्त कराने का एक महान और व्यापक प्रयत्न था।

क्रान्ति का सच्चा रूप

लन्दन 'टाइम्स' का विशेष प्रतिनिधि सर विलियम हॉवर्ड रसल, जो सन् ५७ की क्रान्ति के समय भारत में मौजूद था, उस विप्लव के विषय में लिखता है—

"वह ऐसा युद्ध था जिसमें लोग अपने धर्म के नाम पर, अपनी क़ौम के नाम पर, बदला लेने के लिए और अपनी आशाओं को पूरा करने के लिए उठे थे। उस युद्ध में समस्त राष्ट्र ने अपने ऊपर से विदेशियों के जुए को फेंक कर उसकी जगह देशी नरेशों की पूर्ण सत्ता और देशी धर्मों का पूर्ण अधिकार फिर से क़ायम करने का सङ्कल्प कर लिया था।"*

इस राष्ट्रीय प्रयत्न की तह में एक उतनी ही गहरी योजना और उतना ही व्यापक और गुप्त सङ्गठन भी था। जहाँ तक मालूम हो सकता है, इस विशाल योजना का सूत्रपात दोनों में से किसी एक स्थान पर हुआ—कानपुर के निकट बिठूर में या इङ्गलिस्तान की राजधानी लन्दन में।

क्रान्ति की योजना का सूत्रपात

अन्तिम पेशवा बाजीराव का दत्तक पुत्र नाना साहब धुन्धपन्त

* ". . . . . . . we had a war of religion, a war of race, and a war of revenge, of hope, of national determination to shake off the yoke of a stranger and to reestablish the full power of native Chiefs and the full sway of native religions."—*My Diary in India in the Year 1858-59*, by Sir William Howard Russell, p. 164

क्रान्ति के मुख्यतम नेताओं में से था। ऊपर लिखा जा चुका है कि नाना साहब ने अपनी पेनशन के विषय में अपील करने के लिए अज़ीमुल्ला ख़ाँ को इङ्गलिस्तान भेजा था। यह अज़ीमुल्ला नाना का विश्वस्त सलाहकार और क्रान्ति का दूसरा मुख्य नेता था। अज़ीमुल्ला अत्यन्त योग्य नीतिज्ञ था। अंगरेज़ी और फ़्रान्सीसी दोनों भाषाओं का वह पूर्ण पण्डित था। विलायत में वह हिन्दोस्तानी वेश में ही रहता था। देखने में वह अत्यन्त सुन्दर था। लन्दन के उच्च समाज के लोगों में उसका आचार व्यवहार इतना आकर्षक रहा कि लिखा है कि उच्चतम श्रेणी के अंगरेज़ी समाज की अनेक स्त्रियाँ उस पर मुग्ध हो गईं। फिर भी अज़ीमुल्ला को अपने मुख्य उद्देश में सफलता प्राप्त न हो सकी। अर्थात् नाना की पेनशन के विषय में इङ्गलिस्तान के नीतिज्ञों या शासकों ने उसकी एक न सुनी।

नाना का वकील अज़ीमुल्ला लन्दन में

ठीक उन्हीं दिनों सतारा के पदच्युत राजा की ओर से अपील करने के लिए रङ्गो बापू जी नामक एक मराठा नीतिज्ञ भी इङ्गलिस्तान गया हुआ था। रङ्गो बापू जी को भी अपने कार्य में सफलता न हो सकी। लन्दन में अज़ीमुल्ला और रङ्गो बापू जी की भेंट हुई। सम्भव है कि सन् ५७ की क्रान्ति की योजना का सूत्रपात भारत से अज़ीमुल्ला के चलने से पहले बिठूर हो में हो चुका हो। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि रङ्गो बापू जी और अज़ीमुल्ला ख़ाँ

अज़ीमुल्ला और रङ्गो बापू जी की लन्दन में सलाहें

ने लन्दन के कमरों में बैठ कर बहुत दरजे तक इस राष्ट्रीय योजना को रङ्ग और रूप दिया। उसके बाद रङ्गो बापू जी दक्खिन के नरेशों को इस योजना के पक्ष में करने के उद्देश से सतारा वापस आया और चतुर अज़ीमुल्ला ख़ाँ यूरोप के अन्दर अंगरेज़ों के बल और स्थिति को समझने के लिए और भारत के भावी स्वाधीनता संग्राम में अन्य राष्ट्रों की सहायता या सहानुभूति प्राप्त करने के लिए यूरोप के विविध देशों में भ्रमण करने लगा।

यूरोप के अन्य देशों में अज़ीमुल्ला ख़ाँ

अन्य देशों में होते हुए अज़ीमुल्ला ख़ाँ टर्की की राजधानी कुस्तुनतुनिया पहुँचा। उन दिनों रूस और इङ्गलिस्तान के बीच युद्ध जारी था। अज़ीमुल्ला ख़ाँ ने सुना कि हाल में सेवस्तेपोल की लड़ाई में रूस ने अंगरेज़ों को हरा दिया। अज़ीमुल्ला ख़ाँ रूस पहुंचा। कई अंगरेज़ इतिहास लेखकों ने यह शङ्का प्रकट की है कि अज़ीमुल्ला ख़ाँ नाना साहब की ओर से अंगरेज़ों के विरुद्ध रूस के साथ सन्धि करने के लिए रूस गया था। रूस में प्रसिद्ध अंगरेज़ विद्वान रसल के साथ, जो लन्दन के अख़बार 'टाइम्स' का सम्वाददाता था, अज़ीमुल्ला ख़ाँ की मुलाक़ात हुई। एक दिन रसल के साथ बैठ कर अज़ीमुल्ला ख़ाँ बड़े शौक़ के साथ दिन भर अंगरेज़ों और रूसियों की लड़ाई देखता रहा। रसल ने लिखा है कि रूसी तोप का एक गोला अज़ीमुल्ला के ठीक पैर के पास आकर फूटा, किन्तु अज़ीमुल्ला अपनी जगह से बाल भर भी न हिला। मालूम नहीं कि रूस के बाद अज़ीमुल्ला और कहाँ कहाँ गया।

किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि अज़ीमुल्ला ख़ाँ ने इतालिया, रूस, टर्की, मिश्र इत्यादि देशों की सहानुभूति अपने भावी स्वाधीनता युद्ध की ओर करने की कोशिश की। लॉर्ड रॉबर्ट्स ने अपनी पुस्तक "फ़ॉरटी इयर्स-इन-इण्डिया" में लिखा है कि उसने अज़ीमुल्ला के कई पत्र इस सम्बन्ध में टर्की के सुलतान और उमरपाशा के नाम देखे, जिनमें भारत के अन्दर अंगरेज़ों के अत्याचारों का वर्णन था।

गैरीबॉल्डी और भारतीय क्रान्ति

यह मालूम नहीं कि अज़ीमुल्ला ख़ाँ को अपने इन प्रयत्नों में कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई, किन्तु दो बातें ध्यान में रखने योग्य हैं। एक यह कि क्रान्ति के दिनों में भारत के अन्दर यह एक आम अफ़वाह उड़ी हुई थी कि नाना साहब ने अंगरेज़ों के विरुद्ध रूस के ज़ार के साथ कुछ सन्धि कर ली है। दूसरी यह कि जिन दिनों भारत में विप्लव जारी था उन दिनों इतालिया का प्रसिद्ध देशभक्त सेनापति गैरीबॉल्डी भारतवासियों की सहायता के लिए अपने देश से सेना और सामान लाने की तैयारी कर रहा था। इतालिया की आन्तरिक कठिनाइयों और विद्रोहों के कारण गैरीबॉल्डी को जल्दी वहाँ से चलने का अवकाश न मिल सका; और जिस समय गैरी-बॉल्डी अपने यहाँ के जहाज़ों में सेना और सामान भर कर भारतीय विप्लवकारियों की सहायता के लिए अपने देश से चलने को तैयार हुआ, उसी समय उसे मालूम हुआ कि भारत का विप्लव शान्त हो चुका। गैरीबॉल्डी ने बड़े दुख के साथ अपनी सेना को जहाज़ों से उतार लिया।

यूरोप और एशिया के अन्य देशों में भ्रमण करने के बाद अज़ीमुल्ला ख़ाँ भारत लौटा। अब एक ओर रङ्गो बापू जी सतारा में बैठा हुआ दक्खिन के नरेशों और वहाँ के लोगों को तैयार कर रहा था और दूसरी ओर अज़ीमुल्ला ख़ाँ और नाना साहब बिठूर में बैठे हुए आगामी क्रान्ति के नक़शे को पूरा कर रहे थे।

बिठूर में क्रान्ति की योजना

क्रान्ति की योजना करने वालों का मुख्य विचार यह था कि भारत के समस्त हिन्दू और मुसलमान बूढ़े सम्राट बहादुरशाह के झण्डे के नीचे मिल कर अंगरेज़ों को देश से बाहर निकाल दें और फिर सम्राट ही के झण्डे के नीचे अपने देश के सुशासन का नए सिरे से प्रबन्ध करें। इसके लिए एक विशाल और गुप्त सङ्गठन की आवश्यकता थी; और सङ्गठन के बाद इस बात की भी आवश्यकता थी कि समस्त भारत में एक साथ एक दिन अंगरेज़ों के विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर दिया जाय।

इस विशाल गुप्त सङ्गठन की नींव मालूम होता है कि बिठूर ही में रक्खी गई। सङ्गठन इतना विशाल होते हुए भी इतना सम्पूर्ण, सुन्दर और सुव्यवस्थित था और उसे अंगरेज़ों जैसी जागरूक क़ौम से बरसों इतनी अच्छी तरह गुप्त रक्खा गया कि इस विषय में अनेक अंगरेज़ इतिहास लेखकों तक ने विप्लव के प्रवर्त्तकों और सञ्चालकों की योग्यता की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। अधिकतर अंगरेज़ों ही की पुस्तकों से हमें इस सङ्गठन के विषय में जो कुछ मालूम हो

गुप्त संगठन और तैयारी

सकता है, उससे पता चलता है कि सन् १८५६ से कुछ पहले नाना साहब ने बिठूर से बैठे हुए भारत भर में चारों ओर अपने गुप्त दूत और प्रचारक भेजने शुरू कर दिए। नाना के विशेष दूत दिल्ली से लेकर मैसूर तक समस्त भारतीय नरेशों के दरबारों में पहुँचे, और उसके गुप्त प्रचारक कम्पनी की समस्त देशी फ़ौजों तथा जनता को अपनी ओर करने के लिए निकल पड़े। जो गुप्त पत्र नाना ने इस समय भारतीय नरेशों को लिखे उनमें उसने दिखलाया कि किस प्रकार अंगरेज़ एक एक देशी रियासत को हड़प कर समस्त भारत को पराधीन करने के प्रयत्नों में लगे हुए हैं। कुछ समय बाद अंगरेज़ों ने नाना के एक दूत को पकड़ा जो मैसूर दरबार के नाम नाना का पत्र लेकर गया था। इसी दूत से अंगरेज़ों को पता लगा कि इस प्रकार के कितने ही पत्र नाना अनेक नरेशों को भेज चुका था। इतिहास लेखक सर जॉन के लिखता है—

"महीनों से बल्कि वर्षों से ये लोग समस्त देश के ऊपर अपनी साज़िशों का जाल फैला रहे थे। एक देशी दरबार से दूसरे दरबार तक, विशाल भारतीय महाद्वीप के एक सिरे से दूसरे सिरे तक, नाना साहब के दूत पत्र लेकर घूम चुके थे, इन पत्रों में होशियारी के साथ और शायद रहस्यपूर्ण शब्दों में भिन्न भिन्न जातियों और भिन्न भिन्न धर्मों के नरेशों और सरदारों को सलाह दी गई थी और उन्हें आमन्त्रित किया गया था कि आप लोग आगामी युद्ध में भाग लें।"*

---

* "For months, for years inneed, they had been spreading their net-work of intrigues all over the country. For one native court to another,

इस राष्ट्रीय योजना को फूलने फलने के लिए सबसे अच्छा स्थान दिल्ली के लाल किले में मिला, जिसके कारण ऊपर वर्णन किए जा चुके हैं। सम्राट बहादुरशाह, उसकी योग्य बेगम ज़ीनत-महल और उनके सलाहकारों ने देश और नाना का पूरा साथ देने का निश्चय कर लिया। लिखा है कि इस विषय में दिल्ली के सम्राट और ईरान के शाह के बीच भी कुछ पत्र व्यवहार हुआ। दिल्ली के नगर में भी गुप्त सभाएँ होने लगीं और तदबीरें सोची जाने लगीं।

अवध और क्रान्ति

इसके बाद ही अवध के अंगरेज़ी राज में मिलाए जाने का समय आया। सर जॉन के लिखता है कि इस एक घटना से नाना को बहुत बड़ी सहायता मिली। सर जॉन के के शब्द हैं—

"अंगरेज़ों के इस अन्तिम राज-अपहरण का इतना प्रबल प्रभाव पड़ा कि लोग एक दूसरे से पूछने लगे कि अब कौन सुरक्षित रह सकता है! यदि अंगरेज़ सरकार ने अवध के नवाब जैसे अपने वफ़ादार दोस्त और मददगार का राज छीन लिया जिसने कि आवश्यकता के समय अंगरेज़ों को मदद दी थी तो अंगरेज़ों के साथ वफ़ादारी करने से क्या लाभ? कहा जाता है कि जो राजा और नवाब उस समय तक (विप्लव से) पीछे हट रहे थे वे अब आगे बढ़ने लगे और नाना साहब को अपने पत्रों का यथेच्छ उत्तर मिलने लगा।"

from one extremity to another of the great continent of India, the agents of the Nana Saheb had passed with overtures and invitations discreetly, perhaps mysteriously, worded to princes and chiefs of different races and religions."
—Kaye's *Indian Mutiny*, vol. i, p. 24

लखनऊ का निर्वासित नवाब वाजिदअली शाह, उसका होशियार वज़ीर अली नक़ी ख़ाँ, अवध के समस्त ताल्लुक़ेदार, ज़मींदार और वहाँ की समस्त प्रजा अब इस राष्ट्रीय विप्लव की सफलता पर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देने के लिए तैयार होगई।

वाजिदअली शाह की बेगम हज़रत महल और वज़ीर अली-नक़ी ख़ाँ दोनों की गणना क्रान्ति के मुख्य प्रवर्त्तकों में की जाती है। वज़ीर अली नक़ी ख़ाँ ने कलकत्ते से बैठ कर मुसलमान फ़क़ीरों और हिन्दू साधुओं के रूप में अपने गुप्त दूत उत्तरीय भारत की तमाम देशी फ़ौजों में भेजने शुरू किए और उन फ़ौजों के भारतीय अफ़सरों के साथ गुप्त पत्र व्यवहार प्रारम्भ किया। बेगम हज़रत महल ने अवध के तमाम रईसों और जनता को राष्ट्रीय विप्लव के लिए तैयार करना शुरू किया। इतिहास लेखक के लिखता है कि अली नक़ी ख़ाँ के निमन्त्रण पर हज़ारों हिन्दू सिपाहियों और उनके अफ़सरों ने गङ्गाजल लेकर और मुसलमानों ने कुरान हाथ में लेकर राष्ट्रीय संग्राम में भाग लेने और अंगरेज़ों को देश से बाहर निकालने की शपथ खाई।

क्रान्ति में धन की सहायता

इस विशाल सङ्गठन के लिए धन की कमी न थी। सहस्रों रईसों और साहूकारों ने अपनी थैलियाँ राष्ट्रीय नेताओं के क़दमों पर रख दीं। बैरकपुर से पेशावर तक और लखनऊ से सतारा तक हज़ारों राष्ट्रीय फ़क़ीर और सन्यासी घूम घूम कर एक एक ग्राम और एक एक पलटन में स्वाधीनता के युद्ध का प्रचार करने लगे।

सहस्रों मौलवी और सहस्रों पण्डित विप्लव की सफलता के लिए जगह जगह ईश्वर से प्रार्थनाएँ करने लगे।

क्रान्ति के केन्द्र

विप्लव के इस समय पाँच मुख्य केन्द्र थे—दिल्ली, बिठूर, लखनऊ, कलकत्ता और सतारा। निस्सन्देह जिस शीघ्रता और वेग के साथ समस्त भारत और विशेषकर उत्तरीय भारत में विप्लव का प्रचार किया गया वह अत्यन्त आश्चर्यजनक था। तारीफ़ यह कि अंगरेज़ों को अन्त समय तक इस तैयारी का कुछ भी ज्ञान न हो सका।

आश्चर्यजनक गुप्त संगठन

सन् १८५७ के इस गुप्त सङ्गठन के विषय में एक अंगरेज़ लेखक जैकब लिखता है—

"जिस आश्चर्यजनक गुप्त ढंग से यह समस्त षड्यन्त्र चलाया गया, जितनी दूरदर्शिता के साथ योजनाएँ की गईं, जिस सावधानी के साथ इस संगठन के विविध समूह एक दूसरे के साथ काम करते थे, एक समूह का दूसरे समूह के साथ सम्बन्ध रखने वाले लोगों का किसी को पता न चलता था, और इन लोगों को केवल इतनी ही सूचना दी जाती थी जितनी उनके कार्य के लिए आवश्यक होती थी, इन सब बातों को बयान कर सकना कठिन है। और ये लोग एक दूसरे के साथ आश्चर्यजनक वफ़ादारी का व्यवहार करते थे।"*

* "But it is difficult to describe the wonderful secrecy with which the whole conspiracy was conducted and the forethought supplying the schemes, and the caution with which each group of conspirators worked apart, concealing the connecting links, and instructing them with just sufficient information for the purpose in view. And all this was equalled only by the

इसका एक कारण यह भी था कि अधिकांश अंगरेज़ी थानों में पुलिस, अनेक अन्य सरकारी मुलाज़िम और अंगरेज़ों के बावर्ची और भिश्ती तक इस राष्ट्रीय योजना में शामिल थे। कहीं कहीं अंगरेज़ों ने किसी प्रचारक को पकड़ भी लिया। एक अंगरेज़ इतिहास लेखक लिखता है कि एक बार मेरठ छावनी के निकट कोई फ़क़ीर ठहरा हुआ क्रान्ति का प्रचार कर रहा था। अंगरेज़ों ने उसे बाहर निकाल दिया। वह फ़क़ीर अपने हाथी पर बैठ कर पास के गाँव में चला गया और वहाँ से अपना काम करता रहा।* इन राजनैतिक फ़क़ीरों को प्रायः सवारी के लिए हाथी और रक्षा के लिए सशस्त्र सिपाही मिले हुए थे। यहाँ तक कि काशी, प्रयाग और हरिद्वार में अंगरेज़ी राज के नाश के लिए खुली प्रार्थनाएँ होने लगीं और शहस्रों यात्री भावी क्रान्ति में भाग लेने का सङ्कल्प उठाने लगे। तमाशों, पवाड़ों, लावनियों, कठपुतलियों, नाटकों आदिक से भी विप्लव के संचालकों ने पूरा लाभ उठाया।† इस प्रकार का व्यापक प्रचार कम या अधिक एक साल से ऊपर तक जारी रहा।

क्रान्ति और सरकारी कर्मचारी

दिल्ली दरबार के राजकवि ने एक राष्ट्रीय गान तैयार किया जो देश भर में स्थान स्थान पर गाया जाने लगा।

राष्ट्रीय गान

---

fidelity with which they adhered to each other."—*Western India*, by Sir George Le Grand Jacob, K. C. S. I., C. B.

* *The Meerut Narrative.*

† Trevelyan's *Cawnpore.*

धीरे धीरे संगठन के केन्द्रों की संख्या बढ़ने लगी। इन केन्द्रों के बीच गुप्त पत्र व्यवहार जारी हो गया। जगह जगह क्रान्ति के एलान प्रकाशित होने लगे, जिनमें लोगों को देश और धर्म के नाम पर शहीद होने के लिए आमन्त्रित किया गया। इस प्रकार का एलान सन् १८५७ के प्रारम्भ में मद्रास में भी लगा हुआ पाया गया। जगह जगह गुप्त सभाएँ होने लगीं, जिनमें एक एक समय दस दस हज़ार आदमी भाग लेते थे। पत्र-व्यवहार के लिए गुप्त लिपियाँ तैयार हो गईं।*

क्रान्ति के एलान

अन्त में इस गुप्त संगठन के अनेक केन्द्रों को एक सूत्र में बाँधने और देश भर में क्रान्ति का दिन नियत करने के लिए मार्च सन् १८५७ के प्रारम्भ में नाना साहब और अज़ीमुल्ला ख़ाँ तीर्थ यात्रा के बहाने बिठूर से निकले। नाना साहब का भाई बाला साहब भी उनके साथ था। सब से पहले ये लोग दिल्ली पहुँचे, लाल किले के दीवान ख़ास में सम्राट बहादुरशाह, बेगम ज़ीनत महल और दिल्ली के मुख्य मुख्य नेताओं के साथ इन लोगों की गुप्त मन्त्रणायें हुईं। इसके बाद नाना अम्बाले गया। अन्य अनेक स्थानों में चक्कर लगाने के बाद १८ अप्रैल को नाना और उनके साथी लखनऊ पहुँचे। लखनऊ में नाना का बड़े समारोह के साथ जुलूस निकाला गया। नाना जहाँ जाता था वहाँ के अंगरेज़ अफ़सरों से मिल कर उन्हें तरह तरह के बहाने करके अपनी ओर से निःशङ्क कर देने के

नाना साहब की तीर्थ यात्रा ?

* Innes' *Sepoy Revolt*, p. 55

पूरे प्रयत्न करता रहता था। इसके बाद कालपी इत्यादि होते हुए नाना अप्रैल के अन्त में बिठूर वापस आ गया। रसल लिखता है कि अपनी इस यात्रा में नाना और अज़ीमुल्ला रास्ते की समस्त अंगरेज़ी छावनियों में होते जाते थे।

क्रान्ति का मुख्य प्रचारक अहमद-शाह

विप्लव के उन सहस्रों प्रचारकों में, जिन्होंने घूम घूम कर जन सामान्य के हृदयों को अपनी ओर किया, सबसे मुख्य नाम फ़ैज़ाबाद के एक ज़मींदार मौलवी अहमदशाह का है। लखनऊ और आगरे के शहरों में दस दस हज़ार आदमी मौलवी अहमदशाह का व्याख्यान सुनने के लिए जमा होते थे। हिन्दू और मुसलमान अपनी सौ वर्ष की पराधीनता की कहानी सुन कर मौलवी अहमदशाह के व्याख्यानों से यह शपथ खाकर उठते थे कि हम लोग आगामी स्वाधीनता के संग्राम में अपने प्राणों की बाज़ी लगा देंगे। मौलवी अहमदशाह का वृत्तान्त आगे चल कर दिया जायगा।

क्रान्ति के चिन्ह कमल और चपाती

सन् ५७ के इस अद्भुत संगठन का वर्णन समाप्त करने से पहले दो और चीज़ों को बयान करना आवश्यक है। विप्लव के नेताओं ने अपने संगठन के दो मुख्य चिन्ह नियत किए—एक कमल का फूल और दूसरा चपाती। कमल का फूल उन समस्त पलटनों में, जो इस संगठन में शामिल थीं, घुमाया जाता था। किसी एक पलटन का सिपाही फूल लेकर दूसरी पलटन में जाता था। उस पलटन भर में हाथों हाथ वह फूल सब के हाथों से निकलता था। जिसके हाथ

में वह सब से अन्त में आता था उसका कर्त्तव्य होता था कि वह अपने पास की दूसरी पलटन तक उस फूल को पहुँचा दे। इसका गुप्त अर्थ यह लिया जाता था कि उस पलटन के सब सिपाही विप्लव में भाग लेने के लिए तैयार हैं। इस प्रकार के सहस्रों कमल पेशावर से बैरकपुर तक विविध पलटनों के अन्दर घुमाए गए।

चपाती (रोटी) एक गाँव का चौकीदार दूसरे गाँव के चौकीदार के पास ले जाता था। उस चौकीदार का कर्त्तव्य होता था कि वह उस चपाती में से थोड़ी सी स्वयं खाकर शेष गाँव के दूसरे लोगों को खिला दे और फिर गेहूँ या दूसरे आटे की उसी तरह की चपातियाँ बनवा कर वह अपने पास के गाँव तक पहुँचा दे। इसका अर्थ यह होता था कि उस गाँव की जनता राष्ट्रीय विप्लव में भाग लेने के लिए तैयार है। चमत्कार सा मालूम होता है कि चन्द महीने के अन्दर ये अलौकिक चपातियाँ भारत जैसे विशाल देश में इस सिरे से उस सिरे तक लाखों ग्रामों के अन्दर पहुँच गईं। निस्सन्देह सिपाहियों के लिए रक्तवर्ण कमल और जनता के लिए रोटी, दोनों चिन्ह गम्भीर और अर्थसूचक थे।

नाना की इस यात्रा में ही रविवार ३१ मई सन् १८५७ का दिन समस्त भारत में एक साथ विप्लव करने के लिए नियत कर दिया गया।* किन्तु इस तिथि की

रविवार ३१ मई, सन् १८५७

* "From the available evidence I am quite convinced that the 31st of May 1857, had been decided on as the date for simultaneous rising."—[illegible] Wilson's *Official Narrative*, and White's *Complete History of the Great Sepoy War*, p. 17.

सूचना प्रत्येक केन्द्र के केवल मुख्य मुख्य नेताओं को और प्रत्येक पलटन के तीन तीन अफ़सरों को दी गई। शेष का कर्तव्य केवल अपने नेताओं की आज्ञा पर कार्य करना था।

पलटनों के बीच में पत्र व्यवहार

विविध देशी पलटनों के बीच भी इस समय खूब पत्र व्यवहार हो रहा था। इस प्रकार के एक पत्र में, जो अंगरेज़ों के हाथों में पड़ा, लिखा था—"भाइयो, हम स्वयं विदेशियों की तलवार अपने शरीर के अन्दर घोंप रहे हैं। यदि हम खड़े हो जायँ तो सफलता निश्चित है। कलकत्ते से पेशावर तक सारा मैदान हमारा होगा।" इतिहास लेखक के लिखता है कि सिपाही लोग रात को अपनी गुप्त सभाएँ किया करते थे जिनमें बोलने वालों के मुँह पर नक़ाब पड़ा होता था।

पैंतालीसवाँ अध्याय

चरबी के कारतूस और क्रान्ति का प्रारम्भ

दमदम की घटना

किसी भी विप्लव या क्रान्ति के सफल होने के लिए एक आवश्यक शर्त यह है कि विप्लव सब स्थानों पर नियत समय पर और नियत ढङ्ग से हो। जनवरी सन् १८५७ में कलकत्ते के पास दमदम नामक ग्राम में अकस्मात् एक छोटी सी घटना हुई जिसने सन् ५७ की क्रान्ति के विषय में यह बात पूरी न होने दी।

सन् १८५३ में एक नई क़िस्म के कारतूस कम्पनी ने अपनी भारतीय सेना के लिए प्रचलित किए। भारत में कई जगह पर इन कारतूसों के बनने के लिए कारख़ाने खोले गए। इससे पहले के कारतूस सिपाहियों को हाथों से तोड़ने पड़ते थे, किन्तु नए कारतूस को दाँत से काटना पड़ता था। आरम्भ में केवल एक दो

पलटनों में उन्हें प्रचलित किया गया। भारतीय सिपाहियों ने अज्ञान के कारण कई जगह नए कारतूसों को दाँत से काटना स्वीकार कर लिया। धीरे धीरे नए कारतूसों का इस्तेमाल बढ़ाया गया।

बैरकपुर के पास इन कारतूसों के बनने के लिए एक कारख़ाना खोला गया। एक दिन दमदम का एक ब्राह्मण सिपाही पानी का लोटा हाथ में लिए बाग की ओर जा रहा था। अकस्मात् एक मेहतर ने आकर पानी पीने के लिए सिपाही से लोटा माँगा। सिपाही ने हिन्दू प्रथा के अनुसार लोटा देने से इनकार किया। इस पर मेहतर ने कहा—"तुम अब जात पाँत का घमण्ड न करो! क्या तुम्हें मालूम नहीं कि शीघ्र ही तुम्हें अपने दाँतों से गाय का मांस और सुअर की चरबी काटनी पड़ेगी? जो नए कारतूस बन रहे हैं उनमें जान बूझ कर ये दोनों चीज़ें लगाई जा रही हैं।" ब्राह्मण सिपाही इसे सुनते ही क्रोध से भर कर छावनी में गया। जब दूसरे सिपाहियों ने यह समाचार सुना तो वे भी क्रोध से लाल होगए। वे सोचने लगे कि अंगरेज़ सरकार इस प्रकार जान बूझ कर हमें धर्म भ्रष्ट करना चाहती है। उन्होंने अपने अंगरेज़ अफ़सरों से पूछा। अफ़सरों ने उन्हें स्पष्ट उत्तर दिया कि यह अफ़वाह बिलकुल झूठी है और नए कारतूसों में इस तरह की कोई चीज़ नहीं है। सिपाहियों को विश्वास न हुआ, उन्होंने बैरकपुर के कारख़ाने में काम करने वाले छोटी जाति के हिन्दोस्तानी मज़दूरों से पता लगाया। उन्हें पता लगा कि वास्तव में नए कारतूसों के अन्दर दोनों चीज़ें, जो हिन्दू और मुसलमान धर्मों में निषिद्ध हैं, लगाई

जाती है। इस प्रकार अपनी तसल्ली करने के बाद बैरकपुर के सिपाहियों ने यह ख़बर सारे हिन्दोस्तान में फैला दी। लिखा है कि इसके दो महीने के अन्दर बैरकपुर से पेशावर और महाराष्ट्र तक हज़ारों पत्र इस विषय के भेजे गए और नए कारतूसों का समाचार बिजली के समान भारत के एक एक हिन्दोस्तानी सिपाही के कानों तक पहुँच गया। प्रत्येक हिन्दू और मुसलमान सिपाही अब अंगरेज़ों से इस अन्याय का बदला लेने के लिए बेचैन होगया, किन्तु सिपाहियों के नेताओं ने उन्हें ३१ मई तक रोके रखने का हर तरह प्रयत्न किया।

चरबी के कारतूस

अब हमें यह देखना होगा कि नए कारतूसों में गाय और सुअर की चरबी का उपयोग किया जाना कहाँ तक सच था। आज कल प्रायः समस्त अंगरेज़ इतिहास लेखक और विशेष कर वे अंगरेज़ और हिन्दोस्तानी लेखक, जो सरकारी स्कूलों के लिए पाठ्य पुस्तकें लिखते हैं, इस अफ़वाह को झूठा बताते हैं और उस पर विश्वास करने वाले सिपाहियों को पागल कहते हैं। सन् १८५७ में गवरनर जनरल लॉर्ड कैनिङ्ग से लेकर छोटे से छोटे अंगरेज़ अफ़सर तक सबने गम्भीरता के साथ यह एलान किया और सिपाहियों को विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया कि कारतूसों में चरबी का क़िस्सा बिलकुल झूठा है और बदमाश लोगों ने फ़ौज को बरबाद करने के लिए फैलाया है। किन्तु सर जॉन के जो सन् ५७ की क्रान्ति का सबसे अधिक प्रामाणिक इतिहास लेखक माना जाता है, लिखता है:—

"इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस चिकने मसाले के बनाने में गाय की चरबी का उपयोग किया गया था।"*

सर जॉन के यह भी लिखता है कि दिसम्बर सन् १८५३ में करनल टकर ने बहुत साफ़ शब्दों में इस बात को लिखा था कि नए करतूसों में गाय और सुअर दोनों की चरबी लगाई जाती थी। दमदम के कारख़ाने में जिस ठेकेदार को कारतूसों के लिए चरबी का ठेका दिया गया था उससे ठेके के काग़ज़ में यह साफ़ शब्दों में लिखा लिया गया था कि "मैं गाय की चरबी लाकर दूँगा" और चरबी का भाव चार आने सेर रक्खा गया था। लॉर्ड रॉबर्ट्स ने, जो इस क्रान्ति के समय भारत में मौजूद था, लिखा है—

"मिस्टर फ़ॉरेस्ट ने भारत सरकार के काग़ज़ों की हाल में जाँच की है, उस जाँच से साबित है कि कारतूसों के तैयार करने में जिस चिकने मसाले का उपयोग किया जाता था वह मसाला वास्तव में दोनों निषिद्ध पदार्थों अर्थात् गाय की चरबी और सुअर की चरबी को मिला कर बनाया जाता था, और इन कारतूसों के बनाने में सिपाहियों के धार्मिक भावों की ओर इतनी बेपरवाही दिखाई जाती थी कि जिसका विश्वास नहीं होता।"†

---

* "There is no question that beef fat was used in the composition of this tallow."—Kaye's *Indian Mutiny*, vol. i, p. 381.

† "The recent researches of Mr. Forrest in the records of the Government of India prove that the lubricating mixture used in preparing the cartridges was actually composed of the objectionable ingredients, cows' fat and lard and that incredible disregard of the soldier's religious prejudices was displayed in the manufacture of these cartridges."—*Forty Years in India* by Lord Roberts, p. 431.

इस पर प्रसिद्ध इतिहास लेखक विलियम लैकी लिखता है :—

"यह एक लज्जाजनक और भयङ्कर सचाई है कि जिस बात का सिपाहियों को विश्वास था, वह बिलकुल सच थी।"*

और आगे चल कर लैकी लिखता है :—

"इस घटना पर फिर से दृष्टि डालते हुए अंगरेज़ लेखकों को लज्जा के साथ स्वीकार करना चाहिए कि भारतीय सिपाहियों ने जिन बातों के कारण बग़ावत की उनसे ज़्यादा ज़बरदस्त बातें कभी किसी बग़ावत को जायज़ क़रार देने के लिए और हो ही नहीं सकतीं।"*

सिपाहियों के साथ ज़बरदस्ती

सिपाहियों में इस असन्तोष के फैलने के थोड़े ही दिनों बाद कम्पनी सरकार की ओर से एक एलान प्रकाशित हुआ कि एक भी इस तरह का कारतूस फौज में नहीं भेजा गया। किन्तु हाल ही में साढ़े बाईस हज़ार कारतूस अम्बाला डीपो से और चौदह हज़ार कारतूस सियालकोट डीपो से अर्थात् केवल दो डीपो से साढ़े छत्तीस हज़ार कारतूस भारतीय फ़ौज में भेजे जा चुके थे। कई पलटनों में अंगरेज़ अफ़सरों ने देशी सिपाहियों को धमकाना शुरू किया कि तुम्हें नए कारतूसों का उपयोग करना पड़ेगा। एक दो जगह सिपाहियों ने ज़िद की तो सारी रेजिमेण्ट को कड़ी सज़ा दी गई।

* "It is a shameful and terrible truth that as far as the fact was concerned, the Sepoys were perfectly right in their belief. . . . but in looking back upon it, English writers must acknowledge with humiliation that, if mutiny is ever justifiable, no stronger justification could be given than that of the Sepoy troops."—*The Map of Life*, by W. E. H. Lecky, pp. 103, 104.

इस प्रकार इन गाय और सुअर की चरबी से सने हुए कारतूसों ने उस समय की हिन्दोस्तानी फ़ौज के अन्दर स्फोटक मसाले के ऊपर चिनगारी का काम किया।

क्रान्ति की चिनगारी का काम

कोई कोई अंगरेज़ इतिहास लेखक कारतूसों के मामले को ही क्रान्ति का एक मात्र या मुख्य कारण बतलाते हैं। इन लोगों के उत्तर में हम केवल दो तीन प्रामाणिक अंगरेज़ इतिहास लेखकों की ही राय नीचे उद्धृत करते हैं। जस्टिन मैक्कार्थी लिखता है :—

"सच यह है कि हिन्दोस्तान के उत्तरीय और उत्तर पश्चिमी प्रान्तों के अधिकांश भाग में देशी क़ौमें अंगरेज़ी सत्ता के विरुद्ध खड़ी हो गईं × × × चरबी की कारतूसों का झगड़ा केवल इस तरह की एक चिनगारी थी जो अकस्मात् इस समस्त स्फोटक मसाले में आ पड़ी। × × × वह एक राष्ट्रीय और धार्मिक युद्ध था !"*

एक दूसरा इतिहास लेखक मैडले लिखता है :—

"किन्तु वास्तव में ज़मीन के नीचे ही नीचे जो स्फोटक मसाला अनेक कारणों से बहुत दिनों से तैयार हो रहा था, उस पर चरबी लगे हुए कारतूसों ने केवल दियासलाई का काम किया।"*

---

* "The fact was that throughout the greater part of the northern and north-western provinces of the Indian peninsula, there was a rebellion of the native races against the English power. . . . . . The quarrel about the greased cartridges was but the chance spark flung in among all the combustible material. . . . a national and religious war !"—*History of Our own Times*, by Justin Mc Carthy, vol. iii.

* "But, in fact, the greased cartridge was merely the match that

चार्ल्स बॉल ने अपने विप्लव के इतिहास में लिखा है कि डिज़्रेली, जो बाद में इंगलिस्तान का प्रधान मन्त्री हुआ, कहा करता था कि कोई भी मनुष्य कारतूसों को विप्लव का वास्तविक कारण नहीं मानता।

एक इतिहास लेखक लिखता है कि जिन कारतूसों पर भारतीय सिपाही एतराज़ करते थे, उन्हीं को उनमें से अनेक ने बेखटके क्रान्ति के दिनों में अंगरेज़ों के विरुद्ध इस्तेमाल किया।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि इन नए कारतूसों के कारण क्रान्ति नियत समय से पहले प्रारम्भ हो गई। सन् ५७ की क्रान्ति का श्रीगणेश एक प्रकार बैरकपुर से हुआ। फ़रवरी सन् ५७ में बैरकपुर की १६ नम्बर पलटन को नए कारतूस उपयोग करने के लिए दिए गए।

बैरकपुर से क्रान्ति का श्रीगणेश

सिपाहियों ने उन कारतूसों का उपयोग करने से साफ़ इनकार कर दिया। बङ्गाल भर में उस समय कोई गोरी पलटन न थी। इसलिए अंगरेज़ अफ़सरों ने फ़ौरन् बरमा से एक गोरी पलटन मँगवा कर १६ नम्बर पलटन से हथियार रखा लेने और सिपाहियों को बरख़ास्त कर देने का इरादा कर लिया। सिपाहियों को जब इस बात का पता चला तो उनमें से कुछ ने चुपचाप हथियार रख देने के बजाय तुरन्त क्रान्ति प्रारम्भ कर देने का विचार किया। उनके हिन्दोस्तानी अफ़सरों ने उन्हें ३१ मई तक रुके रहने की सलाह

exploded the mine which had, owing to a variety of causes, been for a long time preparing."—Medley's *A Year's Campaigning in India from March, 1857 to March, 1858.*

दी। किन्तु १९ नम्बर पलटन का एक नौजवान सिपाही मङ्गल पाँडे अपने आपको न रोक सका।

२९ मार्च १८५७ को पलटन परेड के मैदान में बुलाई गई।

मंगल पाँडे

जिस समय पलटन आकर खड़ी हुई मङ्गल पाँडे तुरन्त अपनी भरी हुई बन्दूक़ लेकर सामने कूद पड़ा और चिल्ला कर शेष सिपाहियों को अंगरेज़ों के विरुद्ध धर्म युद्ध प्रारम्भ करने के लिए आमन्त्रित करने लगा। एक अंगरेज़ अफ़सर सारजेण्ट मेजर ह्यूसन ने जब यह देखा तो उसने सिपाहियों को आज्ञा दी कि मङ्गल पाँडे को गिरफ़्तार कर लो, किन्तु कोई सिपाही आज्ञा पालन के लिए आगे न बढ़ा। इतने में मङ्गल पाँडे ने अपनी बन्दूक़ की एक गोली से तुरन्त सारजेण्ट मेजर ह्यूसन को वहीं पर ढेर कर दिया। इस पर एक दूसरा अफ़सर लेफ़्टिनेण्ट बाघ अपने घोड़े पर आगे लपका। उसका घोड़ा अभी कुछ दूर ही था कि पाँडे ने एक दूसरी गोली से घोड़े और सवार दोनों को ज़मीन पर गिरा दिया। मङ्गल पाँडे ने तीसरी बार अपनी बन्दूक़ भरने का इरादा किया। लेफ़्टिनेण्ट बाघ ने उठ कर और आगे बढ़ कर पाँडे पर अपनी पिस्तौल चलाई पर पाँडे बच गया। पाँडे ने अब फ़ौरन् अपनी तलवार निकाल कर इस दूसरे अंगरेज़ अफ़सर को भी वहीं पर समाप्त कर दिया। थोड़ी देर बाद करनल व्हीलर ने आकर सिपाहियों को हुकुम दिया कि मङ्गल पाँडे को गिरफ़्तार कर लो, सिपाहियों ने इनकार कर दिया। करनल घबरा कर जनरल के बँगले पर गया। जनरल हीयरसे समाचार

पाकर कुछ गोरे सिपाहियों सहित पाँडे की ओर बढ़ा। मङ्गल पाँडे ने यह देखकर स्वयं अपनी छाती पर गोली चलाई। वह ज़ख्मी होकर गिर पड़ा और गिरफ़्तार कर लिया गया।

मङ्गल पाँडे को फाँसी

मङ्गल पाँडे का कोर्ट मार्शल हुआ, उसे फाँसी की सज़ा दी गई। ८ अप्रैल का दिन फाँसी के लिये नियत किया गया। किन्तु बैरकपुर भर में कोई मेहतर तक मङ्गल पाँडे को फाँसी देने के लिए राज़ी न हुआ। अन्त में कलकत्ते से चार आदमी इस काम के लिए बुलाए गए और ८ तारीख के सवेरे मङ्गल पाँडे को फाँसी दे दी गई।

चार्ल्स बॉल और लॉर्ड रॉबर्ट्स दोनों लिखते हैं कि उसी दिन से सन् १८५७-५८ के समस्त क्रान्तिकारी सिपाहियों को 'पाँडे' के नाम से पुकारा जाने लगा।*

१९ और ३४ नम्बर की देशी पलटनें

मङ्गल पाँडे की फाँसी के बाद अंगरेज़ों को पता चला कि १९ नम्बर और ३४ नम्बर की देशी पलटनें विप्लव के लिए गुप्त मन्त्रणाएँ कर रही हैं। तुरन्त इन दोनों पलटनों से हथियार रखा कर सिपाहियों को बरख़ास्त कर दिया गया। ३४ नम्बर के सूबेदार को इस अपराध में कि उसके यहाँ गुप्त सभाएँ हुआ करती थीं, फाँसी दे दी गई। फिर भी इन दोनों पलटनों के नेताओं ने

---

* "The name has become a recognized distinction for the rebellious Sepoys throughout India."—Charles Ball. "This name was the origin of the Sepoys generally being called 'Pandaye.'"—*Forty-one Years in India*, by Lord Roberts.

क्रान्ति के सञ्चालकों की आज्ञा का ध्यान रखते हुए ३१ मई से पहले विप्लव की कोई काररवाई नहीं की। शीघ्र यह समाचार भी समस्त उत्तरीय भारत में फैल गया। यह बात तय हो चुकी थी कि क्रान्ति आरम्भ करने से पहले हर जगह अंगरेज़ों के बँगलों और बारगों में आग लगा दी जाय। अप्रैल के महीने में लखनऊ, मेरठ और अम्बाले में अनेक अंगरेज़ों के मकान जला दिए गए। अफ़सरों ने इन आकस्मिक घटनाओं के अपराधियों का पता लगाने का भरसक प्रयत्न किया। किन्तु पुलिस भी क्रान्तिकारियों के साथ मिली हुई थी, इसलिए कुछ पता न चल सका।

मेरठ की घटना

इसके बाद मई का महीना आया। ६ मई सन् १८५७ को मेरठ में परीक्षा के तौर पर ९० हिन्दोस्तानी सवारों की एक कम्पनी को नए चरबी लगे कारतूस दिए गए। सवारों से उन्हें दाँत से काटने के लिए कहा गया। ९० में से ८५ सवारों ने साफ़ इनकार कर दिया। इन सिपाहियों का कोर्ट मार्शल हुआ। आज्ञा न मानने के अपराध में उन सबको आठ आठ और दस दस साल की सख़्त क़ैद की सज़ा दी गई। ९ मई को सवेरे इन ८५ सिपाहियों को परेड पर लाकर खड़ा किया गया। उनके सामने गोरी फ़ौज और तोपख़ाना था। छावनी के शेष समस्त हिन्दोस्तानी सिपाहियों को भी यह दृश्य दिखाने के लिए परेड पर बुला लिया गया। ८५ अपराधियों से उनकी वर्दियाँ उतरवा ली गईं, और वहीं परेड पर खड़े खड़े उनके हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ डाल दी गईं। उनसे कहा

गया कि तुम्हें दस दस साल की सज़ा दी गई है। इसके बाद बेड़ियाँ पड़े हुए उन्हें जेलख़ाने की ओर भेजा गया। उनके साथ के सहस्रों हिन्दोस्तानी सिपाही, जो उन्हें बिलकुल निर्दोष मानते थे, भीतर ही भीतर दुख और क्रोध से बेताब होगए, किन्तु उन्हें अभी तीन सप्ताह और शान्त रहने की आज्ञा थी। वे अपने क्रोध को पीकर बारगों की ओर वापस आगए।*

यह घटना सुबह की थी। शाम को मेरठ के ये हिन्दोस्तानी सिपाही शहर में घूमने के लिए गए। लिखा है कि शहर की स्त्रियों ने स्थान स्थान पर उन्हें यह कह कर लाञ्छना दी—"छिः! तुम्हारे भाई जेलख़ाने में हैं और तुम यहाँ बाज़ार में मक्खियाँ मार रहे हो! तुम्हारे जीने पर धिक्कार है।"†

सिपाहियों ने अभी तक काफ़ी धैर्य से काम लिया था। अब मेरठ की स्त्रियों के शब्द उनके दिलों में चुभ गए। रात को बारगों में गुप्त सभाएँ हुईं। निश्चय हुआ कि ३१ मई तक चुप बैठना असम्भव है।

९ मई की ही रात को सिपाहियों ने दिल्ली के नेताओं को ख़बर भेज दी कि हम कल या परसों तक दिल्ली पहुँच जायँगे। आप लोग तैयार रहें।*

अगले दिन १० मई को इतवार था। मेरठ शहर के अन्दर

* Kaye's *History of the Sepoy War*, book iv, chap. ii.

† J. C. Wilson's *Official Narrative*.

* *The Red Pamphlet*, by G. B. Mallison.

नगर निवासी तथा शहस्रों सशस्त्र ग्राम निवासी बाहर से आ आकर एकत्रित हो रहे थे। उधर छावनी में ज़ोरों की तैयारी जारी थी। सबसे पहले कुछ सवार जेलख़ाने की ओर गए। जेलर भी क्रान्तिकारियों के साथ मिले हुए थे। जेलख़ाने की दीवारें गिरा दी गईं। समस्त क़ैदियों की बेड़ियाँ काट दी गईं। हिन्दू और मुसलमान, पैदल, सवार और तोपख़ाने के सिपाही इधर उधर मेरठ के तमाम अंगरेज़ों का ख़ात्मा करने के लिए दौड़ पड़े। अनेक अंगरेज़ मारे गए। बँगलों, दफ़्तरों और होटलों को आग लगा दी गई। 'दीन! दीन!' 'हर हर महादेव!' और 'मारो फ़िरङ्गी को!' की आवाज़ें चारों ओर शहर और छावनी में गूंजने लगीं। नियत योजना के अनुसार तार काट दिए गए और रेलवे लाइन पर क्रान्तिकारियों का पहरा होगया। जो अंगरेज़ बचे उनमें से कुछ अस्तबलों और नालियों में छिप गए और शेष ने अपने हिन्दोस्तानी नौकरों के घरों में पनाह ली। चूँकि शहर और छावनी दोनों में बग़ावत की आग लगी हुई थी, इसलिए जो थोड़ी सी अंगरेज़ी सेना मेरठ में मौजूद थी वह भी कर्त्तव्य-विमूढ़ होगई। अनेक अंगरेज़, स्त्रियाँ और बच्चे बँगलों के अन्दर जल कर ख़त्म होगए।

मेरठ में क्रान्ति का पहला दिन

१० तारीख़ ही की रात को मेरठ के सैनिक दिल्ली की ओर रवाना होगए।

मालसेन, व्हाइट और विलसन ये तीनों इतिहास लेखक स्वीकार करते हैं कि मेरठ में क्रान्ति का समय से पहले प्रारम्भ हो जाना

अंगरेज़ों के लिए बरकत और भारतीय क्रान्तिकारियों के लिए हानिकर साबित हुआ। मालेसन स्पष्ट लिखता है कि यदि पूर्व निश्चय के अनुसार एक साथ एक तारीख़ को ही समस्त भारत में स्वाधीनता का संग्राम का युद्ध होता, तो भारत में एक भी अंगरेज़ ज़िन्दा न बचता और भारत में अंगरेज़ी राज का उसी समय अन्त होगया होता।*

क्रान्तिकारियों का दिल्ली में प्रवेश

जे० सी० विलसन लिखता है कि वास्तव में मेरठ शहर की स्त्रियों ने वहाँ के सिपाहियों को समय से पहले भड़का कर अंगरेज़ी राज को ग़ारत होने से बचा लिया।† फिर भी मेरठ में बग़ावत शुरू होते ही भारत में इस सिरे से उस सिरे तक एक प्रचण्ड आग भड़क उठी। दो हज़ार सशस्त्र हिन्दोस्तानी सवार मेरठ से चल कर ११ मई को आठ बजे सवेरे दिल्ली पहुँच गए। दिल्ली के नेताओं को उनके आने का पहले से पता था; किन्तु अंगरेज़ों को इसका गुमान तक न था। दिल्ली में कम्पनी की फ़ौज का अंगरेज़ अफ़सर करनल रिपले समाचार पाते ही ५४ नम्बर की देशी पलटन को जमा करके मेरठ के विद्रोहियों का मुक़ाबला करने के लिए बढ़ा। आमना सामना होते ही जिस समय मेरठ के सवारों ने 'अंगरेज़ी राज की त्तय!' और 'सम्राट बहादुरशाह की जय!' बोली, दिल्ली के सिपाही तुरन्त बजाय हमला करने के, आगे बढ़

* Malleson, vol. v.
† J. C. Wilson's *Official Narrative.*

कर अपने मेरठ के भाइयों के साथ गले मिलने लगे। करनल रिपले घबरा गया और तुरन्त वहीं पर मार डाला गया। दिल्ली की सेना के सब अंगरेज़ अफ़सर मार डाले गए। संयुक्त सेना ने काशमीरी दरवाज़े से दिल्ली में प्रवेश किया। दरियागञ्ज के तमाम अंगरेज़ी बँगले जला दिए गए। दिल्ली के क़िले पर तुरन्त क्रान्तिकारियों का क़ब्ज़ा हो गया। सम्राट बहादुरशाह और बेगम ज़ीनतमहल ने सोचा कि अब ३१ मई तक ठहरे रहना मूर्खता होगी।

इतने में मेरठ की पैदल सेना और तोपख़ाना भी दिल्ली पहुँच गया। मेरठ के तोपख़ाने ने लाल क़िले में घुसते ही सम्राट बहादुर शाह के नाम पर २१ तोपों की सलामी दी। चार्ल्स बॉल लिखता है कि सेना के भारतीय अफ़सरों ने सम्राट बहादुरशाह को जाकर सलाम किया और मेरठ का सब हाल कह सुनाया। इन अफ़सरों में हिन्दू और मुसलमान दोनों शामिल थे। मेटकॉफ़ लिखता है कि सम्राट ने उनसे कहा कि—"मेरे पास कोई ख़ज़ाना नहीं है, मैं आप लोगों को तनख़ाहें कहाँ से दूँगा।" सिपाहियों ने उत्तर दिया—"हम लोग हिन्दोस्तान भर के अंगरेज़ी ख़ज़ाने ला लाकर आपके क़दमों पर डाल देंगे।" बूढ़े सम्राट ने स्वाधीनता संग्राम का नेतृत्व स्वीकार कर लिया और समस्त क़िला सम्राट की जयध्वनि से गूँज उठा!

दिल्ली के सहस्रों नगरनिवासी क्रान्तिकारियों के साथ मिल गए। जो अंगरेज़ जहाँ मिला उसे वहीं समाप्त कर दिया गया। लिखा है कि जिस समय मेरठ की फ़ौज दिल्ली पहुँची तो दिल्ली के
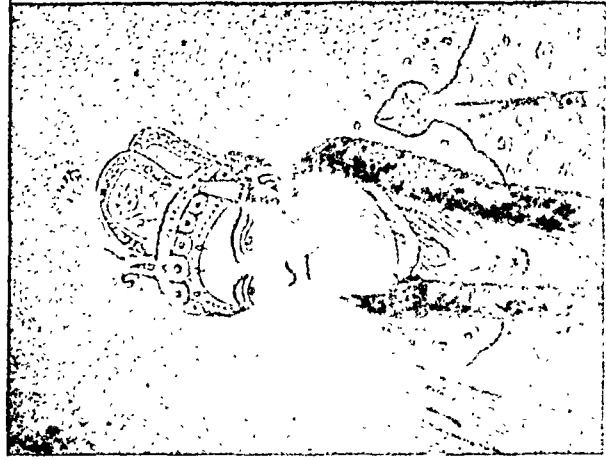
दिल्ली का अन्तिम सम्राट बहादुर शाह और बेगम ज़ीनत महल

[दिल्ली के शाही चित्रकार के बनाए हुए हाथी-दाँत के ऊपर दो चित्र—उस समय की भारतीय चित्रकला के दो सुन्दर नमूने। मॉडर्न रिव्यू, दिसम्बर १९११ से]

सहस्रों मुसलमान उनके चारों तरफ़ जमा हो गए और दिल्ली के हिन्दू बाशिन्दे स्थान स्थान पर अपनी कुटियों में मेरठ से आए हुए सिपाहियों को ओलों और बताशों का शरबत पिलाने लगे। दिल्ली के अंगरेज़ी बैङ्क पर क़ब्ज़ा कर लिया गया और अन्य अंगरेज़ी इमारतों को मिसमार कर दिया गया।

"दिल्ली के अन्दर उस समय कोई गोरी पलटन न थी। क़िले के पास अंगरेज़ों का एक बहुत बड़ा मैगज़ीन था, जिसमें क़रीब नौ लाख कारतूस, दस हज़ार बन्दूक और बहुत सा गोला बारूद था। क्रान्तिकारी सेना मैगज़ीन की ओर बढ़ी। उन्होंने दिल्ली सम्राट के नाम पर मैगज़ीन के अंगरेज़ अफ़सर लेफ्टिनेण्ट विलोबी को सन्देशा भेजा कि मैगज़ीन हमारे हवाले कर दो। विलोबी ने इनकार किया। मैगज़ीन के भीतर नौ अंगरेज़ और कुछ हिन्दोस्तानी थे। हिन्दोस्तानियों ने जब लाल क़िले के ऊपर सम्राट बहादुरशाह का हरा और सुनहरा झण्डा फहराते हुए देखा, वे अपने भाइयों से आ मिले। यह हरा झण्डा ही सन् १८५७-५८ की क्रान्ति में समस्त भारत के अन्दर क्रान्तिकारियों का युद्ध का झण्डा था। नौ अंगरेज़ों ने कुछ देर वीरता के साथ शत्रु का मुक़ाबला किया। अन्त में मैगज़ीन को बचा सकना असम्भव देख उन्होंने उसमें आग लगा दी। लिखा है कि मैगज़ीन के उड़ने पर एक हज़ार तोपों के साथ छूटने का सा शब्द हुआ, जिससे सारी दिल्ली के मकान हिल गए। नौ अंगरेज़ वीर उसी आग के अन्दर समाप्त होगए, और उसी के साथ २५

दिल्ली का मैगज़ीन

हिन्दोस्तानी सिपाही और आस पास की गलियों में क़रीब ३०० और नगर निवासी टुकड़े टुकड़े होकर उड़ गए। बन्दूकें सब क्रान्तिकारियों के हाथ आईं और प्रत्येक सिपाही को चार चार बन्दूकें मिल गईं। छावनी के अन्दर सब अंगरेज़ अफ़सर मार डाले गए। शहर के अन्दर अंगरेज़ों का क़त्ले आम ११ मई से १६ मई तक जारी रहा। इस बीच सैकड़ों अंगरेज़ जान बचा कर दिल्ली से भाग निकले। अनेक ने अपने मुँह काले कर लिए और हिन्दोस्तानी फ़क़ीरों के से कपड़े पहन लिए। अनेक गरमी से और मार्ग की कठिनाई से मर गए और अनेक को आस पास के गाँव वालों ने ख़त्म कर दिया। कुछ को रहमदिल ग्राम वालों ने आश्रय दिया और अपने यहाँ छिपा लिया।

दिल्ली की स्वाधीनता

१६ मई सन् १८५७ को भारत की प्राचीन राजधानी दिल्ली पूरी तरह कम्पनी के हाथों से आज़ाद हो गई और सम्राट बहादुरशाह फिर से दिल्ली का क्रियात्मक सम्राट गिना जाने लगा। निस्सन्देह शेष भारत पर इसका बहुत ज़बरदस्त प्रभाव पड़ा। नाना साहब और क्रान्ति के अन्य नेताओं ने बहादुरशाह ही के नाम पर समस्त भारत के नरेशों, सैनिकों और प्रजा को अंगरेज़ों के विरुद्ध युद्ध के लिए आह्वान किया था। बहादुरशाह का झण्डा ही उस समय भारत भर के क्रान्तिकारियों का झण्डा था।

यह एक बात ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि मेरठ, दिल्ली और उसके आस पास के ग्रामों में उन दिनों एक एक अंगरेज़ को चुन

चुन कर मारा गया फिर भी एक भी अंगरेज़ स्त्री का अपमान, क्रान्तिकारियों की ओर से नहीं किया गया। इसके प्रमाण में हम केवल कम्पनी की खुफिया पुलिस के प्रधान अफ़सर आनरेबुल सर विलियम म्योर के० सी० एस० आई० का बयान नीचे देते हैं। वह लिखता है कि—

"चाहे और कितना भी अत्याचार और रक्तपात क्यों न हुआ हो, जो क़िस्से अंगरेज़ स्त्रियों की बेइज़्ज़ती के फैल गए थे वे सब, जहाँ तक मैंने देखा और जाँच की, बिलकुल निराधार थे।"*

अलीगढ़ की स्वाधीनता

दिल्ली की स्वाधीनता की ख़बर बिजली की तरह सारे देश में फैल गई। अनेक स्थानों के नेता यह निश्चय न कर पाए कि हमें अपने यहाँ तुरन्त क्रान्ति शुरू कर देना चाहिए या नियत तिथि का इन्तज़ार करना चाहिए; फिर भी ११ मई से लेकर ३१ मई तक समस्त उत्तरी भारत में जगह जगह क्रान्ति की ज्वाला भड़क उठी। कम्पनी की ९ नम्बर पैदल पलटन अलीगढ़, मैनपुरी, इटावा और बुलन्दशहर में बँटी हुई थी। मई के शुरू में एक ब्राह्मण प्रचारक बुलन्दशहर की छावनी में सिपाहियों को क्रान्ति का उपदेश देने के लिए पहुँचा। पलटन के तीन सिपाहियों ने मुख़बिरी करके उस ब्राह्मण को पकड़वा दिया। पलटन का मुख्य स्थान अलीगढ़ था;

* "However much of cruelty and bloodshed there was, the tales which gained currency of dishonour to ladies were, so far as my observation and enquiries went, devoid of any satisfactory proof."—Hon Sir Wm Muir. K. C. S. I., Head of the Intelligence Dept.

उस ब्राह्मण को फाँसी के लिए अलीगढ़ लाया गया। २० मई की शाम को समस्त देशी सिपाहियों के सामने उसे फाँसी पर लटका दिया गया। ब्राह्मण को फाँसी पर लटका हुआ देख कर सिपाहियों का खून खौलने लगा। लिखा है कि तुरन्त एक सिपाही क़तार से निकल कर अपनी तलवार से उसके शरीर की ओर इशारा करके चिल्लाने लगा—"भाइयो! यह शहीद हमारे लिए रक्त का स्नान कर रहा है!" सिपाहियों के लिए अब ३१ तारीख़ का इन्तज़ार कर सकना असम्भव था। तुरन्त समस्त ९ नम्बर पलटन बिगड़ खड़ी हुई, किन्तु इस पलटन के सिपाहियों ने शान्ति के साथ अपने अंगरेज़ अफ़सरों से कहा कि यदि आप लोग अपनी जान बचाना चाहते हैं तो तुरन्त अलीगढ़ छोड़ दीजिए। उसी समय अलीगढ़ के समस्त अंगरेज़ अपनी स्त्रियों और बच्चों सहित अलीगढ़ से चल दिए और २० तारीख़ की आधी रात से पहले स्वाधीनता का हरा झण्डा अलीगढ़ के ऊपर फहराने लगा। सिपाही बहुत सा ख़ज़ाना और अस्त्र शस्त्र लेकर दिल्ली की ओर रवाना होगए।

मैनपुरी की स्वाधीनता

अलीगढ़ का यह समाचार २२ तारीख़ को मैनपुरी पहुँचा। उसी दिन वहाँ के सिपाही भी बिगड़ खड़े हुए। इन लोगों ने भी तमाम अंगरेज़ों की जान बख़्श दी और ठीक अलीगढ़ के सिपाहियों के समान गोला बारूद और शस्त्र ऊँटों पर लाद कर २३ मई को राजधानी की ओर रवाना होगये। स्वाधीनता का झण्डा मैनपुरी के ऊपर भी फहराने लगा।

इटावे की स्वाधीनता

यही हालत इटावे की हुई। इटावे के कलेक्टर मि० ह्यूम ने पुलिस और जनता से मदद चाही। किन्तु इन दोनों ने खुले क्रान्तिकारियों का साथ दिया। असिस्टेंट मैजिस्ट्रेट डेनियल लड़ाई में मारा गया। २३ मई को हिन्दोस्तानी सिपाहियों ने ख़ज़ाने पर क़ब्ज़ा कर लिया, जेलख़ाने को तोड़ दिया, अंगरेज़ों को अपने बच्चों और स्त्रियों समेत भाग जाने का मौक़ा दिया। लिखा है कि ह्यूम साहब एक भारतीय स्त्री का रूप धारण करके इटावे से निकल भागे।* शहर में स्वाधीनता का ढिंढोरा पीट दिया गया। इस प्रकार ६ नम्बर पलटन के समस्त सिपाही अलीगढ़, बुलन्दशहर, मैनपुरी, इटावा और आस पास के इलाक़े को स्वाधीन करके कम्पनी के ख़ज़ाने पर क़ब्ज़ा करते हुए, अंगरेज़ों की जान बख़्शते हुए, रसद और हथियार साथ लेकर दिल्ली की ओर चल दिए। इन नगरों के शासन का प्रबन्ध नगर निवासियों को सौंप दिया गया।

नसीराबाद में क्रान्ति

अजमेर के निकट नसीराबाद में कम्पनी की एक पलटन देशी पैदल की, एक कम्पनी गोरों की और कुछ तोपख़ाना रहा करता था। मेरठ के सिपाही इस समय दूर दूर तक फैल गए थे जिनमें से कुछ नसीराबाद में भी पहुँचे। २८ मई को वहाँ की हिन्दोस्तानी सेना बिगड़ी। गोरों की कम्पनी से उनका संग्राम हुआ। कुछ अंगरेज़ मारे गए और शेष जान बचा कर भाग गये। देशी सिपाहियों के

---

* *The Red Pamphlet*, Part ii, p. 70.

नेता दिल्ली सम्राट के नाम पर नगर के शासन का प्रबन्ध करके, ख़ज़ाना, हथियार और कई हज़ार सिपाहियों को साथ लेकर दिल्ली की ओर चल दिए।

रुहेलखण्ड का नेता ख़ानबहादुर ख़ाँ

रुहेलखण्ड का प्रान्त कुछ दिन पूर्व ही रुहेला पठानों के स्वाधीन शासन में रह चुका था। बरेली वहाँ की राजधानी थी। अन्तिम रुहेला नवाब का वंशज ख़ानबहादुर ख़ाँ इस समय कम्पनी के अधीन जजी के पद पर नियुक्त था। यह ख़ानबहादुर ख़ाँ ही रुहेलखण्ड में क्रान्ति का मुख्य नेता था।

रुहेलखण्ड की पल्टनों से अपील

बरेली में कम्पनी की ओर से ८ नम्बर देशी सवार, १८ और ६८ नम्बर पैदल पलटनें और कुछ तोपख़ाना रहता था। जनरल सिवल्ड वहाँ का सेनापति था। मेरठ की क्रान्ति की ख़बर १४ मई को बरेली पहुँची। मेरठ की क्रान्ति के बाद ही अंगरेज़ कमाण्डर-इन-चीफ़ ने हिन्दोस्तान भर की सेनाओं में इस बात का एलान करा दिया था कि नये कारतूस बन्द कर दिए गए और सब सिपाही पुराने कारतूसों का ही उपयोग करें, किन्तु क्रान्ति पर इसका अब कोई असर न हो सकता था। देहली से निम्न-लिखित पत्र रुहेलखण्ड की पलटनों के नाम पहुंचा—

"दिल्ली की सेना के सेनापति की ओर से बरेली और मुरादाबाद की पलटनों के सेनापतियों के नाम, हार्दिक आलिङ्गन! भाइयो! दिल्ली में अंगरेज़ों के साथ जङ्ग हो रही है। ख़ुदा की दुआ से हमने अंगरेज़ों को जो

पहली शिकस्त दी है उससे वे इतने घबरा गए हैं जितने किसी दूसरे मौक़े पर दस शिकस्तों से भी न घबराते। बेशुमार हिन्दोस्तानी बहादुर दिल्ली में आ आकर जमा हो रहे हैं। ऐसे मौक़े पर अगर आप वहाँ पर खाना खा रहे हैं तो हाथ यहाँ आकर धोइए। शाहों का बादशाह, जहाँपनाह, हमारा दिल्ली का शाहन्शाह आपका इस्तक़बाल करेगा और आपकी ख़िदमत का सिला देगा। हमारे कान इस तरह से आपकी ओर लगे हुए हैं जिस तरह रोज़ेदारों के कान अज़ान देने वाले की पुकार की ओर लगे रहते हैं। हम आपकी तोपों की आवाज़ सुनने के लिए बेचैन हैं। हमारी आँखें आपके दीदार की प्यासी उसी तरह सड़क पर लगी हुई हैं जिस तरह क़ासिद की आँखें लगी रहती हैं। आइए! आपका फ़र्ज़ है कि फ़ौरन् आइए। हमारा घर आपका घर है! भाइयो! आइए, बिना आपकी आमद की बहार के गुलाब में फूल नहीं आ सकते! बिना बारिश के कली नहीं खिल सकती! बिना दूध के बच्चा नहीं जी सकता!"*

पूर्व योजना का निश्चय

फिर भी बरेली के नेता ख़ानबहादुर ख़ाँ ने पूर्व योजना के अनुसार ३१ मई तक प्रतीक्षा करने का निश्चय किया। ख़ानबहादुर ख़ाँ और बरेली की समस्त देशी पलटनों का व्यवहार अंगरेज़ों के साथ इतना सुन्दर रहा कि अंगरेज़ों को अन्त समय तक उनकी वफ़ादारी में सन्देह न होने पाया।

ठीक ३१ मई को सबेरे सब से पहले कप्तान ब्राउनलो का बँगला

---

* *Narrative of the Indian Revolt*, p. 33.

जलाया गया। ठीक ग्यारह बजे दोपहर को अचानक एक तोप छुटी। यही क्रान्ति के शुरू होने का चिन्ह था। बरेली का संगठन बड़ा अच्छा था। ६८ नम्बर पलटन ने अंगरेज़ों के बँगलों में आग लगाना और अंगरेज़ों को मारना शुरू कर दिया। अंगरेज़ नैनीताल की ओर भागने लगे। जनरल सिबल्ड और अनेक अन्य अफ़सर मारे गए। केवल ३२ अंगरेज़ जान बचा कर नैनीताल पहुँचे। ६ घण्टे के अन्दर बरेली के ऊपर स्वाधीनता का हरा झण्डा फहराने लगा। जिस समय अंगरेज़ी झण्डा उतार कर उसकी जगह हरा झण्डा लगाया गया उसी समय तोपख़ाने के सूबेदार बख़्त ख़ाँ ने विप्लवकारी सेनाओं का प्रधान सेनापतित्व ग्रहण किया। इतिहास लेखक चार्ल्स बॉल लिखता है कि बख़्त ख़ाँ ने सिपाहियों को उपदेश दिया कि स्वाधीनता प्राप्त करने के बाद तुम्हें शान्ति और न्याय का व्यवहार करना चाहिए। समस्त प्रजा ने ख़ानबहादुर ख़ाँ को सम्राट की ओर से रुहेलखण्ड का सूबेदार स्वीकार किया। उसी दिन सूर्यास्त से पहले पहले ख़ानबहादुर ख़ाँ की ओर से एक दूत सम्राट को रुहेलखण्ड की स्वाधीनता की सूचना देने के लिए दिल्ली की ओर रवाना हो गया।

बरेली में स्वाधीनता का झण्डा

बरेली से ४७ मील दूर शाहजहाँपुर में २८ नम्बर पैदल पलटन थी। ठीक बरेली ही के समान शाहजहाँपुर भी इस पलटन के प्रयत्नों द्वारा ३१ मई की शाम तक स्वाधीन हो गया।

शाहजहाँपुर की स्वाधीनता

बरेली के दूसरी ओर मुरादाबाद है। वहाँ पर २९ नम्बर देशी पलटन थी। १८ मई को अंगरेज़ अफ़सरों को पता चला कि मेरठ के कुछ क्रान्तिकारी सिपाही मुरादाबाद के निकट आकर ठहरे हुए हैं। रात के समय २९ नम्बर के सिपाहियों को मेरठ के सिपाहियों पर हमला करने का हुकुम मिला। सिपाहियों ने उन पर हमला किया। लड़ाई के बाद इन सिपाहियों ने अपने अफ़सरों को इत्तला दी कि सिवाय एक के बाक़ी सब मेरठ वाले भाग गए। कुछ दिनों बाद पता चला कि ये सब मेरठ के सिपाही मुरादाबाद के सिपाहियों के साथ बारगों में आये और रात को खाने पीने और बातचीत के बाद वहीं आनन्द के साथ रात बिताई।

मुरादाबाद की स्वाधीनता

३१ मई को सवेरे २९ नम्बर पलटन के सब सिपाही परेड पर जमा हुए। उन्होंने अपने अंगरेज़ अफ़सरों को नोटिस दिया कि—"कम्पनी का राज समाप्त हो गया। आप सब लोग दो घण्टे के अन्दर मुरादाबाद छोड़ दीजिए, नहीं तो आप सब को मार डाला जायगा।" मुरादाबाद की पुलिस और जनता भी क्रान्ति के पक्ष में थी। कुछ अंगरेज़ जिनमें वहाँ के जज, कलेक्टर और सिविल सर्जन भी शामिल थे, अपने बाल बच्चों को लेकर मुरादाबाद से भाग निकले। मुरादाबाद का कमिश्नर पॉवेल और उसके कुछ अंगरेज़ साथी मुसलमान हो गए। उनकी जानें बख़्श दी गईं। सिपाहियों ने ख़ज़ाने और तमाम सरकारी माल पर क़ब्ज़ा कर

लिया। सूर्यास्त से पहले पहले मुरादाबाद के ऊपर भी हरा झण्डा फहराने लगा।

बरेली, शाहजहाँपुर और मुरादाबाद के अतिरिक्त रुहेलखण्ड में एक और बड़ा शहर बदायूँ है। पहली जून को शाम को बदायूँ में क्रान्ति प्रारम्भ हुई। सिपाहियों, मुख्य मुख्य नगर निवासियों और पुलिस ने मिल कर ढिंढोरा पिटवा दिया कि अंगरेज़ी राज का अन्त हो गया और सूबेदार ख़ानबहादुर ख़ाँ का शासन शुरू हो गया। बदायूँ के अंगरेज़ जंगलों में भाग गए। उनमें से अनेक बड़े कष्टों के साथ जंगलों में मरे। इस प्रकार समस्त रुहेलखण्ड दो दिन के अन्दर कम्पनी के शासन से निकल गया। ख़ानबहादुर ख़ाँ ने एक नई फ़ौज बना कर सारे रुहेलखण्ड में शान्ति और सुशासन स्थापित किया। अधिकांश महकमों के हिन्दोस्तानी मुलाज़िम पूर्ववत् बहाल रक्खे गए और लगान दिल्ली के सम्राट के नाम पर वसूल किया जाने लगा। ख़ानबहादुर ख़ाँ ने अपने हाथ से रुहेलखण्ड की स्वाधीनता का सब हाल लिख कर सम्राट को भेजा।

बदायूं की स्वाधीनता

एक एलान लिख कर उसने तमाम रुहेलखण्ड में बँटवाया, जिसके मुख्य वाक्य ये थे—

ख़ान बहादुर ख़ाँ का ऐलान

"हिन्दोस्तान के रहने वालो! स्वराज्य का पाक दिन, जिसका बहुत अरसे से इन्तज़ार था, आ पहुँचा है! आप लोग इसे मंजूर करेंगे या इससे इनकार करेंगे? आप इस ज़बरदस्त मौक़े से फ़ायदा उठाएँगे या इसे हाथ से जाने देंगे? हिन्दू और मुसलमान

भाइयो ! आप सब को मालूम होना चाहिए कि अगर ये अंगरेज़ हिन्दोस्तान में रह गए तो हम सब को क़त्ल कर देंगे और आप लोगों के मज़हब को मिटा देंगे ! हिन्दोस्तान के बाशिन्दे इतने दिनों तक अंगरेज़ों के धोखे में आते रहे, और अपनी ही तलवारों से अपने गले काटते रहे हैं । इसलिए अब हमें मुल्क फ़रोशी के अपने इस गुनाह का प्रायश्चित करना चाहिए ! अंगरेज़ अब भी अपनी पुरानी दग़ाबाज़ी से काम लेंगे । वे हिन्दुओं को मुसलमानों के ख़िलाफ़ और मुसलमानों को हिन्दुओं के ख़िलाफ़ उभारने की कोशिश करेंगे । लेकिन हिन्दू भाइयो ! उनके फ़रेब में न पड़ना । हमें अपने होशियार हिन्दू भाइयों को यह बताने की ज़रूरत नहीं है कि अंगरेज़ कभी अपने वादे पूरे नहीं करते । ये लोग चाल और दग़ाबाज़ी में ताक़ हैं ! ये हमेशा से सिवाय अपने मज़हब के और सब मज़हबों को दुनियाँ से मिटाने की कोशिश करते रहे हैं । क्या उन्होंने गोद लिए हुए बच्चों के हक़ नहीं छीन लिए हैं ? क्या उन्होंने हमारे राजाओं के राज और मुल्क नहीं हड़प लिए हैं ? नागपुर का राज किसने ले लिया ? लखनऊ की बादशाहत किसने छीन ली ? हिन्दू और मुसलमान दोनों को पैरों तले किसने रौंदा ? मुसलमानो ! अगर तुम कुरान की इज़्ज़त करते हो तो और हिन्दुओ ! अगर तुम गो माता की इज़्ज़त करते हो तो, अब अपने छोटे छोटे तफ़र्क़ों को भूल जाओ और इस पाक जङ्ग में शामिल हो जाओ ! लड़ाई के मैदान में कूद कर एक झण्डे के नीचे लड़ो और खून की नदियों से अंगरेज़ों का नाम हिन्दोस्तान से धो डालो ! × × × गाय का मारा जाना बन्द कर दिया जाय । इस पाक जङ्ग में जो आदमी खुद लड़ेगा या जो धन से लड़ने वालों की मदद करेगा, दोनों

को इस लोक में और परलोक में दोनों जगह निजात मिलेगी ! लेकिन अगर कोई इस मुल्की जङ्ग की मुख़ालफ़त करेगा तो वह अपने सर पर कुल्हाड़ी मारेगा और ख़ुदकुशी के गुनाह का ज़िम्मेवार होगा !"

वख़्त ख़ाँ दिल्ली की ओर

बरेली, शाहजहाँपुर, मुरादाबाद और बदायूँ से कम्पनी की समस्त हिन्दोस्तानी सेना कम्पनी के ख़ज़ानों, तोपों और अन्य हथियारों सहित वख़्त ख़ाँ के नेतृत्व में राजधानी दिल्ली की ओर रवाना हो गई। ख़ानवहादुर ख़ाँ और वख़्त ख़ाँ दोनों की गिनती उस विप्लव के सब से अधिक योग्य नेताओं में की जाती है।

रुहेलखण्ड के बाद हमें लखनऊ और कानपुर को कुछ देर के लिए बीच में छोड़ कर बनारस और इलाहाबाद की ओर दृष्टि डालनी होगी।

आज़मगढ़ और गोरखपुर की स्वाधीनता

बनारस में कम्पनी की ३७ नवम्बर पैदल पलटन, एक लुधियाने की सिख पलटन और एक सवार पलटन थीं। वहाँ का तोपख़ाना गोरों के हाथों में था। आगरे से कलकत्ते तक उस समय केवल दानापुर में एक पूरी गोरी रेजिमेण्ट मौजूद थी। अर्थात् यदि एक साथ सब जगह स्वाधीनता की लड़ाई शुरू होती तो अंगरेज़ों के लिए कम से कम उत्तरी भारत में ठहर सकना सर्वथा असम्भव था।

३१ मई को बनारस की बारगों में आग लगी। ३ जून को गोरखपुर और आज़मगढ़ के ख़ज़ानों से सात लाख रुपए नक़द

बनारस के लिए आ रहे थे। उसी दिन रात को १७ नम्बर पलटन ने, जो आज़मगढ़ में थी, विप्लव प्रारम्भ कर दिया। केवल दो को छोड़ कर शेष सब अंगरेज़ों की उन्होंने जान बख़्श दी। यहाँ तक कि उनके और उनके बाल बच्चों के बनारस जाने के लिए गाड़ियों तक का प्रबन्ध कर दिया। किन्तु सात लाख के उस ख़ज़ाने पर, कम्पनी के गोले बारूद पर और जेलख़ाने, दफ़्तरों इत्यादि पर क्रान्तिकारियों ने क़ब्ज़ा कर लिया। आजमगढ़ की पुलिस ने सिपाहियों का पूरा साथ दिया। आजमगढ़ के नगर पर उसी रात को हरा झण्डा फहराने लगा।

जनरल नील

इस समय तक गवरनर जनरल लॉर्ड कैनिङ्ग ने मेरठ के विद्रोह और दिल्ली की स्वाधीनता का समाचार पाते ही बम्बई, मद्रास और रङ्गून से मँगा कर बहुत सी गोरी सेना बङ्गाल में जमा कर ली। ठीक उन दिनों ईरान के साथ अंगरेज़ों का युद्ध समाप्त हुआ था, और चीन के ऊपर अङ्गरेज़ हमला करने वाले थे। भारत के विप्लव के कारण अङ्गरेज़ों को चीन पर हमला करने का विचार छोड़ देना पड़ा। एक विशाल गोरी सेना ईरान से चीन की ओर जा रही थी। लॉर्ड कैनिङ्ग ने इस समस्त सेना को भारत में रोक लिया। इसमें से बहुत सी सेना लेकर सुप्रसिद्ध जनरल नील बनारस पहुँचा। बनारस के अङ्गरेज़ों की हिम्मत बँध गई। ४ जून को आज़मगढ़ का समाचार बनारस पहुँचा। उसी दिन तीसरे पहर बनारस के अंगरेज़ अफ़सरों ने देशी सिपाहियों से हथियार रखा लेने का निश्चय किया।

सिख और हिन्दुओं के साथ का एक मात्र अवसर

परेड के मैदान में जिस समय देशी सिपाहियों को हथियार रख देने की आज्ञा दी गई, वे बजाय हथियार रख देने के मैगज़ीन पर और अंगरेज़ अफ़सरों पर टूट पड़े। तुरन्त सिख पलटन उनके मुक़ाबले के लिए आ खड़ी हुई। अभी लड़ाई शुरू ही हुई थी कि अंगरेज़ी तोपख़ाने ने आकर सब पर गोले बरसने शुरू किए। यद्यपि सिख अंगरेज़ों का साथ दे रहे थे, फिर भी उस समय की घबराहट में तोपख़ाने के अंगरेज़ अफ़सर हिन्दू और सिखों में तमीज़ न कर सके। उन्होंने दोनों पर गोले बरसाने शुरू किए। विवश होकर सिखों को विप्लवकारियों का साथ देना पड़ा। सन् ५७-५८ के तमाम विप्लव में शायद यही एक मात्र अवसर था जब कि सिख सेना ने हिन्दू और मुसलमानों का साथ दिया।

बनारस में क्रान्तिकारियों की असफलता

बनारस की जनता विप्लवकारियों के साथ थी। किन्तु सिखों ने, वहाँ के कई रईसों ने और राजा चेतसिंह के वंशज बनारस के उपाधिधारी राजा ने उस समय अंगरेज़ों को पूरी सहायता दी। विप्लवकारी नगर छोड़ कर इधर उधर फैल गए।

जौनपुर की स्वाधीनता

५ जून को जौनपुर में विप्लव प्रारम्भ हुआ, कई अंगरेज़ मारे गए। शेष को नगर छोड़ने की आज्ञा दे दी गई। विप्लवकारियों ने ख़ज़ाने पर क़ब्ज़ा कर लिया। जौनपुर के बचे हुए अंगरेज़ किश्तियों में बैठ कर बनारस की ओर चल दिए।

अपने अपने नगरों को स्वाधीन करने के बाद आज़मगढ़ और जौनपुर दोनों जगह के सिपाही फ़ैज़ाबाद की ओर चल दिए। दोनों नगरों के ऊपर हरा भण्डा फहराने लगा। यद्यपि बनारस नगर पर कम्पनी का क़ब्ज़ा रहा, फिर भी आस पास का अधिकांश इलाक़ा विप्लवकारियों के क़ब्ज़े में आ गया। जगह जगह अंगरेज़ों के नियुक्त किए हुए नए ज़मींदारों को हटा कर पुराने पैतृक ज़मींदार उनकी जगह नियुक्त कर दिए गए। जगह जगह अंगरेज़ी अदालतों, अंगरेज़ी जेलों और अंगरेज़ी दफ़्तरों का ख़ात्मा हो गया। तार काट डाले गए, रेलें उखाड़ कर फेंक दी गईं, गाँव गाँव में हरा भण्डा लिए हुए स्वयं सेवक पहरा देने लगे।

बनारस के प्रान्त भर में क्रान्तिकारियों ने एक भी अंगरेज़ स्त्री को नहीं मारा और जिन अंगरेज़ों ने हथियार रख दिए उन्हें शान्ति के साथ स्वयं गाड़ियों में बैठा कर नगर से चले जाने की इजाज़त दे दी।

इलाहाबाद का महत्व

क्रान्तिकारियों और अंगरेज़ों दोनों की दृष्टि से इलाहाबाद का नगर बनारस की अपेक्षा कहीं अधिक महत्व का था। कलकत्ते से पश्चिमोत्तर प्रदेशों को जाने वाली सब सड़कें इलाहाबाद में मिलती थीं। इलाहाबाद का क़िला भारत के ज़बरदस्त क़िलों में से था। उसमें गोले बारूद और अस्त्र शस्त्रों का एक बहुत बड़ा संग्रह था। लिखा है कि प्रयाग के पण्डे आस पास की हिन्दू जनता के अन्दर स्वाधीनता के युद्ध का प्रचार करने में बहुत बड़ा भाग ले रहे थे। मुसलमानों में हिन्दुओं

की अपेक्षा भी कहीं अधिक जोश था। चार्ल्स वॉल लिखता है कि अंगरेज़ सरकार के अधिकांश बड़े और छोटे देशी मुलाज़िम इस संगठन में शामिल थे।

इलाहाबाद शहर पर क्रान्तिकारियों का क़ब्ज़ा

जिस समय मेरठ का समाचार इलाहाबाद पहुँचा, इलाहाबाद में एक भी अंगरेज़ सिपाही न था, वहाँ ६ नम्बर देशी पलटन, क़रीब २०० सिख सिपाही और मुट्ठी भर अंगरेज़ अफ़सर थे। अवध से देशी सवारों की एक पलटन और बुला ली गई। ६ नम्बर पलटन ने अपने अंगरेज़ अफ़सरों को इतनी सुन्दरता के साथ बहकाए रक्खा कि अफ़सरों को अन्त समय तक उन पर सन्देह न हो पाया। दिल्ली का समाचार पाकर उन्होंने अपने अफ़सरों से कहा—"आप हमें दिल्ली भेज दीजिए, हम विद्रोहियों के टुकड़े टुकड़े कर डालेंगे।" इस पर गवरनर जनरल लॉर्ड कैनिङ्ग तक ने ६ नम्बर पलटन को शाबासी दी। लिखा है कि ६ जून को जब उनके अंगरेज़ अफ़सर बारगों में उनसे मिलने के लिए गए तो कुछ सिपाहियों ने अपनी ख़ैरख़ाही दर्शाने के लिए लपक कर उन्हें छाती से लगाया और उनके दोनों गालों को चूमा। किन्तु वही रात उनके विप्लव के लिए नियत थी। ६ नम्बर की बारगें क़िले से बाहर थीं। जिस वक्त अंगरेज़ अफ़सर खाना खा रहे थे, सिपाहियों की बिगुल बजी। अनेक अंगरेज़ मारे गए। शेष क़िले में जाकर छिप गए। अंगरेज़ों ने सवार पलटन को अपनी मदद के बुलाया। सवार जमा हुए। किन्तु बजाय क्रान्तिकारियों पर हमला करने के वे

मैदान में पहुँचते ही उनके साथ मिल गए। दोनों पलटनों के अधिकांश अफ़सर मारे गए। अंगरेज़ों के बँगलों को आग लगा दी गई।

सिख पलटन इस समय क़िले के अन्दर थी। यदि क़िले के सिख उस समय विप्लवकारियों का साथ दे जाते तो आध घण्टे के अन्दर इलाहाबाद का क़िला और उसके अन्दर का तमाम सामान विप्लवकारियों के हाथों में आ जाता। किन्तु ठीक उस संकट के समय सिखों ने अंगरेज़ों का साथ दिया। अंगरेज़ी झण्डा इलाहाबाद के क़िले पर फहराता रहा।

यदि सिख क्रान्तिकारियों का साथ देते

शहर के लोगों ने विप्लवकारी सिपाहियों का पूरा साथ दिया। अंगरेज़ों के सब मकान जला दिए गए। जेलख़ाने के क़ैदी रिहा कर दिए गए। ख़ज़ाने पर क़ब्ज़ा कर लिया गया, रेल और तार तोड़ डाले गए। इलाहाबाद के ख़ज़ाने में क्रान्तिकारियों को क़रीब तीस लाख रुपए मिले। ७ तारीख़ की शाम को शहर और छावनी में हरे झण्डे का जुलूस निकाला गया। नगर निवासियों और सिपाहियों ने झण्डे को सलामी दी। शहर की कोतवाली के ऊपर हरा झण्डा फहराने लगा।

कोतवाली के ऊपर स्वाधीनता का झण्डा

इलाहाबाद के आस पास के सैकड़ों गाँवों में हिन्दू और मुसलमान रैयत और ज़मींदार सब ने मिल कर अंगरेज़ी राज के ख़ात्मे का एलान कर दिया और इलाहाबाद के समान एक एक गाँव के ऊपर

हरे झण्डे का जुलूस

हरा झण्डा फहराने लगा। जगह जगह अंगरेज़ों के नियुक्त किए हुए नए ज़मींदार हटा दिए गए और पुराने खानदानी ज़मींदार उनकी जगह नियुक्त कर दिए गए। लिखा है कि नगर के अन्दर दस दस बारह बारह बरस के लड़के हरे झण्डे हाथों में लेकर जुलूस बना कर निकलने लगे। इतिहास लेखक सर जॉन के लिखता है—

"न केवल गंगा के पार के इलाक़ों में ही, बल्कि गंगा और जमना के बीच के इलाक़े में भी देहाती जनता बिगड़ खड़ी हुई। × × × शीघ्र ही हिन्दू अथवा मुसलमान एक भी मनुष्य न बचा जो हमारे विरुद्ध न हो गया हो।"*

मौलवी लियाक़तअली

इलाहाबाद के स्वाधीन होने के बाद दो चार दिन थोड़ी बहुत अराजकता रही। उसके बाद शहर के लोगों और आस पास के कुछ ज़मींदारों ने मिल कर मौलवी लियाक़तअली नामक एक योग्य मनुष्य को सम्राट बहादुरशाह की ओर से इलाहाबाद के इलाक़े का सूबेदार नियुक्त किया। लियाक़तअली एक असाधारण योग्यता का मनुष्य था। उसके चरित्र की पवित्रता के कारण सब लोग उसका आदर करते थे। उसने खुसरो बाग़ को अपना केन्द्र बनाया, शहर में पूरी शान्ति स्थापन कर दी और दिल्ली सम्राट को बराबर अपने यहाँ के हालात की सूचना देता रहा। इसके बाद मौलवी लियाक़त

---

* "For not only in the districts beyond the Ganges but in those lying between the two rivers, the rural population had risen . . . and, soon there was scarcely a man of either faith who was not arrayed against us."—Kaye's *Indian Mutiny*, vol. ii, page 195.

अली ने क़िले पर क़ब्ज़ा करने का प्रयत्न किया। क़िले के भीतर के सिखों को उसने स्वाधीनता के युद्ध में भाग लेने के लिए निमन्त्रित किया। किन्तु सिखों पर इसका कोई असर न हुआ।

यद्यपि विप्लवकारियों के सब से अधिक महत्वपूर्ण कृत्यों को बयान करना अभी बाक़ी है, फिर भी इस समय से ही अंगरेज़ों की ओर से प्रतिकार की आग भड़कनी शुरू हो गई।

छयालीसवाँ अध्याय

प्रतिकार का प्रारम्भ

जनरल नील की दमन योजना

लॉर्ड कैनिङ्ग एक विशाल सेना सहित, जिसमें अधिकांश गोरे, कुछ सिख और कुछ मद्रासी थे, जनरल नील को बनारस की ओर रवाना कर चुका था। बनारस का नगर अंगरेज़ों के हाथों में था। जनरल नील के बनारस पहुँचते ही पहले नगर में बड़ी बड़ी गिरफ़्तारियाँ हुईं। इसके बाद जनरल नील ने आस पास के इलाक़े को फिर से विजय करने के लिए अंगरेज़ों और सिख सिपाहियों के कई अलग अलग दस्ते बनाए। इस अवसर पर जनरल नील की आज्ञा से उसकी सेना ने हिन्दोस्तानी प्रजा के ऊपर जो भयङ्कर अत्याचार किए उन्हें हम अंगरेज़ इतिहास लेखकों ही की पुस्तकों से लेकर इस स्थान पर दे रहे हैं।

जनरल नील के सिपाही एक एक गाँव में घुसते थे। जितने मनुष्य उन्हें मार्ग में मिलते थे उन्हें वे विना किसी तमीज़ के तलवार के घाट उतार देते थे या गोली से उड़ा देते थे और या फाँसी पर लटका देते थे। स्थान स्थान पर फाँसी के तख़्ते खड़े किये गये जिन पर चौबीस चौबीस घण्टे बराबर काम जारी रहता था। जब इनसे भी काम न चला तो अंगरेज़ अफ़सरों ने दरख़्तों की शाखों से फाँसी का काम लेना शुरू किया। जिस मनुष्य को फाँसी देनी होती थी उसे प्रायः हाथी पर बैठाया जाता था। हाथी को किसी ऊँची डाल के पास ले जाया जाता था। उस मनुष्य की गरदन रस्सी से डाल के साथ बाँध दी जाती थी। फिर हाथी को हटा लिया जाता था और लटकती हुई लाश को उसी जगह छोड़ दिया जाता था।*

कई तरह की फाँसी

के और मॉलेसन ने अपने विप्लव के इतिहास में लिखा है कि जो लोग फाँसी पर लटकाए जाते थे, उनके हाथों और पैरों को विनोद की ग़रज़ से अंगरेज़ी के अङ्कों आठ और नौ (8 & 9) की शकल में बाँध दिया जाता था।† जब ये उपाय भी काफ़ी दिखाई न दिए तो अंगरेज़ अफ़सरों ने गाँव के गाँव जलाने शुरू कर दिये। गाँव के बाहर तोपें लगा दी जाती थीं और समस्त पुरुषों, स्त्रियों, बच्चों

नरसंहार और अग्निकांड

* *Narrative of the Indian Revolt*, p. 69.

† Kaye and Malleson's *History of the Indian Mutiny*, vol. ii, p. 177.

और पशुओं समेत गाँव को आग लगा दी जाती थी। अनेक अंगरेज़ अफ़सरों ने बड़े गर्व के साथ इन हृदय विदारक दृश्यों को अपने पत्रों में बयान किया है। आग इतनी होशियारी से लगाई जाती थी कि एक भी गाँव वाला न बच सके। चार्ल्स बॉल लिखता है कि माताएँ अपने दुधमुंहे बच्चों समेत और अगणित बूढ़े पुरुष और स्त्रियाँ जो अपनी जगह से हिल न सकते थे, बिछौनों के अन्दर जला कर ख़ाक कर दिए गए।*

भागने वाले गोलियों के शिकार

एक अंगरेज़ अपने एक पत्र में लिखता है—"हमने एक बड़े गाँव को आग लगाई जिसमें लोग भरे हुए थे। हमने उन्हें घेर लिया और जब वे आग की लपटों में से निकल कर भागने लगे तो हमने उन्हें गोलियों से उड़ा दिया!"†

प्रतिकार की पहली बाढ़

अनेक स्थानों पर विप्लवकारियों ने अंगरेज़ मर्द, औरत और बच्चों की जानें बख़्श दीं। असंख्य ग्रामों में लोगों ने भागे हुए अंगरेज़ों को अपने घरों में आश्रय दिया। किन्तु कम्पनी के पूरे इतिहास में अंगरेज़ क़ौम के अन्दर वीरोचित गुणों का सदा अभाव ही मिला है। जनरल नील की सेना ने भी दोषी, निर्दोष, बालक, वृद्ध, या स्त्री पुरुष का कोई ख़याल नहीं किया।

---

* Charles Ball's *Indian Mutiny*, vol. i, pp. 243-44.

† "We set fire to a large village which was full of them. We surrounded them, and when they came rushing out of the flames, we shot them!"—Charles Ball's *Indian Mutiny*, vol. i, pp. 243-44.

जनरल नील के अत्याचारों के विषय में एक अंगरेज़ इतिहास-लेखक लज्जित होकर लिखता है—

"अच्छा यह है कि जनरल नील के प्रतिकार के विषय में कुछ लिखा ही न जाय !"*

इतिहास लेखक सर जॉन के लिखता है—

"फ़ौजी और सिविल दोनों तरह के अंगरेज़ अफ़सर अपनी अपनी ख़ूनी अदालतें लगा रहे थे, अथवा बिना किसी तरह के मुक़दमे का ढोंग रचे और बिना मर्द, औरत या छोटे बड़े का विचार किए भारतवासियों का संहार कर रहे थे। इसके बाद ख़ून की प्यास और भी अधिक भड़की। भारत के गवरनर जनरल ने जो पत्र इङ्गलिस्तान भेजे उनमें हमारी ब्रिटिश पार्लिमेण्ट के काग़ज़ों में यह बात दर्ज है कि 'बूढ़ी औरतों और बच्चों का उसी तरह वध किया गया है जिस प्रकार उन लोगों का जो विप्लव के दोषी थे।' इन लोगों को सोच समझ कर फाँसी नहीं दी गई, बल्कि उन्हें उनके गाँव के अन्दर जला कर मार डाला गया, शायद कहीं कहीं उन्हें इत्तफ़ाक़िया गोली से भी उड़ा दिया गया। अंगरेज़ों को गर्व के साथ यह कहते हुए अथवा पत्रों में लिखते हुए भी सङ्कोच न हुआ कि हमने एक भी हिन्दोस्तानी को नहीं छोड़ा और काले हिन्दोस्तानियों को गोलियों से उड़ाने में हमें बड़ा विनोद और आश्चर्यजनक आनन्द अनुभव होता था। एक पुस्तक में जिसका बड़े बड़े अंगरेज़ अफ़सरों ने समर्थन किया है, लिखा है सड़कों के चौरस्तों पर और बाज़ारों में जो लाशें टँगी हुई थीं, उनको उतारने में सूर्योदय से सूर्यास्त तक मुरदे ढोने वाली आठ आठ गाड़ियाँ बराबर तीन तीन महीने

* "It is better not to write anything about General Neill's revenge!"

तक लगी रहीं, और इस प्रकार [एक स्थान पर] छै हज़ार मनुष्यों को झटपट ख़त्म कर परलोक भेज दिया गया। × × × जब कोई अंगरेज़ यह पढ़ता है कि किसी काले रङ्ग के बदमाश ने किसी मिस्टर चैम्बर्स या किसी मिस जेनिङ्ग्स को काट डाला तो क्रोध के मारे उसका दम घुटने लगता है, किन्तु भारतवासियों के इतिहासों में अथवा यदि इतिहास न हुए तो उनके परम्परागत वृत्तान्तों में हमारी क़ौम के विरुद्ध यह स्मरण रहेगा कि भारत की माताएँ, पत्नियाँ और बच्चे, जिनके नामों से हम इतनी अच्छी तरह परिचित नहीं हैं, अङ्गरेज़ों के प्रतिकार की पहली बाढ़ के निर्दयता के साथ शिकार हुए।"*

---

* "Soldiers and civilians alike were holding Bloody Assizes, or slaying Natives without any assize at all, regardless of sex or age. Afterwards the thirst for blood grew stronger still. It is on the records of our British Parliament, in papers sent home by the Governor-General of India in Council that 'the aged women, and children, are sacrificed, as well as those guilty of rebellion.' They were not deliberately hanged, but burnt to death in their villages, perhaps now and then accident by shot. Englishmen did not hesitate to boast or to record their boasting in writing, that they had spared no one, and that peppering away at niggers was very pleasant pastime, enjoyed amazingly. And it has been stated, in a book patronised by official authorities, that 'for three months eight dead carts daily went their rounds from sunrise to sunset to take down the corpses which hung at the cross roads and market places' and that six thousand beings had been thus 'summarily disposed off and launched into eternity.' . . . An Englishman is almost suffocated with indignation when he reads that Mr. Chambers or Miss Jennings was nacked to death by a dusky ruffian, but in Native histories or, history being wanting, in Native legends and tratitions, it may be recorded against our people, that mothers and wives and children, with less familier names, fell miserable victims to the first swoop of English vengeance . . . "—Kaye's *History of the Sepoy War*, vol. ii.

यह दशा कुछ थोड़े बहुत ग्रामों की ही नहीं की गई। जनरल नील ने अपनी फ़ौज को अनेक दस्तों में बाँट दिया था। एक एक दस्ते में कई कई अफ़सर होते थे। इनमें से एक अफ़सर अपने केवल एक दिन के कृत्य को अभिमान के साथ वर्णन करते हुए अपने किसी अंगरेज़ मित्र को लिखता है—

"किन्तु आप यह जान कर सन्तुष्ट होंगे कि मैंने बीस ग्रामों को ज़मीन से मिला कर बराबर कर दिया।"

बनारस से जनरल नील अपनी विजयी सेना सहित इलाहाबाद की ओर बढ़ा। मार्ग में उसने बनारस से इलाहाबाद तक सहस्त्रों ही ग्रामों को ग्राम निवासियों सहित जला कर ख़ाक कर दिया।

इलाहाबाद निवासियों से बदला

११ जून को जनरल नील इलाहाबाद पहुँचा। यदि इससे पूर्व क़िले के अन्दर के सिख सिपाही विप्लवकारियों से मिल गए होते और क़िले के अन्दर की असंख्य बन्दूकें और युद्ध की अन्य सामग्री विप्लवकारियों के हाथों में आगई होती, तो जनरल नील के लिए इलाहाबाद फिर से विजय कर सकना शायद असम्भव होता। लिखा है कि नील दूर से यह देख कर चकित रह गया कि इलाहाबाद के क़िले पर अभी तक अंगरेज़ी झण्डा फहरा रहा है। इस पर भी वह इलाहाबाद जैसे क़िले के लिए किसी भारतवासी का एतबार न कर सकता था। उसने आते ही क़िले के भीतर के सिख सिपाहियों को पास के गाँव जलाने के लिए बाहर भेज दिया और क़िला गोरे सिपाहियों के सुपुर्द कर दिया। सिखों

ने सहर्ष नील की आज्ञा का पालन किया। क़िला और क़िले के सामान की सहायता से अंगरेज़ों ने १७ जून को खुसरो बाग़ पर हमला किया। दिन भर खूब घमासान संग्राम हुआ। क्रान्तिकारियों ने बड़ी वीरता के साथ सामना किया। किन्तु अन्त में मौलवी लियाक़तअली ने देख लिया कि नील की विशाल सेना के मुक़ाबले में उनका ठहर सकना असम्भव था, इसके अतिरिक्त लियाक़तअली के पास उस समय तीस लाख का भारी ख़ज़ाना था, जिसे वह शत्रु के हाथ में पड़ने देना न चाहता था। इसलिए लियाक़तअली अपने साथियों और ख़ज़ाने सहित १७ जून की रात को कानपुर की ओर निकल गया। कानपुर के समर्पण के बाद लियाक़तअली दक्खिन की ओर गया। वहीं से गिरफ़्तार करके उसे अण्डमन भेज दिया गया। वहाँ कई वर्ष तक निर्वासन भुगतने के बाद मौलवी लियाक़त अली की मृत्यु हुई। इस समय इलाहाबाद से १५ मील पश्चिम महगाँव में, जहाँ कि लियाक़तअली का जन्म स्थान था, उनकी एक कन्या अब तक जीवित है।

१८ जून को रात को अंगरेज़ों ने सिखों की मदद से इलाहाबाद के नगर में प्रवेश किया।

छोटे छोटे बालकों को फाँसी

इस अवसर पर इलाहाबाद के नगर निवासियों से नील और उसके आदमियों ने जिस भयङ्कर रूप में बदला चुकाया उसका कुछ अनुमान इस एक घटना से लगाया जा सकता है कि अनेक छोटे छोटे लड़कों को केवल इस अपराध में फाँसी पर लटका दिया गया कि वे हरे झण्डे
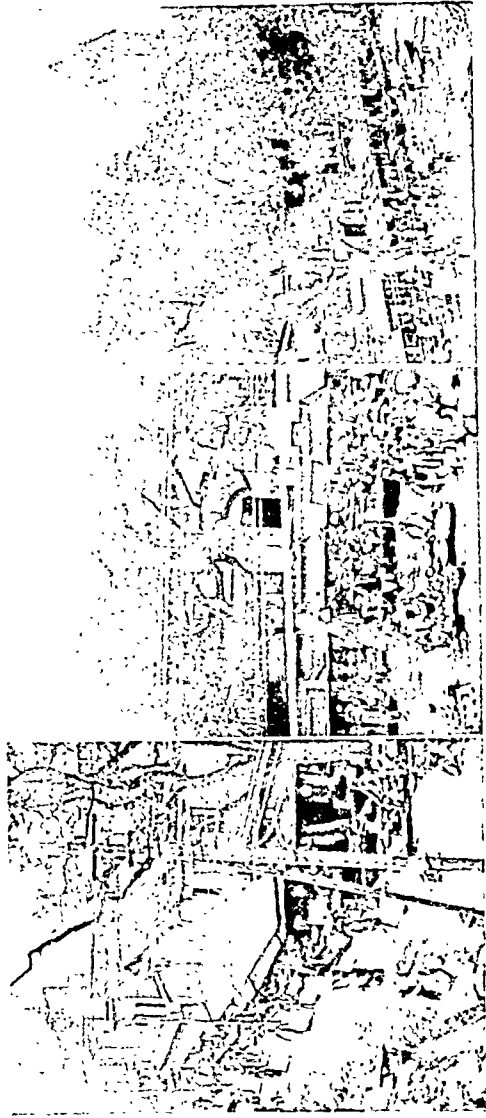
चौक इलाहाबाद के सात नीम के वृक्षों में से चार; जिन पर सन् ५७ में लगभग ८०० निर्दोष नगरनिवासियों को फाँसी पर लटका दिया गया

["भारत में अंगरेज़ी राज" के लिए विशेष फ़ोटो]

हाथ में लेकर ढोल बजाते हुए जुलूस की शकल में शहर की गलियों में घूम रहे थे।*

ऋण दाताओं को फांसी

लन्दन 'टाइम्स' के सम्वाददाता सर विलियम रसल से कमाण्डर-इन-चीफ़ सर कॉलिन कैम्पबेल ने कहा था कि उन दिनों इलाहाबाद का एक अंगरेज़ सौदागर विद्रोहियों का पता लगाने के लिए स्पेशल कमिश्नर नियुक्त किया गया। वह अनेक हिन्दोस्तानी व्यापारियों का कर्ज़दार था। सबसे पहला काम उसने यह किया कि अपने सब ऋणदाताओं को पकड़ कर फाँसी दे दी।†

इलाहाबाद चौक के नीम के वृक्ष

इलाहाबाद के चौक के अन्दर उन सात नीम के वृक्षों में से अभी तक तीन मौजूद हैं, जिनकी शाखों पर, चन्द दिन के अन्दर, कहा जाता है कि क़रीब आठ सौ निर्दोष नगर निवासियों को फाँसी दे दी गई। इस फाँसी के ढङ्ग को बयान करते हुए हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान पण्डित बालकृष्ण भट्ट, जिनकी आयु सन् ५७ में क़रीब १५ वर्ष की थी, कहा करते थे कि अहियापुर मुहल्ले का एक मनुष्य समाचार सुनकर फाँसियाँ देखने के लिए चौक में पहुँचा। जो अंगरेज़ फाँसी दिलवा रहा था उसने पूछा—तुम क्यों खड़े हो? उसने उत्तर दिया—सुना था यहाँ फाँसियाँ लग रही हैं,

---

* Kaye's *Indian Mutiny*, Book v, chapter, ii.

† Sir W. H. Russell's private letter to John Delane, Editor of the *London Times;* written from Lucknow.

इसलिये केवल देखने आया था। साहब ने आज्ञा दी, इसे भी फाँसी दे दो। तुरन्त वह निर्दोष और चकित दर्शक एक नीम पर लटका दिया गया। जो काम सात नीम के वृक्षों पर चौक में हो रहा था वही उस समय सैकड़ों अन्य नीम और आम के वृक्षों पर इलाहाबाद और उसके आस पास के इलाक़े में किया जा रहा था।

किश्तियों पर गोलाबारी

नगर के कुछ लोगों ने बचने के लिए किश्तियों में बैठ कर नगर से भाग जाना चाहा। किन्तु क़िले के नीचे तोपें लगी हुई थीं और अंगरेज़ी सेना किनारे पर मौजूद थी। किश्तियों में भागते हुए लोगों पर किनारे से गोलियों और गोलों की बौछार की गई और उन्हें वहीं समाप्त कर दिया गया।

इलाहाबाद के अपने एक दिन के कृत्यों को बयान करते हुए एक अंगरेज़ अफ़सर लिखता है—

फाँसी के तरीक़े

"एक यात्रा में मुझे अद्भुत आनन्द आया। हम लोग एक तोप लेकर एक स्टीमर पर चढ़ गए। सिख और गोरे सिपाही शहर की तरफ़ बढ़े। हमारी किश्ती ऊपर को चलती जाती थी और हम अपनी तोप से दाएँ और बाएँ गोले फेंकते जाते थे। यहाँ तक कि हम विद्रोही ग्रामों में पहुँचे। किनारे पर जाकर हमने अपनी बन्दूक़ों से गोलियाँ बरसानी शुरू कीं। मेरी पुरानी दो नली बन्दूक़ ने कई काले आदमियों को गिरा दिया। मैं बदला लेने का इतना प्यासा था कि हमने दाएँ और बाएँ गावों में आग लगानी शुरू की। लपटें आसमान तक पहुँचीं और चारों ओर फैल गईं। हवा ने उन्हें फैलने में मदद दी, जिससे मालूम होता था कि दग़ाबाज़
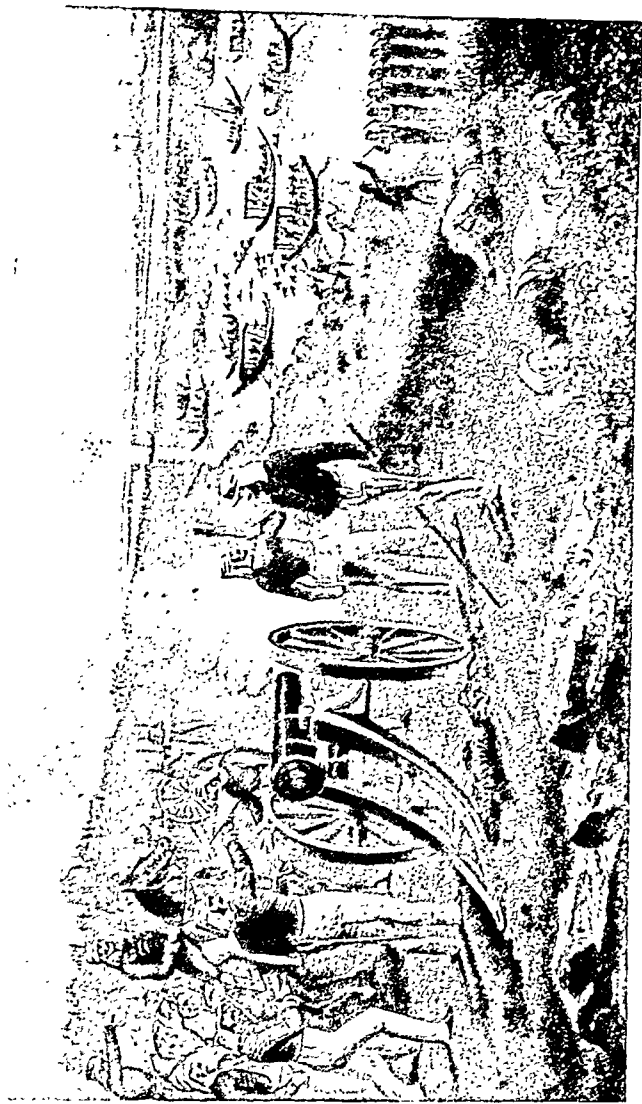
किश्तियों में वैठ कर इलाहावाद से भागते हुए हिन्दोस्तानियों पर अंगरेज़ी सेना का गोले वरसाना

[From " History of the Indian Mutiny " by charles Ball.]
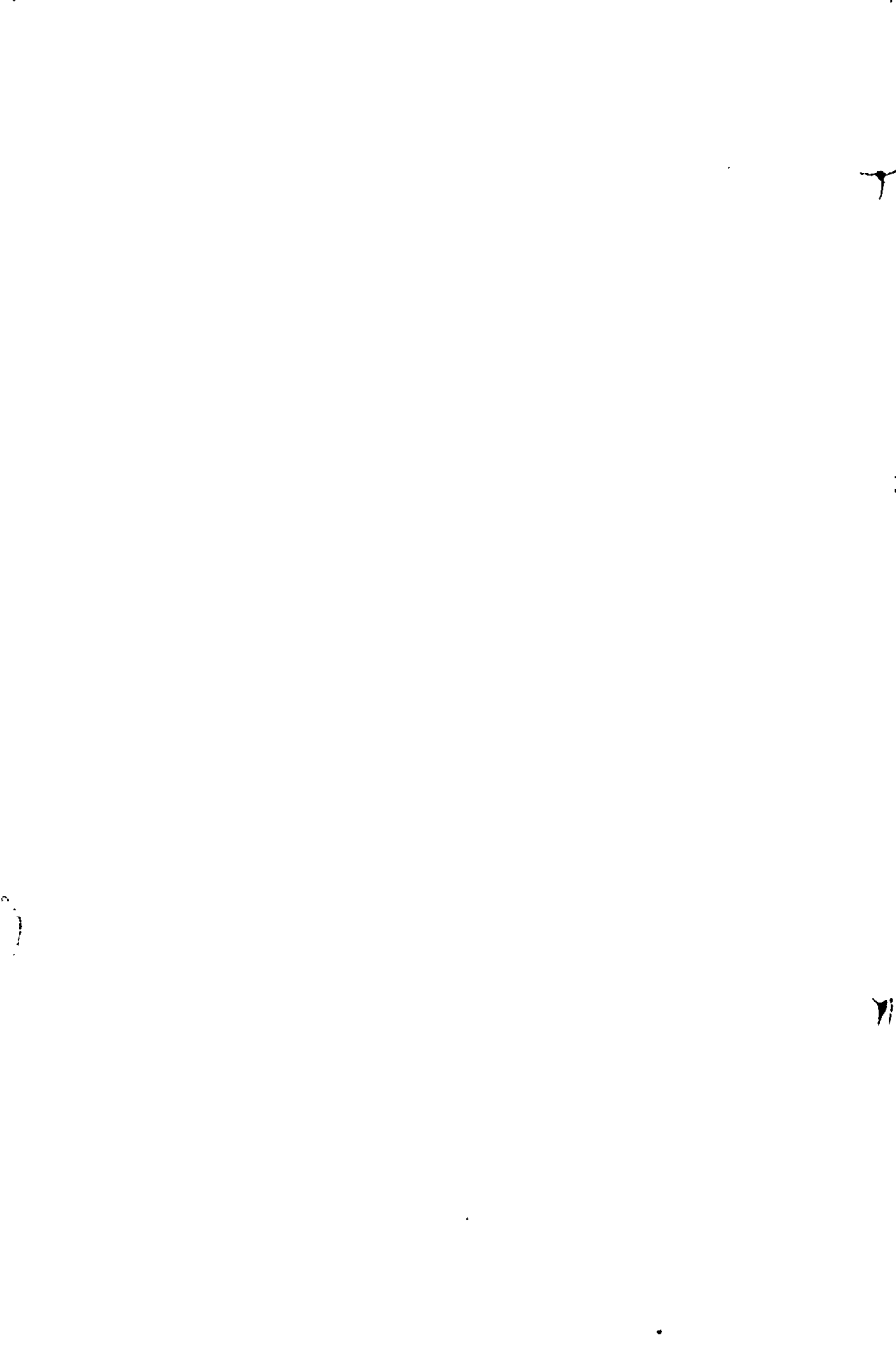
बदमाशों से बदला लेने का दिन आ गया है। हर रोज़ हम लोग विद्रोही ग्रामों को जलाने और मिटा देने के लिए निकलते थे और हमने बदला ले लिया है। × × × लोगों की जान हमारे हाथों में है और मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि हम किसी को नहीं छोड़ते। × × × अपराधी को एक गाड़ी के ऊपर बैठा कर किसी दरख़्त के नीचे ले जाया जाता है। उसकी गर्दन में रस्सी का फन्दा डाल दिया जाता है। फिर गाड़ी हटा ली जाती है और वह लटका हुआ रह जाता है।"*

इलाहाबाद में भयंकर संहार

इलाहाबाद के इस सर्वव्यापी संहार से माताएँ या बच्चे, बूढ़े या अपाहज कोई न बच सके। इतिहास लेखक होम्स दुख के साथ लिखता है—

"बूढ़े आदमियों ने हमें कोई नुक़सान न पहुँचाया था; असहाय स्त्रियों से जिनकी गोद में दूध पीते बच्चे थे, हमने उसी तरह बदला लिया जिस तरह बुरे से बुरे अपराधियों से।"†

---

* "One trip I enjoyed amazingly; we got on board a steamer with a gun, while the Sikhs and the fusiliers marched up to the city. We steamed up throwing shots right and left till we got up to the bad places, when we went on the shore and peppered away with our guns, my old double-barrel bringing down several niggers. So thirsty for vengeance I was. We fired the places right and left and the flames shot up to the heavens as they spread, fanned by the breeze, showing that the day of vengeance had fallen on the treacherous villains. Everyday, we had expeditions to burn and destroy disaffected villages and we have taken our revenge. . . . . We have the power of life in our hands and, I assure you, we spare not. . . . . . The condemned culprit is placed under a tree; with a, rope round his neck, on the top of carriage, and when it is pulled off he swings."—Charles Ball's *Indian Mutiny*, vol. i, p. 257.

† "Old men had done us no harm; helpless women, with suckling

जिस स्थान का ज़िक्र चार्ल्स बॉल के पूर्वोक्त उद्धरण में किया गया है, केवल उस एक स्थान के विषय में इतिहास लेखक के स्वीकार करता है कि वहाँ पर छै हज़ार भारत वासियों का संहार किया गया। निस्सन्देह अकेले इलाहाबाद के इलाक़े में नील ने इतने भारत वासियों का संहार किया जितने अंगरेज़ पुरुष, स्त्रियों और बच्चों का समस्त भारत के अन्दर भी सन् ५७-५८ भर में विप्लव कारियों ने नहीं किया।

सर जॉर्ज कैम्पबेल लिखता है—

"और मैं जानता हूँ कि इलाहाबाद में बिलकुल बिना किसी तमीज़ के क़त्लेआम किया गया था। × × × और इसके बाद नील ने वे काम किए जो क़त्लेआम से भी अधिक मालूम होते थे, उसने लोगों को जान बूझ कर इस तरह की यातनाएँ दे देकर मारा जिस तरह की यातनाएँ, जहाँ तक हमें सुबूत मिले हैं, भारतवासियों ने कभी किसी को नहीं दीं।"*

अंगरेज़ों के साथ असहयोग

बनारस के समान इलाहाबाद के नगर पर भी अंगरेज़ों का फिर से क़ब्ज़ा हो गया। यद्यपि जनरल नील और उसके साथियों ने इलाहाबाद निवासियों से बदला चुकाने में कोई कसर नहीं की, फिर

---

infants at their breasts, felt the weight of our vengeance no less than the vilest malefactors."—Holmes' *Sepoy War*. pp. 229-30.

* "... and I know that at Allahabad there were far too whole-sale executions. . . . . And afterwards Neill did things almost more than the massacre, putting to death with deliberate torture, in a way that has never been proved against the natives."—Sir George Campbell, Provisional Civil Commissioner in the Mutiny, as quoted in *The Other Side of the Medal*, by Edward Thompson, p. 81.

भी चार्ल्स बॉल लिखता है कि शहर और आस पास के गाँव के लोगों ने अंगरेज़ों का इतना पूरा बहिष्कार कर रक्खा था कि अपने मुर्दे और जख़्मियों को ढोने के लिए उन्हें डोलियें या मज़दूर तक नहीं मिल रहे थे। कोई गाँव वाला उन्हें रसद देने के लिए तैयार न होता था। चार्ल्स बॉल लिखता है कि जो कोई अंगरेज़ों का काम करता था, देहाती उसके हाथ और नाक काट डालते थे या उसे मार डालते थे। इसके ऊपर जून की गरमी। नतीजा यह हुआ कि अंगरेज़ी कैम्प में हैज़े की बीमारी शुरू होगई।

कानपुर और नाना साहब

अब हम इलाहाबाद से हट कर सन् ५७ की राष्ट्रीय योजना के उद्भव स्थान कानपुर की ओर आते हैं। नाना साहब, उसके दो भाई बाला साहब और बाबा साहब, नाना साहब का भतीजा राव साहब और चतुर अज़ीमुल्ला ख़ाँ कानपुर में क्रान्ति के मुख्य नेता थे। इनके अतिरिक्त प्रसिद्ध मराठा सेनापति तात्या टोपे भी, जिसके अद्भुत पराक्रम का वर्णन आगे चल कर किया जायगा, उस समय बिठूर के दरबार में मौजूद था। सर ह्यू व्हीलर कानपुर की अंगरेज़ी सेना का सेनापति था। व्हीलर के अधीन तीन हज़ार देशी सिपाही और लगभग एक सौ अंगरेज़ सिपाही थे। दिल्ली की स्वाधीनता का समाचार नाना साहब को १५ मई को मिला और सर ह्यू व्हीलर को १८ मई को। इस पर एक अंगरेज़ लेखक लिखता है—

"निस्सन्देह विप्लव के अत्यन्त आश्चर्यजनक पहलुओं में से एक यह रहा है कि भारतवासियों को दूर दूर के स्थानों की समस्त महत्वपूर्ण घटनाओं

की सूचना अत्यन्त शीघ्र और असन्दिग्ध रूप में मिलती रहती है। ख़बर ले जाने वाले मुख्यकर हरकारे होते हैं जो असाधारण वेग के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान सन्देश ले जाते हैं।"*

शहर में जलसे

दिल्ली की ख़बर के आते ही कानपुर शहर में हिन्दू और मुसलमानों के बड़े बड़े जलसे होने लगे। छावनी में सिपाहियों की गुप्त सभाएँ होने लगीं। स्कूलों, बाज़ारों और सार्वजनिक स्थानों में आगामी स्वाधीनता संग्राम की चरचा होने लगी। फिर भी नाना साहब ने ३१ मई तक चुप रहने का निश्चय किया, और सर ह्यू व्हीलर ने गङ्गा के दक्खिन में एक नया स्थान घेर कर क़िलेबन्दी शुरू की, ताकि आवश्यकता के समय कानपुर के अंगरेज़ उसमें आश्रय ले सकें।

नाना पर अंगरेज़ों का विश्वास

लखनऊ से कुछ और सेना व्हीलर की सहायता के लिए पहुँच गई। आश्चर्य की बात यह है कि उस समय तक भी अंगरेज़ों को नाना साहब पर पूर्ण विश्वास था। व्हीलर ने नाना साहब को सन्देशा भेजा कि आप आकर कानपुर की रक्षा करने में अंगरेज़ों को मदद दीजिये। २२ मई सन् १८५७ को नाना साहब ने कुछ सेना और दो तोपों सहित बिठूर से निकल कर कानपुर नगर में प्रवेश किया। व्हीलर ने कम्पनी का ख़ज़ाना नाना साहब को सौंप दिया। नाना ने अपने दो सौ सिपाही ख़ज़ाने पर पहरा देने के लिये नियुक्त कर दिए।

* *Narrative of the Indian Revolt*, p. 33.

कम्पनी की देशी सेना के दो मुख्य नेता थे, सूबेदार टीकासिंह और सूबेदार शम्सुद्दीन ख़ाँ। नाना साहब के दो मुख्य विश्वस्त सहायक ज्वालाप्रसाद और मोहम्मदअली थे। इन चारों और नाना साहब और अज़ीमुल्ला ख़ाँ में प्रायः किश्तियों में बैठकर गङ्गा के ऊपर दो दो घण्टे गुप्त मन्त्रणाएँ हुआ करती थीं। सर ह्यू व्हीलर ने कम्पनी का मैगज़ीन भी नाना साहब की रक्षा में छोड़ दिया।

अंगरेज़ों में भय

कानपुर के अन्दर उस समय अंगरेज़ इतना डरे हुए थे कि २४ मई को रमज़ान के बाद की ईद थी। उसी दिन मलका विक्टोरिया की साल गिरह थी। साल गिरह के उपलक्ष में सदा तोपों की सलामी दी जाती थी। किन्तु २४ मई सन् १८५७ को कानपुर में इसलिए कोई तोप नहीं छोड़ी गई कि उससे हिन्दोस्तानी सिपाही न भड़क उठें। एक अंगरेज़ अफ़सर लिखता है कि जिस समय विप्लव की कोई झूठी अफ़वाह भी नगर में उड़ जाती थी, तुरन्त शहर के सब अंगरेज़ भाग कर अपने बाल बच्चों समेत जनरल व्हीलर के नए क़िले में जाकर जमा हो जाते थे।

कानपुर की स्वाधीनता

४ जून की आधी रात को अचानक कानपुर की छावनी में तीन फ़ायर हुए। सिपाहियों को क्रान्ति प्रारम्भ करने के लिए यही पूर्व निश्चित सूचना थी। सबसे आगे सूबेदार टीकासिंह घोड़े पर लपका। उसके पीछे पीछे सैकड़ों सवार और हज़ारों पैदल मैदान में निकल आए। पूर्व निश्चय के अनुसार कुछ ने अंगरेज़ी इमारतों को आग लगा

कानपुर के क़िले के अन्दर गोले बरसाने शुरू किए। क़िले के अन्दर अंगरेज़ इतनी तेज़ी के साथ मरने लगे कि लिखा है, उन्हें दफ़न करना तक कठिन हो गया। क़िले के अन्दर केवल एक कुआँ था। नाना की सेना ने उस पर इस ढङ्ग से गोले बरसाए कि अनेक अंगरेज़ पुरुष और स्त्री पानी न मिलने के कारण तड़पने लगे। २१ दिन तक यह गोलाबारी जारी रही। अनेक लोग जो गोलों से न मरे, पेचिस, बुख़ार और हैज़े का शिकार हुए। क़िले की दीवारों पर से कम्पनी की तोपें भी साहस और धैर्य के साथ अपना कार्य करती रहीं। विप्लवकारियों के पहरे के कारण अंगरेज़ों के लिए कोई सन्देशा बाहर भेज सकना अत्यन्त कठिन हो गया। फिर भी कम्पनी का एक वफ़ादार हिन्दोस्तानी नौकर जनरल व्हीलर का सन्देशा लेकर लखनऊ पहुँचा। यह सन्देशा एक पक्षी के परों के नीचे बँधा हुआ था। भाषा कुछ अंगरेज़ी, कुछ लातीनी और कुछ फ़ान्सीसी मिली हुई थी। पत्र का शब्दार्थ केवल यह था—

"Help ! Help !! Help !!! Send us help or we are dying ! If we get help, we will come and save Lucknow !"

"मदद ! मदद !! मदद !!! हमें मदद भेजो, नहीं तो हम मर रहे हैं ! हमें मदद मिल जाय तो हम आकर लखनऊ को बचा लेंगे !"

इस से क़िले के अंगरेज़ों की स्थिति का ख़ासा पता चलता है। दूसरी ओर नाना के गुप्तचर बड़ी सुन्दरता के साथ अंगरेज़ी क़िले के अन्दर की ख़बरें नाना को ला लाकर देते थे।

नाना को सहायता

जब कि अंगरेज़ी कैम्प की यह हालत थी, नाना के पास चारों ओर के ज़मींदारों की ओर से धन और जन दोनों की सहायता धड़ाधड़ चली आ रही थी। नाना और उसके साथियों का उत्साह बढ़ा हुआ था। नाना के अधीन इस समय क़रीब चार हज़ार सेना थी।

क्रान्ति में कानपुर की स्त्रियों का भाग

कानपुर की हिन्दू और मुसलमान स्त्रियाँ उस समय अपने घरों से निकल निकल कर गोला बारूद इधर उधर ले जाने, सैनिकों को भोजन पहुँचाने और ठीक अंगरेज़ी क़िले की दीवार के नीचे तोपचियों को मदद देने का काम कर रही थीं। इन सब स्त्रियों में उस समय कानपुर की एक वेश्या अज़ीज़न का नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है। एक इतिहास लेखक लिखता है कि यह अज़ीज़न हथियार बाँधे हुए घोड़े पर चढ़ी हुई बिजली की तरह शहर की गलियों और छावनी में दौड़ती फिरती थी। कभी वह गलियों के अन्दर थके हुए और घायल सिपाहियों को दूध और मिठाई बाँटती थी, और कभी अंगरेज़ी क़िले की ठीक दीवार के नीचे लड़ने वालों के हौसले बढ़ाती थी।

नाना का शासन प्रबन्ध

ठीक उस समय जब कि अंगरेज़ी क़िले का मोहासरा जारी था, नाना ने शहर के शासन का पूरा प्रबन्ध किया। शहर के प्रमुख लोगों को जमा करके उनके बहुमत से हुलाससिंह नामक एक मनुष्य को मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया गया। फ़ौज को रसद पहुँचाने का काम

मुल्ला नामक एक मनुष्य के सुपुर्द कर दिया गया। दीवानी के मुक़दमों के लिए ज्वालाप्रसाद, अज़ीमुल्ला ख़ाँ और बाबा साहब की एक अदालत क़ायम की गई। इतिहास लेखक टॉमसन लिखता है कि अपराधियों को कड़े दण्ड दिए जाते थे और नगर में पूरी तरह अमन चैन था।*

१८ जून और २३ जून को दो गहरे संग्राम हुए। अन्त में कोई चारा न देख २५ जून सन् १८५७ को जनरल व्हीलर ने अपने क़िले के ऊपर सुलह का सफ़ेद झण्डा गाड़ दिया। तुरन्त नाना साहब ने लड़ाई बन्द कर दी। इसके साथ ही नाना ने एक पत्र जनरल व्हीलर के पास भेजा जिसमें लिखा था :—

अंगरेज़ी क़िले पर सुलह का झन्डा

"मलका विक्टोरिया की प्रजा के नाम—जिन लोगों का डलहौज़ी की नीति के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहा है, और जो हथियार रख देने और आत्म समर्पण कर देने के लिए तैयार हैं उन्हें सुरक्षित इलाहाबाद पहुँचा दिया जायगा।"

२६ तारीख़ को दोनों ओर के प्रतिनिधियों में बात चीत हुई। इस बातचीत के सम्बन्ध में यह एक बात ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि अज़ीमुल्ला ख़ाँ अंगरेज़ी भाषा का विद्वान था फिर भी ज्योंही अंगरेज़ प्रतिनिधि ने अंगरेज़ी में बात चीत प्रारम्भ की, अज़ीमुल्ला ने एतराज़ किया। उसने अंगरेज़ प्रतिनिधियों को विवश किया

* *The Story of Cawnpore*, by M. Thompson.

कि सारी वातचीत हिन्दोस्तानी में की जाय; और हिन्दोस्तानी में ही वात चीत हुई।

अन्त में क़िले के अन्दर के सब अंगरेज़ों ने अपने आपको नाना के सुपुर्द कर दिया। क़िला, तोपखाना और भीतर के तमाम अस्त्र शस्त्र और ख़ज़ाना नाना के हवाले कर दिया गया। नाना की तरफ़ से वादा किया गया कि सब अङ्गरेज़ों को किश्तियों में बैठाकर और मार्ग के लिए रसद देकर इलाहाबाद भेज दिया जायगा।

उसी रात को चालीस किश्तियों का इन्तज़ाम कर दिया गया। उनमें रसद का सामान रख दिया गया। २७ तारीख़ को सवेरे अङ्गरेज़ी झण्डा क़िले पर से उतार दिया गया। सम्राट बहादुरशाह का झण्डा उसकी जगह फहराने लगा और सब अङ्गरेज़ों को हाथियों और पालकियों में बैठा कर क़िले से डेढ़ मील दूर सतीचौरा घाट पर पहुँचा दिया गया।

सतीचौरा घाट का हत्याकाण्ड

किन्तु इस बीच इलाहाबाद और उसके आस पास के इलाक़े से असंख्य मनुष्य जिनके घर द्वार, सम्बन्धियों और बाल बच्चों को जनरल नील के सिपाहियों ने जला कर ख़ाक कर दिया था, कानपुर नगर में आ आकर एकत्रित हो रहे थे। इन लोगों के बयानों और इलाहाबाद में कम्पनी की सेना के अत्याचारों को सुन सुन कर कानपुर की जनता और वहाँ के देशी सिपाहियों का क्रोध भड़क रहा था। २७ जून को सवेरे दस बजे किश्तियाँ सतीचौरा

घाट से चलने वाली थीं। नाना उस समय अपने महल में था। घाट पर सिपाहियों और जनता की भीड़ थी। कहा जाता है कि क्रोध से उन्मत्त सिपाहियों में से किसी एक ने पहले करनल ईवर्ट पर हमला किया। तुरन्त मार काट शुरू हो गई, क़रीब क़रीब समस्त अंगरेज़ इतिहास लेखक स्वीकार करते हैं कि ज्योंही नाना को इसका समाचार मिला, उसने तुरन्त आज्ञा भेजी कि—"अङ्गरेज़ पुरुषों को मारो, किन्तु बच्चों और स्त्रियों को कोई हानि न पहुँचाओ!"* नाना की आज्ञा के पहुँचते ही १२५ अंगरेज़ स्त्रियाँ और बच्चे कैद करके सौदाकोठी पहुँचा दिए गए। अङ्गरेज़ पुरुषों को लाइन बाँध कर सतीचौरा घाट पर खड़ा किया गया। उनमें से एक ने जो शायद पादरी था, प्रार्थना की कि मरने से पहले मुझे इजाज़त दी जाय कि मैं अपने भाइयों को इञ्जील में से कुछ ईश्वर प्रार्थना पढ़ कर सुना दूँ। उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली गई।† जब वह ईश्वर प्रार्थना कर चुका तो हिन्दुस्तानी सिपाहियों ने समस्त अंगरेज़ों के सर तलवार से क़लम कर दिए। अंगरेज़ पुरुषों में से केवल चार एक किश्ती में बैठकर भाग निकले। इस प्रकार ७ जून को कानपुर के अन्दर, जो क़रीब एक हज़ार अंगरेज़ थे, उनमें से २७ जून की शाम को केवल चार आदमी अपनी फुरती से और १२५ स्त्रियाँ और बच्चे नाना की उदारता से ज़िन्दा बचे।

---

* Forrest's *State Papers*, also Kaye and Malleson's *Indian Mutiny*, vol. ii, p. 258.

† Kaye and Malleson's *Indian Mutiny*, vol. ii, p. 263.

इसमें सन्देह नहीं सतीचौरा घाट का हत्याकाण्ड किसी तरह भी जायज़ नहीं कहा जा सकता। निःशस्त्र लोगों पर वार करना युद्ध के सदाचार में भी क्षमतव्य नहीं है। इसके अतिरिक्त नाना ने इन लोगों से प्राणदान का वादा कर लिया था। दूसरी ओर हमें यह स्मरण रखना होगा कि सतीचौरा घाट के अत्याचार की ज़िम्मेदारी एक दर्जे तक जनरल नील और उसके साथियों के उन कहीं अधिक वीभत्स अत्याचारों पर है, जिन्होंने कानपुर के हिन्दोस्तानी सिपाहियों के मस्तकों को ठिकाने रहने नहीं दिया।

नाना ने क़ैदी अंगरेज़ स्त्रियों और बच्चों के साथ जिस प्रकार का व्यवहार किया उसके विषय में अनेक झूठी अफ़वाहें उन दिनों इंगलिस्तान और भारत में उड़ाई गईं। हम इन अफ़वाहों को दोहराना उचित नहीं समझते। इतना कह देना काफ़ी है कि बाद में अंगरेज़ों ही का एक कमीशन इन इलज़ामों की जाँच करने के लिए नियुक्त हुआ। इस कमीशन ने पूरी जाँच के बाद फ़ैसला दिया कि पूर्वोक्त तमाम अफ़वाहें बिलकुल झूठी थीं।"*

क़ैदी अंगरेज़ स्त्रियों के प्रति नाना का व्यवहार

जस्टिन मैकार्थी इन अफ़वाहों के विषय में लिखता है—

"लोगों की क्रोधाग्नि को इस तरह की अफ़वाहें उड़ा उड़ा कर भड़काया गया कि आम तौर पर स्त्रियों की बेइज़्ज़ती की गई और निर्दयता के साथ उनके अंग भंग किए गए। सौभाग्यवश ये अफ़वाहें झूठी थीं × × × सच

---

* Muir's Report and Wilson's Report. Also Kaye and Malleson's *Indian Mutiny*, vol. ii, p. 267.

यह है कि सिवाय उनसे नाज पिसवाने के और किसी तरह का भी अपमान अंगरेज़ स्त्रियों का नहीं किया गया। × × × सामान्य अर्थों में किसी स्त्री पर अत्याचार नहीं किया गया। न किसी अंगरेज़ स्त्री के कपड़े उतारे गए, न किसी की बेइज़्ज़ती की गई और न जान बूझ कर किसी का अंग भंग किया गया।"*

इतना ही नहीं, सतीचौरा घाट के हत्याकाण्ड की शुरू की गड़बड़ में कुछ हिन्दोस्तानी सिपाही चार अंगरेज़ स्त्रियों को पकड़ कर ले गए थे। समाचार पाते ही नाना ने तुरन्त उन सिपाहियों को कड़ा दण्ड दिया और चारों अंगरेज़ स्त्रियों को उनसे वापस ले लिया।†

क़ैदी स्त्रियों और बच्चों के साथ नाना का व्यवहार अत्यन्त उदार था। उन्हें खाने के लिए चपाती और गोश्त दिया जाता था। कोई कड़ी मेहनत उनसे न ली जाती थी। बच्चों को दूध मिलता था और दिन में तीन तीन बार उन्हें हवा खाने के लिए बाहर आने की इजाज़त थी। स्वयं जनरल नील अपनी रिपोर्ट में लिखता है—

"शुरू में उन्हें बुरा खाना दिया गया, किन्तु बाद में उन्हें अच्छा खाना

---

* "The elementary passions of manhood were inflamed by the stories, happily not true, of the wholesale dishonour and barbarous mutilation of women . . . . As a matter of fact, no indignities, other than that of the compulsory corn grinding, were put upon the English ladies. . . . There were no outrages, in the common acceptation of the term, upon women. No English women were stripped or dishonoured, or purposely mutilated." —*History of Our Own Times*, vol. iii, by Justin Mc Carthy.

† Sir George Trevelyan's *Cawnpore*. p. 299.

दिया जाने लगा, साफ़ कपड़े मिलने लगे और ख़िदमत के लिए नौकर दे दिए गए।"*

इनमें से केवल कुछ स्त्रियों को अपने खाने भर के लिए थोड़ा सा आटा पीसना पड़ता था।

अब हम इन अंगरेज़ क़ैदियों से हट कर कानपुर के शेष वृत्तान्त की ओर आते हैं।

पेशवा नाना साहब का दरबार

२८ जून सन् १८५७ को कानपुर नगर, छावनी और आस पास के इलाक़े पर से अंगरेज़ी राज के समस्त चिन्ह मिटाने के पश्चात् नाना साहब ने एक बड़ा दरबार किया। छै पलटन पैदल, दो पलटन सवार, अनेक ज़मींदार और असंख्य जनता इस दरबार में उपस्थित थी। सब से पहले सम्राट बहादुरशाह के नाम पर १०१ तोपों की सलामी हुई। इसके बाद २१ तोपों की सलामी नाना साहब को हुई। नाना साहब ने सिपाहियों और जनता को धन्यवाद दिया। एक लाख रुपए बतौर इनाम के फ़ौज में बाँटे गए। दरबार के बाद नाना साहब कानपुर से बिठूर गया। बिठूर में पहली जुलाई सन् १८५७ को नाना साहब धुन्धपन्त विधिवत् पेशवा की गद्दी पर बैठा। इस प्रकार सन् १८५७ के विप्लव में क्षण भर के लिए पेशवा की मृतप्राय सत्ता फिर से जीवन लाभ करती हुई दिखाई देने लगी।

---

* "At first they were badly fed but afterwards they got better food and clean clothing and servants to wait upon."—General Neill's Report.

नाना साहब

उस चित्र से जो नवाब-अवध के चित्रकार मि० बीची ने सन् १८५०
में बिठूर जाकर खींचा था।

[From A Narrative of the Indian Revolt, London 1858.]

झाँसी और रानी लक्ष्मीबाई

एक पिछले अध्याय में लिखा जा चुका है कि किस प्रकार लार्ड डलहौज़ी ने राजा गंगाधर राव के दत्तक पुत्र बालक दामोदर राव के उत्तराधिकार को नाजायज़ कह कर झाँसी की रियासत को ज़बरदस्ती कम्पनी के राज में मिला लिया था।
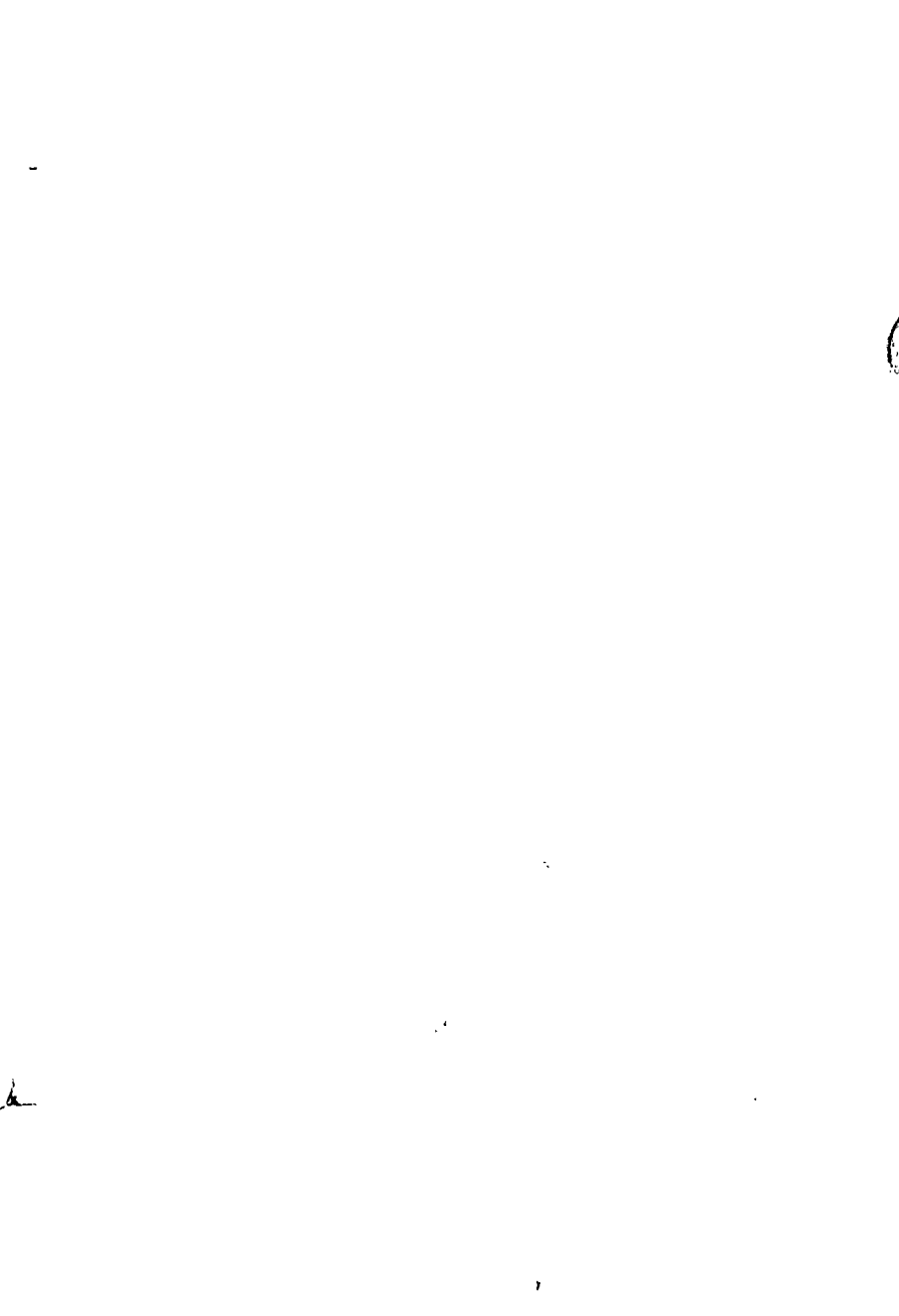
गंगाधरराव की मृत्यु के बाद १३ मार्च सन् १८५४ को झाँसी की रियासत के कम्पनी के राज में मिलाए जाने का एलान प्रकाशित हुआ। समस्त प्रजा में इससे घोर असन्तोष उत्पन्न हो गया। विधवा रानी लक्ष्मीबाई ने, जिसकी आयु उस समय केवल १८ वर्ष की थी और जिसने अपने बालक पुत्र की ओर से आश्चर्यजनक योग्यता के साथ राज का सारा कार्य सँभाल लिया था, एतराज़ किया। किन्तु कोई सुनाई न हो सकी। इतना ही नहीं, राजा गंगाधरराव मरते समय क़रीब साढ़े चार लाख रुपए के जवाहरात और ढाई लाख रुपए नक़द छोड़ गया था। लॉर्ड डलहौज़ी ने इस समस्त सम्पत्ति को ज़बरदस्ती छीन कर यह कह कर कम्पनी के ख़ज़ाने में जमा कर लिया कि जब दामोदरराव बालिग़ होगा तो यह धन उसे दे दिया जायगा। डलहौज़ी ने स्पष्ट लिखा कि दत्तक पुत्र को बालिग़ होने पर पिता की इस निजी सम्पत्ति को प्राप्त करने का अधिकार होगा, किन्तु गद्दी का कभी नहीं।*

रानी लक्ष्मीबाई को इस समस्त सम्पत्ति और राज के बदले

---

* *Jhansi Papers 1858*, p. 31.

में पाँच हज़ार रुपए मासिक पेनशन देने का वादा किया गया। रानी ने तिरस्कार के साथ अस्वीकार किया।

रानी लक्ष्मीबाई पर आरोप

विधवा रानी के साथ एक इससे भी कहीं अधिक अन्याय किया गया। इतिहास लेखक सर जॉन के लिखता है—

"उस पर दोषारोपण किए गए, क्योंकि हम लोगों में यह एक रिवाज है कि × × × पहले किसी देशी नरेश का राज ले लेते हैं और फिर पद-च्युत नरेश या उसके उत्तराधिकारी की झूठी बुराइयाँ करने लगते हैं। कहा गया कि रानी लक्ष्मीबाई केवल बच्ची है और दूसरों के प्रभाव में रहती है। यह भी कहा गया कि रानी को नशे का व्यसन है। यह बात कि रानी केवल बच्ची नहीं है उसकी बातचीत से पूरी तरह साबित है; और उसके नशा करने की बात बिलकुल झूठी कल्पना मालूम होती है।"*

निस्सन्देह किसी भी मनुष्य के साथ और विशेषकर किसी स्त्री के साथ इससे बढ़ कर अन्याय नहीं किया जा सकता। रानी लक्ष्मीबाई के व्यक्तिगत चरित्र के विषय में हम केवल एक विद्वान् अंगरेज़ की राय और उद्धृत करते हैं, जो उस समय लक्ष्मीबाई के रहन सहन

रानी लक्ष्मीबाई का चरित्र

---

* "Evil things were said of her, for it is a custom among us odisse quern *caeseris*—to take a Native ruler's kingdom and then to revile the deposed ruler or his would be successor. It was alleged that the Rani was a mere child under the influence of others, and that she was much given to intemperance. That she was not a mere child was demonstrated by her conversation; and her intemperance seems to be a myth."—Sir John Kaye's *History of the Sepoy War*, vol. iii, pp. 361-62.

इत्यादि से पूरी तरह परिचित था। मेजर मैलकम ने १६ मार्च सन् १८५५ को गवरनर जनरल के नाम एक सरकारी पत्र में लिखा —"रानी का चरित्र अत्यन्त उच्च है और झाँसी में हर मनुष्य उसे अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखता है।"*

उस समय के समस्त इतिहास से साबित है कि लक्ष्मीबाई वास्तव में अत्यन्त सुचरित्र, योग्य, वीर और असाधारण बुद्धि की स्त्री थी।† युद्धविद्या में वह अत्यन्त निपुण थी। उसके माता पिता बिठूर में पेशवा के दरबार में रहा करते थे। लिखा है कि बिठूर के दरबार में कुमारी लक्ष्मीबाई अत्यन्त सर्वप्रिय थी। छोटी आयु में ही वह निशानेबाज़ी और शस्त्रों के उपयोग में अत्यन्त निपुण हो गई थी। सात वर्ष की अल्पावस्था में वह घोड़े की बड़ी दक्ष सवार थी और प्रायः नाना साहब और उसके भाइयों के साथ शिकार के लिए जाया करती थी।

रानी लक्ष्मीबाई के नेतृत्व में स्वाधीन झाँसी

वीर लक्ष्मीबाई झाँसी की गद्दी के इस अपमान और झाँसी की प्रजा के साथ इस अन्याय को सहन न कर सकी। सन् ५७ के स्वाधीनता संग्राम की वह एक मुख्यतम नेत्री थी। पूर्व निश्चय के अनुसार ४ जून सन् १८५७ को झाँसी में क्रान्ति प्रारम्भ हुई। कम्पनी की सेना सन् १८५४ के एलान के बाद ही झाँसी पहुँच

* "... bears a very high character and is much respected by every one at Jhansi."—*Jhansi Papers*, p. 28.

† D. B. Parasnis' *Life of Lakshmi Bai.*

चुकी थी और कम्पनी का राज क़ायम हो चुका था। ४ जून को सब से पहले १२ नं० देशी पलटन के हवलदार गुरुवख़्श सिंह ने क़िले के मैगज़ीन और ख़ज़ाने पर क़ब्ज़ा कर लिया। उसके वाद रानी लक्ष्मीवाई ने महल से निकल कर शस्त्र धारण कर स्वयं क्रान्तिकारी सेना का सेनापतित्व ग्रहण किया। उस समय लक्ष्मी वाई की आयु केवल २१ वर्ष की थी। ७ जून को रिसालदार काले ख़ाँ और तहसीलदार मोहम्मदहुसेन ने रानी की ओर से क़िले पर हमला किया। क़िले के अन्दर की हिन्दोस्तानी सेना ने भी साथ दिया। ८ जून को कहा जाता है कि रिसालदार काले ख़ाँ की आज्ञा से किले के अन्दर के ६७ अंगरेज़, जिनमें पुरुष, स्त्रियाँ और वच्चे शामिल थे, क़त्ल कर दिए गये। इतिहास लेखक सर जॉन के लिखता है कि इस हत्याकाण्ड से रानी लक्ष्मीवाई का कोई सम्वन्ध न था, न उसका कोई आदमी मौके पर मौजूद था और न उसने इसकी इजाज़त दी थी।* अन्त में उसी दिन झाँसी पर से कम्पनी का राज हटा दिया गया। वालक दामोदर के वली की हैसियत से रानी लक्ष्मीवाई फिर से झाँसी की गद्दी पर वैठी। कम्पनी के झण्डे की जगह दिल्ली सम्राट की पताका झाँसी के क़िले पर फहराने लगी। सारी रियासत में ढिंढोरा पिटवा दिया गया — "ख़लक़ ख़ुदा का, मुल्क वादशाह (अर्थात् दिल्ली के वादशाह) का, हुकुम रानी लक्ष्मीवाई का।"

सन् ५७-५८ के सवसे अधिक भयङ्कर संग्राम अवध की भूमि

* *History of the Sepoy War*, by Sir John Kaye, vol. ii, p. 369.

पर लड़े गए। अवध की सल्तनत के अंगरेज़ी राज में मिलाए जाने

अवध में क्रान्ति की तैयारी

और अवध निवासियों के दुखों और शिकायतों का वर्णन एक पिछले अध्याय में किया जा चुका है। अवध के ज़मींदारों, वहाँ की पुलिस, वहाँ की फ़ौज और क़रीब क़रीब समस्त जनता ने स्वाधीनता के उस महायुद्ध की सफलता पर अपना सर्वस्व लगा दिया था। वास्तव में क्रान्ति की तैयारी कहीं भी इतनी अच्छी न थी जितनी अवध में। हज़ारों मौलवी और हज़ारों पण्डित एक एक बारग और एक एक गाँव में आगामी युद्ध के लिए लोगों को तैयार करते फिरते थे।

सात नम्बर पलटन अस्त्र विहीन

सर हेनरी लॉरेन्स अवध का चीफ़ कमिश्नर था। लखनऊ छावनी के कुछ सिपाही मङ्गल पाँडे की फाँसी के बाद अपने आपको न रोक सके। मई के प्रारम्भ में वहाँ पर अंगरेज़ों के कुछ मकान जला दिए गए। चार्ल्स बॉल लिखता है कि ३ मई को सात नम्बर पलटन के सात उच्छृङ्खल सिपाही लैफ़्टिनेण्ट मीकम के ख़ेमे में पहुँचे और कहने लगे—"हमें आपसे कोई ज़ाती झगड़ा नहीं, किन्तु आप फ़िरङ्गी हैं इसलिए हम आपको मार डालेंगे!" भयभीत किन्तु चतुर लेफ़्टिनेण्ट ने उनसे दया की प्रार्थना की और कहा—"मुझ एक ग़रीब आदमी को मारने से आपको क्या लाभ होगा, आपकी शत्रुता तो इस राज से है।" सिपाहियों ने दया में आकर उसे छोड़ दिया, किन्तु यह समाचार तुरन्त सर हेनरी लॉरेन्स

आश्रय ले सकें—एक मच्छीभवन और दूसरे रेज़िडेन्सी। लखनऊ की समस्त अंगरेज़ स्त्रियाँ और बच्चे इन स्थानों में पहुंचा दिए गए और समस्त अंगरेज़ पुरुषों को फ़ौजी क़वायद सीखने का हुक्म हो गया।

नैपाल से मदद की प्रार्थना

अवध की सरहद नैपाल से मिली हुई है। सर हेनरी लॉरेन्स ने विशेष दूत भेज कर नैपाल दरबार के प्रधान मन्त्री सेनापति जङ्गबहादुर से प्रार्थना की कि आप इस आपत्ति में सेना से अंगरेज़ों की सहायता कीजिये।

क्रान्ति का प्रारम्भ

ठीक ३० मई की रात को ६ बजे छावनी की तोप छुटी। क्रान्ति के प्रारम्भ होने का यही चिह्न नियत था। सबसे पहले ७१ नम्बर पलटन की बन्दूकों की आवाज़ सुनाई दी। अंगरेज़ों के बँगले जला दिए गए। जो अंगरेज़ मिला, मार डाला गया। ३१ मई को सवेरे हेनरी लॉरेन्स ने कुछ गोरी सेना और ७ नम्बर देशी सवार पलटन साथ लेकर विप्लवकारियों पर हमला किया। उस समय तक ७ नम्बर पलटन अंगरेज़ों की ओर थी, किन्तु मार्ग ही में इस पलटन ने भी कम्पनी का झण्डा फेंक कर हरा झण्डा हाथ में ले लिया। लॉरेन्स को उन्हें छोड़ कर अपने थोड़े से अंगरेज़ सिपाहियों सहित रेज़िडेन्सी में आकर शरण लेनी पड़ी। ३१ मई की शाम तक ४८ और ७१ नम्बर पैदल और ७ नम्बर सवार और अन्य देशी पलटनों में भी स्वाधीनता का हरा झण्डा फहराने लगा।

लखनऊ से क़रीब ५० मील उत्तर-पश्चिम में सीतापुर है। वहाँ पर कम्पनी की तीन देशी पलटनें थीं। ३ जून को इन पलटनों ने कम्पनी का झण्डा फेंक कर हरा झण्डा हाथ में ले लिया। उन्होंने ख़ज़ाने पर क़ब्ज़ा कर लिया और जो अंगरेज़ मिला उसे मार डाला। कहा जाता है कि २४ अंगरेज़ सीतापुर में मारे गए और कुछ ने आस पास के ज़मींदारों के यहाँ जाकर पनाह ली।

सीतापुर की स्वाधीनता

सीतापुर को स्वाधीन करने के वाद वहाँ के सिपाही फ़र्रुख़ाबाद पहुंचे। कम्पनी ने फ़र्रुख़ाबाद के नवाव तफ़ज़्ज़लहुसेन ख़ाँ को गद्दी से उतार दिया था। फ़र्रुख़ाबाद के क़िले में वहुत से अंगरेज़ों ने पनाह ले रक्खी थी। एक ख़ासे ज़वरदस्त संग्राम के वाद क्रान्तिकारियों ने फ़र्रुख़ाबाद के क़िले पर क़ब्ज़ा कर लिया, वहाँ के समस्त अंगरेज़ों को मार डाला और पदच्युत नवाव को फिर से वहाँ की गद्दी पर वैठा दिया। पहली जुलाई तक फ़र्रुख़ाबाद की रियासत में एक भी अंगरेज़ वाक़ी न था।

फ़र्रुख़ाबाद की स्वाधीनता

मोहम्मदी, मालन, वहरायच, गोंडा, सिकरोरा, मेलापुर इत्यादि आस पास के समस्त इलाक़े १० जून सन् ५७ तक पूरी तरह आज़ाद हो गए। स्थान स्थान पर अनेक अंगरेज़ मारे गए, अनेक भाग निकले, और कुछ को आस पास के ज़मींदारों ने अपने यहाँ शरण दी।

अवध की स्वाधीनता

यह बात ख़ास तौर पर ध्यान देने योग्य है कि अवध के जिन ज़मींदारों और तालुक़ेदारों ने इस अवसर पर स्वाधीनता के संग्राम में खुले भाग लिया, उनमें से अनेक ने अपने महलों के अन्दर अंगरेज़ अफ़सरों और बच्चों को पनाह देने में बड़ी उदारता दिखलाई। इस समय के बचे हुए अनेक अंगरेज़ों के पत्रों और रिपोर्टों में इसका ज़िक्र आता है।

अवध के पूर्वी भाग में फ़ैज़ाबाद का नगर सब से मुख्य था।

मौलवी अहमदशाह की गिरफ़्तारी

सर हेनरी लॉरेन्स ने स्वीकार किया है कि फ़ैज़ाबाद ज़िले के तालुक़ेदारों के साथ अंगरेज़ों ने भारी अन्याय किया था। कुछ की पूरी जागीरें ज़ब्त कर ली गई थीं और कुछ के आधे गाँव छीन लिए गए थे।* मौलवी अहमदशाह, जिसका कुछ परिचय हम ऊपर दे आए हैं, इन्हीं पदच्युत तालुक़ेदारों में से था। अवध की सल्तनत के छिनने के समय से मौलवी अहमदशाह ने अपना सारा समय इस स्वाधीनता महायुद्ध की तैयारी में लगा रक्खा था। फ़ैज़ाबाद से लखनऊ और आगरे तक वह बराबर दौरे करता रहता था। क्रान्ति पर उसने अनेक वक्तृताएँ दीं और अनेक पत्रिकाएँ लिखीं। अंगरेज़ों को जब इसका पता चला, उन्होंने मौलवी अहमदशाह की गिरफ़्तारी की आज्ञा दी। अवध की पुलिस ने उसे गिरफ़्तार करने से इनकार किया इसलिए फ़ौज भेजनी पड़ी। अहमदशाह पर बग़ावत का मुक़दमा क़ायम किया गया। उसे फाँसी का हुकुम

* Kaye and Malleson's *Indian Mutiny*, vol. iii, p. 266.

सुना दिया गया, और फाँसी की तारीख़ तक के लिए फ़ैज़ाबाद जेल में बन्द कर दिया गया।

फ़ैज़ाबाद की स्वाधीनता

मौलवी अहमदशाह की गिरफ़्तारी ने फ़ैज़ाबाद के इलाक़े भर में आग लगा दी। फ़ैज़ाबाद के शहर में उस समय दो पैदल पलटन, कुछ सवार और कुछ तोपख़ाना था। तुरन्त फ़ैज़ाबाद के सिपाहियों और जनता ने मिल कर आज़ादी का झण्डा खड़ा कर दिया। परेड के ऊपर देशी सिपाहियों ने अपने अंगरेज़ अफ़सरों से साफ़ कह दिया कि इस समय के बाद हम केवल अपने हिन्दोस्तानी अफ़सरों की आज्ञा मानेंगे। सूबेदार दलीपसिंह ने फ़ौरन् आगे बढ़ कर तमाम अंगरेज़ अफ़सरों को क़ैद कर लिया। जेलख़ाने की दीवारें तोड़ दी गईं। मौलवी अहमदशाह की बेड़ियाँ काट डाली गईं। फ़ैज़ाबाद के समस्त सिपाहियों और जनता ने मौलवी अहमदशाह को अपना नेता चुना। मौलवी अहमदशाह ने फ़ैज़ाबाद के सारे अंगरेज़ों को लिख भेजा कि आप सब लोग फ़ौरन् फ़ैज़ाबाद छोड़ दीजिए। उसने सब अंगरेज़ों को किश्तियों में बैठा कर फ़ैज़ाबाद से रवाना कर दिया। उन्हें मार्ग के लिए खाने पीने का सामान और कुछ सफ़र ख़र्च तक दे दिया गया। फ़ैज़ाबाद शहर में शान्ति क़ायम कर दी गई। ९ जून को सुबह शहर और आस पास के इलाक़े में एलान कर दिया गया कि कम्पनी की हुकूमत ख़त्म हो गई और वाजिदअली शाह की हुकूमत फिर से क़ायम हो गई।

शाहगञ्ज के ताल्लुक़ेदार राजा मानसिंह को इससे पूर्व मालगुज़ारी के कुछ झगड़े में अंगरेज़ क़ैद कर चुके थे। मानसिंह इस समय विप्लव के नेताओं में से था; फिर भी उसने विप्लव के अन्य नेताओं की इजाज़त से २६ अंगरेज़ स्त्रियों और बच्चों को अपने क़िले के अन्दर अन्त तक सुरक्षित रक्खा। मौलवी अहमदशाह की आज्ञा के अनुसार ख़ास फ़ैज़ाबाद के शहर में एक भी अंगरेज़ नहीं मारा गया।

फ़ैज़ाबाद की अहिंसात्मक क्रान्ति

फ़ैज़ाबाद के बाद ९ जून को सुलतानपुर और १० जून को सालोनी में स्वाधीनता का झण्डा फहराने लगा। सालोनी के ज़मींदार सरदार रुस्तमशाह और काला के राजा हनुमन्तसिंह दोनों ने प्रतिज्ञा कर ली थी कि बिना अंगरेज़ी राज को हिन्दोस्तान से निकाले विश्राम न लेंगे। फिर भी इन दोनों भारतीय नरेशों ने आश्रित अंगरेज़ों और उनके बाल बच्चों के साथ असाधारण उदारता का व्यवहार किया।

सुलतानपुर की स्वाधीनता

राजा हनुमन्तसिंह के विषय में इतिहास लेखक मॉलेसन लिखता है—

राजा हनुमन्तसिंह

"इस उदार राजपूत की अधिकांश जागीर अंगरेज़ों की नई लगान पद्धति के कारण छीनी जा चुकी थी। वह इस अन्याय और अपमान को बहुत महसूस करता था। फिर भी वह स्वभाव से इतना उदार था कि जिस क़ौम ने उसको क़रीब क़रीब बरबाद कर दिया था उस क़ौम के

भागे हुए अफ़सरों के साथ वह वैसा ही वरताव करता था जैसा किसी भी दुखित मनुष्य के साथ। उसने मुसीबत में उनकी सहायता की, उसने उन्हें उनके स्थानों तक सुरक्षित पहुँचा दिया। किन्तु जब विदा होते समय कप्तान बैरो ने राजा हनुमन्तसिंह से कहा कि—'मुझे आशा है, आप इस विप्लव के शान्त करने में अंगरेज़ों को मदद देंगे' तो राजा हनुमन्तसिंह सीधा खड़ा हो गया और बोला—'साहब, तुम्हारे मुल्क के लोग हमारे मुल्क में घुस आए और उन्होंने हमारे बादशाह (वाजिदअली शाह) को निकाल दिया। तुमने अपने अफ़सरों को ज़िलों में भेजा ताकि वे पुराने रईसों और ज़मींदारों के पट्टों की जाँच करें। एक बार में तुमने मुझसे वे सब ज़मीनें छीन लीं जो अनन्त काल से मेरे कुटुम्ब में चली आती थीं। मैंने सह लिया। अचानक तुम पर आफ़त आई, तुमने मुझे बरबाद किया था और तुम मेरे ही पास आए। मैंने तुम्हें बचा दिया। किन्तु अब—अब मैं अपनी सेना जमा करके लखनऊ जा रहा हूँ और तुम्हें मुल्क से बाहर निकालने की कोशिश करूँगा।' "*

इतिहास से पता चलता है कि उस समय अवध के अन्दर अनेक ही हिन्दू और मुसलमान हनुमन्तसिंह मौजूद थे, जिनमें जितना ज़बरदस्त स्वाधीनता का प्रेम था उतनी ही ज़बरदस्त वीरोचित उदारता भी थी।

अवध निवासियों की उदारता

सारांश यह कि ३१ मई और १० जून के बीच केवल लखनऊ शहर के एक भाग को छोड़ कर समस्त अवध अंगरेज़ी राज के चंगुल से निकल गया। प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता फ़ॉरेस्ट लिखता है—

---

* Malleson's *Indian Mutiny*, vol. iii, p. 273. (footnote).

"इस प्रकार दस दिन के अन्दर अवध से अंगरेज़ी राज स्वप्न की तरह मिट गया। उसका कोई अवशेष तक बाक़ी न रहा। फ़ौज ने हमारे विरुद्ध विद्रोह किया। जनता ने पराधीनता की बेड़ियाँ तोड़ कर फेंक दीं, किन्तु उनमें से किसी ने बदला नहीं लिया, किसी ने अन्याय नहीं किया। एक दो अपवादों को छोड़ कर शेष समस्त वीर और विद्रोही जनता ने भागते हुए अंगरेज़ों के साथ स्पष्ट दयालुता का व्यवहार किया। अवधनिवासियों के जिन शासकों (अर्थात् अंगरेज़ों) ने अपनी सत्ता के दिनों में, अत्यन्त अच्छी (?) नीयत से अनेक लोगों के साथ घोर अन्याय किया था उन शासकों का जब पतन हो गया तो अवधनिवासियों ने उनके साथ अपने व्यवहार में उच्च श्रेणी की उदारता और दयालुता बरती। अवध निवासियों के ये गुण साफ़ चमकते हुए दिखाई दे रहे थे।"*

वाजिदअली शाह की सर्व प्रियता

लॉर्ड डलहौज़ी का बयान है कि वाजिदअली शाह के अत्याचारों से अवध की प्रजा दुखी थी! किन्तु जिस प्रकार सन् ५७ में समस्त अवध के ज़मींदारों, जागीरदारों, राजाओं, सिपाहियों, किसानों, सौदागरों, सारांश यह कि समस्त हिन्दू और मुसलमानों ने मिल कर वाजिद

* "Thus in the course of ten days, the English administration in Oudh vanished like a dream and left not a wreck behind. The troops mutinied, the people threw off their allegiance. But there was no revenge, no cruelty. The brave and turbulent population, with a few exceptions, treated the fugitives of the ruling race with marked kindness, and the high courtesy and chivalry of the people of Oudh was conspicuous in their dealings with their fallen masters who, in the days of their power, had, from the best (?) of motives, inflicted on many of them a grave wrong"—Sir George W. Forrest's *State Papers*, vol. ii, p. 37.

अली शाह को फिर से अवध के सिंहासन पर बैठाने के लिए दस दिन के अन्दर अंगरेज़ी राज को उखाड़ कर फेंक दिया, उससे वाजिदअली शाह के शासन की सर्व प्रियता और कम्पनी के शासन की अप्रियता दोनों का साफ़ पता चल जाता है। अवध के अन्दर उस समय एक गाँव भी ऐसा न बचा होगा जिसने कम्पनी के झण्डे को फाड़ कर न फेंक दिया हो।

लखनऊ शहर की स्थिति

अवध के विविध भागों से ज़मींदारों के सिपाही और स्वयं सेवक सहस्रों की संख्या में अब लखनऊ में बेगम हज़रत महल के झण्डे के नीचे आ आकर जमा होने लगे। अवध निवासियों की इस आज़ादी की लड़ाई में बेगम हज़रत महल के अधीन अवध की अनेक स्त्रियां तक मरदाना वेष पहन कर हथियार बांध कर अपने अलग दल बना कर लड़ रही थीं।* लखनऊ शहर का एक भाग अभी तक अंगरेज़ों के हाथों में था। दो पलटन सिखों की, एक पलटन गोरों की और कुछ तोपख़ाना इस समय लॉरेन्स के पास था। कानपुर के अंगरेज़ी क़िले का मोहासरा उस समय जारी था। कानपुर में अंगरेज़ों के हारने का समाचार २८ जून को लखनऊ पहुँचा। लखनऊ के क्रान्तिकारियों ने अंगरेज़ों पर हमला करने के लिए चिनहट नामक स्थान पर चढ़ाई की। कानपुर की पराजय का समाचार सुन कर सर हेनरी लॉरेन्स की हिम्मत टूटी हुई थी। २९ जून को लोहे के पुल के पास कम्पनी की सेना जमा हुई। एक अत्यन्त

---

* *Narrative of the Indian Revolt.* George Vickers. 1858.

घमासान संग्राम हुआ। अन्त में हार कर सर हेनरी लॉरेन्स को पीछे हटना पड़ा। अंगरेज़ों की तीन तोपें मैदान में रह गईं। सर हेनरी लॉरेन्स को लौट कर रेज़िडेन्सी में आश्रय लेना पड़ा। इसके बाद क्रान्तिकारियों ने मच्छीभवन और रेज़िडेन्सी दोनों को घेर लिया। अंगरेज़ों ने मच्छीभवन के "मैगज़ीन को आग लगा दी। मच्छीभवन भी क्रान्तिकारियों के हाथों में आ गया।"

बेगम हज़रत महल का शासन

लखनऊ के अन्दर समस्त अंगरेज़ी सत्ता अब रेज़िडेन्सी के मकान में क़ैद हो गई। उसमें क़रीब एक हज़ार अंगरेज़ और आठ सौ हिन्दोस्तानी थे। अस्त्र शस्त्र और रसद का सामान काफ़ी था। क्रान्तिकारियों ने चारों ओर से रेज़िडेन्सी को घेरे रक्खा। लखनऊ के शेष नगर और समस्त अवध पर वाजिदअली शाह के पुत्र शाहज़ादे विरजिस क़द्र की ओर से बेगम हज़रत महल का शासन क़ायम हो गया।

मॉलेसन लिखता है—

"समस्त अवध ने हमारे विरुद्ध हथियार उठा लिए थे। न केवल बाज़ाब्ता फ़ौज ही, बल्कि पदच्युत नवाब की फ़ौज के साठ हज़ार आदमी, ज़मींदार, उनके सिपाही, ढाई सौ क़िले—जिनमें से बहुतों पर भारी तोपें लगी हुई थीं—सब के सब हमारे विरुद्ध खड़े हो गए। इन लोगों ने कम्पनी के शासन को अपने नवाबों के शासन के साथ तोल कर देख लिया था और क़रीब क़रीब एक मत से यह फ़ैसला कर दिया था कि उनके अपने नवाबों

का शासन कम्पनी के शासन से बेहतर था। जो पेन्शनर हमारी सेना में काम कर चुके थे उन तक ने साफ़ साफ़ हमारे राज के विरुद्ध फ़ैसला दे दिया था और उनमें से प्रत्येक विप्लव में शामिल था।"*

* *Red Pamphlet*, by G. B. Malleson.

सम्राट् बहादुर शाह

[सन् १८४४ के एक चित्र से]

[From 'Two Native Narratives of the Mutiny in Delhi', by charles. T. Metcalf.]

सैंतालीसवाँ अध्याय

दिल्ली, पञ्जाब और बीच की घटनाएँ

दिल्ली का महत्व

किन्तु सन् ५७ की महान क्रान्ति की योजना करने वालों के लक्ष्य की दृष्टि से समस्त महायुद्ध का मर्मस्थान उस समय दिल्ली था। सम्राट बहादुरशाह के नाम पर क्रान्ति प्रारम्भ हुई थी। सम्राट बहादुरशाह ही क्रान्तिकारियों की आशाओं का मुख्य केन्द्र था और बहुत दरजे तक दिल्ली की सफलता पर भारत की स्वाधीनता निर्भर थी। इसीलिए भारत भर के अंगरेज़ों और क्रान्तिकारियों दोनों की नज़रें दिल्ली पर लगी हुई थीं। समस्त भारत से सेनाएँ दिल्ली में आ आकर जमा हो रही थीं और स्थान स्थान से कम्पनी के ख़ज़ाने ला लाकर सम्राट बहादुरशाह के क़दमों पर रख देती थीं। इसी प्रकार अंगरेज़ों ने भी दिल्ली को फिर से विजय करने के लिए अपनी पूरी शक्ति लगा

रक्खी थी। किन्तु दिल्ली के महत्वपूर्ण संग्रामों को वर्णन करने से पहले हमें दिल्ली के उत्तर पश्चिम में पञ्जाव की ओर एक दृष्टि डालनी होगी; विशेष कर क्योंकि उस ओर से ही अंगरेज़ों ने दिल्ली पर हमला किया।

लॉर्ड कैनिङ्ग की तैयारी और एलान

लॉर्ड कैनिङ्ग ने मेरठ और दिल्ली के अशुभ समाचार पाते ही एक ओर मद्रास, कलकत्ता, रङ्गून इत्यादि से फ़ौज जमा करके जनरल नील के अधीन बनारस और इलाहाबाद की ओर भेजी और दूसरी ओर कमाण्डर-इन-चीफ़ ऐनसन को, जो उस समय शिमले में था, पञ्जाव से सेना जमा करके तुरन्त दिल्ली पर चढ़ाई करने और दिल्ली फिर से विजय करने की आज्ञा दी। इसी समय लॉर्ड कैनिङ्ग ने भारतीय सिपाहियों को सान्त्वना देने के लिए समस्त भारत में एक एलान प्रकाशित करवाया, जिसका सार यह था कि कम्पनी सरकार का विचार न कभी किसी के धर्म में हस्तक्षेप करने का था और न है, सिपाही यदि चाहें तो अपने कारतूस स्वयं बना सकते हैं और जिन लोगों ने कम्पनी का नमक खाया है उनके लिए विप्लव में भाग लेना पाप है इत्यादि। किन्तु इस तरह के एलानों का अब क्या प्रभाव हो सकता था।

यदि पञ्जाव क्रान्ति का साथ देता

जनरल ऐनसन को दिल्ली फिर से विजय करने के लिए सेना केवल पञ्जाव से मिल सकती थी। यदि पञ्जाव ने उस समय क्रान्ति का उसी प्रकार साथ दिया होता जिस प्रकार अवध और रुहेलखण्ड ने, तो

अंगरेज़ों के लिए दिल्ली या भारत को फिर से विजय कर सकना सर्वथा असम्भव होता। पञ्जाब का चीफ़ कमिश्नर सर जॉन लॉरेन्स इस बात को अच्छी तरह समझता था। इसलिए पञ्जाब को और विशेषकर सिखों को उस सङ्कट के समय अंगरेज़ सरकार का भक्त बनाए रखने के लिए सर जॉन लॉरेन्स ने जो जो उपाय किए वे अत्यन्त महत्वपूर्ण थे।

सिखों को भड़काना

सिखों को यह समझाया गया कि मुसलमान बादशाह तुम्हारे धर्म पर किस तरह हमले करते रहे हैं और किस प्रकार औरङ्गज़ेब ने दिल्ली के अन्दर गुरु तेगबहादुर का सर कलम करवा दिया था। सिखों को बताया गया कि अब तुम्हें अंगरेज़ों की सहायता से अपने धर्म के शत्रुओं से बदला लेने और दिल्ली के नगर को ज़मीन से मिला देने का मौक़ा मिला है। इतना ही नहीं, वरन् बूढ़े सम्राट बहादुरशाह के नाम से एक जाली एलान उन दिनों जगह जगह दीवारों पर लगा हुआ दिखाई दिया, जिसमें लिखा था कि बहादुरशाह का पहला फ़रमान यह है कि सब सिखों को मार डाला जाय। इतिहास लेखक मेटकॉफ़ लिखता है कि जिस समय यह झूठा एलान प्रकाशित किया गया, ठीक उसी समय बूढ़ा बहादुरशाह हाथी पर बैठ कर दिल्ली की गलियों में अपने मुख से यह एलान करता फिर रहा था कि यह युद्ध केवल फ़िरङ्गियों के साथ है और किसी भी भारतवासी को किसी तरह की हानि न पहुँचाई जाय।

सर जॉन लॉरेन्स की इन चालों का यथेष्ट प्रभाव पड़ा। सम्राट

बहादुरशाह और विप्लव के अन्य नेताओं ने सिखों और सिख राजाओं को अपनी ओर करने के भरसक प्रयत्न किए, किन्तु उन्हें सफलता न हो सकी। बहादुरशाह ने अपना एक विशेष दूत ताजुद्दीन पटियाला, नाभा और झींद के राजाओं तथा अन्य सिख सरदारों के पास भेजा। सिख राजाओं से मिलने के बाद ताजुद्दीन ने सम्राट को एक पत्र लिखा, जिसके कुछ वाक्य ये थे :—

सिख सरदारों की सुस्ती और कायरता

"पञ्जाब के सिख सरदार सब सुस्त और कायर हैं। बहुत कम आशा है कि वे क्रान्तिकारियों का साथ दें। ये लोग फ़िरङ्गियों के हाथों के खिलौने बने हुए हैं। मैं स्वयं इन लोगों से एकान्त में मिला। मैंने उनसे बातचीत की और उनके सामने अपना कलेजा पानी कर दिया। मैंने उनसे कहा, 'आप लोग फ़िरङ्गियों का साथ क्यों देते हैं और मुल्क की आज़ादी के साथ विश्वासघात क्यों करते हैं? क्या स्वराज में आप इससे अच्छे न रहेंगे? इसलिए कम से कम अपने फ़ायदे के लिए ही आपको दिल्ली के बादशाह का का साथ देना चाहिए!' इस पर उन्होंने जवाब दिया, 'देखिए, हम सब मौक़े के इन्तज़ार में हैं। ज्योंही हमें सम्राट का हुकुम मिलेगा हम एक दिन के अन्दर इन काफ़िरों को मार डालेंगे।' × × × किन्तु मेरा ख़याल है कि उन पर बिलकुल एतबार नहीं किया जा सकता।"

कुछ दिनों बाद चन्द सवार सम्राट का सन्देशा लेकर इन सिख राजाओं के पास पहुँचे। इस बीच लॉर्ड कैनिङ्ग और सर जॉन लॉरेन्स के तीर भी सिख राजाओं के दिलों और दिमाग़ों पर चल चुके थे।

सिख राजाओं का विश्वासघात

सिख राजाओं ने दिल्ली सम्राट के सन्देशे का तिरस्कार किया और पत्र लाने वाले सवारों को मरवा डाला।

कम्पनी के राज में ही पञ्जाबी साहूकारों का हित

पञ्जाब की प्रजा को अपनी ओर रखने के लिए सर जॉन लॉरेन्स ने एक और छोटा सा उपाय यह किया कि उसने शुरू ही में पञ्जाब भर से ६ फ़ी सदी पर कम्पनी के नाम से क़र्ज़ लेना शुरू किया। इसके दो नतीजे हुए। एक यह रक़म बड़े सङ्कट के समय कम्पनी के काम आई और दूसरे यह कि पञ्जाब के जिन हज़ारों साहूकारों ने कम्पनी को क़र्ज़ दिया उन्हें कम्पनी के शासन के बने रहने ही में अपना हित दिखाई देने लगा।

सरहद में कम्पनी के धनक्रीत मुल्ला

लखनऊ के क्रान्तिकारी नेताओं का कुछ पत्र व्यवहार उस समय काबुल के अमीर दोस्तमोहम्मद ख़ाँ के साथ जारी था। मालूम नहीं अफ़ग़ानिस्तान में उसके मुक़ाबले के लिए अंगरेज़ों ने क्या क्या किया, किन्तु सरहद की मुसलमान क़ौमों को अपनी ओर रखने के लिए सर जॉन लॉरेन्स ने ख़ूब धन व्यय किया और उनमें प्रचार करने के लिए अनेक मुल्ला नौकर रक्खे।

हिन्दोस्तानी पलटनों से हथियार रखाया जाना

पञ्जाब के अन्दर सिख और गोरी पलटनों के अतिरिक्त हिन्दू और मुसलमान सिपाहियों की भी अनेक पलटनें थीं। ये लोग राष्ट्रीय क्रान्ति में भाग लेने की क़समें खा चुके थे। इनके अतिरिक्त पञ्जाब के अनेक नगरों की साधारण हिन्दू और मुसलमान

जनता भी विप्लव के साथ पूरी सहानुभूति रखती थी। इसलिए अब हमें यह देखना होगा कि इन सब के प्रयत्नों को विफल करने के लिए अंगरेज़ अफ़सरों ने क्या क्या उपाय किए और उनमें उन्हें कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई।

रॉबर्ट मॉण्टगुमरी

पञ्जाब की सब से बड़ी छावनी उन दिनों लाहौर के निकट मियाँमीर में थी। मियाँमीर में हिन्दोस्तानी सिपाही गोरे सिपाहियों से ठीक चौगुने थे। पञ्जाब की हिन्दोस्तानी सेना ने यह तय कर रक्खा था कि सब से पहले मियाँमीर के सिपाही लाहौर के क़िले पर चढ़ाई करके उस पर क़ब्ज़ा करलें, और फिर पेशावर, अमृतसर, फ़िलौर और जालन्धर की पलटनें एक साथ क्रान्ति प्रारम्भ कर दें। मियाँमीर की पलटनें रॉबर्ट मॉण्टगुमरी के अधीन थीं। मेरठ का समाचार पाते ही मॉण्टगुमरी सावधान हो गया। उसे अपने एक गुप्तचर द्वारा सूचना मिली कि मियाँमीर के सिपाही भी क्रान्ति के लिए तैयार हैं। तुरन्त १३ मई को सवेरे मॉण्टगुमरी ने क़रीब एक हज़ार हिन्दोस्तानी सिपाहियों को परेड पर जमा किया। गोरे सवार तोपख़ाने सहित उनके चारों ओर खड़े कर दिए गए। सिपाहियों से हथियार रख देने के लिए कहा गया, सिपाहियों ने और कोई चारा न देख, तुरन्त हथियार रख दिए। उसके बाद वे चुपचाप अपनी बारगों में चले आए।

उसी समय एक पलटन गोरों की लाहौर के क़िले में भेजी गई, जिसने वहाँ पहुँच कर वहाँ के तोपख़ाने की मदद से क़िले के अन्दर

के देशी सिपाहियों से हथियार रखा लिए, उन्हें किले से बाहर बारगों में भेज दिया और लाहौर के किले पर स्वयं कब्ज़ा कर लिया।

यदि पञ्जाब चला जाता तो

निस्सन्देह मॉण्टगुमरी के ठीक समय के साहस और उसकी फुरती ने पंजाब को कम्पनी के हाथों से निकल जाने से बचा लिया और समस्त क्रान्ति की भावी प्रगति पर बहुत बड़ा प्रभाव डाला। सर जॉन लॉरेन्स लिखता है :—

"यदि पञ्जाब चला जाता तो हम अवश्य बरबाद हो जाते। उत्तरी प्रान्तों तक सहायता पहुँच सकने से बहुत पहले पहले समस्त अंगरेज़ों की हड्डियाँ धूप में पड़ी सूखती होतीं। इङ्गलिस्तान कभी उस आफ़त से न पनप सकता था और न एशिया में फिर से अपनी सत्ता को क़ायम कर सकता था।"*

फ़ीरोज़पुर में क्रान्ति

फ़ीरोज़पुर में कम्पनी का एक बहुत बड़ा मैगज़ीन था। १३ मई को यह देखने के लिए कि वहाँ के सिपाहियों के भाव क्या हैं, अंगरेज़ों ने उन्हें परेड पर बुलाया। सिपाहियों का व्यवहार इतना सुन्दर रहा कि अंगरेज़ अफ़सरों का सन्देह उन पर से जाता रहा। किन्तु उसी दिन चन्द घण्टे बाद फ़ीरोज़पुर के सिपाहियों ने क्रान्ति शुरू

---

* "Had the Punjab gone, we must have been ruined. Long before reinforcements could have reached the upper provinces, the bones of all Englishmen would have been bleaching in the sun. England could never have recovered from the calamity and retrieved her power in the East."—*Life of Lord Lawrence*, vol. ii, p. 335.

जून १८५७ में बग़ावत के सन्देह पर हिन्दोस्तानी सिपाहियों का तोप के मुंह से उड़ाया जाना।

[From "A Narrative of the Indian Revolt", London, 1858]

उनमें से १३ या १४ को इसलिए फाँसी पर लटका दिया गया ताकि दूसरों को सबक़ मिले।* बारगों के बाहर तोपें लगा दी गईं। फिर उनमें से किसी को भी बाहर निकलने का साहस न हो सका। फिर भी बाद में इनमें से अनेक को फाँसी दी गई और अनेक को तोप के मुँह से बाँध कर उड़ा दिया गया।

करनल स्पॉटिश वुड की आत्महत्या

पेशावर के निकट होती मरदान में ५५ नम्बर पैदल पलटन थी। इस पलटन के करनल स्पॉटिश वुड को पूरा विश्वास था कि मेरी पलटन विद्रोह न करेगी। पञ्जाब के अन्य अंगरेज़ों ने आग्रह किया कि इस पलटन से भी हथियार रखा लिए जायँ। करनल ने इसका विरोध किया। पञ्जाब सरकार ने हथियार रखा लेने के पक्ष में फ़ैसला दिया। इस पर कहा जाता है कि करनल स्पॉटिश वुड ने अपने कमरे में जाकर आत्महत्या कर ली।

होती मरदान की सेना का नाश

पेशावर से गोरी सेना और तोपें इस पलटन से हथियार रखा लेने के लिए भेजी गईं। ५५ नम्बर के कुछ सिपाहियों ने यह समाचार पाते ही होती मरदान के क़िले से निकल कर भागना चाहा, किन्तु कम्पनी की सेना ने, जो उनसे संख्या में अधिक थी और जिसके पास भारी तोपें थीं, उन्हें घेर लिया। १५० को उसी स्थान पर मार डाला गया, कुछ भाग निकले और शेष गिरफ़्तार कर लिए गए। लिखा है कि "५५ नम्बर पलटन के क़ैदियों के साथ

* *Narrative of the Indian Revolt*, p. 35.

अधिक भयङ्कर व्यवहार किया गया, ताकि दूसरों को शिक्षा हो। उनका कोर्ट मार्शल हुआ, उन्हें दण्ड दिया गया और उनमें से हर तीसरे मनुष्य को तोप के मुंह से उड़ाने के लिए चुन लिया गया।"*

वीभत्स दृश्य

एक अंगरेज़ अफ़सर, जो इन लोगों के तोप से उड़ाए जाने के समय उपस्थित था, उस दृश्य को वर्णन करते हुए लिखता है—

"उस दिन की परेड का दृश्य विचित्र था। परेड पर लगभग नौ हज़ार सिपाही थे × × × एक चौरस मैदान के तीन ओर फ़ौज खड़ी कर दी गई। चौथी ओर दस तोपें थीं। × × × पहले दस क़ैदी तोपों के मुँह से बाँध दिए गए। इसके बाद तोपख़ाने के अफ़सर ने अपनी तलवार हिलाई, तुरन्त तोपों की गरज सुनाई दी और धुएँ के ऊपर हाथ, पैर और सिर चारों ओर हवा में उड़ते हुए दिखाई देने लगे। यह दृश्य चार बार दोहराया गया। हर बार समस्त सेना में से एक ज़ोर की गूँज सुनाई देती थी जो दृश्य की वीभत्सता के कारण लोगों के हृदयों से निकलती थी। उस समय से हर सप्ताह में एक या दो बार उसी तरह के प्राणदण्ड की परेड होती रहती है और हमें उसकी इतनी आदत हो गई है कि अब हम पर उसका कोई असर नहीं होता × × ×।"†

---

* "Of the prisoners of the 55th a more aweful example was made. They were tried, condemned, and every third man was selected to be blown away from guns."—Ibid, p. 36.

† "That parade was a strange scene. There were about nine thousand men on parade; . . . . The troops were drawn up on three sides of a square, the fourth side being occupied by ten guns. . . . . . The first ten of the prisoners were then lashed to the guns, the artillery officer waved his sword,

१० जून सन् १८५७ को पेशावर में हिन्दोस्तानी सिपाहियों का तोप के मुंह से उड़ाया जाना

"तोपों की आवाज़ के साथ साथ धुएँ से ऊपर चारों ओर टांगें, हाथ और सिर उड़ते हुए दिखाई देते थे"

[From the "History of Indian Mutiny", by Charles Ball]

—एक अँगरेज़ साक्षी ।

इतिहास लेखक के लिखता है कि ५५ नम्बर पलटन के अधिकांश सिपाहियों की निर्दोषता को करनल निकल्सन और सर जॉन लॉरेन्स दोनों ने अपने पत्रों में स्वीकार किया है। फिर भी इस पलटन के छिपे और भागे हुए सिपाही जून और जुलाई के महीनों में बराबर दूर दूर से पकड़ कर लाए जाते थे और इसी प्रकार तोप के मुंह से उड़ाए जाते थे। कभी कभी और भी अधिक वीभत्स तरीक़ों से उनके प्राण लिए जाते थे।*

विप्लव के सन्देह पर उन दिनों लोगों का तोपों के मुंह से उड़ाया जाना एक साधारण बात थी, जो अनेक स्थानों पर और अनेक बार दोहराई गई।

दस नम्बर पलटन की सिन्धु में जल समाधि

सन्देह ही पर १० नम्बर सवार पलटन के हथियार रखा लिए गए। इन सब सवारों के घोड़े उनके अपने थे। ये घोड़े ज़ब्त कर लिए गए और आठ हज़ार नक़द रुपए भी, जो सवारों के पास निकले ले लिए गए। लिखा है कि घोड़ों को बेच कर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के ख़ज़ाने में पचास हज़ार रुपए जमा किए गए। सिपाहियों को ज़बरदस्ती किश्तियों में बैठा कर सिन्धु नदी में

---

you heard the roar of the guns, and above the smoke you saw legs, arms, and heads,—flying in all directions. There were four of these salvoes, and at each a sort of buzz went through the whole mass of the troops, a sort of murmur of horror. Since that time we have had execution parades once or twice a week, aud such is the force of habit we now think little of them."—Ibid, p. 36.

* Kaye and Malleson's *History of the Indian Mutiny*, book vi chap. iv.

कहीं पर भेज दिया गया। मालूम नहीं, उनका अन्त क्या हुआ। एक अंगरेज़ अफ़सर, जो उस समय मौजूद था, लिखता है—"मुझे आशा है कि वहाँ पर उनमें से हर एक माता के पुत्र को तेज़ धार में डूबने का मौक़ा मिल जायगा।"†

क्रूर यातनाएँ

पेशावर और उसके पास के इलाक़े में क्रान्तिकारियों को या क्रान्ति के सन्देह पर लोगों को भयङ्कर यातनाएँ दे देकर मारा गया, जिनके विषय में इतिहास लेखक के लिखता है—

"यद्यपि मेरे पास बहुत से पत्र मौजूद हैं जिनमें यह बयान किया गया है कि हमारे अफ़सरों ने किस तरह की वीभत्स और क्रूर यातनाएँ लोगों को पहुँचाईं, फिर भी मैं उनके विषय में एक शब्द भी नहीं लिखता, ताकि यह विषय ही अब संसार के सामने न रहे।"*

जालन्धर, फ़िलौर और लुधियाना में क्रान्ति

अब हम पेशावर से हटकर जालन्धर दोआब की ओर आते हैं। जालन्धर, फ़िलौर और लुधियाने की देशी पलटनें चुपचाप, किन्तु दृढ़ता के साथ विप्लव की तैयारी कर रही थीं। ६ जून को अचानक जालन्धर की फ़ौज ने आधी रात को क्रान्ति का ऐलान किया। गोरी सेना जालन्धर में मौजूद थी, किन्तु देशी

† ". . . where I expect every mother's son will have a chance of being drowned in the rapids."—Narrative, p. 38.

* "Though I have plenty of letters with me describing the terrible and cruel tortures committed by our officers, I do not write a word about it, so that this subject should be no longer before the world!"—Kaye's *Sepoy War*, book vi, chap. iv.

फ़ौज इस तरह अचानक बिगड़ी कि गोरी सेना कर्तव्यविमूढ़ हो गई। जालन्धर के सिपाहियों ने वहाँ के अंगरेज़ों के संहार करने में अपना समय नष्ट नहीं किया। वे तुरन्त दिल्ली की ओर चल दिए।

जालन्धर के सिपाहियों ने अपने में से एक सवार फ़िलौर के सिपाहियों को सूचना देने के लिए भेजा। उसी समय फ़िलौर की देशी पलटनें भी बिगड़ खड़ी हुईं। इसके बाद जालन्धर के सिपाही फ़िलौर पहुँच गए। दोनों जगह की पलटनें एक दूसरे से गले मिलीं और फिर दिल्ली की ओर बढ़ चलीं। मार्ग में सतलज नदी थी। जिसके उस पार लुधियाने का नगर था। लुधियाने के अङ्गरेज़ अफ़सरों को जालन्धर और फ़िलौर के विद्रोह का पता लगने से पहले ही वहाँ के देशी सिपाहियों को इसकी सूचना मिल गई। लुधियाने के अङ्गरेज़ अफ़सरों ने सतलज के ऊपर का किश्तियों का पुल तोड़ दिया। गोरी और सिख पलटनें और महाराजा नाभा की कुछ पलटनें सतलज नदी के ऊपर फ़िलौर से आने वाली क्रान्तिकारी सेना को रोकने के लिए जमा हो गईं। क्रान्तिकारियों को जब इसका पता चला तो उन्होंने रात्रि के समय चुपचाप चार मील ऊपर से सतलज को पार करना चाहा। किन्तु अभी उनमें से कुछ ही पार पहुँच पाए थे कि अंगरेज़ों और सिखों ने उन पर तोपों के गोले बरसाने शुरू कर दिए। रात के क़रीब दस बजे थे, चाँद के निकलने में अभी दो घण्टे बाकी थे। अंधेरे में क्रान्तिकारियों को यह भी पता न चलता था कि शत्रु की सेना किस ओर है। उनकी तोपें भी अभी नदी को पार न कर पाई थीं, फिर भी

उसी हालत में वे दो घण्टे शत्रु का मुक़ाबला करते रहे। इतने में किसी सिपाही की एक गोली अंगरेज़ी सेना के कमाण्डर विलियम्स की छाती में जाकर लगी। वह वहीं पर ढेर हो गया। इसके बाद सुबह तक घमासान संग्राम होता रहा। अन्त में सिखों और अंगरेज़ों को पीछे हट जाना पड़ा।

विजयी क्रान्तिकारियों ने दोपहर के समय लुधियाने में प्रवेश किया। लुधियाने का नगर पञ्जाब में क्रान्ति का एक विशेष केन्द्र था। नगर भर में उस दिन सर्वत्र क्रान्ति थी। जेलख़ाना तोड़ दिया गया, अंगरेज़ी मकान जला दिए गए, सरकारी ख़ज़ाने पर क़ब्ज़ा कर लिया गया। इसके पश्चात् जालन्धर, फ़िलौर और लुधियाने की सेना मिल कर स्वाधीनता के उस युद्ध में भाग लेने के लिए दिल्ली की ओर रवाना हो गई।

सन् ५७ की क्रान्ति में पञ्जाब की ओर से यही मुख्य सहायता थी।

'हिन्दोस्तानियों' का निर्वासन

पञ्जाब के शासकों को उस समय सबसे अधिक सन्देह पूरबी प्रान्तों के रहने वालों पर था, जिन्हें पञ्जाब में 'हिन्दोस्तानी' कहते हैं। इसलिए विप्लव के शुरू के दिनों में पञ्जाब के अनेक शहरों और ग्रामों से सहस्रों निर्दोष और प्रतिष्ठित 'हिन्दोस्तानियों' को ज़बरदस्ती पञ्जाब से निर्वासित कर सतलज के इस पार भेज दिया गया। इसके बाद पञ्जाब के अंगरेज़ों के लिए अपने यहाँ की गोरी और सिख सेनाओं को दिल्ली विजय करने के लिए भेजना और भी आसान हो गया।

अब हम फिर क्रान्ति के प्रधान केन्द्र दिल्ली की ओर आते हैं।

ऐनसन के साथ हिन्दोस्तानी जनता का असहयोग

हम ऊपर लिख चुके हैं कि लॉर्ड कैनिङ्ग ने दिल्ली का समाचार पाते ही कमाण्डर-इन-चीफ़ जनरल ऐनसन को आज्ञा दी कि तुम फ़ौरन् दिल्ली पर चढ़ाई करके दिल्ली फिर से विजय करो। जनरल ऐनसन शिमले से अम्वाले पहुँचा। अम्वाले पहुँच कर उसने दिल्ली पर चढ़ाई करने की तैयारी शुरू की। इस कार्य में ऐनसन को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा और बड़ी देर लगी। कारण यह था कि अम्वाले और उसके आस पास का कोई हिन्दोस्तानी अंगरेज़ों को किसी तरह की सहायता देने के लिए तैयार न था। ऐनसन को न गाड़ियाँ मिलती थीं और न मज़दूर, न रसद मिलती थी और न चारा। इतिहास लेखक के लिखता है—

हर श्रेणी के भारतवासी हमसे दूर रहे। ये लोग ख़ामोश बैठे हुए इस बात की प्रतीक्षा कर रहे थे कि परिस्थिति किस ओर को मुड़ती है। पूँजी पतियों से लेकर कुलियों तक सब एक समान हमें सहायता देने में सङ्कोच करते थे, क्योंकि उन्हें सन्देह था कि कदाचित् हमारी सत्ता एक दिन के अन्दर उखड़ कर फिक जाय।"*

सिखराजाओं का देशद्रोह

एक दूसरी कठिनाई ऐनसन के सामने और थी। अम्वाले और दिल्ली के बीच में पञ्जाब की तीन प्रमुख रियासतें पटियाला, नाभा और झींद के इलाक़े पड़ते थे। यदि ये तीनों रियासतें उस समय देश का साथ

दे जातीं तो इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं हो सकता कि अंगरेज़ों के लिए दिल्ली फिर से विजय कर सकना सर्वथा असम्भव होता और भारत की भूमि से अंगरेज़ी राज की जड़ें उस समय वास्तव में निकल कर फिंक गई होतीं। यदि पटियाला, नाभा और झींद तटस्थ भी रहते तो भी परिणाम अंगरेज़ी राज के लिए शायद इतना ही अहितकर होता। किन्तु जनरल ऐनसन और अंगरेज़ी राज दोनों के सौभाग्य से इन तीनों रियासतों ने उस समय भारतीय क्रान्तिकारियों के विरुद्ध अंगरेज़ों को धन, जन और माल तीनों की भरपूर सहायता दी। सर जॉन लॉरेन्स और उसके साथियों की नीतिज्ञता के कारण ऐनसन को अपने साथ के लिए पञ्जाब से पर्याप्त अंगरेज़ी सेना भी मिल गई।

अम्बाले से दिल्ली का रास्ता अब जनरल ऐनसन के लिए साफ़ हो गया और दिल्ली के क्रान्तिकारियों को पञ्जाब से और अधिक सहायता मिल सकना असम्भव हो गया।

पटियाले के राजा ने अपनी सेना और तोपख़ाना भेज कर थानेश्वर की रक्षा की। झींद के राजा ने पानीपत की रक्षा का भार अपने हाथ में लिया।

कमाण्डर-इन-चीफ़ ऐनसन की मृत्यु

इसके बाद कमाण्डर-इन-चीफ़ ऐनसन अंगरेज़ी और सिख सेना सहित, जिसमें बहुत सी सेना इन्हीं तीन रियासतों की थी, २५ मई को अम्बाले से दिल्ली की ओर रवाना हुआ। तथापि जनरल ऐनसन का हृदय उस विकट परिस्थिति में भीतर से

घबरा रहा था। मार्ग में २७ मई को हैज़े से करनाल में उसकी मृत्यु होगई। सर हेनरी बरनार्ड उसकी जगह कमाण्डर-इन-चीफ़ नियुक्त हुआ।

अंगरेज़ी सेना के अनसुने अत्याचार

अम्बाले से दिल्ली तक की यात्रा में अंगरेज़ी फ़ौज ने जो जो अकथनीय अत्याचार किए, वे किसी अंश में जनरल नील के अत्याचारों से कम अमानुषिक न थे। मार्ग में असंख्य ऐसे लोगों को, जो पञ्जाब से दिल्ली की ओर जा रहे थे, इस सन्देह में कि वे दिल्ली के क्रान्तिकारियों की सहायता के लिए जा रहे हैं, पकड़ पकड़ कर मार डाला गया। इन लोगों का मारना भी क्षम्य क़रार दिया जा सकता था। किन्तु एक अंगरेज़ अफ़सर जो उस यात्रा में सेना के साथ था, लिखता है कि अम्बाले से दिल्ली तक मार्ग की जनता के ऊपर अंगरेज़ी सत्ता का दबदबा फिर से क़ायम करने के लिये सैकड़ों ग्रामों में हज़ारों ही निर्दोष ग्रामनिवासी अत्यन्त तीव्र यातनाएँ दे देकर मार डाले गए; उनके सरों से एक एक कर बाल उखाड़े जाते थे, उनके शरीरों को सङ्गीनों से बींधा जाता था और सब से अन्त में, किन्तु मृत्यु से पहले, भालों और सङ्गीनों के ज़रिये इन हिन्दू ग्राम निवासियों के मुंह में गाय का मांस ठूंस दिया जाता था।*

एक ओर उन्हें ये यातनाएँ दी जाती थीं और दूसरी ओर उनकी आँखों के सामने फाँसियाँ तैयार की जाती थीं। फाँसियाँ

* *History of the Siege of Delhi*, by an Officer who served there.

तैयार हो जाने पर उन्हें इस अधमरी अवस्था में उन फाँसियों पर लटका दिया जाता था।

फ़ौजी अदालत का स्वांग

इनमें से अधिकांश ग्राम निवासियों ने कभी भी अंगरेज़ी राज के विरुद्ध शस्त्र न उठाये थे। इसलिये इन्हें दण्ड देने से पहले तमाशे के लिए एक फ़ौजी अदालत वैठाई जाती थी। जो फ़ौजी अफ़सर जज नियुक्त होते थे वे अपनी नियुक्ति से पहले इस वात की शपथ लेते थे कि हम एक भी क़ैदी को फाँसी से न वचने देंगे।* इसके वाद ग्राम वासियों की क़तारें दूर तक उनके सामने खड़ी कर दी जाती थीं और तुरन्त फ़ैसला सुना दिया जाता था।

एक अज्ञात सिपाही

मेरठ की गोरी सेना, जो १० मई को कर्त्तव्य विमूढ़ होगई थी, अब जनरल वरनार्ड की सेना के साथ मिलने के लिए मेरठ से वढ़ी। इन दोनों के मेल से पहले दिल्ली की क्रान्तिकारी सेना ने आगे वढ़ कर हिन्दन नदी के ऊपर ३० मई सन् १८५७ को मेरठ की अंगरेज़ी सेना पर हमला किया। संग्राम में क्रान्तिकारी सेना का वाईं ओर का भाग कुछ कमज़ोर पड़ गया। उस ओर उनकी पाँच तोप थीं; अंगरेज़ी सेना ने उन तोपों पर क़ब्ज़ा करना चाहा। क्रान्तिकारी सेना उस ओर से हट चुकी थी, केवल एक सिपाही तोपों के वीच में छिपा हुआ रह गया था। ठीक उसी समय जव कि कई अंगरेज़ अफ़सर ओर सिपाही तोपों पर क़ब्ज़ा करने पहुँचे, इस भारतीय

---

* Holmes' *History of the Sepoy War*, p. 124.

सिपाही ने चुपके से मैगज़ीन में आग लगा दी। कई अंगरेज़ उस भारतीय सिपाही के साथ साथ वहीं पर जल कर ख़ाक हो गए। इतिहास लेखक के इस अज्ञात सिपाही की सूझ और उसकी वीरता की प्रशंसा करते हुए लिखता है—

"इससे हमें यह शिक्षा मिली कि विद्रोहियों में इस प्रकार के वीर और साहसी लोग मौजूद थे जो राष्ट्रीय हित के लिए तत्क्षण प्राण देने को तैयार थे।"*

अंगरेज़ी और क्रान्तिकारी सेना में संग्राम

दिल्ली की सेना उस दिन पीछे लौट गई। अगले दिन ३१ मई को वह मेरठ की सेना का मुक़ाबला करने के लिए फिर नगर से निकली। दोनों ओर से गोलेबारी होने लगी। लिखा है कि उस दिन अंगरेज़ों की ओर बहुत अधिक जानें गईं। शाम को दिल्ली की सेना अंगरेज़ी सेना को एक बार तितर बितर करके फिर दिल्ली की ओर वापस चली गई।

गोरखों का देशद्रोह

अगले दिन १ जून को मेजर रीड के अधीन एक गोरखा सेना मेरठ की अंगरेज़ी सेना की सहायता के लिए मौक़े पर पहुँच गई। अम्बाले से जनरल बरनार्ड के अधीन अंगरेज़ और सिख सेना भी ७ जून को इस सेना से आ मिली। दिल्ली के मोहासरे के लिए

---

* "It taught us that, among the mutineers, there were brave and desperate men who were ready to court instant death for the sake of the national cause!"—Kaye's *History of the Sepoy War*, vol. ii, p. 138.

वहुत सा सामान महाराजा नाभा की ओर से इन लोगों के पास पहुंचा। इसके वाद यह विशाल संयुक्त सेना दिल्ली के निकट अलीपुर तक पहुँच गई।

बुन्देले की सराय का भीषण संग्राम

दिल्ली की सेना फिर एक वार इस सेना के मुक़ावले के लिए निकली। वुन्देले की सराय के निकट ८ जून सन् १८५७ को सुवह से शाम तक एक भीषण संग्राम हुआ। क्रान्तिकारी सेना का सेनापति उस समय सम्राट वहादुरशाह का एक पुत्र मिरज़ा मुग़ल था, जिसने शायद जीवन में कभी भी लड़ाई का मैदान न देखा था। दूसरी ओर योग्य से योग्य सेनापति, और सिखों और गोरखों की सहायता। सायङ्काल तक दिल्ली की सेना को फिर नगर के अन्दर लौट आना पड़ा। उनकी कई तोपें शत्रु के हाथ आ गईं और कम्पनी की सेना दिल्ली की दीवार के नीचे पहुँच गई।

दिल्ली के भीतर अदम्य उत्साह

दिल्ली नगर के अन्दर उस समय एक विचित्र उत्साह था। प्रान्त प्रान्त से पलटनें और ख़ज़ाना आकर दिल्ली में जमा हो रहा था। स्थान स्थान से सम्राट वहादुरशाह के नाम वफ़ादारी के पत्र आ रहे थे। नगर के अन्दर वारूद वनाने और अस्त्र शस्त्र ढालने के लिए अनेक कारख़ाने खुल गए थे, जिनमें अनेक तोपें रोज़ाना ढलती थीं और हज़ारों मन वारूद तैयार होती थी। सम्राट वहादुरशाह का एक ख़ादिम ज़हीर अपनी पुस्तक
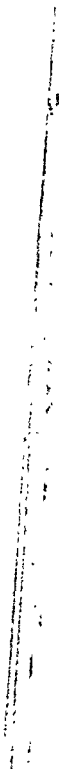
सम्राट बहादुरशाह

[From " A Narrative of the Indian Revolt " London, 1858.]

'दास्ताने ग़दर' में लिखता है कि अकेले चूड़ीवालों के मोहल्ले के एक कारख़ाने में सात सौ मन बारूद रोज़ाना तैयार होती थी ।

गोहत्या पर कड़ा दण्ड

सम्राट बहादुरशाह प्रायः हाथी पर बैठ कर नगर में निकला करता था और जनता तथा सिपाहियों को प्रोत्साहित करता रहता था । एलान किया जा चुका था कि जो मनुष्य गोहत्या के अपराध का भागी होगा उसके हाथ काट लिए जायँगे या उसे गोली से उड़ा दिया जायगा । वास्तव में गोहत्या के विषय में इस प्रकार की आज्ञा सम्राट बाबर के समय से चली आती थी । धर्मान्ध या अदूरदर्शी औरङ्गज़ेब तक ने इस हितकर आज्ञा पर अमल क़ायम रक्खा था । किन्तु दिल्ली और उसके आस पास के इलाक़े में कम्पनी का राज जमने के समय से गोरी सेना के आहार के लिए फिर से गोहत्या शुरू हो गई थी । ऊपर एक अध्याय में लिखा जा चुका है कि मथुरा और दोआब के इलाक़े में इसके कारण भयङ्कर असन्तोष उत्पन्न हो गया था । यही कारण था कि सम्राट बहादुरशाह को वास्तविक सत्ता हाथ में लेते ही फिर एक बार उस तीन सौ वर्ष की पुरानी आज्ञा को दोहराना पड़ा ।

सम्राट बहादुरशाह के एलान

क्रान्ति के प्रारम्भ में दिल्ली के स्वाधीन होते ही सम्राट बहादुरशाह की ओर से एक एलान समस्त भारत में प्रकाशित किया गया, जिसके कुछ वाक्य ये थे—

"ऐ हिन्दोस्तान के फ़रज़न्दो ! अगर हम इरादा कर लें तो बात की बात

में दुश्मन का ख़ात्मा कर सकते हैं ! हम दुश्मन का नाश कर डालेंगे और अपने धर्म और अपने देश को, जो हमें जान से भी ज़्यादा प्यारे हैं, ख़तरे से बचा लेंगे ।"*

कुछ समय बाद सम्राट की ओर से एक दूसरा एलान प्रकाशित हुआ जिसकी प्रतियाँ समस्त भारत के अन्दर, यहाँ तक कि दक्खिन के बाज़ारों और छावनियों में भी हाथों हाथ बँटती हुई पाई गईं । इस एलान में लिखा था—

"तमाम हिन्दुओं और मुसलमानों के नाम—हम महज़ अपना धर्म समझ कर जनता के साथ शामिल हुए हैं । इस मौक़े पर जो कोई कायरता दिखलाएगा या भोलेपन के कारण दग़ाबाज़ फ़िरङ्गियों के वादों पर एतबार करेगा, वह शीघ्र ही शरमिन्दा होगा और इङ्गलिस्तान के साथ अपनी वफ़ादारी का उसे वैसा ही इनाम मिलेगा जैसा लखनऊ के नवाबों को मिला । इसके अलावा इस बात की भी ज़रूरत है कि इस जङ्ग में तमाम हिन्दू और मुसलमान मिल कर काम करें और किसी प्रतिष्ठित नेता की हिदायतों पर चल कर इस तरह का व्यवहार करें कि जिससे अमनो आमान क़ायम रहे और ग़रीब लोग सन्तुष्ट रहें; और उनका अपना रुतबा और उनकी शान बढ़े । जहाँ तक मुमकिन हो सकता है, सबको चाहिए कि इस एलान की नक़ल करके किसी आम जगह पर लगा दें । × × ×"

एक और तीसरा एलान बहादुरशाह की ओर से बरेली में प्रकाशित हुआ, जिसमें लिखा था—

"हिन्दोस्तान के हिन्दुओ और मुसलमानो, उठो ! भाइयो उठो ! ख़ुदा

* Leckey's *Fictions Exposed and Urdoo Works.*

ने जितनी बरकतें इन्सान को अता की हैं, उनमें सबसे क़ीमती बरकत 'आज़ादी' की है। क्या वह ज़ालिम नाक़स जिसने धोखा दे देकर यह बरकत हमसे छीन ली है, हमेशा के लिए हमें उससे महरूम रख सकेगा ? क्या ख़ुदा की मरज़ी के ख़िलाफ़ इस तरह का काम हमेशा जारी रह सकता है ? नहीं, नहीं ! फ़िरङ्गियों ने इतने ज़ुल्म किए हैं कि उनके गुनाहों का प्याला लबरेज़ हो चुका है। यहाँ तक कि अब हमारे पाक मज़हब को नाश करने की नापाक ख़्वाहिश भी उनमें पैदा हो गई है ! क्या तुम अब भी ख़ामोश बैठे रहोगे ? ख़ुदा अब यह नहीं चाहता कि तुम ख़ामोश रहो; क्योंकि उसने हिन्दू और मुसलमानों के दिलों में अंगरेज़ों को अपने मुल्क से बाहर निकालने की ख़्वाहिश पैदा कर दी है और ख़ुदा के फ़ज़ल और तुम लोगों की बहादुरी के प्रताप से जल्दी ही अंगरेज़ों को इतनी कामिल शिकस्त मिलेगी कि हमारे इस मुल्क हिन्दोस्तान में उनका ज़रा भी निशान न रह जायगा ! हमारी इस फ़ौज में छोटे और बड़े की तमीज़ भुला दी जायगी और सबके साथ बराबरी का बरताव किया जायगा; क्योंकि इस पाक जङ्ग में अपने धर्म की रक्षा के लिए जितने लोग तलवार खींचेंगे वे सब एक समान यश के भागी होंगे। वे सब भाई भाई हैं, उनमें छोटे बड़े का कोई भेद नहीं। इसलिए मैं फिर अपने तमाम हिन्दी भाइयों से कहता हूँ, उठो और ईश्वर के बताए हुए इस परम कर्त्तव्य को पूरा करने के लिए मैदान जङ्ग में कूद पड़ो !"*

---

* बहादुरशाह का यह असली एलान उर्दू में था। हमें दुख है कि हमें उसकी उर्दू प्रति नहीं मिल सकी। स्वाधीनता के इस युद्ध के सम्बन्ध के इस तरह के सब पत्रों और एलानों को अंगरेज़ों ही के अनुवादों या प्रतिलिपियों से हिन्दी में अनुवाद करना पड़ा है—लेखक।

दिल्ली का नगर पूरी तरह विप्लवकारियों के हाथों में था। कम्पनी की सेना ने बुन्देले की सराय की लड़ाई के बाद दिल्ली से पश्चिम में 'पहाड़ी' पर क़ब्ज़ा कर लिया। यह स्थान दिल्ली पर हमला करने के लिए बड़ी सुविधा का था। हमले की सलाहें होती रहीं, किन्तु अंगरेज़ सेनापतियों को हमले का साहस न हो सका। इस बीच दिल्ली की विप्लवकारी सेना ने बाहर निकल कर अंगरेज़ी सेना पर बार बार हमले करना शुरू किया सब से पहले १२ जून को दिल्ली की सेना ने अंगरेज़ी सेना पर हमला किया। इतिहास लेखक के लिखता है कि उस दिन के संग्राम में कम्पनी के हिन्दोस्तानी सिपाहियों का एक दस्ता, जिसकी वफ़ादारी पर अंगरेज़ों को पूरा विश्वास था, क्रान्तिकारियों से जा मिला। अंगरेज़ी सेना को काफ़ी हानि पहुँचाने के बाद दिल्ली की सेना फिर नगर के अन्दर लौट गई।

दिल्ली के निकट पहाड़ी पर अंगरेज़ों का क़ब्ज़ा

इसके बाद बजाय इसके कि अंगरेज़ी सेना को दिल्ली में प्रवेश करने का साहस होता, प्रायः हर रोज़ भारतीय सेना प्रातःकाल शहर से निकल कर अंगरेज़ी सेना पर हमला करती थी, और शाम तक उन्हें काफ़ी नुक़सान पहुँचा कर फिर नगर में वापस चली आती थी। दिल्ली में उन दिनों यह एक नियम था कि जो नई पलटन बाहर से दिल्ली में आती थी वह अपने आने के अगले दिन सवेरे एक बार अंगरेज़ी सेना पर हमला करती थी। इन

क्रान्तिकारी पलटनों का नियम

लड़ाइयों में १७, २० और २३ जून की लड़ाइयाँ अधिक भयङ्कर थीं। जिस वीरता के साथ विप्लवकारी सेनाओं ने इन लड़ाइयों में अंगरेज़ों, सिखों और गोरखों की संयुक्त सेनाओं पर हमला किया, उन्हें वार वार अपनी जगह से हटा दिया और उनके अनेक अफ़सरों और सैनिकों को ख़त्म कर दिया, उस वीरता की लॉर्ड रॉवर्ट्स और अन्य अंगरेज़ अफ़सरों ने अपनी रिपोर्टों में मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। कमाण्डर-इन-चीफ़ वरनार्ड ने अव निश्चय कर लिया कि जव तक और अधिक सेना सहायता के लिए पञ्जाव से न आए, तव तक दिल्ली पर हमला करना और विजय प्राप्त कर सकना असम्भव है।

प्लासी की शताब्दी

२३ जून प्लासी की शताब्दी का दिन था। उस दिन के हमले के लिए दिल्ली में विशेष तैयारियाँ हो रही थीं। ठीक प्रातःकाल शहरपनाह की तोपों ने अंगरेज़ी सेना के ऊपर गोले वरसाने शुरू किए। क्रान्तिकारी सेना शहर से वाहर निकली और संयुक्त व्रिटिश सेना पर वे टूट पड़े। अत्यन्त घमासान संग्राम हुआ। उस दिन के संग्राम के विपय में मेजर रीड लिखता है—

"क़रीव १२ वजे क्रान्तिकारियों ने हमारी समस्त सेना के ऊपर एक अत्यन्त भीपण हमला किया। कोई मनुष्य उससे अच्छा न लड़ सकते थे जितना अच्छा कि क्रान्तिकारी लड़े। उन्होंने हमारी सारी पलटनों पर वार वार हमला किया और एक वार मुझे ऐसा मालूम होता था कि हम मैदान खो वैठे।"*

* Major Reid's *Siege of Delhi.*

किन्तु अंगरेज़ों के सौभाग्य से ठीक संकट के समय एक और नई सेना पञ्जाब से सहायता के लिए आ पहुँची। क्रान्तिकारियों के लिए अब कार्य इतना सरल न रहा, फिर भी वे शाम तक मैदान में डटे रहे। अन्त में दोनों ओर की सेनाएँ युद्धक्षेत्र से पीछे हट गईं। वास्तव में जोड़ बराबर का रहा और दोनों सेनाओं के दिलों में एक दूसरे की वीरता के लिए आदर उत्पन्न हो गया।

अंगरेज़ों की सहायता के लिए नई सेना

इसमें कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता कि यदि सिखों ने अंगरेज़ों का साथ न दिया होता और नई पञ्जाबी सेना समय पर सहायता के लिए न पहुँची होती, तो २३ जून सन् १८५७ को दिल्ली की फ़सील के नीचे कम्पनी की सेना का सर्वनाश होगया होता, और फिर भारत में अंगरेज़ों का अपनी सत्ता क़ायम रख सकना लगभग असम्भव था।

सिखों को श्रेय

२ जुलाई सन् ५७ को मोहम्मदबख़्त ख़ाँ के अधीन रुहेलखण्ड की सेना ने दिल्ली में प्रवेश किया। नगर-निवासियों और सम्राट बहादुरशाह की ओर से इस सेना का विशेष स्वागत हुआ। बख़्त ख़ाँ ने सम्राट से भेंट की। इस बीच दिल्ली में स्थान स्थान की फ़ौजों के आने के कारण प्रबन्ध की कुछ शिथिलता दिखाई देने लगी थी। सेनापति मिरज़ा मुग़ल में सुशासन स्थापित करने की योग्यता दिखाई न देती थी। अनेक शिकायतें सम्राट के कानों तक पहुँचीं। बूढ़े सम्राट ने अपने पुत्र मिरज़ा मुग़ल को हटा कर

सेनापति बख़्त ख़ाँ की क्रान्तिकारी सेना

उसकी जगह बख़्त ख़ाँ को दिल्ली की समस्त सेनाओं का प्रधान सेनापति और दिल्ली का 'गवरनर' नियुक्त किया। बख़्त ख़ाँ वास्तव में अत्यन्त योग्य और वीर था। उसने सम्राट से कहा कि यदि इसके बाद कोई शाहज़ादा भी नगर के अन्दर शासन प्रबन्ध में बाधा डालेगा, या प्रजा के साथ किसी प्रकार का अन्याय करेगा तो मैं तुरन्त उसके नाक कान कटवा डालूंगा। सम्राट ने स्वीकार कर लिया।

बख़्त ख़ाँ की नियुक्ति का एलान सारे शहर में कर दिया गया।

बख़्त ख़ाँ का शासन प्रबन्ध

बख़्त ख़ाँ के साथ करीब चौदह हज़ार पैदल, दो या तीन सवार पलटन और अनेक तोपें थीं।* वह अपनी सेना को छै महीने की तनख़ाहें पेशगी दे चुका था। इसके अतिरिक्त उसने चार लाख रुपए नक़द लाकर सम्राट की भेंट किए। बख़्त ख़ाँ ने नगर में सुशासन स्थापित किया, आज्ञा दे दी कि कोई नगर निवासी बिना हथियार के न रहे। जिनके पास हथियार न थे उन्हें मुफ़्त हथियार दिए गए। इसके बाद यदि कोई सिपाही बिना पूरी क़ीमत दिए किसी से कोई वस्तु लेता था तो सिपाही का एक हाथ काट दिया जाता था। उसी दिन रात को ८ बजे महल के अन्दर सम्राट बहादुरशाह, बेगम ज़ीनतमहल, सेनापति बख़्त ख़ाँ तथा अन्य मुख्य मुख्य नेताओं में सलाह हुई। २ जुलाई को एक आम परेड हुई, जिसमें क़रीब बीस हज़ार सेना मौजूद थी।†

---

* 'दास्ताने ग़दर'—लेखक ज़हीर

† *Native Narratives* by Metcalfe, p. 60

इस बीच नए नए अंगरेज़ अफ़सर और अनुभवी सेनापति पञ्जाब से और अधिक सेनाएँ ला लाकर अंगरेज़ी सेना में शामिल होते गए। फिर भी प्रधान सेनापति जनरल बरनार्ड को दिल्ली की सेना पर हमला करने का साहस न हो सका। ४ जुलाई को बख़्त ख़ाँ ने अपनी सेना सहित अंगरेज़ी सेना पर हमला किया।

कम्पनी की सैनिक स्थिति

कम्पनी की सेना को दिल्ली की दीवारों के नीचे पड़े हुए एक महीने से ऊपर हो चुका था। अनेक अफ़सरों के बयानों से साबित है कि अंगरेज़ों को विश्वास था कि दिल्ली पहुँचने के चन्द घण्टे बाद ही हम दिल्ली पर विजय प्राप्त कर लेंगे। किन्तु अब वह विश्वास निराशा में बदलता हुआ दिखाई दे रहा था। इस निराशा में ही ५ जुलाई सन् ५७ को जनरल बरनार्ड भी हैज़े से मर गया। जनरल रीड ने उसका स्थान लिया। इस प्रकार क्रान्ति के शुरू होने से अब तक कम्पनी के दो कमाण्डर-इन-चीफ़ मर चुके थे। जनरल रीड तीसरा था, किन्तु अभी तक दिल्ली विजय न हुई थी।

अंगरेज़ी सेना की पराजय

दिल्ली की सेना के हमले अंगरेज़ी सेना पर बराबर जारी रहे। ९ जुलाई को बख़्त ख़ाँ के अधीन दिल्ली की सेना ने इतना ज़बरदस्त हमला किया कि अंगरेज़ी सेना के सवारों को सामने से भाग जाना पड़ा और अंगरेज़ी तोपों के मुंह बन्द हो गए। अनेक अंगरेज़ अफ़सर मारे गए। इतिहास लेखक के लिखता है कि उस दिन की हार पर अंगरेज़ सिपाही इतने लज्जित और कुपित हुए कि उन्होंने अपने

कैम्प में जाकर अपने निर्दोष ग़रीब भिश्तियों और अनेक काले नौकरों को मार डाला। अपने इन हिन्दोस्तानी नौकरों की वफ़ादारी, और उनकी सेवाओं का उन्होंने कुछ भी ख़याल नहीं किया, क्योंकि—

"इन गोरे सिपाहियों के हृदयों में समस्त काले एशिया निवासियों के प्रति प्रचण्ड घृणा की आग भड़क रही थी।"*

१४ जुलाई के आक्रमण में अंगरेज़ों की इससे भी बुरी हालत हुई। जनरल रीड भी घबरा गया। बीमार पड़ कर और इस्तीफ़ा देकर १५ जुलाई को वह पहाड़ पर चला गया। जनरल विलसन ने उसकी जगह ली। अंगरेज़ी सेना का यह चौथा कमाण्डर-इन-चीफ़ था। दिल्ली की मीनारों के ऊपर स्वाधीनता की पताका को लहराते हुए दो महीने हो चुके थे। भारत भर में अनेक अंगरेज़ यह कहने लगे थे कि, "जो सेना दिल्ली का मोहासरा कर रही है उसका स्वयं मोहासरा हो रहा है।" यहाँ पर हम यह याद दिला देना चाहते हैं कि अंगरेज़ी सेना केवल दिल्ली की पश्चिमी दीवार के नीचे थी, शेष तीनों ओर से क्रान्ति के सहायकों और शुभ चिन्तकों के लिए आने जाने का मार्ग खुला हुआ था। अंगरेज़ी सेना में उस समय अनेक लोग सञ्जीदगी के साथ यह विचार कर रहे थे कि दिल्ली विजय करने का विचार छोड़ कर अभी किसी दूसरी ओर ध्यान दिया जाय।

अंगरेज़ी सेना में नैराश्य

---

* Kaye and Malleson's *Indian Mutiny*, vol. ii, p. 438.

अब हम फिर थोड़ी देर के लिए दिल्ली से हट कर विप्लव के अन्य केन्द्रों की ओर दृष्टि डालते हैं। जिस प्रकार सिखों ने कम्पनी की सहायता द्वारा उसी प्रकार अनेक राजपूत तथा मराठा नरेशों ने अपनी अनिश्चितता द्वारा भारतीय स्वाधीनता के प्रयत्नों को बहुत बड़ी हानि पहुँचाई।

भारतीय नरेशों की अनिश्चितता

जयाजीराव सींधिया उस समय ग्वालियर की गद्दी पर था। उसकी समस्त भारतीय सेना जो अत्यन्त सन्नद्ध थी, राष्ट्रीय योजना में शामिल थी। १४ जून को ग्वालियर की सेना ने कम्पनी के विरुद्ध क्रान्ति का झण्डा खड़ा कर दिया। उन्होंने ग्वालियर के अङ्गरेज़ों के मकान जला दिए, अंगरेज़ अफ़सरों और नगर के अन्य अंगरेज़ों को मार डाला। किन्तु अंगरेज़ स्त्रियों और बच्चों को उन्होंने छुआ तक नहीं।* इन सब को उन्होंने केवल गिरफ्तार कर लिया। कुछ अंगरेज़ आगरे की ओर भाग निकले। ग्वालियर की समस्त रियासत से कम्पनी का प्रभाव और प्रभुत्व दोनों बिलकुल मिट गए। फिर भी महाराजा सींधिया सङ्कोच में रहा। निस्सन्देह यदि महाराजा सींधिया उस समय कम्पनी के साथ मित्रता निबाहने के स्थान पर खुले क्रान्तिकारियों का साथ दे बैठता और अपनी विशाल सेना सहित, जो इस समय नेता न होने के कारण निकम्मी थी, दिल्ली पर चढ़ाई कर देता तो दिल्ली के भीतर की क्रान्तिकारी सेना और बाहर से

ग्वालियर की स्थिति

* Mrs. Coopland's Narrative.

सींधिया की सेना दोनों के बीच में पिस कर कम्पनी की सेना वहीं समाप्त हो गई होती, और क्रान्तिकारियों के पक्ष को भारत भर में अनन्त बल प्राप्त हो जाता।

क़रीब क़रीब यही स्थिति इन्दौर के महाराजा होलकर की थी।

इन्दौर और मध्य भारत की स्थिति

१ जुलाई को सआदत ख़ाँ के अधीन इन्दौर की सेना ने इन्दौर की रेज़िडेन्सी पर हमला किया। वहाँ के सब अङ्गरेज़ों की जान बख़्श दी गई। वे इन्दौर छोड़ कर भाग गए। किन्तु अङ्गरेज़ इतिहास लेखक भी इस बात का निश्चय नहीं कर पाते कि महाराजा होलकर की सहानुभूति अङ्गरेज़ों के साथ थी या क्रान्तिकारियों के साथ। यह बात ध्यान देने योग्य है कि इस तरह के अवसरों पर, जब कि भारतीय नरेश अन्त तक अपना निश्चय न कर सके, रियासतों की सेनाओं और कम्पनी की सबसीडीयरी सेनाओं ने हर जगह देश का साथ दिया। यही स्थिति कच्छ और राजपूताने की रियासतों की थी। इतिहास लेखक मॉलेसन लिखता है की जयपुर और जोधपुर के राजाओं ने अपनी सेनाओं को आज्ञा दी कि जाकर अङ्गरेज़ों की मदद करो, किन्तु सिपाहियों और उनके अफ़सरों ने साफ़ इनकार कर दिया।*

यही हालत भरतपुर और अन्य कई रियासतों की भी थी।

आगरे की स्वाधीनता

५ जुलाई को क्रान्तिकारी सेना ने आगरे पर हमला किया। आगरे में कुछ गोरी सेना मौजूद

* Malleson's *Indian Mutiny*, vol. iii, p. 172.

थी । भरतपुर के राजा ने अपनी सेना अंगरेज़ों की सहायता के लिए भेजी। ऐन मौक़े पर भरतपुर की सेना ने साफ़ जवाब दे दिया कि हम अपने देशवासियों के विरुद्ध न लड़ेंगे। जनरल पॉलवेल की गोरी सेना और क्रान्तिकारियों में एक संग्राम हुआ, जिसमें दिन भर की लड़ाई के बाद गोरी सेना को हार कर पीछे हट जाना पड़ा। ६ जुलाई को आगरे के नगर के ऊपर हरा झण्डा फहराने लगा। उसी दिन वहाँ का शहर कोतवाल, समस्त पुलिस और हिन्दू और मुसलमानों ने मिल कर हरे झण्डे का एक बहुत बड़ा जुलूस निकाला और एलान कर दिया कि आज से आगरे के ऊपर अंगरेज़ी राज के स्थान पर दिल्ली के सम्राट का आधिपत्य फिर से क़ायम होगया।

किन्तु इन भारतीय नरेशों की उस समय की अनिश्चितता ने निस्सन्देह विप्लव को बहुत हानि पहुँचाई।

अब हम फिर कानपुर और इलाहाबाद की ओर आते हैं।

इलाहाबाद में अंगरेज़ों की राजधानी

इलाहाबाद के शहर और क़िले पर अंगरेज़ों का क़ब्ज़ा फिर से हो चुका था। उत्तरी भारत में क्रान्ति को दमन करने की दृष्टि से इलाहाबाद अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान था। इसलिए लॉर्ड कैनिङ्ग अब कलकत्ते से इलाहाबाद आ गया। क्रान्ति के शान्त हो जाने के समय तक के लिए उसने इलाहाबाद ही को अपनी राजधानी नियत किया।

जिस समय कानपुर के अंगरेज़ों की मुसीबतों का समाचार

कानपुर ज़िले में अँगरेज़ी सेना के सिपाही एक गांव को आग लगा रहे हैं, गांव के लोग जानें लेकर भाग रहे हैं

[From "A Narrative of the Indian Revolt," London 1858.]

इलाहाबाद पहुँचा, जनरल नील ने थोड़ी सी सेना इलाहाबाद की रक्षा के लिए रख कर शेष मेजर रिनॉड के अधीन कानपुर के अंगरेज़ों की सहायता के लिए भेज दी। यह सेना जनरल नील की स्थापित की हुई मर्यादा के अनुसार दोनों ओर के ग्रामों को आग लगाती हुई कानपुर की ओर बढ़ी।

अंगरेज़ी सेना की कानपुर यात्रा

एक दूसरा जनरल हैवलॉक जून के अन्त में इलाहाबाद पहुँचा। इसी बीच कानपुर में अंगरेज़ों की पराजय और सतीचौरा घाट के हत्याकाण्ड का समाचार भी इलाहाबाद पहुँच गया। जनरल हैवलॉक भी अब अंगरेज़ और सिख सेना और तोपख़ाने सहित कानपुर की ओर बढ़ा।

आगे चल कर हैवलॉक और रिनॉड की सेनाएँ मिल गईं। मार्ग के ग्रामों को ग्रामवासियों सहित जलाने का कार्यक्रम पूर्ववत् जारी रहा। कम्पनी की सेना की इस यात्रा के विषय में इतिहास लेखक सर चार्ल्स डिल्क लिखता है—

"सन् १८५७ में जो पत्र इङ्गलिस्तान पहुँचे उनमें एक ऊँचे दरजे का अफ़सर, जो कानपुर की ओर अंगरेज़ी सेना की यात्रा में साथ था, लिखता है कि—'मैंने आज की तारीख़ में ख़ूब शिकार मारा। बाग़ियों को उड़ा दिया।' यह याद रखना चाहिए कि जिन लोगों को इस प्रकार फाँसी दी गई या तोप से उड़ाया गया वे सशस्त्र 'बाग़ी' न थे, बल्कि गाँव के रहने वाले थे जिन्हें केवल 'सन्देह पर' पकड़ लिया जाता था। इस कूच में गाँव के गाँव इस क्रूरता के साथ जला डाले गए और इस क्रूरता के साथ निर्दोष ग्राम-

निवासियों का संहार किया गया कि जिसे देख कर एक वार मोहम्मद तुग़लक़ भी शरमा जाता ।"*

फ़तहपुर की अग्नि समाधि

नाना साहब ने ज्वालाप्रसाद और टीकासिंह के अधीन कुछ सेना कम्पनी की सेना के मुक़ावले के लिए भेजी। १२ जुलाई को फ़तहपुर के नज़दीक दोनों सेनाओं में एक संग्राम हुआ जिसमें कानपुर की क्रान्तिकारी सेना को हार कर पीछे हट जाना पड़ा। इसके वाद अंगरेज़ों ने फ़तहपुर के नगर में प्रवेश किया।

इस वीच फ़तहपुर का नगर अपनी स्वाधीनता का एलान कर चुका था। कुछ अंगरेज़ अफ़सर वहाँ पर मारे भी जा चुके थे। किन्तु वहाँ के मैजिस्ट्रेट शेरर की क्रान्तिकारियों ने जान वख़्श दी थी और उसे फ़तहपुर से जाने की इजाज़त दे दी थी। शेरर इस समय हैवलॉक की सेना के साथ था। हैवलॉक और शेरर ने नगर से पूरा वदला लिया। सव से पहले कम्पनी के सिपाहियों को नगर लूटने की आज्ञा दी गई। उसके वाद लिखा है कि अंगरेज़ सेनापति की आज्ञा से फ़तहपुर के नगर और नगरनिवासियों को उसी के अन्दर जला कर ख़ाक कर दिया गया।

---

* " . . . letters which reached home in 1857, in which an officer in high command during the march upon Cawnpore, reported, 'good bag to-day, polished off rebels,' it being borne in mind that the 'rebels' thus hanged or blown from guns were not taken in arms, but villagers apprehended 'on suspicion.' During this march atrocities were committed in the burning of villages and massacre of innocent inhabitants at which Mohammad Tuglak himself would have stood ashamed, ..."—*Greater Britain*, by Sir Charles Dilke.

इस रोमाञ्चकारी अत्याचार की ख़बर नाना के कानों तक पहुँची। कानपुर के नेताओं और नगरनिवासियों का क्रोध पराकाष्ठा को पहुँच गया। नाना साहब ने स्वयं सेना लेकर आगे बढ़ने का निश्चय किया। इसी समय अंगरेज़ों के कुछ जासूस गिरफ़्तार होकर नाना के सामने पेश किए गए। इन जासूसों से पता चला कि जो अंगरेज़ स्त्रियाँ बीबीगढ़ की कोठी में नज़रबन्द थीं उनमें से कई नाना के विरुद्ध इलाहाबाद के अंगरेज़ों के साथ गुप्त पत्र-व्यवहार कर रही थीं।*

बीबीगढ़ का हत्याकाण्ड

अगले दिन शाम को वह घटना हुई जो क्रान्तिकारियों के नाम पर एक कलङ्क रहेगी। कहा जाता है कि कानपुर के १२५ अंगरेज़ क़ैदी स्त्रियाँ और बच्चे क़त्ल कर डाले गए, और दूसरे दिन प्रातःकाल उनकी लाशों को एक कुएँ में डाल दिया गया।

कानपुर की इस हृदय विदारक घटना के सम्बन्ध में अंगरेज़ इतिहास लेखक अनेक प्रकार की टीका कर चुके हैं। इसी घटना के आधार पर नाना साहब को निर्दय हत्यारा साबित करने की चेष्टा की गई है। हमें यह देख कर दुख होता है कि इतिहास की जिन पुस्तकों में, विशेषकर स्कूलों और कॉलेजों की जिन पाठ्य पुस्तकों में जनरल नील, जनरल हैवलॉक, जनरल ऐनसन, जनरल बरनार्ड

---

* *Narrative of the Indian Revolt*, p. 113. One of the Christian prisoners in the prison of Nana Saheb told the same thing and an Ayah also corroborated it.

इत्यादि के भारतीय प्रजा के ऊपर घोर अमानुषिक अत्याचारों का कोई ज़िक्र नहीं किया जाता, उनमें कानपुर की इस वीभत्स हत्या और कानपुर के कुएँ का ज़िक्र अवश्य होता है। हम इस सम्बन्ध में केवल एक दो बातें कह देना आवश्यक समझते हैं।

एक यह कि जिन अंगरेज़ी पुस्तकों में इस घटना को वर्णन किया गया है उनमें प्रायः इस घटना के साथ कई और भी अधिक भयङ्कर और अमानुषिक बातों को जोड़ दिया गया है। उदाहरण के लिए यह कि अंगरेज़ स्त्रियों और बच्चों की हत्या के लिए शहर से कसाई बुलाए गए थे। हत्या से पूर्व इन लोगों को निर्दयता के साथ धीरे धीरे अंगभंग किया गया और स्त्रियों की हत्या से पहले उनकी बेइज़्ज़ती की गई, इत्यादि। इन सब रोमाञ्चकारी बातों के सम्बन्ध में हम केवल विप्लव के सब से अधिक प्रामाणिक अंगरेज़ इतिहास लेखक सर जॉन के के कुछ शब्द उद्धृत करते हैं। इतिहास लेखक के लिखता है—

"उस समय के कई इतिहासों में बयान किया गया है कि इस भीषण हत्याकाण्ड के साथ कई तरह की परिष्कृत क्रूरताएँ और अकथनीय लज्जाजनक बातें की गई थीं। वास्तव में ये क्रूरताएँ और इस तरह की लज्जाजनक बातें कुछ लोगों ने क्रोध के आवेश में आकर केवल अपनी कल्पनाशक्ति से गढ़ ली थीं। अन्य लोगों ने बिना जाँच किए उन पर सहज ही में विश्वास कर लिया और बिना सोचे समझे उन्हें फैलाना शुरू कर दिया। × × × जून और जुलाई के हत्याकाण्डों के विषय में सरकारी कमीशन के मेम्बरों ने हर बात की अत्यन्त परिश्रम के साथ जाँच की, और उन्होंने अत्यन्त स्पष्ट शब्दों

में यह राय प्रकट की है कि किसी को भी अंग भंग नहीं किया गया और किसी की भी इज़्ज़त नहीं ली गई।"*

एक दूसरा विद्वान् अंगरेज़ लन्दन के 'टाइम्स' पत्र का सम्वाद-दाता सर विलियम रसल, जो विप्लव के समय भारत में मौजूद था, कानपुर के इस हत्याकाण्ड के सम्बन्ध में लिखता है—

"अनेक जालसाज़ों और अत्यन्त नीच बदमाशों ने लगातार कोशिश करके इस मामले के साथ अनेक भीषण घटनाएँ जोड़ दीं। ये कल्पित घटनाएँ केवल इस आशा से गढ़ी गई थीं कि उनसे अंगरेज़ों के दिलों में क्रोध और बदले की प्रचण्ड इच्छा भड़क उठे। मानों केवल घृणा इस क्रोध और बदले की इच्छा को भड़काने के लिए काफ़ी न थी।"†

दूसरी बात यह है कि एक सज्जन, जिन्हें ऐतिहासिक घटनाओं की खोज और जाँच का शौक़ है, इस पुस्तक के लेखक से कहते थे कि उन्होंने कानपुर क़साइयों के मोहल्ले में जाकर पूछ ताछ की तो वहाँ के बूढ़े लोगों से मालूम हुआ कि बीबीगढ़ की हत्या के लिए कम से कम क़साइयों का बुलाया जाना बिलकुल ग़लत है।

---

* "The refinements of cruelty—the unutterable shame with which, in some chronicles of the day, this hideous massacre was attended, were but fictions of an excited imagination, too readily believed without enquiry, and circulated without thought. None were mutilated, none were dishonoured . . . This is stated, in the most unqualifed manner, by the official functionaries, who made the most diligent enquiries into all the circumstances of the massacres in June and in July."—Kaye and Malleson's *History of the Indian Mutiny*, p. 281.

† " . . . the incessant efforts of a gang of forgers and utterly base scoundrels have surrounded it with horrors that have been vainly invented

कलकत्ते के ब्लैकहोल के सर्वथा झूठे क़िस्से का वर्णन इतिहास की असंख्य पुस्तकों में पाया जाता है, और कलकत्ते में ब्लैकहोल की जगह तक बनी हुई है। इससे पता चलता है कि कानपुर में 'कुएँ' का होना ज़रूरी तौर पर यह साबित नहीं करता कि यह घटना सर्वथा सच्ची है।

इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट का एक सदस्य लेयॉर्ड इस तरह की अनेक घटनाओं की जाँच करने के लिए स्वयं उन्हीं दिनों में भारत आया। अपनी जाँच के बाद लेयॉर्ड लिखता है—

"निहायत ग़ौर के साथ जाँच पड़ताल करने के बाद, अच्छे से अच्छे और सबसे अधिक विश्वसनीय ज़रियों से जो सूचनाएँ मुझे मिली हैं, उनसे मुझे पूरा विश्वास हो गया है कि जो अनेक भयङ्कर अत्याचार कहा जाता है कि देहली, कानपुर, झाँसी तथा अन्य स्थानों पर अंगरेज़ स्त्रियों और बच्चों पर किए गए, वे प्रायः एक एक कर सब के सब कल्पित हैं, जिनके गढ़ने वालों को लज्जा आनी चाहिए।"*

अन्य निष्पक्ष अंगरेज़ों के इससे भी अधिक ज़ोरदार वाक्य इस कथन के समर्थन में उद्धृत किए जा सकते हैं। ज़ाहिर है कि

---

in the hope of adding to the indignation and burning desire for vengeance which hatred failed to arouse."—Russell's *Diary*, p. 164.

* "From the information I received from the very best and most trustworthy sources, after the most careful inquiries, I am convinced that the series of horrible cruelties alleged to have been committed upon English women and children at Delhi, Cawnpore, Jhansi and elsewhere were almost without exception shameful fabrications, . . ."—Mr. Layard M. P. in *The Times*, 25th August, 1858.

बीबीगढ़ के हत्याकाण्ड की सच्चाई पर विश्वास नहीं किया जा सकता। साथ ही अभी तक यह कह सकना भी कठिन है कि इस क़िस्से की जड़ में सच्चाई क्या और कितनी थी। इस विषय में अभी बहुत अधिक निष्पक्ष खोज की आवश्यकता है।

हम यह भी जानते हैं कि यदि कानपुर में १२५ अंगरेज़ औरतों और बच्चों को निर्दोष मार डाला गया तो जनरल नील ने अपने बयान के अनुसार ही कम से कम हज़ारों भारतीय स्त्रियों और बच्चों को ज़िन्दा जला दिया। किन्तु एक अत्याचार दूसरे अत्याचार को जायज़ नहीं बना सकता। यदि बीबीगढ़ के हत्याकाण्ड में कुछ भी सच्चाई है, अगर यह घटना किसी दर्जे तक भी सच्ची है और जिस दरजे तक भी वह सच्ची है, इसमें कोई सन्देह नहीं क्रान्तिकारियों के नाम पर यह एक बहुत बड़ा कलङ्क है।

नाना की ज़िम्मेदारी

एक प्रश्न इस सम्बन्ध में यह भी उठता है कि यदि बीबीगढ़ की हत्या का क़िस्सा सच है, तब भी उसके लिए नाना साहब को कहाँ तक ज़िम्मेदार ठहराया जा सकता है। सर जॉर्ज फ़ॉरेस्ट लिखता है—

"गवाहियों से यह साबित होता है कि जो सिपाही इन क़ैदियों के ऊपर पहरा दे रहे थे उन्होंने उनकी हत्या करने से इनकार कर दिया। यह गन्दा जुर्म एक वेश्या के उकसाने पर नाना की गारद के पाँच बदमाशों ने

किया ! इस क्रूर हत्या के लिए सारी क़ौम को अपराधी ठहराना अनुदार भी है और असत्य भी ।"*

इतिहास लेखक सर जॉर्ज कैम्पबेल लिखता है—

"कानपुर की हत्या और कुएँ के ऊपर के भयङ्कर दृश्य के पाप को कम करने वाली कोई बात कहना कठिन है, फिर भी हमें दो बातें याद रखनी चाहिए। पहली यह कि यह हत्या किसी ने पहले से तय करके नहीं की, बल्कि जिस समय हैवलॉक क्रान्तिकारियों को पीट कर चला आ रहा था उस समय क्षणिक क्रोध और निराशा के वश यह कार्य किया गया । दूसरी बात यह कि हमारी सेना के लोगों ने कानपुर की ओर बढ़ते समय जो जो अत्याचार किए उनके द्वारा हमने स्वयं लोगों को इस प्रकार के कार्य करने के लिए काफ़ी उत्तेजित कर दिया था । कुछ समय बाद इस हत्याकाण्ड के सम्बन्ध की सब परिस्थिति की बड़ी सावधानी के साथ जाँच पड़ताल की गई, और हमें कोई बात ऐसी नहीं मिली जिससे मालूम हो कि किसी ने पहले से इस हत्या का इरादा कर रक्खा हो या किसी ने हत्या के लिए किसी को आज्ञा दी हो × × × ।"†

---

* "The evidence proves that the sepoy guard placed over the prisoners refused to murder them. The foul crime was perpetrated by five ruffians of the Nana's guard at the instigation of a courtesan. It is as ungenerous as it is untrue to charge upon a nation that cruel deed."—*History of the Indian Mutiny*, by Sir George Forrest, Introduction, p. iv.

† "It is difficult to say anything in extenuation of the Cawnpore massacre and the terrible scene at the well, and yet we must remember two things : first, that it was done, not in cold blood, but in the moment of rage and despair when Havelock had beaten the rebels and was coming in ; and second, that we had done much to provoke such things by the severities of which our people were guilty as they advanced. At a later time a careful

इससे मालूम होता है कि कानपुर में अंगरेज़ स्त्रियों और बच्चों की हत्या के क़िस्से में यदि कुछ सच भी है तो वह हैवलॉक के अत्याचारों से दुखित कुछ क्रान्तिकारियों के क्षणिक क्रोध का परिणाम था, 'किसी ने उसके लिए किसी को आज्ञा' न दी थी, और नाना साहब को उसके लिये उत्तरदाता ठहराना ग़लत है।

जनरल हैवलॉक का कानपुर प्रवेश

१० जुलाई को जनरल हैवलॉक अपनी विशाल सेना सहित कानपुर के निकट पहुँच गया। नाना साहब ने स्वयं सेना लेकर हैवलॉक का मुक़ाबला किया। दोनों ओर की तोपों ने गोले बरसाने शुरू किए। किन्तु अन्त में नाना साहब की सेना को हार कर पीछे हट जाना पड़ा। नाना साहब ने फिर एक बार अपने सिपाहियों को प्रोत्साहित करके आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया। एक अंगरेज़ इतिहास लेखक लिखता है कि फिर एक बार घमासान संग्राम हुआ। किन्तु अन्त में फिर हैवलॉक की विशाल सेना के सामने नाना साहब की सेना को हार कर विठूर की ओर चला जाना पड़ा।

१७ जुलाई को हैवलॉक की विजयी सेना ने कानपुर के नगर में प्रवेश किया। हैवलॉक का नाम अंगरेज़ी राज के इतिहास में अमर हो गया।

---

investigation was made into the circumstances of the massacre, and we failed to discover that there was any premeditation or direction in the matter."—Sir George Campbell, Provisional Civil Commissioner in the Mutiny, as quoted in *The Other Side of the Medal*, by E. Thompson pp. 79, 80.

नगर में घुसने के बाद चार्ल्स बॉल लिखता है—

"जनरल हैवलॉक ने सर ह्यू व्हीलर की मृत्यु के लिए भयङ्कर बदला चुकाना शुरू किया। हिन्दोस्तानियों के गिरोह के गिरोह फाँसी पर चढ़ गए। मृत्यु के समय कुछ क्रान्तिकारियों ने जिस प्रकार चित्त की शान्ति और अपने व्यवहार में ओज का परिचय दिया, वह उन लोगों के सर्वथा योग्य था जो कि किसी सिद्धान्त के नाम पर शहीद होते हैं।"*

कानपुर में अंगरेज़ी सेना के अत्याचार

इनमें से एक व्यक्ति को मिसाल देते हुए चार्ल्स बॉल लिखता है कि वह "बिना ज़रा सी भी घबराहट के ठीक इस प्रकार फाँसी के तख़्ते पर चढ़ गया जिस प्रकार एक योगी अपनी समाधि में प्रवेश करता है!"†

सब से पहले गोरे और सिख सिपाहियों को नगर के लूटने की आज्ञा दी गई। उसके बाद फाँसियों का बाज़ार गर्म हुआ। लिखा है कि बीबीगढ़ में ज़मीन के ऊपर ख़ून का एक बड़ा धब्बा था। सन्देह था कि यह ख़ून गोरी मेमों और बच्चों का है। शहर के

ब्राह्मणों से ख़ून चटवाना

* "General Havelock began to wreak a terrible vengeance for the death of Sir Hugh Wheeler. Batch upon batch of natives mounted the scaffold. The calmness of mind and nobility of demeanour which some of the revolutionaries showed at the time of death was such as would do credit to those who martyred themselves tor devotion to a principle."—Charles Ball's *Indian Mutiny*, vol. i, p. 388.

† "Without the least agitation, he mounted the scaffold even as a Yogi enters Samadhi!"—Ibid.

अनेक ब्राह्मणों को लाकर जिन पर 'सन्देह था' कि उन्होंने विप्लव में भाग लिया है, उन्हें उस ख़ून को ज़बान से चाटने और फिर झाड़ू से धोकर साफ़ करने की आज्ञा दी गई। इसके बाद इन लोगों को फाँसी दे दी गई। उस समय के अंगरेज़ अफ़सर ने इस अनोखे दण्ड का कारण इस प्रकार बयान किया है—

"मैं जानता हूँ कि फ़िरङ्गियों के ख़ून को छूने और फिर उसे मेहतर की झाड़ू से साफ़ करने से एक उच्च जाति का हिन्दू अपने धर्म से पतित हो जाता है। केवल इतना ही नहीं, बल्कि चूँकि मैं यह जानता हूँ इसीलिए मैं उनसे ऐसा कराता हूँ। जब तक हम उन्हें फाँसी देने से पहले उनके समस्त धार्मिक भावों को पैरों तले न कुचलेंगे, तब तक हम पूरा बदला नहीं ले सकते, ताकि उन्हें यह सन्तोष न हो सके कि हम हिन्दू धर्म पर क़ायम रहते हुए मरे।"*

सतीचौरा घाट पर जिन अंगरेज़ों की हत्या की गई थी उन्हें कम से कम मरने से पहले इञ्जील का पाठ करने की इजाज़त दे दी गई थी !

आगे का कार्यक्रम

इसके थोड़े ही दिनों बाद और कुछ सेना लेकर जनरल नील कानपुर पहुँचा। हैवलॉक अब दो हज़ार अंगरेज़ी सेना और दस तोपों सहित २५ जुलाई को

---

* "I know that the act of touching Feringhi blood and washing it with a sweeper's broom degrades a high caste Hindoo from his religion. Not only this but I make them do it because I know it. We could not wreak a true revenge unless we trample all their religious instincts under foot, before we hang them, so that they may not have the satisfaction of dying as Hindoos."—Ibid.

कानपुर से लखनऊ की ओर बढ़ा। जनरल नील कानपुर की रक्षा के लिए रहा।

नाना अब बिठूर छोड़ कर अपने ख़ज़ाने और कुछ सेना सहित गङ्गा पार कर फ़तहगढ़ की ओर चला गया।

पञ्जाब का ब्लैकहोल

नाना और हैवलॉक को कुछ देर के लिये यहीं छोड़ कर अब हम फिर राजधानी दिल्ली की ओर चलते हैं। किन्तु दिल्ली के आगे के संग्रामों को वर्णन करने से पहले पञ्जाब की एक छोटी सी घटना को बयान कर देना आवश्यक है, जिससे मालूम होगा कि दिल्ली के मोहासरे के दिनों में पञ्जाबियों को "डराने और उन पर अपनी धाक क़ायम रखने"* के लिए पञ्जाब के अंगरेज़ शासकों ने किस किस तरह के उपाय किए।

२६ नम्बर की पलटन

मई के महीने में लाहौर के अन्दर चार देशी पलटनों के हथियार रखाए जा चुके थे। इन लोगों पर सिखों और गोरों का पहरा था और इन्हें छावनी से बाहर जाने की इजाज़त न थी। ३० जुलाई की रात को इनमें से २६ नम्बर पलटन के अधिकांश सिपाही छावनी से चल दिए। इन लोगों के पास न हथियार थे और न इन्होंने किसी तरह के विद्रोह में भाग लिया था। अगले दिन उन्होंने रावी पार करके निकल जाना चाहा। उन्हें रोका गया परन्तु वे रावी के

---

* "Overawing" and "striking terror into."—*The Crisis in the Punjab*, pp. 151-52.
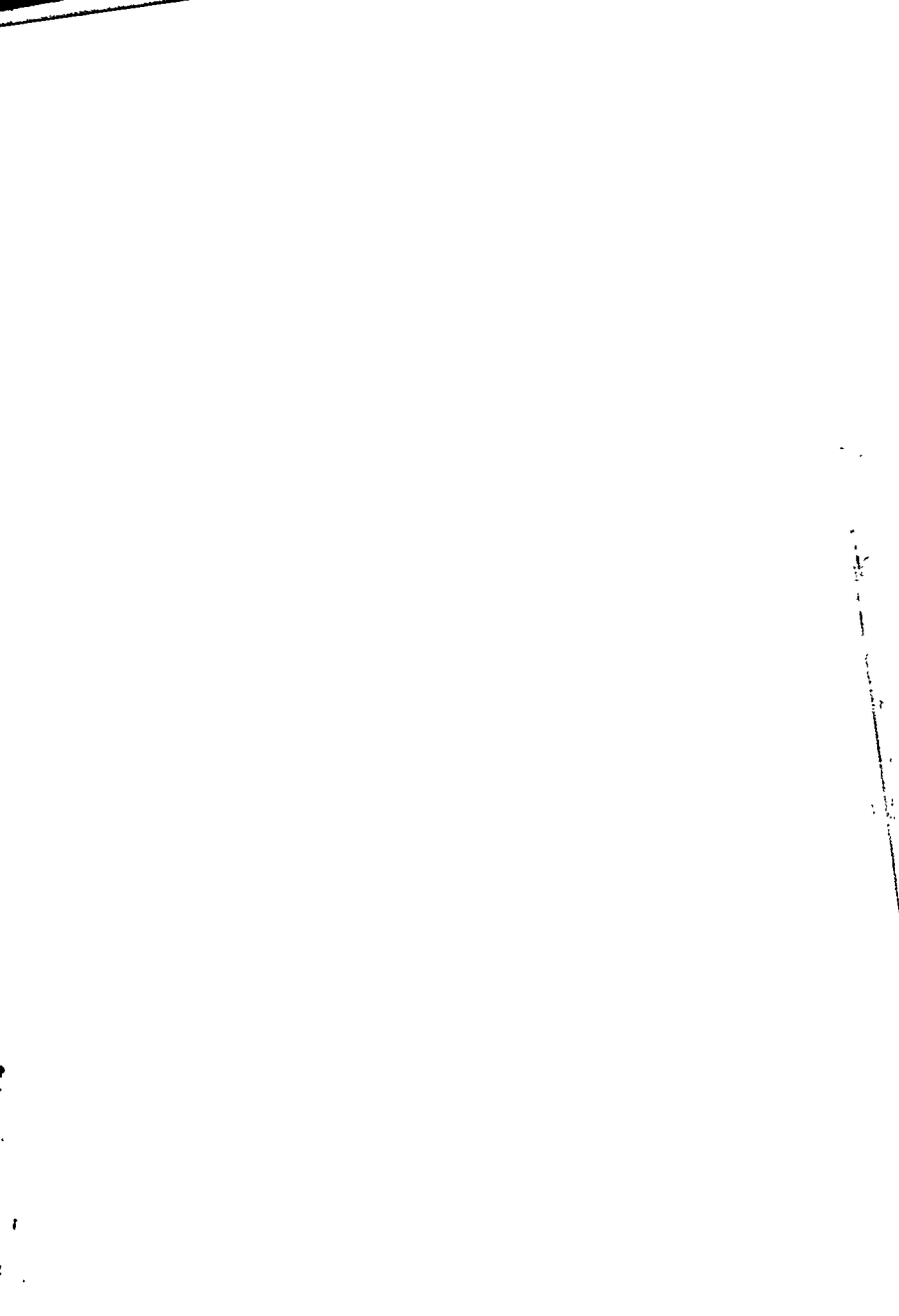
पुलिस-स्टेशन, अजनाला

[ज्ञानी हीरासिंह जी, सम्पादक 'फुलवाड़ी', अमृतसर, की कृपा द्वारा]
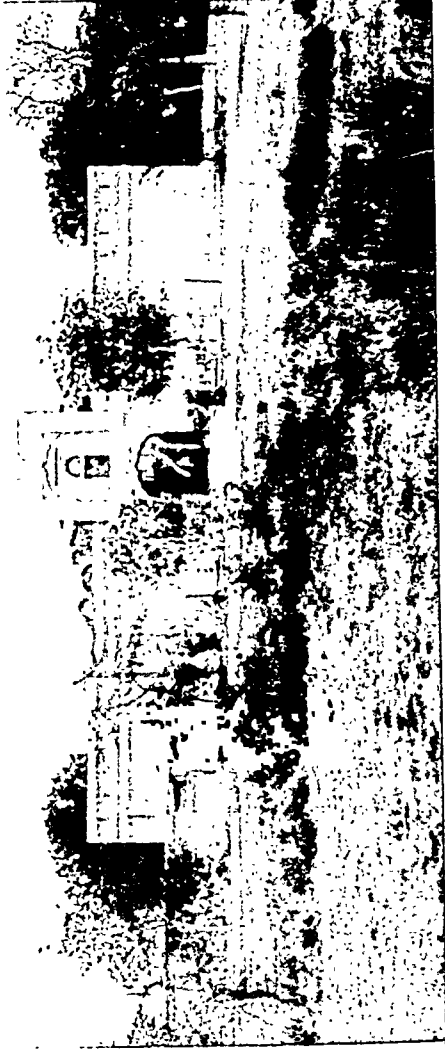
किनारे किनारे अमृतसर की ओर बढ़े। सर रॉबर्ट मॉण्टगुमरी ने आज्ञा दी कि उनका पीछा किया जाय। अमृतसर का डिप्टी कमिश्नर फ़्रेडरिक कूपर मॉण्टगुमरी का ख़ास आदमी था।

अजनाले की घटना

२६ नम्बर पलटन के ये हिन्दोस्तानी सिपाही थके हुए, भूखे और निहत्थे अमृतसर की एक तहसील अजनाले से ६ मील दूर रावी के किनारे पड़े हुए थे। अजनाला अमृतसर से १६ मील के फ़ासले पर है। इसके बाद अजनाले में जो घटना हुई उसे फ़्रेडरिक कूपर ने अपनी पुस्तक "दी क्राइसस इन दी पञ्जाब" में बड़े अभिमान के साथ वर्णन किया है। इस घटना को हम ठीक कूपर ही के बयान के अनुसार और उसी के शब्दों में केवल थोड़े से संक्षेप के साथ नीचे बयान करते हैं।

रावीतट का हत्याकाण्ड

३१ जुलाई के दोपहर को कूपर को पता चला कि ये लोग रावी के किनारे किनारे बढ़ रहे हैं। अजनाले के तहसीलदार को कुछ सशस्त्र सिख सिपाहियों सहित उन्हें घेरने के लिए भेजा गया। क़रीब चार बजे शाम को कूपर स्वयं ८० या ९० सवारों सहित मौक़े पर पहुँचा। उन थके हुए और भूखे लोगों पर गोलियाँ चलाई गईं। उनकी संख्या क़रीब पाँच सौ के थी। इनमें से क़रीब डेढ़ सौ गोलियों से ज़ख्मी होकर पीछे को हटे और रावी में डूब गए। कूपर लिखता है कि भूख और थकान के सबब वे इतने निर्बल थे कि धार में ठहर न सके। रावी का जल उनके रक्त से रङ्ग गया। शेष ने पानी

में से निकल कर कुछ भागते हुए और कुछ तैरते हुए नदी के ऊपर की ओर एक मील के फ़ासले पर एक टापू में आश्रय लिया। दो किश्तियाँ मौक़े पर मौजूद थीं। तीस सशस्त्र सवार इन किश्तियों में बैठ कर उन्हें गिरफ्तार करने के लिए भेजे गए। क़रीब साठ बन्दूक़ों के मुंह उन लोगों की ओर कर दिए गए। दूर से बन्दूक़ों को देख कर उन मुसीबतज़दा लोगों ने हाथ जोड़ कर अपनी निर्दोषता प्रकट की और प्राण दान चाहा। इसी समय उनमें से पचास के क़रीब नैराश्य के कारण पानी में कूद पड़े और फिर दिखाई न दिए।

शेष को गिरफ़्तार कर लिया गया और थोड़े थोड़े करके किश्तियों में बैठा कर किनारे तक पहुँचा दिया गया। किनारे पर पहुँच कर उनके गलों से मालाएँ आदि काट कर फेंक दी गईं, उन्हें अलग अलग गिरोहों में अच्छी तरह बाँध दिया गया और सिख सवारों की देख रेख में धीरे धीरे अजनाले पहुँचा दिया गया। उस समय ज़ोर की बारिश हो रही थी।

अजनाले की काल कोठरी

आधी रात के क़रीब कुल २८२ सिपाही जिनमें कई अफ़सर भी थे, अजनाले के थाने पर पहुँच गए। कूपर ने पहले से अजनाले के थाने में इन सब को फाँसी देने के लिए रस्सियों और गोली से उड़ाने के लिए पचास सशस्त्र सिख सिपाहियों का प्रबन्ध कर रक्खा था। किन्तु बारिश के कारण यह कार्य सुबह के लिए स्थगित किया गया। ये सब लोग पुलिस के मकान में न आ सकते थे।

'कालयाँ-दा-बुर्ज', अजनाला

इस इमारत के एक छोटे से बुर्ज में सन् ५७ में ६६ आदमी बन्द कर दिए गए थे, जिनमें से ४५ हवा की कमी के कारण सुबह को मरे हुए निकले ।

पास ही तहसील की नई इमारत वन कर तैयार थी। अधिकांश को सुवह तक के लिए पुलिस के थाने में वन्द कर दिया गया, और ६६ को तहसील की नई इमारत के एक छोटे से गुम्वद में वन्द कर दिया गया।

यह गुम्वद वहुत तङ्ग था। उसके दरवाज़े चारों ओर से वन्द कर दिए गए।

वक़रीद का त्यौहार

अगले दिन पहली अगस्त को वक़रीद थी। प्रातःकाल इन अभागों को दस दस करके वाहर लाया गया। कूपर थाने के सामने वैठा हुआ था। दस सिख सिपाही एक ओर वन्दूकें लिए खड़े रहते थे। शेष चालीस उनके आस पास मदद के लिए रहते थे। सामने आते ही इन लोगों को गोली से उड़ा दिया जाता था।

दमघुट कर अन्त

इनमें से अधिकांश सिपाही हिन्दू थे। लिखा है कि उनमें से कुछ ने मरते समय सिखों को गङ्गा जी की दुहाई देकर लानत मलामत की। जव थाने के क़ैदी ख़त्म होगए तो गुम्वद के क़ैदियों को वाहर निकाला गया। किन्तु अभी कुल २३७ सिपाही ही गोली से उड़ाए गए थे, अर्थात् गुम्वद में से केवल २१ सिपाही वाहर निकले थे कि कूपर को सूचना दी गई कि शेष क़ैदी गुम्वद से वाहर निकलने से इनकार करते हैं।

कूपर लिखता है कि पहले उनको दुरुस्त करने का प्रवन्ध किया गया। फिर भीतर जाकर देखा गया तो शेष ४५ सिपाहियों की

लाशें पड़ी हुई मिलीं। सम्भवतः उनमें से कुछ अभी तक सिसक रहे थे। कूपर के शब्द हैं—

"अनजाने ही हॉलवेल के ब्लैकहोल का हत्याकाण्ड फिर से दोहराया गया।"*

यहाँ पर यह दोहराने की आवश्यकता नहीं है कि हॉलवेल के ब्लैकहोल का क़िस्सा बिलकुल झूठा था, किन्तु कूपर का अजनाले का ब्लैकहोल एक सच्ची घटना थी !

रात को वे लोग पानी और हवा के लिए चिल्लाए होंगे; किन्तु कूपर लिखता है कि बाहर के शोर के कारण उनकी आवाज़ें सुनाई नहीं दीं !

४५ लाशें, उन लोगों की जो थकान, गरमी और हवा की कमी के कारण भीतर घुट कर मर गए, बाहर घसीट कर डाल दी गईं।

एक कठिनाई बाक़ी थी। इन २८२ लाशों को दफ़न करने का प्रश्न। अजनाले के थाने से लगभग सौ गज़ के अन्दर एक गहरा पुराना कुआँ था। ये सब लाशें मेहतरों से घिसटवा घिसटवा कर उस कुएँ में डलवा दी गईं। शेष कुएँ को मिट्टी से भर दिया गया और उसके ऊपर मिट्टी का एक इतना ऊँचा ढेर लगा दिया गया कि एक टीला सा बन गया।

अजनाले का कुआँ

इस कुएँ के विषय में फ़्रेडरिक कूपर बड़े अभिमान के साथ लिखता है—

---

* "Unconsciously the tragedy of Holwell's Black Hole had been re-enacted."—*The Crisis in the Punjab*, by Frederick Cooper.

'काल्याँ-दा-खूह'-अजनाला

[ज्ञानी हीरासिंह जी, सम्पादक 'फुलवाड़ी', अमृतसर, की कृपा द्वारा]

"एक कुआँ कानपुर में है, किन्तु एक कुआँ अजनाले में भी है।"*

इस प्रकार २६ नम्बर पलटन के क़रीब पाँच सौ मनुष्यों को २४ घण्टे के अन्दर परलोक पहुँचा दिया गया।

तोप के मुँह से उड़ाया जाना

उस पलटन के जो शेष थोड़े से सिपाही लाहौर से अथवा रावी के किनारे से इधर उधर भाग निकले थे उन सब को दो चार दिन के अन्दर गिरफ़्तार कर लिया गया। और कुछ को लाहौर में और कुछ को अमृतसर में तोप के मुँह से उड़ा दिया गया।

अगले दिन चीफ़ कमिश्नर सर जॉन लॉरेन्स और जुडीशल कमिश्नर सर रॉबर्ट मॉण्टगुमरी ने समस्त घटना का समाचार पाकर कूपर को अत्यन्त प्रशंसा के पत्र लिखे, जो कूपर की पुस्तक में छपे हुए हैं।

घातकों को इनाम

हिन्दू तहसीलदार और सिख घातकों को बड़ी बड़ी रक़में इनाम में दी गईं।

अजनाले की भीषण घटना यदि फ्रेडरिक कूपर ने अपनी पुस्तक के अन्दर बयान न की होती तो हमें उस पर पूरा विश्वास हो सकना कठिन था। किन्तु हमने जो कुछ ऊपर वर्णन किया है, कूपर ही के शब्दों में किया है!

इस पर भी इस घटना की तसदीक़ करने के लिए हमने 'फुलवाड़ी' पत्र के सम्पादक ज्ञानी हीरासिंह जी को कष्ट दिया।

---

* "There is a well at Cawnpore, but there is also one at Ajnalah."—Ibid.

उन्होंने स्वयं अमृतसर से अजनाले जाकर इस घटना की तसदीक़ की। अजनाले का एक बूढ़ा मनुष्य बाबा जगतसिंह, जिसकी आयु स्वाधीनता के युद्ध में क़रीब बीस वर्ष की थी, इस समय (सितम्बर १६२८) जीवित है और पूरी तरह सचेत है। बाबा जगतसिंह ने यह समस्त घटना अपनी आँख से देखी थी। बाबा जगतसिंह का क़लमबन्द बयान हमारे पास मौजूद है। उसमें और ऊपर के बयान में मुख्य बातों में कोई अन्तर नहीं है। वह कुआँ भी, जिसके अन्दर २८२ लाशें फेंकी गई थीं, अभी तक मौजूद है। उसके ऊपर एक ऊँचा मट्टी का टीला है। अजनाले में इसे अभी तक 'काल्याँदा-खूह' कहते हैं। पुलिस का थाना भी, जिसके सामने सिपाहियों को मारा गया था और तहसील की वह इमारत, जिसके एक गुम्बद में ४५ सिपाही घुट कर मर गए अभी तक मौजूद है। इस गुम्बद को अभी तक वहां के लोग 'कालयां दा बुर्ज' कहते हैं। बाबा जगतसिंह का बयान है कि अजनाले के उस समय के तहसीलदार का नाम प्राणनाथ था और जो लोग कुएँ के अन्दर एक दूसरे के ऊपर डाले गए उनमें से कुछ जीवित थे और चिल्ला रहे थे। इस शोकजनक घटना से हट कर अब हम राजधानी दिल्ली की ओर आते हैं।

बाबा जगतसिंह का बयान

दिल्ली के अन्दर इस समय क्रान्तिकारियों का मुख्य कार्य यह था कि वे बार बार नगर से निकल कर कभी दाएँ से और कभी बाएँ से अंगरेज़ी सेना पर हमला करते थे, अंगरेज़ी सेना को काफ़ी

दिल्ली में अंगरेज़ी सेना

वावा जगतसिंह—अजनाला

[ज्ञानी हीरासिंह जी, सम्पादक 'फुलवारी', अमृतसर की कृपा द्वारा]
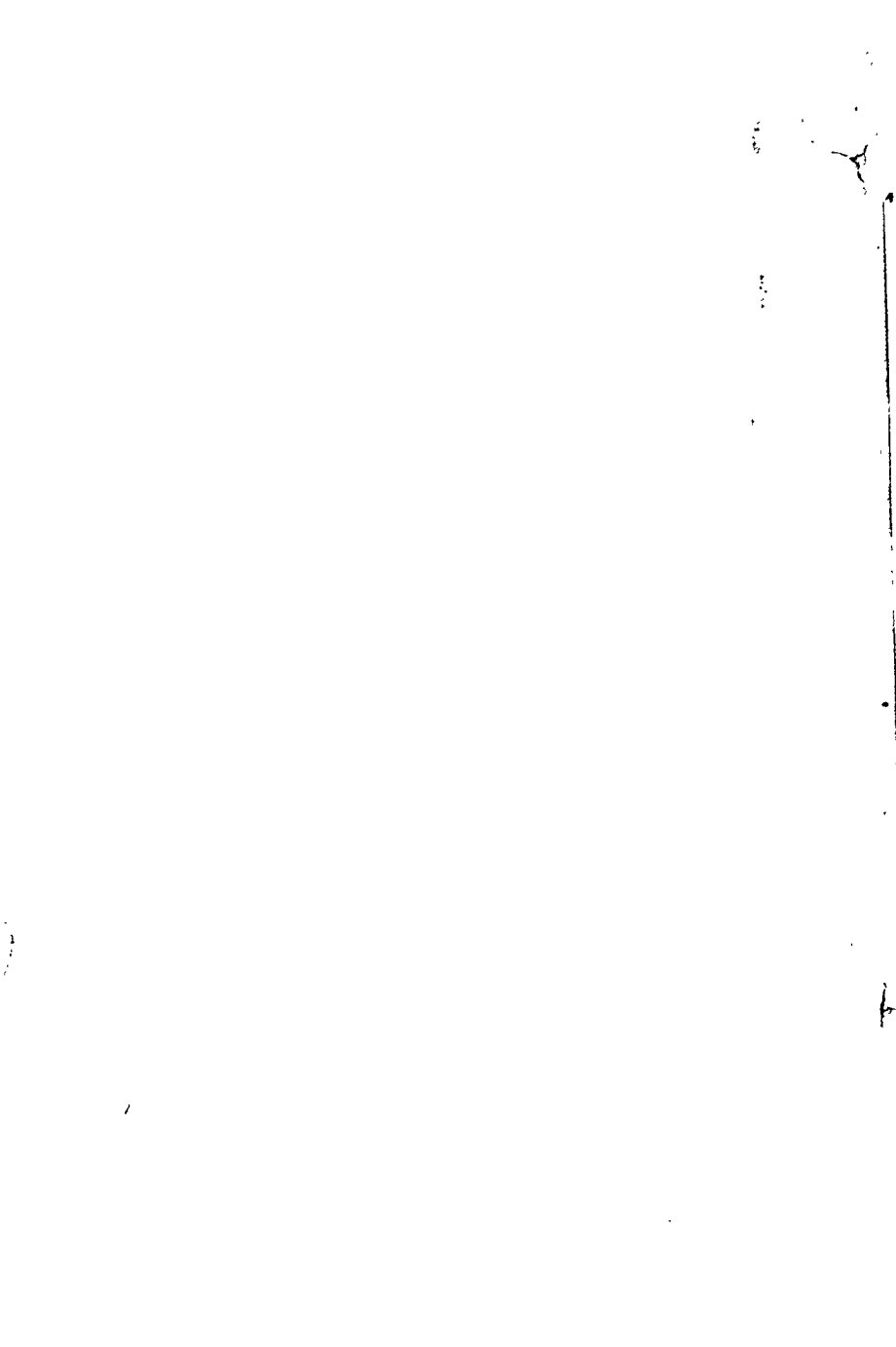
नुक़सान पहुँचा देते थे और फिर पीछे को हटते जाते थे। अंगरेज़ी सेना उनका पीछा करती थी। जब अंगरेज़ी सेना शहर फ़सील के ठीक नीचे आ जाती थी, फ़सील के ऊपर की तोपें उन पर इस बुरी तरह गोले बरसाती थीं कि कम्पनी के सिपाही दीवार के नीचे चनों की तरह भुनने लगते थे। इस प्रकार कई बार में कम्पनी की सेना के इतने अधिक आदमी मारे गए कि जनरल विलसन ने विवश होकर आज्ञा दे दी कि आइन्दा किसी सूरत में भी क्रान्तिकारी सेना का पीछा न किया जाय। अंगरेज़ी सेना की स्थिति इस समय काफ़ी शोचनीय थी।

क्रान्तिकारियों में अनुशासन की कमी

जब कि एक ओर अंगरेज़ी सेना को नगर में घुसने का साहस न होता था, दूसरी ओर क्रान्तिकारी सेना को भी इस बात का साहस न हुआ कि एक बार शहर से निकल कर मैदान में डट कर अंगरेज़ी सेना को ख़तम कर दे। कारण केवल यह था कि जब कि दिल्ली की सेना में वीरता, संख्या या सामान किसी की कमी न थी, दिल्ली के अन्दर कोई एक ऐसा योग्य और प्रभावशाली नेता न था जो प्रान्त प्रान्त की सेनाओं को सफलता के साथ अनुशासन में रख सके और उन सब को मिलाकर एक निर्णायक संग्राम के लिए आगे बढ़ा सके। सम्राट बहादुरशाह बहुत वृद्धा था और स्वयं सेनापतित्व ग्रहण करने के असमर्थ था। शहज़ादा मिरज़ा मुग़ल अयोग्य साबित हो चुका था। सेनापति बख़्त ख़ाँ उस समय क्रान्तिकारी सेनापतियों में सब से अधिक योग्य और

समझदार था। किन्तु वह एक सामान्य सेनापति था। वह किसी शाही घराने में पैदा न हुआ था। उच्च कुल का घमण्ड अभी तक भारतवासियों में मौजूद था। दिल्ली की अनेक सेनाओं के सेनापति छोटे मोटे नरेश या राजकुलों के लोग थे। उन लोगों पर वख़्त ख़ाँ का प्रभाव न पड़ता था। उनमें से कोई कोई वख़्त ख़ाँ के साथ ईर्षा भी अनुभव करने लगे थे। दिन प्रति दिन आपस की कशमकश बढ़ती गई। सम्राट बहादुरशाह ने सब को समझाने का प्रयत्न किया किन्तु सफलता न मिल सकी।

देशी नरेशों के नाम बहादुरशाह का पत्र

दिल्ली में उस समय योग्य और शक्तिशाली नेता की आवश्यकता थी। जयपुर, जोधपुर, सींधिया और होलकर जैसे नरेश राष्ट्रीय क्रान्ति के साथ देने का अन्त तक निश्चय न कर सके। अन्यथा महाराजा सींधिया जैसे प्रभावशाली आदमी का एक बार दिल्ली में आकर इस कमी को पूराकर सकना कोई कठिन कार्य न होता। वास्तव में दिल्ली के अन्दर की यह ज़बरदस्त कमी ही सन् ५७ के स्वाधीनता युद्ध की अन्तिम असफलता का एक मुख्य कारण हुई। दिल्ली के अन्दर एक बार क़रीब पचास हज़ार सन्नद्ध सेना थी। यदि यह विशाल सेना फ़सील के नीचे की अंगरेज़ी सेना को समाप्त कर विजय के उत्साह में भरी हुई एक बार शेष भारत पर फैल जाती तो निस्सन्देह इसके बाद का क्रान्ति का नक़शा बिलकुल बदल गया होता।

सम्राट बहादुरशाह इस कमी को पूरी तरह समझ रहा था।

उसने अनेक उपाय किए। किन्तु व्यर्थ! उसने अपने वेटे मिरज़ा मुग़ल को हटा कर दिल्ली की सेनाओं का प्रधान नेतृत्व वख़्त ख़ाँ को सौंप दिया। किन्तु इससे भी कार्य न चला। अन्त में सम्राट वहादुरशाह ने नीचे लिखा पत्र स्वयं अपने काँपते हुए हाथ से लिख कर जयपुर, जोधपुर, वीकानेर, अलवर और अन्य अनेक राजाओं के पास भेजा—

"मेरी यह दिली ख़्वाहिश है कि जिस ज़रिए से भी और जिस क़ीमत पर भी हो सके, फ़िरङ्गियों को हिन्दोस्तान से वाहर निकाल दिया जाय। मेरी यह ज़वरदस्त ख़्वाहिश है कि तमाम हिन्दोस्तान आज़ाद हो जाय। लेकिन इस मक़सद को पूरा करने के लिए जो क्रान्तिकारी युद्ध शुरू कर दिया गया है वह उस समय तक फ़तहयाव नहीं हो सकता जिस समय तक कि कोई ऐसा शख़्स जो इस तमाम तहरीक के भार को अपने ऊपर उठा सके, जो क़ौम की मुख़्तलिफ़ ताक़तों को सङ्गठित करके एक ओर लगा सके और जो अपने तईं तमाम क़ौम का नुमाइन्दा कह सके, मैदान में आकर इस क्रान्ति का नेतृत्व अपने हाथों में न ले ले। अंगरेज़ों के निकाल दिए जाने के वाद अपने ज़ाती फ़ायदे के लिए हिन्दोस्तान पर हुकूमत करने की मुझमें ज़रा भी ख़्वाहिश वाक़ी नहीं है। अगर आप सव देशी नरेश दुश्मन को निकालने की ग़रज़ से अपनी तलवार खींचने के लिए तैयार हों, तो मैं इस वात के लिए राज़ी हूँ कि अपने तमाम शाही अख़्तियारात और हक़ूक़ देशी नरेशों के किसी ऐसे गिरोह के हाथों में सौंप दूँ जिसे इस काम के लिए चुन लिया जाय।"*

*The Autograph letter,—*Native Narratives*, by Sir T. Metcalfe, p. 226.

निस्सन्देह यह हसरत से भरा हुआ पत्र दिल्ली के अन्तिम सम्राट बहादुरशाह की समस्त भारतवर्ष के प्रति शुभेच्छा और उसकी उदारता, दोनों का दर्पण है। किन्तु सन्दिग्ध हृदय भारतीय नरेशों पर इसका यथेच्छ प्रभाव न पड़ सका।

कम्पनी को नई मदद

इस बीच जनरल निकल्सन के अधीन और नई सेना ने पञ्जाब से आकर कम्पनी की सेना में नई जान डाल दी। यह स्मरण रखना चाहिए कि इस समय जो कम्पनी की सेना दिल्ली के बाहर थी, उसमें अंगरेज़ों की अपेक्षा हिन्दोस्तानियों की संख्या कई गुनी थी। इन हिन्दोस्तानियों में अधिकतर सिख, गोरखे और कुछ अन्य पञ्जाबी थे।† फिर भी अगस्त के अन्त तक क्रान्तिकारी सेना बार बार कम्पनी की सेना पर हमला करती रही, किन्तु कम्पनी की सेना शहर फ़सील के निकट आने की हिम्मत न कर सकी।

नीमच की सेना

२५ अगस्त को सिपहसालार बख़्त ख़ाँ ने फिर एक बार अपनी पूरी ताक़त से अंगरेज़ी सेना पर हमला किया। दिल्ली के अन्दर उस समय दो सेनाएँ मुख्य थीं। एक बरेली की और दूसरी नीमच की। क्रान्तिकारियों के दुर्भाग्य से इन दोनों सेनाओं में काफ़ी वैमनस्य और प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हो गई थी। बख़्त ख़ाँ ने इन दोनों सेनाओं को मिला कर रखने का यथाशक्ति प्रयत्न किया। २५ अगस्त को ठीक उस समय

---

† *History of the Siege of Delhi*, by an Officer who served there.

जब कि वख़्त ख़ाँ ने इन दोनों सैन्यदलों को लेकर अंगरेज़ी सेना के मुख्य स्थान नजफ़गढ़ पर हमला किया, नीमच की सेना ने वख़्त ख़ाँ की आज्ञा का उल्लङ्घन किया। इन लोगों ने उस स्थान को छोड़ कर, जहाँ पर कि वख़्त ख़ाँ ने उन्हें ठहरने के लिए कहा था, पास के दूसरे गाँव में डेरे जमाए। वे लोग शेष क्रान्तिकारी सेना से पृथक होगए। जनरल निकलसन ने समाचार पाते ही पहले उन पर हमला किया और एक अत्यन्त घमासान संग्राम के वाद, जिसमें कि नीमच का एक एक सिपाही कट कर मर गया, कम्पनी की सेना ने विजय प्राप्त की। वख़्त ख़ाँ को अपनी शेष सेना सहित पीछे लौट आना पड़ा।

नीमच की सेना की वहादुरी की अंगरेज़ इतिहास लेखकों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। किन्तु विना सेनापति की अनन्य आज्ञापालन के संसार की कोई सेना भी विजय प्राप्त नहीं कर सकती। पूर्ण व्यवस्था सामरिक सफलता का सब से आवश्यक साधन है। १६ मई के वाद वह पहला दिन था कि दिल्ली के नगर के अन्दर नैराश्य की छटा दिखाई देने लगी और कम्पनी की सेना के हौसले दुगने होगए।

कम्पनी की सेना

कम्पनी की ओर उस समय साढ़े तीन हज़ार अंगरेज़, पाँच हज़ार सिख, गोरखे और पञ्जाबी, ढाई हज़ार काशमीरी, और स्वयं झींद का महाराजा और उसकी सेना थी। नगर के अन्दर अव्यवस्था वढ़ती चली गई। सितम्बर के शुरू में अंगरेज़ी सेना को धीरे धीरे नगर पर आक्रमण

करने का साहस होने लगा। इतिहास लेखक फ़ॉरेस्ट लिखता है कि कम्पनी की ओर के भारतीय सिपाही उस समय अपने प्राणों पर खेलकर असाधारण वीरता के साथ अपने सेनापतियों की आज्ञा का पालन कर रहे थे।

गुप्तचरों का मोहकमा

इस बीच कम्पनी की ओर गुप्तचरों का मोहकमा भी ख़ासा उन्नति कर गया था। इस मोहकमे का प्रधान हडसन था। शहर के अन्दर कई विश्वासघातक पैदा किए जा चुके थे, जिनमें मुख्य सम्राट वहादुरशाह का समधी मिरज़ा इलाहीवख़्श था। मिरज़ा इलाहीवख़्श प्रायः सदा वहादुरशाह के साथ रहता था और महल की तमाम वातों और सलाहों की ख़वरें मेजर हडसन तक पहुँचाता रहता था।

सितम्बर का दूसरा हफ़्ता

७ सितम्बर से कम्पनी की सेना ने नगर के अन्दर प्रवेश करने के जी तोड़ प्रयत्न शुरू कर दिए। ७ से १३ तक उन्हें प्रति दिन अनेक जानें देकर पीछे हट जाना पड़ा। किन्तु इस वीच कम्पनी की तोपों के कारण शहर फ़सील में जगह जगह दरारें पड़ गई थीं। १४ सितम्बर को कम्पनी की सेना ने नगर में प्रवेश करने का अन्तिम और सवसे अधिक ज़ोरदार प्रयत्न किया। वास्तव में उस दिन का दिल्ली का संग्राम क्रान्ति के सवसे अधिक भयङ्कर संग्रामों में से था।

१४ सितम्बर का संग्राम

प्रातःकाल जनरल विलसन ने कम्पनी की सेना को पाँच दलों में विभक्त किया। एक दल ब्रिगेडियर जनरल निकलसन के अधीन, दूसरा करनल कैम्पवेल के

जनरल विलसन और कप्तान हडसन की राय थी कि सम्राट बहादुरशाह को तुरन्त मार डाला जाय। किन्तु अभी तक अधिकांश विप्लवकारी भारत अंगरेज़ों के वश में न आया था। इसलिए अन्य अनेक अंगरेज़ अफ़सरों की राय इसके विरुद्ध थी। अन्त में बहादुरशाह को केवल क़ैद कर दिया गया।

शहज़ादों की हत्या

सम्राट बहादुरशाह की गिरफ्तारी के बाद बहादुरशाह के दो और बेटे मिरज़ा मुग़ल और मिरज़ा अख़्ज़र सुलतान और एक पोता मिरज़ा अबूबकर हुमायूँ के मक़बरे में बाक़ी रह गए थे। कुछ अंगरेज़ इतिहास लेखकों का बयान है कि इन लोगों ने विप्लव के शुरू के दिनों में अंगरेज़ औरतों और बच्चों की हत्या में भाग लिया था। मिरज़ा इलाहीबख़्श ने हडसन को सूचना दी कि ये लोग अभी तक मक़बरे में मौजूद हैं। हडसन तुरन्त फिर मक़बरे की ओर लौटा। तीनों शहज़ादों को क़ैद कर लिया गया। मिरज़ा इलाहीबख़्श ने शहज़ादों को समझा कर इस कार्य में पूरी मदद दी। शहज़ादों को रथों में सवार करा कर हडसन अपने सवारों, मिरज़ा इलाहीबख़्स और उसके दो मुसाहिबों सहित शहर की ओर चला। जब शहर एक मील रह गया तो हडसन ने रथों को ठहराया, तीनों शहज़ादों को रथों से उतरने के लिए कहा, उनके कपड़े उतरवाए और फिर अचानक अपने एक सिपाही के हाथ से बन्दूक लेकर उन तीनों को तीन फ़ायर में वहीं पर ख़त्म कर दिया! गोलियाँ तीनों शहज़ादों की छाती में लगीं और वे "हाय दग़ा।" कह कर वहीं ठण्डे होगए। मिरज़ा इलाही

बख़्श ने तीनों शहज़ादों से वादा कर लिया था कि मैं जनरल विलसन से तुम्हारी जान बख़्शवा दूँगा !

शहज़ादों के कटे हुए सर

शहज़ादों के सिर काट कर सम्राट बहादुरशाह के सामने लाए गए। सिरों को पेश करते हुए हडसन ने बहादुर शाह से कहा :—

"कम्पनी की ओर से यह आपकी नज़र है जो बरसों से बन्द थी।"

ख़्वाज़ा हसन निज़ामी ने लिखा है कि सम्राट बहादुरशाह ने जवान बेटों और जवान पोते के कटे हुए सिर देखे तो आश्चर्यजनक धैर्य के साथ देख कर मुंह फेर लिया और कहा :—

"अलहम्दोलिल्लाह ! तैमूर की औलाद ऐसी ही सुर्ख़ रू होकर बाप के सामने आया करती थी !"*

इसके बाद शहज़ादों के सिर ख़ूनी दरवाज़े के सामने लाकर लटका दिए गए और धड़ कोतवाली के सामने टाँग दिए गए। अगले दिन इन तीनों लाशों को जमना में फिंकवा दिया गया।

हडसन ने शहज़ादों का ख़ून पिया

शहज़ादों की हत्या के सम्बन्ध में एक और इससे भी कहीं अधिक भयङ्कर रिवायत दिल्ली में मशहूर थी। वह रिवायत यह है कि एक तो ये शहज़ादे जिन्हें हडसन ने इस प्रकार धोखा देकर मारा, चार थे।

---

* अर्थ—ख़ुदा की तारीफ़ है ! तैमूर की औलाद इसी प्रकार मुख उज्ज्वल करके बाप के सामने आया करती थी !

बेगम ज़ीनत महल

असली फ़ोटो जो सन् ५७ के विप्लव के बाद क़ैदी हालत में लिया गया था।

[From 'Two Native Narratives of the Mutiny in Delhi', by Charles. T. Metcalf.]

अधीन, तीसरा ब्रिगेडियर जोन्स के अधीन, चौथा मेजर रीड के अधीन और पाँचवाँ ब्रिगेडियर लॉङ्गफील्ड के अधीन। पहले तीन दलों ने जनरल निकलसन के प्रधान नेतृत्व में काश्मीरी दरवाज़े की ओर से प्रवेश करना चाहा, चौथे दल ने मेजर रीड के अधीन काबुली दरवाज़े और सब्ज़ी मण्डी की ओर से बढ़ना चाहा। सबसे पहले सूर्योदय के थोड़ी देर बाद निकलसन अपने दल सहित फ़सील की ओर बढ़ा। भीतर से क्रान्तिकारियों की तोपों ने गोले बरसाने शुरू किए। दीवार के नीचे अंगरेज़ और सिख सिपाहियों की लाशों के ढेर लग गए। फिर भी उन्हें रौंदते हुए निकलसन और उसके कुछ साथी दीवार तक पहुँच गए। पिछले सात दिनों के प्रयत्नों में दीवार का कुछ टुकड़ा टूट चुका था। इस टुकड़े के पास सीढ़ी लगा दी गई। निकलसन पहला अंगरेज़ वीर था, जिसने गोलियों और गोलों की बौछार के अन्दर काश्मीरी दरवाज़े के निकट फ़सील पर चढ़ कर विजय का बिगुल बजाया।

दिल्ली के अन्दर कम्पनी की सेना का प्रवेश

इसी प्रकार मरते मारते दूसरा दल एक और ओर से फ़सील पर चढ़ कर शहर के भीतर कूद पड़ा। तीसरा दल काश्मीरी दरवाज़े की ओर बढ़ा। कुछ अफ़सरों ने आगे बढ़ कर दरवाज़े को बारूद से उड़ा देना चाहा। दीवारों और खिड़कियों से धुआँधार गोलियाँ बरसने लगीं। कई अंगरेज़ और देशी अफ़सर इसी प्रयत्न में मारे गए। अन्त में एक ने दरवाज़े तक बारूद पहुँचा दी और

दूसरे कप्तान वरगेस ने मरते मरते फ़लीता दिखा दिया। काशमीरी दरवाज़े का एक भाग उड़ गया। करनल कैम्पवेल ने अपने दल को आगे बढ़ने की आज्ञा दी और गोलियों की बौछार में से बढ़ कर कैम्पवेल और उसके कुछ साथी काशमीरी दरवाज़े के अन्दर पहुँच गए।

चौथे दल ने मेजर रीड के अधीन काबुली दरवाज़े की ओर से बढ़ना चाहा। सब्ज़ी मण्डी के निकट दिल्ली की सेना से उनका आमना सामना हुआ। पहले ही वार में मेजर रीड घायल होकर गिर पड़ा। एक बार उसकी सेना पीछे हटी। इस पर होप ग्रॉण्ट कुछ सवारों सहित आगे बढ़ा। दोनों ओर से रक्त की नदियाँ बहने लगीं। होप ग्रॉण्ट के अधिकतर सवार हिन्दोस्तानी थे। संग्राम में दोनों पक्ष के सिपाहियों ने अपूर्व वीरता का परिचय दिया। अन्त में अंगरेज़ी सेना को फिर पीछे हट जाना पड़ा।

चौथे दल ने इस प्रकार हार खाई। शेष तीनों दलों ने निकलसन, कैम्पवेल और जोन्स के अधीन काशमीरी दरवाज़े से घुस कर शहर पर धावा किया। जिस जिस मकान या मीनार को ये लोग सर कर लेते थे उस पर तुरन्त सूचना के लिए अंगरेज़ी झण्डा गाड़ देते थे। एक एक मकान के सामने संग्राम होता जाता था। इस प्रकार लड़ते लड़ते ये तीनों दल काबुली दरवाज़े की ओर बढ़े।

अमर गली

बर्न वैस्टियन के पास पहुंच कर इन लोगों को एक तङ्ग गली में से निकलना पड़ा। इस गली के दोनों ओर की खिड़कियों, छज्जों और छतों पर से गोलियों की

भयङ्कर वर्षा होने लगी। गली के अन्दर अक्षरशः रक्त की नदी वह निकली। अंगरेज़ी सेना को मजबूर होकर पीछे हट जाना पड़ा। निकल्सन यह हालत देख कर एक सच्चे वीर के समान आगे बढ़ा। यह गली क़रीब दो सौ गज़ लम्बी थी। किन्तु १४ सितम्बर के दिन इस गली ने जो अद्भुत कार्य कर दिखाया उसने वास्तव में इस गली को अमर कर दिया। वीर निकल्सन को भी पीछे हट जाना पड़ा। इस पर मेजर जैकब आगे बढ़ा और तुरन्त घायल होकर गिर पड़ा। निकल्सन फिर दूसरी वार आगे बढ़ा। किन्तु इस वार आगे बढ़ते ही घायल होकर ज़मीन पर गिर पड़ा। अन्त में अंगरेज़ी सेना को गली छोड़कर पीछे हट जाना पड़ा। गली लाशों से भर गई। कम्पनी की सेना को पीछे हट कर काशमीरी दरवाज़े लौट आना पड़ा।

जामे मसजिद की लड़ाई

जिस समय निकल्सन वर्न वैस्टियन की ओर बढ़ रहा था उसी समय करनल कैम्पवेल के अधीन एक दल जामे मस्जिद की ओर भेज दिया गया था। मस्जिद तक पहुँचने में इन लोगों को बहुत अधिक कठिनाई नहीं हुई। किन्तु मस्जिद में उस समय कई हज़ार मुसलमान जमा थे। उन्हें पता चल गया था कि अंगरेज़ मसजिद को बारूद से उड़ाना चाहते हैं। इन सब के पास तलवारें थीं, बन्दूकें न थीं। ये सब लोग अपनी तलवार हाथ में लेकर मसजिद से निकल पड़े। सब से पहले उन्होंने अपनी तलवारों के मियान काट कर फेंक दिए। उन्हें मसजिद के बाहर देखते ही अंगरेज़ी

सेना ने उन पर बन्दूकों की एक बाढ़ चलाई। उनमें से दो सौ आदमियों की लाशें तुरन्त मसजिद की सीढ़ियों पर गिर पड़ीं। किन्तु शेष मुसलमान इस फुरती के साथ तलवारें हाथ में लिए आगे बढ़े कि अंगरेज़ी सेना को दोबारा बन्दूकें भरने या सँभालने तक का अवकाश न मिल सका। बन्दूकों को छोड़ कर दोनों ओर से तलवारों की लड़ाई शुरू हो गई। कैम्पबेल घायल हो गया। अंगरेज़ी सेना के इस दल को भी विवश होकर काशमीरी दरवाज़े की ओर भाग आना पड़ा। कैम्पबेल ने बाद में बयान किया कि यदि मुझे समय पर सहायता पहुंच जाती और बारूद के थैले मेरे पास आ जाते तो मैं उस दिन दिल्ली की जामे मसजिद को अवश्य उड़ा देता।

उस दिन के हताहत

इस प्रकार १४ सितम्बर की लड़ाई ख़तम हो गई। दिल्ली में अंगरेज़ी सेना के प्रवेश का यह पहला दिन था। संग्राम अत्यन्त भयङ्कर रहा। दोनों पक्षों ने एक एक इञ्च भूमि के लिए अपने और शत्रु दोनों के रक्त को पानी की तरह बहा दिया। अंगरेज़ों की ओर चार मुख्य सेनापतियों में से तीन घायल हो गए, जिनमें सब से वीर सेनापति निकल्सन २३ सितम्बर को अस्पताल में मरा। कम्पनी के ६६ अफ़सर और १,१०४ सिपाही उस दिन के संग्राम में मारे गए। कहा जाता है कि क्रान्तिकारियों की ओर क़रीब १,५०० आदमी मरे। किन्तु चार महीने के मोहासरे के बाद दिल्ली की दीवार के अन्दर कम्पनी की सेना ने प्रवेश कर लिया।

इसके बाद के दिल्ली के संग्रामों को इतने विस्तार के साथ वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है। क्रान्तिकारियों की ओर अव्यवस्था बढ़ने लगी। कुछ सेना तुरन्त दिल्ली छोड़ कर चल दी और कुछ १५ सितम्बर से २४ सितम्बर तक दिल्ली की एक एक चप्पा भूमि के लिए शत्रु के साथ संग्राम करती रही। इन संग्रामों में कम्पनी की सेना के क़रीब चार हज़ार मनुष्य मारे गए। क्रान्तिकारियों के हताहतों की संख्या इससे कुछ अधिक बताई जाती है।

चप्पा चप्पा भूमि पर संग्राम

धीरे धीरे तीन चौथाई नगर कम्पनी के कब्ज़े में आ गया। इस पर १६ सितम्बर की रात को बख़्त ख़ाँ सम्राट बहादुरशाह से भेंट करने के लिए गया। उसने सम्राट को हिम्मत दिलाई और कहा कि—

सम्राट को बख़्त ख़ाँ का आश्वासन

"दिल्ली हाथ से निकल जाने पर भी हमारा कुछ अधिक नहीं बिगड़ा, तमाम मुल्क में आग लगी हुई है, आप अंगरेज़ों से हार स्वीकार न कीजिए, आप मेरे साथ दिल्ली से निकल चलिए, कई अन्य स्थान सामरिक दृष्टि से दिल्ली की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण हैं, इनमें से किसी पर भी जम कर हमें युद्ध जारी रखना चाहिए। मुझे विश्वास है कि अन्त में हमारी विजय होगी।"

सम्राट बहादुरशाह बख़्त ख़ाँ की बात पर क़रीब क़रीब राज़ी हो गया, और उसे अगले दिन सवेरे फिर मिलने के लिए बुलाया। दूसरी ओर अंगरेज़ों ने अपने गुप्त सहायक मिरज़ा इलाहीबख़्श पर इस बात का ज़ोर दिया कि तुम किसी प्रकार बादशाह को

दिल्ली से बाहर जाने से रोक लो। इस कार्य के लिए मिरज़ा इलाही बख़्श से बहुत बड़े इनाम का वादा किया गया। चुनाँचे आज तक मिरज़ा इलाहीबख़्श के वंशजों को बारह सौ रुपए माहवार पेनशन मिलती है।

बख़्त ख़ाँ के चले जाने के बाद मिरज़ा इलाहीबख़्श ने सम्राट को समझाया कि :—

बख़्त ख़ाँ और मिरज़ा इलाहीबख़्श

"विप्लव के सफल होने की अब कोई आशा नहीं हो सकती, बख़्त ख़ाँ के साथ जाने में आपको सिवाय कष्टों और हानि के कुछ न मिलेगा, और यदि आप यहाँ रह जायँगे तो मैं वादा करता हूँ कि अंगरेज़ों से मिल कर सब बातों की सफ़ाई करा दूँगा, आप और आपके कुटुम्बियों पर किसी तरह की आँच न आने पाएगी।"

अगले दिन सवेरे बहादुरशाह हुमायूँ के मक़बरे में गया। बख़्त ख़ाँ को वहीं पर मिलने के लिए बुलाया गया। मक़बरे के पूर्व की ओर जमना की रेती में बख़्त ख़ाँ की फ़ौज पड़ी हुई थी। पूर्व की ओर के दरवाज़े से ही बख़्त ख़ाँ बहादुरशाह से मिलने के लिए मक़बरे में आया। बख़्त ख़ाँ ने बहादुरशाह को फिर समझाया। लिखा है कि बख़्त ख़ाँ बहादुरशाह को अपने साथ ले जाना चाहता था, बहादुरशाह बख़्त ख़ाँ के साथ जाना चाहता था, और मिरज़ा इलाहीबख़्श बहादुरशाह को रोक लेने के दाँव पेच खेल रहा था। अन्त में मिरज़ा इलाही बख़्श ने जब देखा कि और कोई चाल नहीं चल सकती तो उसने बख़्त ख़ाँ पर यह इलज़ाम लगाया कि बख़्त ख़ाँ चूँकि पठान है वह मुग़लों से अपनी क़ौम

का पुराना बदला चुकाना चाहता है और छल से बहादुरशाह को फँसाना चाहता है। इस पर बात यहाँ तक बढ़ी कि निर्दोष बख़्त ख़ाँ ने मिरज़ा इलाहीबख़्श पर तलवार खींच ली। किन्तु स्वयं बहादुरशाह ने उसका हाथ रोक लिया। निस्सन्देह मिरज़ा इलाही बख़्श का कोई न कोई तीर नेक, किन्तु बूढ़े तथा निर्बल बहादुरशाह पर अवश्य चल गया। अन्त में बहादुरशाह ने बख़्त ख़ाँ से ये शब्द कहे :—

"बहादुर! मुझे तेरी हर बात का यक़ीन है और मैं तेरी हर राय को दिल से पसन्द करता हूँ। मगर जिस्म की क़ूवत ने जवाब दे दिया है। इसलिए मैं अपना मामला तक़दीर के हवाले करता हूँ। मुझको मेरे हाल पर छोड़ दो और बिस्मिल्लाह करो! यहाँ से जाओ और कुछ काम करके दिखाओ! मैं नहीं, मेरे ख़ान्दान में से नहीं, न सही, तुम या और कोई हिन्दोस्तान की लाज रक्खे! हमारी फ़िक्र न करो, अपने फ़र्ज़ को अञ्जाम दो।"*

बख़्त ख़ाँ की निराशा

दिल्ली के समस्त स्वतन्त्रता संग्राम का यदि मुकुट बहादुरशाह था और हाथ पैर हज़ारों हिन्दू और मुसलमान वीर सिपाही थे, तो उस संग्राम का दिल और दिमाग़ बख़्त ख़ाँ था। बहादुरशाह के इस उत्तर से बख़्त ख़ाँ का दिल टुकड़े टुकड़े हो गया। वह गरदन नीची करके मक़बरे के पूर्वी दरवाज़े से बाहर निकल आया।

---

*"देहली की जाँकनी"—लेखक ख़्वाज़ा हसन निज़ामी।

सम्राट बहादुरशाह की गिरफ़्तारी

दूसरी ओर विश्वासघातक मिरज़ा इलाहीवख़्श ने पश्चिमी दरवाज़े से वाहर निकल कर तुरन्त अंगरेज़ों को सूचना दी कि इसी समय चुपके से पश्चिमी दरवाज़े पर आकर बहादुरशाह को गिरफ़्तार कर लिया जाय। तुरन्त कप्तान हडसन पचास सवार लेकर मक़बरे के पश्चिमी दरवाज़े पर पहुँच गया। लिखा है कि जिस समय बहादुरशाह को मालूम हुआ कि हडसन मुझे गिरफ़्तार करने आया है, उसने एक बार मिरज़ा इलाहीवख़्श की ओर घूर कर देखा और कहा—"तुमने मुझको वख़्त ख़ाँ के साथ जाने से रोका × × ×।" इलाहीवख़्श सर झुकाए चुपचाप खड़ा रहा। यह भी लिखा है कि बहादुरशाह ने फिर इरादा किया कि किसी को भेज कर वख़्त ख़ाँ को बुलाया जाय, किन्तु समय हाथ से निकल चुका था।

नगर पर पूरा क़ब्ज़ा

सम्राट बहादुरशाह, बेगम ज़ीनतमहल और शहज़ादे जवाँवख़्त को चुपचाप पूर्वी दरवाज़े से गिरफ़्तार करके लाल क़िले में लाकर क़ैद कर दिया गया, और दिल्ली का नगर १३४ दिन के कठिन परिश्रम के बाद फिर से पूरी तरह अंगरेज़ों के क़ब्ज़े में आ गया।

वख़्त ख़ाँ का अन्त

इसके बाद वख़्त ख़ाँ अपनी समस्त सेना सहित जमना को पार कर किसी ओर निकल गया और आज तक किसी को उसका या उसकी सेना का पता न चल सका।
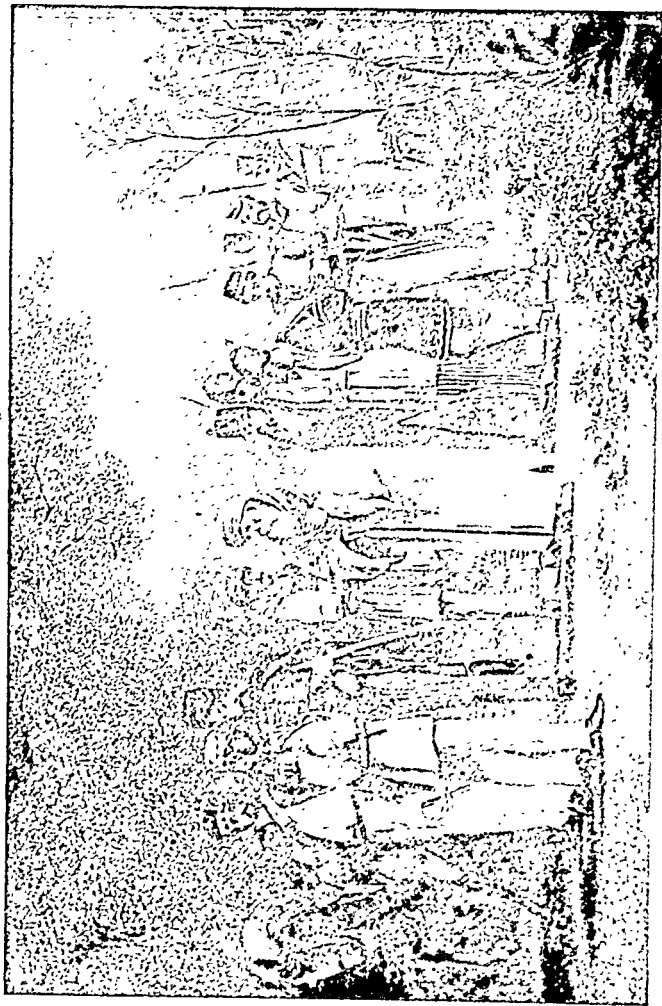
सम्राट बहादुरशाह की गिरफ़्तारी

[From an old steel engraving. The Modern Review, December 1911.]
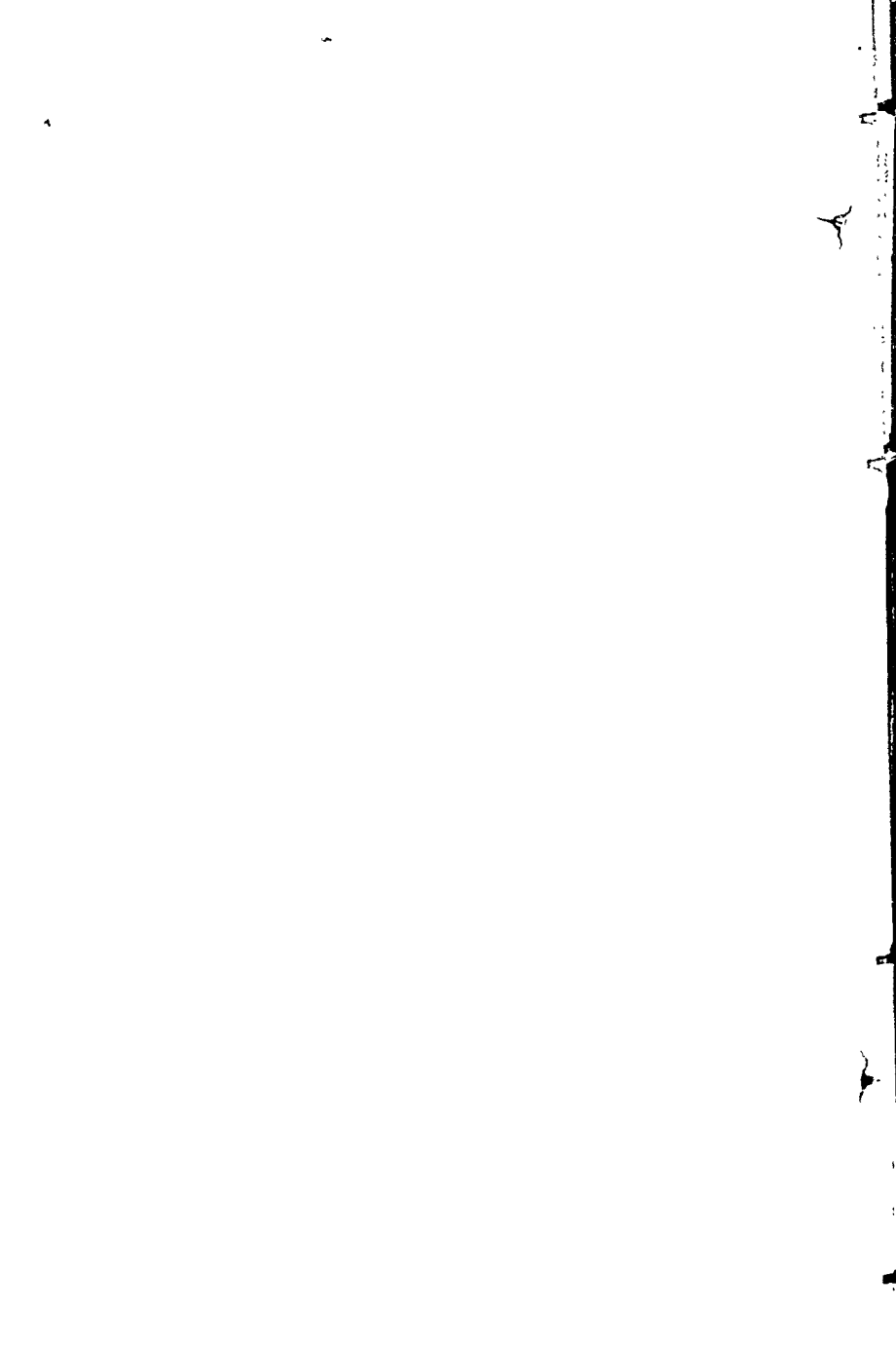
इनमें एक शहज़ादा अब्दुल्ला भी था। दूसरी मुख्य बात यह है कि हडसन ने शहज़ादों को मार कर तुरन्त अपने चुल्लू में भरकर उनका गरम गरम ख़ून पिया और पीकर यह कहा कि यदि मैं इनका ख़ून न पीता तो पागल हो जाता।

यह रिवायत किसी अंगरेज़ी इतिहास में नहीं मिलती। किन्तु ख़्वाज़ा हसन निज़ामी ने इसे अपनी उर्दू पुस्तक "देहली की जाँकनी" में दर्ज किया है। ख़्वाज़ा साहब का दावा है कि यह घटना बिलकुल सच्ची है। ख़्वाज़ा हसन निज़ामी का बयान है—"मैंने दिल्ली के सैकड़ों लोगों के मुंह से इस बात को सुना और इसके अलावा मिरज़ा इलाहीबख़्श के उन दो खास मुसाहिबों में से एक ने, जो मौक़े पर मौजूद थे और जिन्होंने इस घटना को अपनी आँखों से देखा था, खुद मेरे पिता से आकर यह तमाम वाक़या सुनाया।"*

घायलों की हत्या

अब हमारे लिए केवल कम्पनी के क़ब्ज़े के बाद दिल्ली निवासियों के ऊपर कम्पनी की सेना के अत्याचारों को संक्षेप में वर्णन करना बाक़ी रह गया है।

इन अत्याचारों के विषय में लॉर्ड एलफ़िन्सटन ने सर जॉन लॉरेन्स को लिखा :—

"मोहासरों के ख़त्म होने के बाद से हमारी सेना ने जो अत्याचार किए हैं उन्हें सुन कर हृदय फटने लगता है। बिना मित्र या शत्रु में भेद किए ये

* "देहली की जाँकनी"—लेखक ख़्वाज़ा हसन निज़ामी। पृष्ठ २२-२३

लोग सबसे एकसा बदला ले रहे हैं। लूट में तो वास्तव में हम नादिरशाह से भी बढ़ गए !"*

मोहासरे के दिनों में क़िले के छत्ते में बीमार और घायल सिपाहियों का एक अस्पताल था। कम्पनी की सेना जिस समय क़िले के अन्दर घुसी, जितने घायल और बीमार अस्पताल के अन्दर दिखाई दिए उन सबको उसने अपनी गोलियों से सदा के लिए रोगमुक्त कर दिया। इसी प्रकार और भी अनेक जगह, जहाँ घायल और बीमार पाए गए, क़त्ल कर दिए गए।†

मॉण्टगुमरी मार्टिन लिखता है :—

दिल्ली के बाशिन्दों का क़त्लेआम

"जिस समय हमारी सेना ने शहर में प्रवेश किया तो जितने नगर निवासी शहर की दीवारों के अन्दर पाए गए उन्हें उसी जगह सङ्गीनों से मार डाला गया; आप समझ सकते हैं कि उनकी संख्या कितनी अधिक रही होगी, जब मैं आपको यह बताऊँ कि एक एक मकान में चालीस चालीस और पचास पचास आदमी छिपे हुए थे। ये लोग विद्रोही न थे, बल्कि शहर के बाशिन्दे थे, जिन्हें हमारी दयालुता और क्षमाशीलता पर विश्वास था। मुझे ख़ुशी है कि उनका भ्रम दूर हो गया।"‡

---

* "After the siege was over, the outrages committed by our army are simply heart-rending. A wholesale vsengeance is being taken without distinction of friend and foe. As regards the looting, we have indeed surpassed Nadirshah !—*Life of Lord Lawrence*, vol. ii, p. 262.

† "तारीख़ हिन्द"—लेखक शम्सुल उलमा मुंशी ज़काउल्ला ख़ाँ। पृष्ठ ६४६

‡ "All the city people found within the walls when our troops entered were bayonetted on the spot; and the number was considerable, as you may

उस समय के एक अंगरेज़ कप्तान जी० एफ़० एटकिनसन के हाथ का ख़ाका जिसमें कप्तान हडसन द्वारा शहज़ादों की हत्या का दृश्य दिखाया गया है

[By the courtesy of the Trustees, Victoria Memorial, Calcutta]

इसके वाद एक दूसरा अंगरेज़ इतिहास लेखक लिखता है :—

"दिल्ली के वाशिन्दों के क़त्लेआम का खुले एलान कर दिया गया, यद्यपि हम जानते थे कि उनमें से वहुत से हमारी विजय चाहते हैं।"*

इस भयङ्कर हत्याकाण्ड के दिनों में केवल एक दिन के दृश्य को वयान करते हुए लॉर्ड रावर्ट्स लिखता है :—

एक दिन का दृश्य

"हम सुवह को लाहौरी दरवाज़े से चाँदनी चौक गए, तो हमें शहर वास्तव में मुरदों का शहर नज़र आता था। कोई आवाज़ सिवाय हमारे घोड़ों की टापों के सुनाई नहीं देती थी। कोई जीवित मनुष्य नज़र नहीं आया। सव ओर मुरदों का विछौना विछा हुआ था, जिनमें से कुछ मरने से पहले पड़े सिसक रहे थे।

"हम चलते हुए वहुत धीरे धीरे वात करते थे, इस डर से कि कहीं हमारी आवाज़ से मुरदे न चौंक पड़ें। × × × एक ओर मुरदों की लाशों को कुत्ते खा रहे थे और दूसरी ओर लाशों के आस पास गिद्ध जमा थे जो उनके मांस को नोच नोच कर स्वाद से खा रहे थे और हमारे चलने की आवाज़ से उड़ उड़ कर थोड़ी दूर जा वैठते थे × × × ।

"सारांश यह कि इन मुरदों की हालत वयान नहीं हो सकती। जिस प्रकार हमें इनके देखने से डर लगता था उसी प्रकार हमारे घोड़े इन्हें देख

---

suppose, when I tell you that in some houses forty or fifty persons were hiding. These were not mutineers, but residents of the city, who trusted to our well-known mild rule for pardon. I am glad to say they were disappointed."—Letter in the *Bombay Telegraph*, by Montgomery Martin.

* "A general massacre of the inhabitants of Delhi, a large number of whom were known to wish us success, was openly proclaimed."—The Chaplain's *Narrative of the Siege of Delhi*, quoted by Kaye.

कर डर से बिदकते और हिनहिनाते थे। लाशें पड़ी सड़ती थीं। उनके सड़ने से हवा में बीमार करने वाली दुर्गन्ध फैल रही थी।"*

हसन निज़ामी लिखता है कि इस क़त्लेआम में पुरुष, स्त्री अथवा छोटे बड़े की कोई तमीज़ न की जाती थी।

इनमें से अनेक लोगों को तरह तरह की यातनाएँ दे देकर मारा गया।

यातनाएँ दे देकर हत्या

लेफ्टिनेण्ट माजेण्डी ने अपनी आँखों देखी एक घटना बयान की है कि सिखों और गोरों ने मिल कर एक घायल मनुष्य के चेहरे को पहले अपनी सङ्गीनों से वार वार बींधा और फिर धीमी आँच के ऊपर उसे ज़िन्दा भून दिया :—

"उसका मांस चटका, लपटों में काला होगया और जलते हुए मांस की भयङ्कर दुर्गन्ध ने ऊपर उठ कर हवा को विषैला बना दिया।"†

टाइम्स पत्र के सम्वाददाता सर विलियम रसल ने लिखा है कि :—

"मैंने इस शख़्स की जली हुई हड्डियाँ कई दिन बाद मैदान में पड़ी हुई देखीं।"‡

---

* *Forty-one Years in India*, by Lord Roberts, as quoted by Hasan Nizami in *Delhi-ki-Jankani*, pp. 66, 67.

† " . . . . the horrible smell of his burning flesh as it cracked and blackened in the flames, rising up and poisoning the air."—Lieut. Majendie, *Up Among the Pandies*, p. 187.

‡ *My Diary in India in the year 1858-59*, vol. i, p. 301-2.

मॉवरे टॉमसन ने सर हेनरी कॉटन से कहा था कि दिल्ली में कुछ मुसलमानों को नङ्गा करके, ज़मीन से बांधकर, सिर से पाँव तक जलते हुए ताँवे के टुकड़ों से अच्छी तरह दाग़ दिया गया था !*

इन लोगों को मारने से पहले कभी कभी उनको धर्मभ्रष्ट करने की घृणित क्रिया भी की जाती थी। एक अंगरेज़ पादरी की विधवा ने लिखा है कि बहुत से लोगों को पकड़ कर पहले उनसे सङ्गीनों के बल गिरजा में झाड़ू दिलवाई गई और फिर सबको फाँसी दे दी गई।†

धर्मभ्रष्ट करने के बाद हत्या

रसल लिखता है कि कभी कभी :—

"मुसलमानों को मारने से पहले उन्हें सुअर की खालों में सी दिया जाता था, उन पर सुअर की चरबी मल दी जाती थी और फिर उनके शरीर जला दिए जाते थे, और हिन्दुओं को ज़बरदस्ती धर्मभ्रष्ट किया जाता था।"‡

इन रोमाञ्चकारी घटनाओं के सम्बन्ध में अधिक उद्धरण देना अत्यन्त खेदकर है। परिणाम यह हुआ कि एक वार समस्त दिल्ली ख़ाली और वीरान होगई, बल्कि उन इने गिने घरानों को छोड़ कर जिनसे कम्पनी की सेना को सहायता मिल रही थी, शेष समस्त नगर

दिल्ली वीरान और सुनसान

---

* *Indian and Home Memories*, by Sir Henry Cotton, p. 143.

† *A Lady's Escape from Gwalior*, p. 243.

‡ " . . . sewing Mohammedans in pig-skins, smearing them with pork-fat before execution and burning their bodies, and forcing Hindoos to defile themselves. . . . "—Russell's *Diary*, vol. ii, p. 43.

निवासियों को, जो क़त्ल या फाँसी से बच सके ज़बरदस्ती शहर से बाहर निकाल दिया गया। इतिहास लेखक होम्स लिखता है :—

"दिल्ली के बाशिन्दों ने विप्लवकारियों के अपराधों का कई गुना प्रायश्चित कर डाला। दसों हज़ार मर्द, औरत और बच्चे बिना घरबार के इधर उधर के इलाक़े में घूम रहे थे, जिन्होंने कि कोई अपराध न किया था। अपना जो कुछ माल असबाब वे नगर में पीछे छोड़ गए थे उससे वे सदा के लिए हाथ धो चुके थे; क्योंकि सिपाहियों ने गली गली और घर घर जाकर हर क़ीमती चीज़ को खोज कर निकाल लिया था, और जो कुछ सामान वे उठा कर न ले जा सके उसे उन्होंने टुकड़े टुकड़े कर डाला।"*

'प्राइज़ एजन्सी'

शहर पर क़ब्ज़ा करने के बाद तीन दिन तक कम्पनी की सेना के सब सिपाहियों को नगर की लूट माफ़ रही। उसके बाद 'प्राइज़ एजन्सी' नाम से एक सरकारी मोहकमा खोल दिया गया, जिसका काम यह था कि शहर के तमाम घरों के हर तरह के माल असबाब को एक जगह जमा करके उसे नीलाम करे या गोदामों में रक्खे और रुपया फ़ौज को तक़सीम कर दे। इस मोहकमे ने मकानों के अन्दर किताबें, बरतन, चारपाई, चक्की, गड़ा हुआ माल दौलत, यहाँ तक कि मकानों के

---

* "The people of Delhi had expiated, many times over, the crimes of the mutineers. Tens of thousands of men, and women, and children, were wandering, for no crime, homeless over the country. What they had left behind was lost to them for ever; for the soldiers, going from house to house and from street to street, ferreted out every article of value, and smashed to pieces whatever they could not carry away."—Holmes' *A History of the Indian Mutiny*, p. 386.

कप्तान जी० एफ़० एटकिनसन के हाथ का एक व्यंग चित्र जिसमें अंगरेज़ प्राइज़ एजण्ट्स दिल्ली की लूट में मकानों को खुदवा कर गड़ा हुआ धन निकाल रहे हैं।

[By courtesy of the Trustees, Victoria Memorial, Calcutta.]

किवाड़ और उनके अन्दर का लोहा और पीतल तक, कोई चीज़ नहीं छोड़ी।

ख़्वाजा हसन निज़ामी ने लिखा है :—

"करनल बर्न को शहर का फ़ौजी गवरनर नियुक्त किया गया। उसने एक दस्ता फ़ौज का इस काम के लिए नियुक्त किया कि जहाँ कहीं आबादी पाओ, मर्द, औरत और बच्चों को घरों के असबाब सहित गिरफ्तार करके ले आओ। आगे आगे मर्द असबाब के गट्ठर सर पर रक्खे हुए, पीछे पीछे उनकी औरतें रोती हुई, पैदल और बच्चों को साथ लिए हुए। जिन औरतों को कभी पैदल चलने की आदत न थी वे ठोकरें खा खा कर गिरती थीं, बच्चे गोद से गिरे जाते थे और सिपाही क्रूरता के साथ उन्हें आगे चलने के लिए धक्के देते थे।

"जब ये लोग करनल बर्न के सामने पेश होते तो हुकुम दिया जाता कि असबाब में जितनी क़ीमती चीज़ें हैं, उन्हें ढूँढ कर ज़ब्त कर लो, व्यर्थ चीज़ें वापस दे दो। यह हो चुकने पर दूसरा हुकुम यह दिया जाता कि इनको सिपाहियों की देख रेख में लाहौरी दरवाज़े तक ले जाओ और शहर से बाहर निकाल दो। ऐसा ही किया जाता और वे लोग लाहौरी दरवाज़े के बाहर धक्के देकर निकाल दिए जाते।

"दिल्ली शहर के बाहर इस प्रकार हज़ारों मर्द, औरतें और बच्चे असहाय, नङ्गे पाँव, नङ्गे सर, भूखे प्यासे फिर रहे थे। × × × सैकड़ों बच्चे भूख भूख चिल्लाते हुए माताओं की गोद में मर गए। सैकड़ों माताएँ छोटे बच्चों का दुख न देख सकने के कारण उन्हें अकेला छोड़ कर कुएँ में डूब मरीं।

"नगर के अन्दर हज़ारों औरतें ऐसी थीं कि जिस समय उन्होंने सुना

कि कम्पनी की फ़ौज आती है तो बेइज़्ज़ती और मुसीबतों से बचने के लिए कुओं में गिरने लगीं और इतनी अधिक गिरीं कि डूबने को पानी न रहा। अनेक कुएँ औरतों की लाशों से भर गए।

"सेना के एक अफ़सर का बयान है कि—'हमने इस प्रकार की सैकड़ों औरतों को कुओं से निकाला जो लाशों के ढेर के कारण डूबी न थीं और ज़िन्दा पड़ी थीं या बैठी थीं। जिस समय हमने उन्हें निकालना चाहा वे चीख़ने लगीं कि—ख़ुदा के लिए हमको हाथ न लगाओ और गोली से मार डालो, हम शरीफ़ बहू बेटियाँ हैं, हमारी इज़्ज़त ख़राब न करो।' × × ×"

दिल्ली की स्त्रियों का यह डर, कि कहीं हमारी इज़्ज़त पर हमला न किया जाय, बेबुनियाद न था।

"फ़राशख़ाने के किसी कुएँ में दो औरतें ज़िन्दा निकाली गईं। एक जवान, किन्तु अन्धी और दूसरी बुढ़िया। बुढ़िया ने बयान किया कि मेरे एक ही बेटा था, उसे घर में घुस कर क़त्ल कर दिया गया, जब वह क़त्ल किया जा रहा था, कुछ सिपाहियों ने उसकी अन्धी बहिन के सतीत्व पर हमला करना चाहा, किन्तु वह अपने घर के कुएँ से परिचित थी, दौड़ कर उसमें गिर पड़ी, उसके साथ ही मैं भी कुएँ में कूद पड़ी। हम दोनों पानी में ग़ोते खा रहे थे कि किसी ने अन्दर आकर हमें निकाल लिया।"

"दिल्ली में ऐसे भी लोग थे जिनके घर की स्त्रियों की आबरू पर जिस समय हमला होने लगा तो उन्होंने अपने हाथ से अपनी बहुओं और अपनी बेटियों को क़त्ल कर दिया और फिर स्वयं आत्महत्या कर ली!"*

---

* पूर्वोक्त पुस्तक, पृष्ठ ६७

दिल्ली निवासियों के धार्मिक भावों को जिस प्रकार आघात पहुँचाया गया उसके विषय में ख़्वाजा हसन निज़ामी लिखता है—

मन्दिरों और मसजिदों की बेइज़्ज़ती

"अंगरेज़ी सेना के मुसलमान सिपाही हिन्दुओं के मन्दिरों में घुस गए और उनको ख़राब कर डाला और हिन्दू सिपाहियों ने मसजिदों को ख़राब किया। दिल्ली की बड़ी जामे मसजिद में सिख सिपाहियों की बारग बनाई गई। पाख़ाने और पिशाब ख़ाने भी इसी के अन्दर थे। मीनारों के नीचे हलवे पकाए जाते थे और सुअर भी काट कर पकाए जाते थे। अंगरेज़ों के साथ के कुत्ते अन्दर पड़े फिरते थे। एक मसजिद ज़ीनतुलमसाजिद को गोरों का मिसकौट घर बनाया गया और नवाब हामिदअली ख़ाँ की मशहूर मसजिद में गधे बाँधे जाते थे। क़िले के नीचे एक बड़ी आलीशान मसजिद अकबराबादी थी जो गिरा कर बिलकुल ज़मीन के बराबर कर दी गई। इसी तरह और बहुत सी छोटी छोटी मसजिदों का ख़ात्मा हुआ।"*

दिल्ली नए सिरे से आबाद

फिर नए सिरे से दिल्ली आबाद हुई। पहले कुछ हिन्दुओं से भारी जुर्माने ले लेकर उन्हें मोहल्लों में बसने की इजाज़त दी गई। उसके बाद मार्च सन् १८५८ में मुसलमानों को पास ले लेकर नगर में बसने की इजाज़त मिली। फिर भी सन् १८५९ तक मुसलमानों के ख़ास मकान सरकारी ज़ब्ती में थे और मुसलमान लोग शहर के अन्दर बिना किसी अफ़सर के पास के चल फिर न सकते थे।

---

* पूर्वोक्त पुस्तक, पृष्ठ ८४

दिल्ली के राजकुल का अन्त

दिल्ली का हाल ख़त्म करने से पहले अब केवल एक चीज़ को बयान करना और बाक़ी है। वह यह कि दिल्ली के राजकुल का अर्थात् सम्राट बाबर और सम्राट अकबर के वंशजों का किस प्रकार अन्त हुआ। क्रान्ति के शुरू में दिल्ली के लाल क़िले के अन्दर सम्राट बहादुरशाह के कुटुम्बियों की एक बहुत बड़ी संख्या थी। इनमें से अनेक शहज़ादों को पकड़ कर फाँसी पर लटका दिया गया। उदाहरण के लिए शहज़ादे मिरज़ा क़ैसर को, जो सम्राट शाहआलम का एक बेटा था और इतना बूढ़ा था कि क्रान्ति में कोई हिस्सा लेना उसके लिए असम्भव था, फाँसी दे दी गई। शहज़ादे मिरज़ा मोहम्मद-शाह को, जो सम्राट अकबरशाह का पोता था और आजीवन गठिया का रोगी रहने के कारण सीधा खड़ा तक न हो सकता था, इसी प्रकार फाँसी पर लटका दिया गया। कुछ शहज़ादों को जेलख़ाने में रक्खा गया, उनसे चक्कियाँ पिसवाई गईं। जब वे अपना काम पूरा न कर सकते, उन पर कोड़ों की मार पड़ती थी। यहाँ तक कि वे बेचारे थोड़े ही दिनों में मार खा खाकर जीवन की क़ैद से मुक्त हो गए। बहादुरशाह का एक बेटा मिरज़ा क़ोयाश एक दिन दिल्ली के पास के जङ्गल में घोड़े पर सवार खड़ा दिखाई दिया, सर पर टोपी न थी और चेहरे पर धूल पड़ी हुई थी, हडसन उसकी तलाश में घूम रहा था, उसके बाद आज तक पता न चला कि मिरज़ा क़ोयाश का क्या हुआ। अनेक शहज़ादे और शहज़ादियाँ दिल्ली से बाहर दरबदर घूमते फिरते थे। बहादुरशाह की एक बेटी
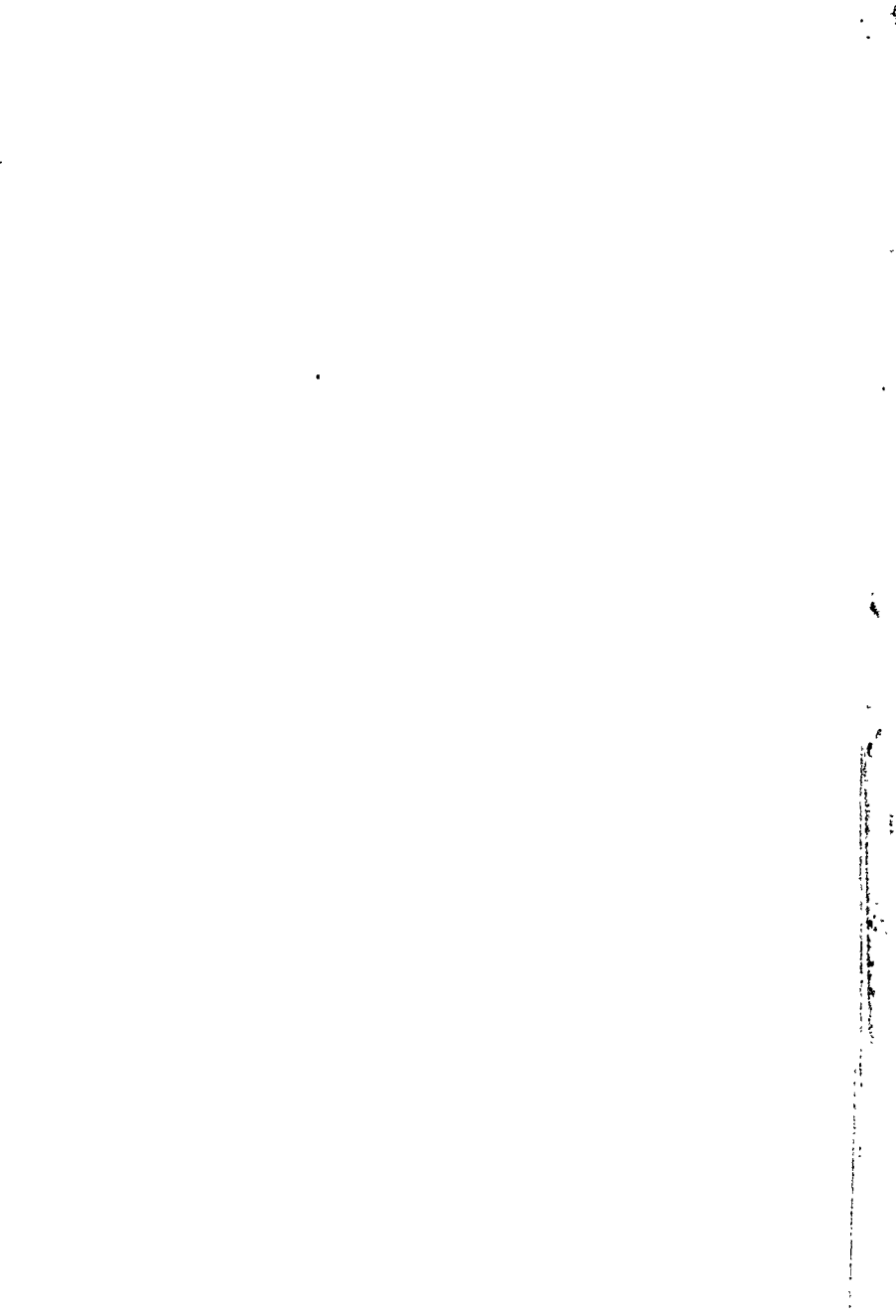
राबेया बेगम ने रोटियों से मोहताज होकर दिल्ली के एक हुसेनी बावरची से शादी कर ली। बहादुरशाह की एक दूसरी बेटी फ़ातमा सुल्तान ईसाई पादरियों के एक जनाने स्कूल में नौकरी करने लगी। जो शहज़ादियाँ अपने घरों में बैठ कर हज़ारों रुपये की ख़ैरात करती थीं वे चन्द महीने के अन्दर दरबदर भीख माँगती दिखाई देने लगीं।

सम्राट का निर्वासन और अन्त

सम्राट बहादुरशाह, बेगम ज़ीनतमहल और शहज़ादे जवाँबख़्त को क़ैद करके रङ्गून भेज दिया गया। रङ्गून में अंगरेज़ों की कैद के अन्दर सन् १८६३ में सम्राट बहादुरशाह की मृत्यु हुई और उसके साथ साथ दिल्ली के राजकुल का अन्तिम चिन्ह संसार से मिट गया।

अड़तालीसवाँ अध्याय

अवध और बिहार

अब हम लखनऊ की ओर आते हैं। वास्तव में सन् ५७-५८ के स्वाधीनता युद्ध में वीरता और बलिदान की दृष्टि से लखनऊ का पद दिल्ली से कहीं ऊँचा रहा। दिल्ली के पतन के छै महीने बाद तक अवध और लखनऊ में स्वाधीनता का झण्डा फहराता रहा।

बेगम हज़रत महल

चिनहट की विजय के बाद अवध की प्रजा ने क़ैदी नवाब वाजिद्अली शाह के पुत्र बिरजीस क़द्र को लखनऊ के सिंहासन पर बैठा दिया और चूंकि नवाब बिरसीज क़द्र अभी नाबालिग़ था इसलिए शासन की बाग बिरजीस क़द्र की माँ हज़रतमहल के हाथों में सौंप दी गई। अवध के सब ज़मींदारों और प्रजा ने बड़े हर्ष के साथ बेगम हज़रतमहल को अपना अधिराज स्वीकार कर लिया।

वेगम हज़रतमहल की प्रशंसा करते हुए रसल लिखता है—

"वेगम में वड़ी पराक्रमशीलता और योग्यता दिखाई देती है। × × × वेगम ने हमारे साथ अनरवत युद्ध का एलान कर दिया है। इन रानियों और वेगमों की पराक्रमशीलता को देख कर मालूम होता है कि ज़नानख़ानों के अन्दर रह कर भी ये काफ़ी अधिक क्रियात्मक मानसिक शक्ति अपने अन्दर पैदा कर लेती हैं।"*

वेगम ने सवसे पहले नवाव विरजीस क़द्र की ओर से अवध की स्वाधीनता का शुभ सन्देश अनेक उपहारों सहित सम्राट वहादुरशाह की सेवा में दिल्ली भेजा, इसके वाद उसने राजा वालकृष्ण सिंह को अपना प्रधान मन्त्री नियुक्त किया और उस कठिन समय में राज के समस्त मोहकमों को नये सिरे से व्यवस्था कर एक वार समस्त अवध में शान्ति और सुशासन स्थापित कर दिया।

लखनऊ की रेज़िडेन्सी

ऊपर लिखा जा चुका है कि अवध के अंगरेज़ और वहाँ का अंगरेज़ी राज उस समय लखनऊ की रेज़िडेन्सी के अन्दर क़ैद किया जा चुका था। रेज़िडेन्सी के वाहर समस्त अवध में कम्पनी की सत्ता का कोई चिह्न वाक़ी न रहा था। रेज़िडेन्सी का मोहासरा जारी था।

२० जुलाई सन् १८५७ को लखनऊ की क्रान्तिकारी सेना ने

---

* "The Begum exhibits great energy and ability. . . . The Begum declares undying war against us. It appears from the energetic characters of these Ranees and Begums that they acquire in their Zenanas and Harems a considerable amount of actual mental power . . ."—Russell's *Diary*, p. 275.

रेज़िडेन्सी के ऊपर हमले करने शुरू किए। कई दिन तक दोनों ओर से ख़ूब गोलेबारी होती रही। कई बार रेज़िडेन्सी के ऊपर का अंगरेज़ी झण्डा टूट कर गिर पड़ा, किन्तु हर बार नया झण्डा उसकी जगह लगा दिया गया। रेज़िडेन्सी के अन्दर सिख सिपाही अंगरेज़ों की जी तोड़ सहायता कर रहे थे। बाहर के भारतीय सैनिकों ने सिखों को अनेक बार समझा कर अपनी ओर करने का प्रयत्न किया, किन्तु व्यर्थ।

इन्हीं संग्रामों में एक दिन अवध का अङ्गरेज़ चीफ़ कमिश्नर सर हेनरी लॉरेन्स, जो पञ्जाब के चीफ़ कमिश्नर सर जॉन लॉरेन्स का भाई था, क्रान्तिकारियों की गोली का शिकार हुआ। मेजर बैङ्क्स ने तुरन्त उसका स्थान ग्रहण किया। चन्द दिन के बाद मेजर बैङ्क्स को भी एक गोली लगी और वह भी ख़त्म हो गया। ब्रिगेडियर इङ्गलिस ने अब उसका स्थान लिया। इसी बीच लिखा है कि क्रान्तिकारियों ने रेज़िडेन्सी की दीवार के कई हिस्से उड़ा दिए। भीतर के कई मकान भी क्रान्तिकारियों के गोलों से गिर कर ढेर हो गए।

रेज़िडेन्सी के अन्दर के अंगरेज़ों की हालत ख़ासी नैराश्यपूर्ण थी। उन्होंने मदद के लिए बार बार अपने गुप्त दूत कानपुर भेजे, जिनमें से कई दूत गिरफ़्तार कर लिए गए। २५ जुलाई को ब्रिगेडियर इङ्गलिस को सूचना मिली कि जनरल हैवलॉक मदद के लिए कानपुर से रवाना हो चुका है और पाँच या छै दिन के अन्दर लखनऊ पहुँच जायगा। किन्तु पाँच छै दिन के बाद हैवलॉक के

आने के स्थान पर क्रान्तिकारियों ने फिर एक वार रेज़िडेन्सी पर ज़ोरदार हमला किया। रेज़िडेन्सी की दीवार का एक वहुत वड़ा टुकड़ा गिर पड़ा। दीवार के ऊपर सङ्गीनों और तलवारों की लड़ाई शुरू होगई। लिखा है कि उस दिन क्रान्तिकारियों ने कई अंगरेज़ सिपाहियों की सङ्गीनें तक छीन लीं। किन्तु अन्त में क्रान्तिकारी फिर नगर की ओर लौट आए।

इसके वाद १८ अगस्त को क्रान्तिकारियों ने रेज़िडेन्सी पर तीसरी वार हमला किया। अभी तक हैवलॉक और उसकी सेना का कहीं पता न था। इतने में व्रिगेडियर इङ्गलिस को हैवलॉक का एक पत्र मिला जिसमें लिखा था—"मैं अभी कम से कम २५ दिन और लखनऊ नहीं पहुंच सकता।" रेज़िडेन्सी के अंगरेज़ों की घवराहट हद को पहुँच गई। रसद का सामान इतना कम हो गया कि सव को आधा पेट खाना दिया जाने लगा।

फिर भी लखनऊ के क्रान्तिकारी इस वीच रेज़िडेन्सी पर पूर्ण विजय प्राप्त कर वहाँ के समस्त अंगरेज़ों को क़ैद या ख़त्म न कर सके। इसका मुख्य कारण या तो यह था कि दिल्ली के समान लखनऊ में भी एक योग्य और प्रभावशाली सेनापति की कमी थी, या उन्हें शायद यह अनुमान था कि अंगरेज़ रसद की कमी और गोलों की आग से घवरा कर स्वयं आत्मसमर्पण कर देंगे। दूसरी ओर अंगरेज़ हैवलॉक और उसकी सेना के लिए आतुर हो रहे थे। इसलिए अव हम लखनऊ की रेज़िडेन्सी को छोड़ कर जनरल हैवलॉक की ओर आते हैं।

२९ जुलाई सन् ५७ को हैवलॉक ने कानपुर से निकल कर गङ्गा को पार किया। वह उस समय लखनऊ के अंगरेज़ों को सहायता पहुँचाने के लिए आतुर था। कानपुर से लखनऊ का फ़ासला ४५ मील से कम है। हैवलॉक को पूरा विश्वास था कि मैं दो चार दिन के अन्दर ही लखनऊ पहुँच जाऊँगा। उसके साथ डेढ़ हज़ार फ़ौज और तेरह तोपें थीं।

जनरल हैवलॉक की लखनऊ यात्रा

किन्तु ज्योंही गङ्गा को पार कर हैवलॉक ने अवध की भूमि में प्रवेश किया, उसे मालूम हुआ कि लखनऊ तक पहुँच सकना इतना सरल नहीं है! अवध की एक एक चप्पा ज़मीन में स्वाधीनता की आग दहक रही थी। एक एक ज़मींदार ने अपने अधीन सौ सौ, दो दो सौ या अधिक मनुष्य जमा करके हैवलॉक को रोकने का निश्चय कर लिया। मार्ग में प्रत्येक ग्राम के ऊपर स्वाधीनता का हरा झण्डा फहरा रहा था। हैवलॉक को पहली लड़ाई उन्नाव में लड़नी पड़ी। वहाँ से ज्यों त्यों कर हैवलॉक आगे बढ़ा। दूसरा संग्राम बशीरतगञ्ज में हुआ। ये दोनों संग्राम २९ जुलाई ही को लड़े गए। हैवलॉक की सेना का छठा हिस्सा इन लड़ाइयों में ख़तम हो गया। ३० जुलाई को हैवलॉक को बशीरतगञ्ज से पीछे हट कर अपनी सेना सहित मङ्गलवार में आकर ठहरना पड़ा।

दूसरी ओर नाना साहब को जब यह पता चला कि हैवलॉक लखनऊ को ओर जा रहा है, उसने फिर एक बार कानपुर पर

हमले की तैयारी शुरू की। हैवलॉक को मजबूर होकर ४ अगस्त तक मङ्गलवार में ठहरे रहना पड़ा।

इसके बाद हैवलॉक फिर लखनऊ की ओर बढ़ा। बशीरतगञ्ज में ही उसे फिर क्रान्तिकारियों से मोरचा लेना पड़ा। इस दिन के संग्राम में हैवलॉक के तीन सौ आदमी मारे गए। उसके डेढ़ हज़ार सिपाहियों में से अब केवल साढ़े आठ सौ बाक़ी रह गए थे। विवश होकर हैवलॉक को फिर दूसरी बार गङ्गा की ओर पीछे लौट आना पड़ा।

अवध की ग्रामीण जनता के इस वीर पराक्रम को देख कर इतिहास लेखक इन्स लिखता है—

"कम से कम अवधनिवासियों के संग्राम को हमें स्वाधीनता का युद्ध मानना पड़ेगा।"*

११ अगस्त को हैवलॉक तीसरी बार बशीरतगञ्ज की ओर बढ़ा। तीसरी बार उसे ग्रामीण अवधनिवासियों के साथ मोरचा लेना पड़ा और तीसरी बार जनरल हैवलॉक को पीछे हट कर मङ्गलवार में रुकना पड़ा।

नाना के मनसूबे

इस बीच नाना साहब को सागर, ग्वालियर इत्यादि से काफ़ी सहायता पहुँच चुकी थी। नाना ने फिर एक बार किसी दूसरे स्थान से गङ्गा को पार कर कानपुर पर हमला किया। जनरल नील कानपुर में था। उसके

---

* "At least the struggle of the Oudhians must be characterised as a War of Independence."—Innes' *Sepoy Revolt.*

पास नाना के मुक़ाबले के लिए काफ़ी सेना न थी। उसने तुरन्त हैवलॉक को सूचना दी। हैवलॉक के लिए अब लखनऊ की ओर बढ़ सकना असम्भव हो गया। १२ अगस्त को दोबारा गङ्गा पार कर हैवलॉक को कानपुर लौट आना पड़ा।

अवधनिवासियों के हौसले

हैवलॉक के गङ्गा पार करते ही अवधनिवासियों के हौसले दुगुने होगए। इतिहास लेखक इन्स लिखता है—

"अवध से हमारी सेना के लौट आने का परिणाम वह हुआ जिसका हैवलॉक को निस्सन्देह अनुमान तक न था। ताल्लुक़ेदारों ने खुले तौर पर इसका मतलब यह लिया कि अंगरेज़ों ने अवध का प्रदेश ख़ाली कर दिया। अब उन्होंने लखनऊ दरबार को बाज़ाब्ता अपनी क्रियात्मक सरकार स्वीकार कर लिया और यद्यपि वे उस सरकार की सहायता के लिए स्वयं लखनऊ नहीं पहुँचे, फिर भी लखनऊ दरबार की जिन आज्ञाओं को अभी तक उन्होंने नहीं माना था उन आज्ञाओं का अब उन्होंने पालन करना शुरू कर दिया। लखनऊ दरबार ने जितने जितने सैन्यदल इन लोगों से माँगे थे वे अब इन्होंने युद्ध के लिए लखनऊ भेज दिए।"*

वास्तव में यह आश्चर्यजनक प्रभाव उन्नाव और बशीरतगञ्ज के ग्राम निवासियों की वीरता का परिणाम था।

हैवलॉक की घबराहट

कानपुर पहुँचते ही हैवलॉक को सूचना मिली कि नाना साहब ने बिठूर पर फिर क़ब्ज़ा कर लिया है। १७ अगस्त को हैवलॉक ने नाना की सेना पर चढ़ाई की। एक घमासान संग्राम के बाद दोनों ओर

* *The Sepoy Revolt*, by Innes.

की सेनाओं को पीछे हट जाना पड़ा। हैवलॉक को अब पता चला कि नाना ने एक अधिक विशाल सेना जमना के किनारे कालपी में जमा कर रक्खी है। यदि हैवलॉक लखनऊ की ओर बढ़ता तो नाना फिर तुरन्त आकर कानपुर पर फिर से क़ब्ज़ा कर लेता। घबरा कर जनरल हैवलॉक ने कलकत्ते सन्देशा भेजा—

"हम लोग एक भयङ्कर सङ्कट में हैं। यदि और अधिक सेना सहायता के लिए न पहुँची, तो अङ्गरेज़ी सेना को लखनऊ का विचार छोड़ कर इलाहाबाद लौट आना पड़ेगा। इस भयङ्कर आपत्ति का और कोई इलाज नहीं।"*

नई अंगरेज़ी सेना

नाना अभी कालपी में तैयारी कर ही रहा था कि हैवलॉक के सन्देशे पर चार सप्ताह के अन्दर सर जेम्स ऊटरम और अधिक सेना लेकर हैवलॉक की सहायता के लिए १५ सितम्बर को कलकत्ते से कानपुर पहुँच गया।

हैवलॉक की दूसरी लखनऊ यात्रा

कुछ सेना अब कानपुर की रक्षा के लिए छोड़ दी गई। शेष सेना ने २० सितम्बर को फिर एक बार कानपुर से लखनऊ के लिए प्रस्थान किया। जनरल हैवलॉक ने सबसे पहले २५ जुलाई को लखनऊ जाने के लिए गङ्गा को पार किया था। दो महीने तक उसे आगे बढ़ने में सफलता न हो सकी और बार बार कानपुर लौट आना पड़ा। किन्तु २५ जुलाई की अंगरेज़ी सेना और २० सितम्बर की

* "We are in a terrible fix. If new reinforcements do not arrive, the British army can not escape the terrible fate of abandoning Lucknow and retreating to Allahabad."—Havelock's message to Calcutta.

अंगरेज़ी सेना में बहुत बड़ा अन्तर था। नील, ऊटरम, कूपर और आयर जैसे चार चार अनुभवी सेनापति इस समय हैवलॉक की मदद के लिए मौजूद थे। ढाई हज़ार अंगरेज़, एक रेजिमेण्ट सिखों की और बढ़िया तोपें हैवलॉक के साथ थीं।

दूसरी ओर अवध के कई सरहदी ताल्लुक़ेदारों ने, इस बीच इस विश्वास पर कि कम्पनी की सेना ने सदा के लिए अवध का प्रदेश छोड़ दिया, अपने अपने सैन्यदल लखनऊ भेज दिए थे। फिर भी उन्नाव, बशीरतगञ्ज इत्यादि स्थानों पर अवध के ग्रामवासियों ने पूर्ववत् एक एक चप्पा ज़मीन पर कम्पनी की सेना का विरोध किया। किन्तु अकेले ग्रामवासी, जिनके पास शस्त्रों की भी कमी थी, कम्पनी की इस विशाल और सुसन्नद्ध सेना का कहाँ तक मुक़ाबला कर सकते थे। समस्त मार्ग विरोधी ज़मींदारों और ग्रामनिवासियों की लाशों से पट गया। जिस गाँव के ऊपर हरा झण्डा फहराता हुआ दिखाई दिया उसे जला कर ख़ाक कर दिया गया। मार्ग की नदियाँ दोनों ओर के रक्त से रँग गईं। अन्त में ज्यों त्यों कर मार्ग चीरते हुए २३ सितम्बर को कम्पनी की सेना लखनऊ के निकट आलमबाग़ नामक स्थान पर पहुँच गई।

आलमबाग़ में क्रान्तिकारियों की एक पलटन ठहरी हुई थी।

आलमबाग़ का संग्राम

दिन भर और रात भर और अगले दिन ख़ूब घमासान संग्राम हुआ। ठीक इस समय दिल्ली के पतन की ख़बर लखनऊ पहुँची, जिससे अंगरेज़ी सेना के हौसले और अधिक बढ़ गए।

२५ सितम्बर का प्रातःकाल हुआ। अंगरेज़ी सेना ने आलम-वाग़ से हट कर कुछ चक्कर से रेज़िडेन्सी की ओर बढ़ना चाहा। लखनऊ की सेना ने मुड़ कर उन पर गोले बरसाने शुरू किए, फिर भी अंगरेज़ी सेना गोलों की इस बोछार में से वीरता के साथ निकलती हुई चारबाग़ के पुल तक आ पहुँची। पुल के उस पार लखनऊ का शहर था। स्वभावतः चारबाग़ के पुल के ऊपर और अधिक भयङ्कर संग्राम हुआ। क्रान्तिकारियों की सेना पुल के ऊपर और दूसरी ओर थी। दोनों ओर से ज़ोरों के साथ गोले बरसने लगे। दोनों ओर के हताहतों की संख्या काफ़ी ऊँची पहुँच गई। जनरल हैवलॉक का एक पुत्र भी इस समय वीरता के साथ लड़ रहा था। अंगरेज़ों की ओर जानों का नुक़सान बहुत अधिक हुआ, फिर भी अन्त में अंगरेज़ी सेना अपनी और विपक्षी की लाशों के ऊपर से पुल को पार कर गई। दूसरी ओर भी एक एक क़दम पर संग्राम जारी रहा। इन्हीं में से एक स्थान ख़ास बाज़ार में किसी क्रान्तिकारी की गोली जनरल नील की गरदन में आकर लगी और जनरल नील वहीं पर ढेर हो गया। जनरल नील की मृत्यु अंगरेज़ी सेना के लिए एक बहुत बड़ा दुर्भाग्य था, किन्तु अन्त में अंगरेज़ी सेना बढ़ते बढ़ते रेज़िडेन्सी के अन्दर पहुँच गई।

रेज़िडेन्सी के अन्दर एक बार अंगरेज़ों के हर्ष की कोई सीमा न थी। ८७ दिन के लगातार मोहासरे में रेज़िडेन्सी के अन्दर सात सौ आदमी मर चुके थे। उस समय वहाँ क़रीब पाँच सौ अंगरेज़ और चार सौ हिन्दोस्तानी मौजूद थे, जिनमें से अनेक

घायल थे। हैवलॉक की सेना में, जो कानपुर से चली थी, रेज़िडेन्सी पहुँचने से पहले ७२२ आदमी मारे जा चुके थे। फिर भी लखनऊ रेज़िडेन्सी के हताश अंगरेज़ों की मदद के लिए पहुँच जाना हैवलॉक और उसके साथियों के लिए कुछ कम हर्ष की बात न थी।

हैवलॉक रेज़िडेन्सी में क़ैद

हैवलॉक को फिर एक बार भयङ्कर नैराश्य हुआ। उसके पहुँचने से रेज़िडेन्सी का मोहासरा समाप्त न हो सका। लखनऊ की क्रान्तिकारी सेना ने फिर एक बार रेज़िडेन्सी को उसी प्रकार चारों ओर से घेर लिया, जिस प्रकार हैवलॉक के आने के पहले घेर रक्खा था। हैवलॉक और उसकी सेना अब स्वयं रेज़िडेन्सी के अन्दर क़ैद हो गई। केवल क़ैदियों की संख्या पहले से बढ़ गई। लखनऊ का शेष नगर और अवध का समस्त प्रदेश पूर्ववत् स्वाधीन रहा।

नया कमाण्डर-इन-चीफ़ सर कॉलिन कैम्पबेल

सर कॉलिन कैम्पबेल कम्पनी की सेनाओं का नया कमाण्डर-इन-चीफ़ नियुक्त होकर १३ अगस्त को कलकत्ते पहुँचा। मद्रास, बम्बई, लङ्का और चीन से नई नई अंगरेज़ी पलटनें जमा की गईं। क़ासिम-बाज़ार के कारख़ाने में नई तोपें ढाली गईं। इस तैयारी में कैम्पबेल को दो महीने लग गए।

अन्त में २७ अक्तूबर को हैवलॉक और ऊटरम जैसे सेनापतियों को रेज़िडेन्सी की क़ैद से मुक्त कराने और लखनऊ को फिर से विजय करने के लिए कैम्पबेल स्वयं कलकत्ते से चला।

साथ साथ एक जहाज़ी बेड़ा करनल पॉवल और कप्तान पील के अधीन कलकत्ते से इलाहाबाद की ओर भेजा गया। इस बेड़े को भी कई स्थानों पर क्रान्तिकारियों से लड़ना पड़ा। इनमें से एक स्थान पर करनल पॉवल मारा गया।

३ नवम्बर को सर कॉलिन कैम्पबेल कानपुर पहुँचा। कैम्पबेल ने अब अत्यन्त विशाल पैमाने पर कानपुर में सेना जमा करनी शुरू की। यह सेना ब्रिगेडियर जनरल ग्रॉएट के अधीन जमा की गई। जहाज़ी बेड़ा भी कानपुर पहुँच गया। दिल्ली की अंगरेज़ी सेना इस समय तक आज़ाद हो चुकी थी। जनरल ग्रेटहेड इस सेना सहित दिल्ली से कानपुर तक मार्ग के क्रान्तिकारियों को दमन करता हुआ कानपुर पहुँच गया।

ग्रेटहेड की कानपुर यात्रा

एक अंगरेज़ इतिहास लेखक लिखता है कि क्रान्ति के आरम्भ से लेकर नवम्बर तक दिल्ली के पूर्व का समस्त प्रदेश क्रान्तिकारियों के हाथों में था, किन्तु जनता को उससे कोई कष्ट न पहुँचा था—

"लोग न केवल खेती बाड़ी करते ही रहे, वरन् अनेक ज़िलों में इतने विशाल पैमाने पर करते रहे, जिससे अधिक कि उन्होंने पहले कभी न की थी। वास्तव में सिवाय इससे कि क्रान्तिकारी अपनी आवश्यकताओं को पूरा कर लेते थे, वे देशवासियों पर कोई अन्याय करने का साहस न करते थे।"*

---

* "The people not only cultivated but in many districts as extensively as ever. In fact beyond supplying their necessity, the rebels did not venture to assume the character of tyrants of the country."—*Narrative of the Indian Revolt.*

किन्तु जनरल ग्रेटहेड ने दिल्ली से कानपुर तक की यात्रा में मार्ग के समस्त ग्रामों को जलाने और निर्दोष जनता के संहार करने में जनरल नील को भी मात कर दिया। इस ओर से उस ओर तक उसकी सेना ने ग्रामवासियों का पशुओं की तरह शिकार किया। इससे अधिक हमें उस दुःखकर वृत्तान्त को विस्तार देने की आवश्यकता नहीं है।

आलमबाग़ के लिये नई अंगरेज़ी सेना

सब से पहले जनरल ग्रॉण्ट इस नई विशाल सेना सहित आलमबाग़ पहुँचा, कानपुर और कालपी के बीच में नाना साहब के प्रयत्न अभी जारी थे जिन्हें आगे चल कर बयान किया जायगा, इसलिए कैम्पवेल ने कुछ गोरी और कुछ सिख सेना तोपों सहित विनढम के अधीन कानपुर की रक्षा के लिए छोड़ दी और स्वयं जनरल ग्रॉण्ट के पीछे पीछे गङ्गा पार कर ९ नवम्बर को आलमबाग़ पहुँच गया।

अङ्गरेज़ गुप्तचर कैवेना

रेज़िडेन्सी के क़ैदी अंगरेज़ों के साथ पत्र व्यवहार तक इस समय असम्भव था। कैम्पवेल ने कैवेना नामक एक अंगरेज़ का काला मुंह रङ्ग कर उसे हिन्दोस्तानी कपड़े पहना कर रात के समय एक हिन्दोस्तानी गुप्तचर के साथ रेज़िडेन्सी में भेजा। कैवेना ने वहाँ से लौट कर कैम्पवेल को भीतर के हालात सुनाए।

१४ नवम्बर को कैम्पवेल की सेना ने रेज़िडेन्सी की ओर बढ़ना शुरू किया। हैवलॉक और ऊटरम ने भीतर से क्रान्तिकारी सेना

पर हमला किया और कैम्पवेल की सेना ने वाहर की ओर से दबाना शुरू किया। कम्पनी की सेना में इस समय हैवलॉक, ऊटरम, पील, ग्रेटहेड, दिल्ली का प्रसिद्ध हडसन, होपग्राण्ट, आयर और कमाण्डर-इन-चीफ़ सर कॉलिन कैम्पवेल जैसे ज़वरदस्त सेनापतियों के अतिरिक्त इङ्गलिस्तान, चीन आदि से आई हुई नई अंगरेज़ पलटनें और दिल्ली की अनुभवी अंगरेज़, सिख और अन्य पञ्जावी पलटनें शामिल थीं।

सिकन्दर वाग़ का संग्राम

१८ नवम्वर की शाम तक कैम्पवेल की सेना दिलखुश वाग़ पहुँची। १६ को इस सेना ने सिकन्दर वाग़ पर चढ़ाई की। फिर एक अत्यन्त घमासान संग्राम हुआ, जिसमें एक ओर क्रान्तिकारी सेना ने और दूसरी ओर सिखों ने ख़ासी वीरता दिखलाई। एक सिख सिपाही ही सवसे पहले गोलों की वौछार के अन्दर से सिकन्दर वाग़ की दीवार पर चढ़ता हुआ दिखाई दिया। सामने से उसकी छाती में एक गोली लगी, वह वहीं ढेर होगया। उसके वाद जनरल कूपर और जनरल लम्सडेन भी उसी दीवार पर मारे गए। किन्तु अन्त में अपने साथियों की लाशों पर से कूदते हुए सिख और अंगरेज़ दोनों सिकन्दर वाग़ के अन्दर पहुँच गए। इतने में कम्पनी की सेना ने एक दूसरी ओर से भी वाग़ में प्रवेश किया। सिकन्दर वाग़ के अन्दर की हिन्दोस्तानी सेना ने जिस अद्भुत वीरता के साथ उस दिन सिकन्दर वाग़ की रक्षा की, उसके विषय में इतिहास लेखक मॉलेसन लिखता है—

"इस थाड़े (सिकन्दर बाग़) पर क़ब्ज़ा करने के लिए जो संग्राम हुआ वह अत्यन्त रक्तमय था और जानों को हथेली पर रख कर लड़ा गया। क्रान्तिकारियों ने अपनी जानों पर खेल कर पूरी वीरता के साथ युद्ध किया। हमारी सेना रास्ता चीरती हुई अन्दर घुस आई, तब भी संग्राम बन्द नहीं हुआ। प्रत्येक कमरे के लिए, प्रत्येक सीढ़ी के लिए और मीनारों के एक एक कोने के लिए संग्राम होता रहा। न किसी ने किसी से दया चाही और न किसी ने किसी पर दया की। अन्त में जब आक्रामक सेना ने सिकन्दरबाग़ पर क़ब्ज़ा कर लिया तो दो हज़ार से ऊपर क्रान्तिकारियों की लाशों के ढेर उनके चारों ओर पड़े हुए थे। कहा जाता है कि जितनी सेना सिकन्दरबाग़ की रक्षा के लिए नियत थी उसमें से केवल चार आदमी अपनी जगह छोड़ कर निकल गए, किन्तु इन चार का बाग़ छोड़ कर जाना भी सन्दिग्ध है।"*

लखनऊ का सिकन्दरबाग़ उस दिन शब्दशः रक्त की झील बना हुआ था।

नौ दिन का लगातार संग्राम

इसके बाद २४ घण्टे तक दिलखुशबाग़, आलमबाग़ और शाहनजफ़ में घमासान संग्राम होते रहे। अगले दिन मोती महल में उतनी ही भयङ्कर लड़ाई हुई। २३ नवम्बर तक लड़ाई जारी रही, किन्तु दिल्ली के पतन ने अंगरेज़ी सेना के हौसले बढ़ा दिए थे और अनेक क्रान्तिकारी नेताओं के दिल बुझा दिए थे। अन्त में २३ नवम्बर को नौ दिन के लगातार संग्राम के बाद सर कॉलिन कैम्पबेल की सेना और रेज़िडेन्सी के भीतर की अङ्गरेज़ी सेना दोनों एक दूसरे से मिल गईं।

* G. B. Malleson's *Indian Mutiny*, vol. iv, p. 132.

लखनऊ रक्त का समुद्र

लखनऊ का समस्त शहर उस समय रक्त के समुद्र में तैरता हुआ दिखाई देता था। रेज़िडेन्सी के अंगरेज़ क़ैद से रिहा हो गए। किन्तु समस्त शहर अभी तक क्रान्तिकारियों के हाथों में था। इस बीच २४ नवम्बर को जनरल हैवलॉक की मृत्यु हो गई। सर कॉलिन कैम्पबेल ने रेज़िडेन्सी को छोड़ कर आलमबाग़ में अपनी सेना और तोपों को जमा किया, ऊटरम को वहाँ का सेनापति नियुक्त किया, और लखनऊ शहर पर हमले की तैयारी शुरू की। इतने में कैम्पबेल को समाचार मिला कि नाना साहब के प्रसिद्ध मराठा सेनापति तात्या टोपे ने कानपुर की अंगरेज़ी सेना को हरा कर फिर से उस नगर पर क़ब्ज़ा कर लिया। कैम्पबेल ने अब ऊटरम को लखनऊ के लिए छोड़ा और स्वयं कानपुर फिर से विजय करने के लिए उस ओर चल दिया।

अब हमें लखनऊ को छोड़ कर कुछ पीछे हट कर तात्या टोपे और सर कॉलिन कैम्पबेल के संग्रामों को वर्णन करना होगा।

तात्या टोपे

१६ जुलाई को जनरल हैवलॉक की सेना ने इलाहाबाद से आकर फिर से कानपुर विजय किया था। नाना साहब अपने भाई बालासाहब, भतीजे रावसाहब, सेनापति तात्या टोपे, घर की स्त्रियों और ख़ज़ाने सहित १७ जुलाई को सवेरे बिठूर से निकल कर फ़तहपुर चला गया था। नाना जनरल हैवलॉक पर फिर से हमला करने के लिए सेना जमा कर रहा था। तात्या टोपे को उसने शिवराजपुर भेजा। शिवराजपुर

पहुँच कर तात्या ने कम्पनी की ४२ नम्बर पलटन को अपनी ओर किया। इसी पलटन की सहायता से उसने फिर एक वार विठूर पर जाकर क़ब्ज़ा कर लिया और हैवलॉक की सेना पर,जब कि हैवलॉक लखनऊ जाना चाहता था,पीछे से आक्रमण किया, यहाँ तक कि हैवलॉक को लखनऊ का इरादा छोड़ कर पीछे हट जाना पड़ा। १६ अगस्त को हैवलॉक की सेना ने फिर तात्या टोपे की सेना पर विजय प्राप्त की। तात्या टोपे फिर अपनी बची हुई सेना सहित भाग कर नाना के पास फ़तहपुर पहुँचा। इसके बाद तात्या गुप्त रीति से ग्वालियर पहुंचा। ग्वालियर के निकट मुरार की छावनी में सींधिया की विशाल सबसीडीयरी सेना थी जिसमें पैदल पलटनें, सवार और तोपख़ाना था, तात्या टोपे ने इस समस्त सेना को क्रान्ति की ओर तोड़ लिया। उन्हें अपने साथ लेकर तात्या मुरार से कालपी आया। कालपी का क़िला जमना के उस पार कानपुर से ४६ मील दूर युद्ध की दृष्टि से एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान पर था। ६ नवम्बर को तात्या टोपे ने कालपी के क़िले पर क़ब्ज़ा कर लिया। नाना ने अब कालपी ही को अपना केन्द्र बनाया। बालासाहब को वहाँ पर नियुक्त किया और कालपी से सेना लेकर तात्या टोपे फिर एक बार कानपुर की ओर बढ़ा। निस्सन्देह धैर्य, पराक्रम, फुरती और अन्य भारतवासियों को अपने पक्ष में करने की शक्ति में तात्या अद्वितीय था।

जनरल विनढम उस समय कानपुर में था। १६ नवम्बर को तात्या टोपे ने विनढम को घेर कर उसके पास बाहर से रसद

इत्यादि का पहुंच सकना असम्भव कर दिया। विनढम अपनी सेना सहित तात्या टोपे के मुक़ाबले के लिए कानपुर से निकला। २६ नवम्बर को पाण्डु नदी के ऊपर तात्या और विनढम की सेनाओं में एक घमासान संग्राम हुआ। पहले वार में कहा जाता है कि तात्या का काफ़ी नुक़सान हुआ। किन्तु तात्या की योग्यता को स्वीकार करते हुए इतिहास लेखक मॉलेसन लिखता है—

"विद्रोही सेना का नेता मूर्ख न था। विनढम ने उसे जो हानि पहुँचाई उससे डर जाने के स्थान पर वह अंगरेज़ सेनापति की कमज़ोरी को अच्छी तरह समझ गया × × × तात्या टोपे ने उस समय विनढम की स्थिति और उसकी आवश्यकताओं को इतनी अच्छी तरह पढ़ लिया जिस प्रकार कोई खुली हुई किताब को पढ़ता है। तात्या में एक सच्चे सेनापति के स्वाभाविक गुण मौजूद थे। उसने विनढम की इन कमज़ोरियों से फ़ायदा उठाने का इरादा कर लिया।"*

कानपुर पर तात्या का क़ब्ज़ा

अगले दिन तात्या की सेना ने विनढम की सेना को तीन ओर से घेर कर पीछे हटाना शुरू किया। यहाँ तक कि बढ़ते बढ़ते आधा कानपुर तात्या की सेना के कब्ज़े में आ गया। इसके बाद तीन दिन के लगातार संग्राम के पश्चात् कानपुर का समस्त नगर फिर एक बार तात्या टोपे के हाथों में आ गया और विनढम की सेना को हार पर हार खाकर मैदान से भाग जाना पड़ा। अंगरेज़ी सेना के अनेक अफ़सर इन तीन दिन के संग्राम में काम आए।

* Malleson's *Indian Mutiny*, vol. iv, p. 167.

तीसरे दिन की लड़ाई और अंगरेज़ी सेना की पराजय को वर्णन करते हुए एक अंगरेज़ अफ़सर अपने पत्र में लिखता है—

"आज के संग्राम का वृत्तान्त पढ़ कर आपको आश्चर्य होगा। इससे आपको मालूम होगा कि किस प्रकार अंगरेज़ी सेना अपनी विजय पताकाओं, अपने आदर्श वाक्यों और अपनी प्रसिद्ध वीरता समेत पीछे हटा दी गई। उन भारतवासियों ने, जिन्हें हम तुच्छ समझ रहे हैं और चिढ़ाते रहे हैं, अंगरेज़ी सेना से उसका कैम्प, उसका सामान और मैदान सब कुछ छीन लिया! शत्रु को अब यह कहने का हक़ हो गया है कि फ़िरङ्गी पिट गए। ये पिटे हुए फ़िरङ्गी अपनी खाइयों में लौट आए, उनके ख़ेमे उलट दिए गए, असबाब छीन लिया गया, सामान ले लिया गया, ऊँट, हाथी, घोड़े और नौकर उन्हें छोड़ कर भाग गए। यह समस्त घटना अत्यन्त शोकजनक और लज्जास्पद है!"*

सर कॉलिन कैम्पबेल

इसी पराजय से विवश होकर सर कॉलिन कैम्पबेल को लखनऊ छोड़ना पड़ा था। तात्या टोपे ने समाचार पाते ही सर कॉलिन को मार्ग में रोकने के लिए गङ्गा का पुल तोड़ दिया और गङ्गा के ऊपर तोपें लगा दीं। फिर भी सर कॉलिन कैम्पबेल तात्या टोपे की तोपों से बच कर एक दूसरे स्थान से गङ्गा पार कर ३० नवम्बर को कानपुर के निकट पहुँच गया। इस समय तक नाना साहब भी तात्या टोपे की सहायता के लिए कानपुर पहुंच गया था।

मॉलेसन लिखता है कि सेनापति की हैसियत से तात्या टोपे

---

* Charles Ball's *Indian Mutiny*, vol, ii, p. 190.

की स्वाभाविक योग्यता बहुत ही बढ़ी चढ़ी थी।* गङ्गा के किनारे ही उसने कैम्पवेल की सेना को जा घेरा। पहली दिसम्बर से छै दिसम्बर तक ख़ूब घमासान संग्राम होता रहा। दोनों ओर की सेनाओं की संख्या क़रीब क़रीब बराबर थी। तात्या के दाहिनी ओर ग्वालियर की सेना थी। यह सेना अन्त में अंगरेज़ी और सिखों के संयुक्त हमले के सामने पीछे हटने लगी। मैदान सर कॉलिन कैम्पवेल के हाथ रहा। कानपुर के नगर पर फिर से कम्पनी का क़ब्ज़ा हो गया। तात्या अपनी रही सही सेना और तोपों सहित फिर दक्खिन की ओर निकल गया। अंगरेज़ी सेना ने उसका पीछा किया। शिवराजपुर में फिर एक संग्राम हुआ। इस संग्राम में तात्या की कुछ तोपें भी अंगरेज़ों के हाथ आ गईं। किन्तु तात्या फिर अपनी शेष सेना सहित बच कर कालपी की ओर चला गया। अंगरेज़ी सेना कानपुर लौट आई। सर कॉलिन कैम्पवेल ने इस बार बिठूर के महलों को गिरा कर ज़मीन से मिला दिया।

कानपुर पर अंगरेज़ी सेना का फिर से क़ब्ज़ा

दिल्ली के पतन के बाद अधिकांश क्रान्तिकारी सेना अवध और रुहेलखण्ड में जमा होती जा रही थी। यह प्रदेश ही अब क्रान्ति का सबसे महत्वपूर्ण गढ़ बनता जाता था। इस प्रदेश को फिर से विजय करने से पहले आवश्यक था कि अवध के पश्चिम

अवध और रुहेलखण्ड में दमन

* "A man of very great natural ability as leader . . . ."—Malleson's *Indian Mutiny*, vol. iv, p. 186.

में दिल्ली से पूर्व के समस्त इलाक़े को पूरी तरह अधीन कर लिया जाय। कई अंगरेज़ सेनापति अलग अलग सैन्यदल लेकर इस कार्य के लिए दिल्ली, कानपुर इत्यादि से विविध दिशाओं में निकल पड़े। ग्रामीण जनता को वश में करने और उन पर अपने बल की धाक जमाने के लिए इन लोगों ने स्थान स्थान पर उसी तरह के उपायों का उपयोग किया जिस तरह के उपाय नील, हैवलॉक और ग्रेटहैड जैसे सेनापति इससे पूर्व काम में ला चुके थे। इन समस्त प्रयत्नों में इटावा और फ़रुख़ाबाद की घटनायें विशेष वर्णन करने योग्य हैं।

इटावे के २५ अमर शहीद

१८ दिसम्बर को जनरल वालपोल कुछ सेना और तोपों सहित कानपुर से उत्तर की ओर बढ़ा। मार्ग में क्रान्तिकारियों के साथ कई छोटे मोटे संग्राम हुए। इनमें इटावे के निकट रास्ते के ऊपर एक छोटा सा मकान था जिसकी छत पर और दीवार के अन्दर सूराख़ों में बन्दूकें लगी हुई थीं। इस मकान के अन्दर केवल २५ भारतीय क्रान्तिकारी थे। वालपोल के साथ एक बाज़ाब्ता सेना और कई तोपें थीं। फिर भी इन २५ मनुष्यों ने बिना लड़े वालपोल को आगे बढ़ने न दिया। वालपोल ने उनसे सुलह करना चाहा, किन्तु उन्होंने स्वीकार न किया। उन्हें तोपों से डराया गया, इसका भी कोई असर न हुआ। इटावे के इन २५ वीरों और वहाँ की शेष घटना के विषय में इतिहास लेखक मॉलेसन लिखता है—

"ये लोग गिनती में थोड़े से थे, इनके पास केवल साधारण बन्दूकें थीं,

किन्तु उनके अन्दर एक उत्साह था जो आततायियों के उत्साह से भी कहीं अधिक भयङ्कर था—वे अपने पवित्र उद्देश के लिए शहीद होने का दृढ़ सङ्कल्प कर चुके थे। × × × उनके मकान के अन्दर हाथ से बम फेंके गए। बाहर भुस जला कर उन लोगों को धुएँ में घोंट देने का प्रयत्न किया गया, जिससे वे बाहर निकल आवें, किन्तु सब व्यर्थ हुआ। सूराख़ों के अन्दर से ये विद्रोही अपने आक्रामकों के ऊपर लगातार और ज़ोरों के साथ आग बरसाते रहे, इन्होंने उन्हें तीन घण्टे तक रोके रक्खा। अन्त में उस मकान को उड़ा देने का निश्चय किया गया। × × × मकान के उड़ने से उसके रक्षकों को जिस यश की अभिलाषा थी, वह उन्हें प्राप्त हो गई। वे सब शहीद हो गए और सब के सब उसी मकान के खण्डहरों में दफ़न हो गए।"*

फ़रुख़ाबाद का पतन

फ़रुख़ाबाद के नवाब ने अपनी स्वाधीनता का एलान कर रक्खा था। तय हुआ कि तीन ओर से वालपोल, सीटन और स्वयं कैम्पबेल के अधीन तीन सैन्य दल पहुँच कर फ़रुख़ाबाद की राजधानी फ़तहगढ़ को घेर लें। फ़तहगढ़ में कई दिन तक घमासान संग्राम होता रहा। अन्त में १४ जनवरी सन् १८५८ को फ़तहगढ़ विजय कर लिया गया। नवाब को क़ैद कर लिया गया। इतिहास लेखक फ़ॉर्ब्स मिचेल लिखता है कि फ़रुख़ाबाद के मुसलमान नवाब को फाँसी देने से पहले उसके तमाम बदन पर सुअर की चरबी मल दी गई थी।† नाना साहब का एक मुख्य सेनापति नादिर ख़ाँ भी

---

* Malleson's *Indian Mutiny*.

† Forbes-Mitchell's *Reminiscences*.

इसी स्थान पर गिरफ़ार हुआ और फाँसी पर चढ़ा दिया गया। चार्ल्स बॉल लिखता है कि फाँसी पर चढ़ते समय नादिर ख़ाँ ने "हिन्दोस्तान के लोगों को क़सम दी कि तलवार खींच कर और अंगरेज़ों को बाहर निकाल कर अपनी स्वाधीनता को फिर से स्थापित करें।"*

दिल्ली में फिर से सनसनी

इसी समय के निकट स्वयं दिल्ली के अन्दर फिर कुछ नई जान दिखाई देने लगी। अफ़वाह उड़ी कि नाना साहब बहादुरशाह को क़ैद से आज़ाद करने के लिए दिल्ली आ रहा है। चार्ल्स बॉल लिखता है कि इस पर बहादुरशाह के अंगरेज़ पहरेदारों को गुप्त आज्ञायें दे दी गईं कि यदि वास्तव में नाना दिल्ली के निकट पहुँचने लगे तो तुम लोग तुरन्त बूढ़े सम्राट को गोली से उड़ा देना।† दिल्ली से इलाहाबाद तक जमना के किनारे का प्रदेश प्रायः सब फिर से अंगरेज़ों के हाथों में आ चुका था। इसलिए कैम्पबेल के लिए अब रुहेलखण्ड और अवध को विजय करना बाक़ी था।

लखनऊ विजय के लिये विशाल अंगरेज़ी सैन्यदल

लखनऊ ही इस समय क्रान्ति का सबसे मुख्य केन्द्र था। २३ फ़रवरी सन् १८५८ को कैम्पबेल १७,००० पैदल, क़रीब ५,००० सवार और १३४ तोपों सहित कानपुर से लखनऊ की ओर बढ़ा। अंगरेज़ इतिहास लेखक लिखते हैं कि इतनी विशाल

* Charles Ball's *Indian Mutiny*, vol. ii, p. 232.

† Ibid, vol. ii, p. 184.

सेना अवध के मैदानों में कभी दिखाई न दी थी। इस सेना में अधिकतर अंगरेज़, सिख और कुछ अन्य पञ्जावी थे। रसल लिखता है कि इस सेना ने मार्ग में अनेक गाँव के गाँव वारूद से उड़ा दिए।*

किन्तु यह विशाल सेना भी लखनऊ को फिर से विजय करने के लिये काफ़ी नहीं समझी गई। पश्चिम की ओर से यह सेना और पूर्व की ओर से एक विशाल गोरखा सेना सेनापति जङ्गवहादुर के अधीन लखनऊ की ओर वढ़ी चली आ रही थी।

देशद्रोही नैपाली सेना

एक स्थान पर लिखा जा चुका है कि क्रान्ति के शुरू ही में अंगरेज़ों ने नैपाल दरवार से सहायता की प्रार्थना की थी। वहुत सम्भव है कि नैपाल युद्ध के समय अवध के नवाव का कम्पनी को क़रीव ढाई करोड़ रुपये की मदद देना नैपालियों के दिलों में खटक रहा हो और अवध निवासियों से वदला चुकाने का उन्हें यह एक अवसर दिखाई दिया हो। सव से पहले अगस्त सन् १८५७ में तीन हज़ार गोरखा सेना पूर्व में आज़मगढ़ और जौनपुर पर उतर आई। किन्तु क्रान्तिकारी नेताओं मोहम्मद हुसैन, वेनीमाधव और राजा नादिर ख़ाँ ने सफलता के साथ इस सेना से लड़कर पूर्वीय अवध की रक्षा की। इसके वाद लिखा है, जङ्गवहादुर और अंगरेज़ों में कुछ विशेष समझौता हो गया।

२३ दिसम्वर १८५७ को ९,००० नई गोरखा सेना जङ्गवहादुर

* Russell's *Diary*, p. 218.

के अधीन पूर्व को ओर से लखनऊ की ओर बढ़ो। इसके अतिरिक्त उसी ओर से दो और सैन्यदल कम्पनी की सेना के एक जनरल फ़्रैंक्स के अधीन और दूसरा जनरल रोक्राफ्ट के अधीन लखनऊ की ओर बढ़े। २५ फ़रवरी सन् १८५८ को ये तीनों विशाल सैन्यदल घोगरा पार कर अम्बरपुर पहुँचे।

दमन में नैपालियों का हिस्सा

अम्बरपुर एक छोटा सा दुर्ग था, जिसमें केवल ३४ भारतीय सिपाही थे। इन मुट्ठी भर लोगों ने विशाल नैपाली सेना को, जो आगे थी युद्ध का निमन्त्रण दिया। नैपाली सेना ने अम्बरपुर के दुर्ग पर हमला किया। ३४ रक्षकों में से प्रत्येक लड़ते लड़ते अपने स्थान पर कट कर मर गया। कहा जाता है, नैपाली सेना के सात आदमी मरे और ४३ घायल हुए। इसके बाद दुर्ग पर नैपाली सेना का क़ब्ज़ा हो गया।* लखनऊ दरबार ने ग़फ़ूरबेग को जनरल फ़्रैंक्स के मुक़ाबले के लिए सेना देकर भेजा। सुलतानपुर आदि स्थानों पर कई ज़बरदस्त संग्राम हुए। अन्त में नैपालियों और अंगरेज़ों की यह संयुक्त विशाल सेना पूर्वीय अवध पर विजय प्राप्त करती हुई आगे बढ़ चली।

दौरारे का अजेय दुर्ग

मार्ग में एक दुर्ग दौरारे का था। फ़्रैंक्स अपने दल सहित इस दुर्ग को विजय, करने के लिए बढ़ा। किन्तु दौरारा से फ़्रैंक्स को हार खाकर पीछे हट जाना पडा, जिसके दण्ड में कैम्पबेल ने फ़्रैंक्स

* Malleson's *Indian Mutiny*, vol iv, p. 227.

की पदवी कम कर दी। इसके वाद दूसरी ओर से चक्कर खाकर कम्पनी की सेना आगे वढ़ती रही।

११ मार्च सन् १८५८ को पश्चिम से कैम्पवेल की विशाल सेना और पूर्व से गोरखा और अंगरेज़ी सेनाएँ सब लखनऊ के निकट आकर मिल गईं।

लखनऊ शहर की परिस्थिति

लखनऊ शहर के अन्दर नवम्बर सन् ५७ से मार्च सन् ५८ तक स्वाधीनता का युद्ध वरावर जारी था। अवध की अधिकांश प्रजा और वहाँ के प्रायः सब राजा, ज़मींदार और ताल्लुक़ेदार सच्चे उत्साह के साथ इस युद्ध में शामिल थे। लॉर्ड कैनिङ्ग ने सर जेम्स ऊटरम के नाम एक पत्र में लिखा है कि जो राजा और ताल्लुक़ेदार अंगरेज़ों के विरुद्ध युद्ध में भाग ले रहे थे उनमें से कम से कम अनेक ऐसे थे जिन्हें स्वयं अंगरेज़ी राज से वजाय हानि के लाभ हुआ था, फिर भी ये लोग अंगरेज़ी राज्र के इस समय विकट शत्रु थे और नवाव विरजीस क़द्र और वेगम हज़रतमहल के लिए अपने सर्वस्व की आहुति देने को उद्यत थे।

इतिहास लेखक होम्स लिखता है—

"अनेक राजा और छोटे छोटे सरदार ऐसे थे जो सदा अङ्गरेज़ सरकार के वन्धनों से अपने आपको मुक्त करने के लिए चिन्तित रहते थे। उन्हें स्वयं कोई विशेष हानि न पहुँची थी, किन्तु अंगरेज़ी सरकार का अस्तित्व ही उन्हें सदा यह याद दिलाता रहता था कि हम एक पराजित क़ौम के आदमी हैं। × × × भारत की लाखों जनता के दिलों में विदेशी सरकार की ओर कोई

सच्ची राजभक्ति न थी × × × विप्लव के दिनों में भारतवासियों के व्यवहार का ठीक ठीक अन्दाज़ा करने के लिए, यह याद रखना आवश्यक है कि इन लोगों का हमारी जैसी एक विदेशी सरकार की ओर उस प्रकार की राजभक्ति अनुभव करना, जो राजभक्ति कि केवल देशभक्ति के साथ साथ ही चल सकती है, मानव प्रकृति के प्रतिकूल होता। × × × उनमें एक भी मनुष्य ऐसा न था जिसे यदि एक बार यह विश्वास हो जाता कि अङ्गरेज़ी राज को उखाड़ कर फेंका जा सकता है, तो वह हमारे विरुद्ध न हो जाता!"*

रसल लिखता है कि अवध के लोग "अपने देश और अपने बादशाह के लिए देशभक्ति के भाव से प्रेरित होकर लड़ रहे थे।"†

मौलवी अहमदशाह

लखनऊ नगर के अन्दर क्रान्ति का सब से योग्य नेता मौलवी अहमदशाह था, जिसका ज़िक्र ऊपर किया जा चुका है। अहमदशाह की योग्यता के विषय में इतिहास लेखक होम्स लिखता है—

"फ़ैज़ाबाद का मौलवी अहमदुल्लाह एक ऐसा व्यक्ति था जो अपने भावों और अपनी योग्यता दोनों की दृष्टि से एक महान आन्दोलन को चलाने और एक विशाल सेना का नेतृत्व ग्रहण करने दोनों के योग्य था।"‡

किन्तु दुर्भाग्यवश लखनऊ के अन्दर भी धीरे धीरे अव्यवस्था

---

* *The Sepoy War*, by Holmes.

† "Engaged in a patriotic war for their country and their sovereign."
—Russell's *Diary*, p. 275.

‡ "A man fitted both by his spirit and his capacity to support a great cause and to command a great army. This was Ahmadullah—the Moulvi of Fyzabad."—Holmes' *The Sepoy War*.

उत्पन्न हो गई थी। जिस प्रकार दिल्ली को सेना में वख़्त खाँ के विरुद्ध उसी प्रकार लखनऊ की सेना में अहमद-शाह के विरुद्ध कुछ लोग प्रति स्पर्धा अनुभव करने लगे थे। अहमदशाह की आज्ञाओं का यथेच्छ पालन न होता था।

क्रान्तिकारियों में अनुशासन की कमी

कैम्पवेल के पहुँचने से पहले सर जेम्स ऊटरम चार हज़ार सेना सहित आलमवाग़ में मौजूद था। अहमदशाह ने कई वार चाहा कि ऊटरम पर एक ज़ोरदार हमला करके उसकी सेना को समाप्त कर दिया जाय। किन्तु अहमदशाह की न चल सकी। प्रतिस्पर्धा यहाँ तक वढ़ी कि कुछ लोगों के ज़ोर देने पर कहा जाता है, एक वार वेगम ने अहमदशाह को क़ैद तक कर दिया। किन्तु सेना और जनता दोनों में अहमदशाह इतना सर्वप्रिय था कि शीघ्र ही उसे फिर छोड़ देना पड़ा। इसके वाद कैम्पवेल की सेना लखनऊ पहुँची। अहमदशाह ने फिर सेना का नेतृत्व ग्रहण किया। जितनी वार भारतीय सेना ने आलमवाग़ पर हमला किया, मौलवी अहमद शाह अपने घोड़े या हाथी के ऊपर प्रायः सदा सव से आगे लड़ता हुआ दिखाई पड़ता था।

१५ जनवरी सन् १८५८ के संग्राम में मौलवी अहमदशाह के एक हाथ में गोली लगी। १७ जनवरी को क्रान्तिकारियों का एक और मुख्य सेनापति विदेही हनुमान घायल होकर पकड़ा गया। इसी समय राजा वालकृष्णसिंह की भी मृत्यु होगई। १५ फ़रवरी को हाथ का घाव कुछ अच्छा होते ही अहमदशाह फिर मैदान में

आया। कुछ समय बाद स्वयं बेगम हज़रतमहल शस्त्र धारण कर, घोड़े पर चढ़ कर, युद्ध के मैदान में उतर आई। किन्तु आपसी प्रति-स्पर्धा और अव्यवस्था ने अब भी लखनऊ की क्रान्तिकारी सेना का साथ न छोड़ा।

शहर की मोरचेबन्दी

जिस समय सर कॉलिन कैम्पबेल आलमबाग़ पहुँचा, उस समय तक लखनऊ का समस्त नगर क्रान्तिकारियों के हाथों में था। शहर के बाहर आलमबाग़ में अंगरेज़ी सेना थी, और शहर के अन्दर क्रान्तिकारियों की ओर तीस हज़ार हिन्दोस्तानी सिपाही और पचास हज़ार सशस्त्र स्वयंसेवक जमा थे।* एक एक गली और एक एक बाज़ार में नाक़ेबन्दी और मोरचेबन्दी हो रही थी। हर घर की दीवारों में बन्दूक़ों के लिए सूराख़ बने हुए थे। हर मोरचे के ऊपर तोपें लगी हुई थीं। महल के चारों तरफ़ तोपें थीं। नगर के उत्तर की ओर गोमती नदी थी। शेष तीनों ओर मज़बूत क़िलेबन्दी थी।

तीसरी बार लखनऊ में रक्त की नदियाँ

कैम्पबेल के अधीन उस समय गोरी और हिन्दोस्तानी मिला कर क़रीब चालीस हज़ार अभ्यस्त सेना थी। इससे पहले अंगरेज़ों ने जितने हमले लखनऊ पर किए थे उनमें से कोई भी उत्तर की ओर से न हुआ था। सबसे पहले ६ मार्च को ऊटरम ने उस ओर से हमले की तैयारी शुरू की। सर कॉलिन कैम्पबेल के पहुँचने के बाद उत्तर और पूर्व दो ओर से हमला शुरू होगया। ६

* Sir Hope Grant.

मार्च से १५ मार्च तक ख़ूब घमासान संग्राम जारी रहा। तीसरी वार लखनऊ की गलियों में रक्त की नदियाँ वहने लगीं। अन्त में दिल्ली के समान ही लखनऊ का भी पतन हुआ। अंगरेज़ी सेना ने एक दूसरे के वाद दिलखुशवाग़, क़दमरसूल, शाहनजफ़, वेगमकोठी इत्यादि मोरचों पर क़ब्ज़ा कर लिया। १० मार्च को वह हडसन, जिसने दिल्ली के शाहज़ादों का ख़ून पिया था, लखनऊ के संग्राम में मारा गया। १४ मार्च को अंगरेज़ी सेना ने लखनऊ के महल में प्रवेश किया।

इतिहास-लेखक विलसन लिखता है कि उस दिन की विजय का मुख्य श्रेय "सिखों और दस नम्वर पलटन" को मिलना चाहिए।

शहादतगंज का संग्राम

वेगम हज़रतमहल, नवाव विरजीस क़दर और मौलवी अहमद-शाह तीनों शहर से निकल गए। अहमदशाह ने थोड़ा सा चक्कर देकर अपने मुट्ठी भर आदमियों सहित फिर एक वार दूसरी ओर से लखनऊ में प्रवेश किया। लखनऊ के मोहल्ले शहादतगंज में पहुँच कर अहमद-शाह ने नए सिरे से विजयी अंगरेज़ी सेना से मोरचा लिया। अहमदशाह के पास इस समय केवल दो तोपें रह गई थीं। दो पलटनें अहमदशाह के मुक़ावले के लिए भेजी गईं। अंगरेज़ इतिहास लेखक लिखते हैं कि मौलवी अहमदशाह ने उस दिन अपूर्व वीरता के साथ युद्ध किया, शत्रु को अगणित जनों की हानि पहुंचाई, और अन्त में विजय असम्भव देख वह फिर लखनऊ से निकल गया। शहादतगञ्ज की लड़ाई लखनऊ की अन्तिम लड़ाई

थी। अंगरेज़ी सेना ने ६ मील तक अहमदशाह का पीछा किया, किन्तु अहमदशाह हाथ न आया। लखनऊ के समस्त नगर पर अब कम्पनी का क़ब्ज़ा होगया।

क़त्लेआम

लखनऊ के पतन के बाद कम्पनी की सेना ने लखनऊ निवासियों के साथ जिस प्रकार का व्यवहार किया वह सार्वजनिक लूट और सार्वजनिक संहार, इन दो शब्दों में ही बयान किया जा सकता है। लेफ्टिनेण्ट माजेण्डी लिखता है कि लखनऊ के अन्दर उस समय के क़त्लेआम में किसी तरह की तमीज़ नहीं की गई।*

क्रूर यातनाएँ

हत्या से पहले जिस प्रकार की क्रूर यातनाएँ लोगों को दी गईं उसकी कई मिसालें रसल ने अपनी पुस्तक में दी हैं। इनमें से केवल एक हम नीचे उद्धृत करते हैं—

"कुछ सिपाही अभी जीवित थे और उन्हें दया के साथ मारा गया। किन्तु इनमें से एक को खींच कर मकान से बाहर रेतीले मैदान में लाया गया। उसे टाँगों से पकड़ कर खींचा गया, एक सुविधा की जगह लाया गया। कुछ अंगरेज़ सिपाहियों ने उसके मुँह और शरीर में सङ्गीनें भोंक कर उसे लटकाए रक्खा। दूसरे लोग एक छोटी सी चिता के लिए ईंधन जमा कर लाए; जब सब तैयार होगया तो उसे ज़िन्दा भून दिया गया! इस काम के करने वाले अंगरेज़ थे, और कई अफ़सर खड़े देखते रहे, किन्तु किसी ने हस्तक्षेप न किया! इस नारकी अत्याचार की बीभत्सता उस समय और भी अधिक बढ़ गई जब कि उस अभागे दुखिया ने अधजली और ज़िन्दा हालत

---

* Lieut. Majendie's *Up Among the Pandies*, p. 195, 196.

में भागने का प्रयत्न किया। अकस्मात् प्रयत्न करके वह चिता से कूद पड़ा। उसके शरीर का मांस हड्डियों से लटक रहा था। वह कुछ गज़ दौड़ा, फिर पकड़ लिया गया, वापस लाया गया, फिर आग पर रख दिया गया और जब तक राख न हो गया सङ्गीनों से दबा कर रक्खा गया।"*

इसके मुक़ाबले में अंगरेज़ क़ैदियों के साथ बेगम हज़रतमहल का व्यवहार बिलकुल दूसरे ढङ्ग का था। शुरू के दिनों में, जब कि लखनऊ के अन्दर क्रान्तिकारियों का पल्ला भारी था, कुछ अंगरेज़ पुरुष और स्त्री लखनऊ में क़ैद कर लिए गए थे। किन्तु छै महीने तक इनकी जान पर कोई हमला नहीं किया गया, जिस समय कम्पनी की सेना ने नगर में घुस कर दोषी और निर्दोष सबका एक समान संहार प्रारम्भ किया, कुछ क्रुद्ध क्रान्तिकारियों ने महल में जाकर बेगम से प्रार्थना की कि अंगरेज़ क़ैदियों को हमारे हवाले कर दीजिये। बेगम ने सात या आठ अंगरेज़ पुरुषों को उनके हवाले

बेगम हज़रतमहल की दया

---

* "Some of the Sepoys were still alive and they were mercifully killed; but one of their number was dragged out to the sandy plain outside the house; he was pulled by his legs to a convenient place, where he was held down, pricked in the face and body by the bayonets of some of the soldiery, while others collected fuel for a small pyre; and when everything was ready—the man was roasted alive! These were Englishmen, and more than one officer saw it; no one offered to interfere! The horrors of this infernal cruelty were aggravated by rhe attempt of the miserable wretch to escape when half burnt to death. By a sudden effort he leaped away and, with the flesh of his body hanging from his bones, ran for a few yards ere he was caught, brought back, put on the fire again, and held there by bayonets, till his remains were cousumed!"—Russell's *Diary*, p. 302.

कर दिया। उन्हें तुरन्त गोली से उड़ा दिया गया। किन्तु जब कुछ क्रान्तिकारियों ने ज़िद की कि क़ैदी अंगरेज़ स्त्रियों को भी मार डाला जाय तो बेगम ने इनकार कर दिया। इतिहास लेखक चार्ल्स बॉल लिखता है—

"स्त्रियों के विषय में बेगम ने उन लोगों की माँग को पूरा करने से ज़ोरों के साथ इनकार कर दिया। बेगम ने तुरन्त महल के ज़नानख़ाने के अन्दर उन अंगरेज़ स्त्रियों को अपने संरक्षण में ले लिया। बेगम का यह कार्य स्त्री जाति के मान को बढ़ाने वाला था।"*

लखनऊ की बेगमें

कम्पनी की सेना ने महल में घुस कर भी लूट और क़त्लेआम जारी रक्खा। महल के ज़नानख़ानों के अन्दर अनेक स्त्रियाँ मारी गईं। शेष स्त्रियाँ क़ैद कर ली गईं। महल की इन स्त्रियों के दिलों में भी अपने आन्दोलन की पवित्रता और उसकी अन्तिम विजय में पूर्ण विश्वास मौजूद था। एक छोटी सी घटना कई अंगरेज़ी इतिहासों में दी हुई है। एक दिन इन क़ैदी बेगमों के अंगरेज़ पहरेदारों ने हँस कर उनसे पूछा— "क्या आपका यह ख़याल नहीं है कि अब यह जङ्ग ख़त्म होगई ?" बेगमों ने उत्तर दिया—"नहीं' इसके ख़िलाफ़ हमें पूरा यक़ीन है कि आख़ीर में तुम्हारी ही हार होगी।"†

---

* "To the honor of womanhood, the demand was imperatively refused by the Begum so far as the females were concerned, and they were immediately taken under her care in the Zenana of the palace."—Charles Ball's *Indian Mutiny*, vol. ii, p. 94.

† *Narrative of the Indian Mutiny*, p. 348, Russell's *Diary*, p. 400.
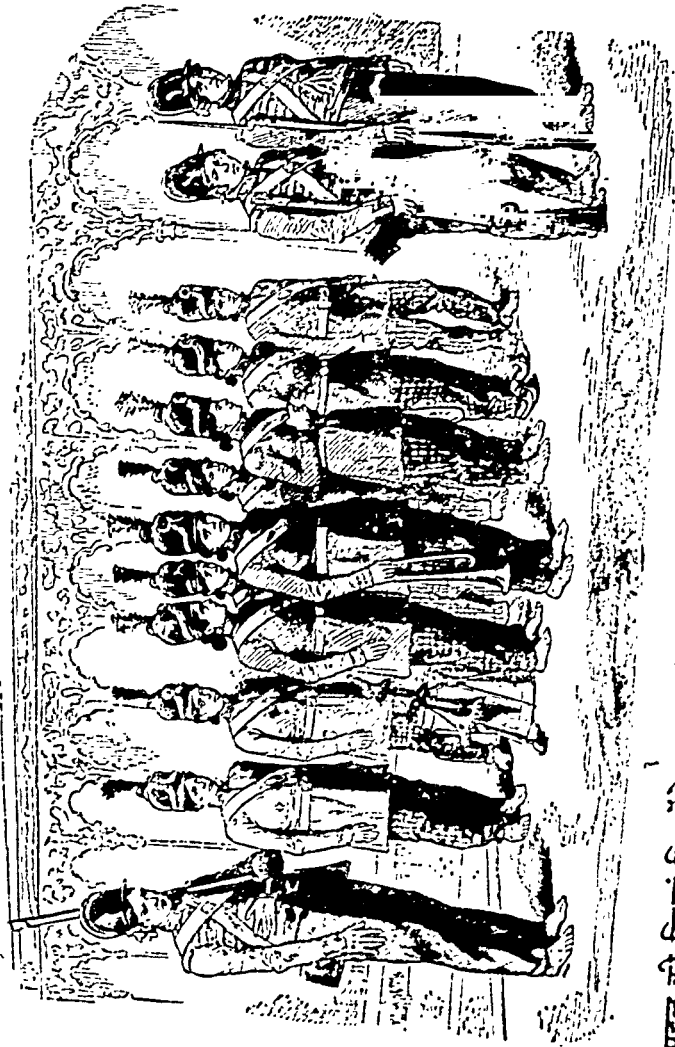
महल की स्त्रियां जिन्होंने मरदाना वेश पहनकर लखनऊ के स्वाधीनता संग्राम में भाग लिया

[From a "Narrative of the Indian Revolt", London, 1858.]

लखनऊ के पतन के वाद भी अवध के कई भागों और हिन्दोस्तान के अन्य अनेक प्रान्तों में युद्ध वरावर जारी रहा।

यद्यपि विहार में सन् ५७ का सङ्गठन अवध और दिल्ली जैसा न था, फिर भी उस प्रान्त में क्रान्ति के कई महत्वपूर्ण केन्द्र थे। विशेपकर पटने में एक ज़वरदस्त केन्द्र था, जिसकी शाखाएँ प्रान्त में चारों ओर फैली हुई थीं। सन् ५७ से पूर्व पटने में अनेक गुप्त सभाएँ हुआ करती थीं। वहाँ की पुलिस इस सङ्गठन में शामिल थी। लिखा है कि पटने के केन्द्र के पास धन की कमी न थी। सैकड़ों वैतनिक और अवैतनिक प्रचारक चारों ओर ग्रामों में क्रान्ति का प्रचार करते हुए फिरते थे। वहाँ के नेताओं का दिल्ली, लखनऊ और कानपुर के नेताओं के साथ गुप्त पत्र व्यवहार जारी था।

विहार में क्रान्ति का आयोजन

अंगरेज़ों को जव पटने वालों के गुप्त इरादों का सुराग़ मिला तो कुछ सिख सेना पटने की रक्षा के लिए भेजी गई। लिखा है कि नगर के लोगों ने इन सिख सिपाहियों से घृणा प्रकट करने के लिए उनके साए तक से वचना शुरू किया।

ज़िला तिरहुत के एक पुलिस के जमादार वारिसअली को क्रान्ति के सन्देह पर गिरफ़ार कर फाँसी दे दी गई। वारिसअली के पत्रों में एक पत्र गया के नेता अलीकरीम के नाम का पकड़ा गया। कम्पनी को फ़ौज का एक दस्ता अलीकरीम को गिरफ़ार करने के लिए भेजा गया। अलीकरीम अपने हाथी पर वैठ कर देहात चला गया। कम्पनी की फ़ौज ने उसका पीछा किया। किन्तु

आस पास के ग्रामवाले अलीकरीम से मिले हुए थे। उन्होंने कम्पनी के सिपाहियों को धोखा देकर ग़लत राह बता दी और अंगरेज़ी दस्ते को असफल पीछे लौट आना पड़ा।

पटने के कमिश्नर टेलर को पता लगा कि शहर के तीन प्रभावशाली मौलवी क्रान्ति के सङ्गठन में शरीक हैं। टेलर ने उन तीनों को बातचीत के बहाने अपने घर बुलाया और धोखे से गिरफ़ार कर लिया।

३ जुलाई को पटने में कुछ विप्लव हुआ, किन्तु सिखों की सहायता से आसानी से दमन कर दिया गया। क्रान्तिकारियों का मुख्य नेता पीरअली फाँसी पर चढ़ा दिया गया। लिखा है कि पीरअली को यातनाएँ दे देकर मारा गया। कमिश्नर टेलर स्वयं लिखता है कि पीरअली ने बड़ी वीरता और धार्मिक भाव के साथ यातनाओं और मृत्यु दोनों का सामना किया। दानापुर में उस समय तीन हिन्दोस्तानी पलटनें, एक गोरी पलटन और कुछ तोपख़ाना था। पीरअली की मृत्यु के बाद २५ जुलाई को दानापुर की देशी पलटनों ने स्वाधीनता का एलान कर दिया। ये पलटनें अब जगदीशपुर की ओर बढ़ीं।

राजा कुँवरसिंह

शाहाबाद के ज़िले में जगदीशपुर एक छोटी सी पुरानी राजपूत रियासत थी। सम्राट शाहजहाँ के दरबार से जगदीशपुर की रियासत के मालिक को 'राजा' की उपाधि प्रदान हुई थी और उसी समय से चली आती थी। अब यह रियासत भी लॉर्ड डलहौज़ी की अपहरण नीति का शिकार

हो चुकी थी। जगदीशपुर का राजा कुंवरसिंह आस पास के इलाक़े में अत्यन्त सर्वप्रिय था। कुँवरसिंह की आयु उस समय ८० वर्ष से ऊपर थी। फिर भी कुंवरसिंह बिहार के क्रान्तिकारियों का प्रमुख नेता और सन् ५७ के सब से ज्वलन्त व्यक्तियों में से था।

आरा का मोहासरा

जिस समय दानापुर की क्रान्तिकारी सेना जगदीशपुर पहुँची बूढ़े कुंवरसिंह ने तुरन्त अपने महल से निकल कर शस्त्र उठा कर इस सेना का नेतृत्व ग्रहण किया। कुँवरसिंह इस सेना सहित आरा पहुँचा। उसने आरा के ख़ज़ाने पर क़ब्ज़ा किया, जेलख़ाने के क़ैदी रिहा कर दिए और अंगरेज़ी दफ़्तरों को गिरा कर बराबर कर दिया। इसके बाद उसने आरा के छोटे से क़िले को घेर लिया। क़िले के अन्दर थोड़े से अंगरेज़ और कुछ सिख सिपाही थे। लिखा है कि क़िले में पानी की कमी पड़ गई। तुरन्त क़िले के अन्दर के सिखों ने अंगरेज़ों की विपत्ति को देख कर २४ घण्टे के अन्दर एक नया कुंआ खोद कर तैयार कर दिया। कुँवरसिंह ने कम्पनी की सेना से वादा किया कि यदि आप लोग क़िला हमारे सुपुर्द कर दें तो आप सबको प्राणदान दे दिया जायगा। किन्तु क़िले के भीतर की सेना ने स्वीकार न किया।

क़िले के अन्दर के सिखों को कुंवरसिंह ने समझा बुझा कर क्रान्ति के पक्ष में करना चाहा, किन्तु उसे सफलता न हो सकी। इस प्रकार तीन दिन आरा के क़िले का मोहासरा जारी रहा।

आम के बाग़ का संग्राम

२६ जुलाई को दानापुर से कप्तान डनवर के अधीन क़रीब ३०० गोरे सिपाही और १०० और सिख आरा की सेना की मदद के लिए चले। आरा के निकट एक आम का बाग़ था। कुंवरसिंह ने अपने कुछ आदमी आम के वृक्षों की टहनियों में छिपा रखे थे। रात का समय था, जिस समय दानापुर की सेना ठीक वृक्षों के नीचे पहुँची, अँधेरे में ऊपर से गोलियाँ बरसनी शुरू हुईं। सुबह तक ४१५ आदमियों में से केवल ५० ज़िन्दा बच कर दानापुर की ओर लौटे। कप्तान डनवर इसी आम के बाग़ में मारा गया।

बीबीगंज का संग्राम

इसके बाद मेजर आयर एक बड़ी सेना और तोपों सहित क़िले के अंगरेज़ों की सहायता के लिए बढ़ा। २ अगस्त को बीबीगञ्ज के निकट कुँवरसिंह की सेना और मेजर आयर की सेना में संग्राम हुआ। एक बार अंगरेज़ी सेना के एक अफ़सर कप्तान हेस्टिंग्स ने मेजर आयर से आकर कहा कि विजय हमारे हाथों से खिसकती हुई दिखाई देती है। किन्तु अन्त में मेजर आयर ही की विजय रही। कुंवरसिंह की सेना को पीछे हटना पड़ा और आठ दिन के मोहासरे के बाद आरा का नगर और क़िला फिर से अंगरेज़ों के हाथों में आ गया।

कुंवरसिंह अब जगदीशपुर की ओर लौट आया। मेजर आयर ने अपनी विजयी सेना सहित उसका पीछा किया। कई दिन संग्राम होता रहा। अन्त में मेजर आयर ने १४ अगस्त को जगदीशपुर के महल पर क़ब्ज़ा कर लिया।

वृढ़ा कुंवरसिंह बारह सौ सैनिकों और अपने महल की स्त्रियों को साथ लेकर जगदीशपुर से निकल गया। उसने अब किसी दूसरे स्थान पर जाकर अङ्गरेज़ों के साथ अपना बल आज़माने का निश्चय किया।

यह वह समय था जब कि कुछ गोरी और कुछ गोरखा सेना आज़मगढ़ की ओर से अवध में प्रवेश कर रही थी। १८ मार्च सन् १८५८ को आस पास के अन्य क्रान्तिकारियों को अपने साथ लेकर कुंवरसिंह ने आज़मगढ़ से २५ मील दूर अतरौलिया नामक स्थान पर डेरा जमाया। जिस समय अंगरेज़ों को यह समाचार मिला, तुरन्त मिलमैन के अधीन कुछ पैदल, कुछ सवार और दो तोपें २२ मार्च सन् १८५८ को कुंवरसिंह के मुक़ाबले के लिए पहुँची। उसी दिन अतरौलिया के मैदान में दोनों ओर की सेनाओं का आमना सामना हुआ। थोड़ी ही देर बाद कुंवरसिंह अपनी सेना सहित ज़ोरों के साथ पीछे को हटने लगा। अंगरेज़ी सेना समझ गई कि कुंवरसिंह हार कर मैदान से भाग गया। विजय के हर्ष में मिलमैन ने अपनी सेना को एक आम के बग़ीचे में ठहर कर भोजन करने की आज्ञा दी। किन्तु कुंवरसिंह उस जङ्गल की एक एक चप्पा भूमि से परिचित था। इस बुढ़ापे में भी वह अत्यन्त फुरतीला था। ठीक उस समय, जब कि मिलमैन की सेना भोजन कर रही थी, कुंवरसिंह अचानक उस पर आ टूटा। थोड़ी देर के संग्राम के बाद मैदान पूरी तरह कुंवरसिंह के हाथ रहा। मिलमैन के अनेक

मिलमैन की पराजय

सिपाही काम आए और शेष ने अतरौलिया से भाग कर कौशिला में आश्रय लिया। कुंवरसिंह ने मिलमैन का पीछा किया। मिलमैन के हिन्दोस्तानी नौकरों ने इस समय उसका साथ छोड़ दिया। लिखा है कि वे कम्पनी की सेना के बैलों और गाड़ियों समेत इधर उधर भाग गए, शेष असवाव और तोपें कुंवरसिंह के हाथ लगीं। मिलमैन अपने रहे सहे आदमियों सहित आज़मगढ़ की ओर भाग गया।

डेम्स की पराजय

एक दूसरी अंगरेज़ी सेना करनल डेम्स के अधीन वनारस और ग़ाज़ीपुर से चलकर मिलमैन की सहायता के लिए आज़मगढ़ पहुँची। २८ मार्च को यह संयुक्त सेना करनल डेम्स के अधीन फिर कुंवरसिंह के मुक़ावले के लिए निकली। आज़मगढ़ से कुछ दूर कुंवरसिंह और करनल डेम्स में संग्राम हुआ। कुंवरसिंह ने फिर एक वार पूर्ण विजय प्राप्त की। करनल डेम्स को मैदान से भाग कर आज़मगढ़ के क़िले में आश्रय लेना पड़ा। विजयी कुंवरसिंह ने आज़मगढ़ नगर में प्रवेश किया।

लॉर्ड कैनिङ्ग की घवराहट

आज़मगढ़ को विजय कर अपनी सेना के एक दल को आज़मगढ़ के क़िले के मोहासरे के लिए छोड़ कर कुँवरसिंह अव वनारस की ओर वढ़ा। लॉर्ड कैनिङ्ग उस समय इलाहावाद में था। इतिहास लेखक मॉलेसन लिखता है कि कुंवरसिंह की विजयों और उसके वनारस पर चढ़ाई करने की ख़वर सुन कर कैनिङ्ग घवरा गया।

कुंवरसिंह अपनी राजधानी जगदीशपुर से १०० मील से ऊपर निकल आया था और अब वनारस के ठीक उत्तर में था। लखनऊ से भागे हुए अनेक क्रान्तिकारी इस समय कुंवरसिंह की सेना में आकर शामिल हो गए। लॉर्ड कैनिङ्ग ने तुरन्त सेनापति लॉर्ड मार्क कर को सेना और तोपों सहित कुंवरसिंह के मुक़ावले के लिए भेजा। ६ अप्रैल को लॉर्ड मार्क कर की सेना और कुंवरसिंह की सेना में संग्राम हुआ। लिखा है कि उस दिन ८१ वर्ष का बूढ़ा कुंवरसिंह अपने सफ़ेद घोड़े पर सवार ठीक घमासान लड़ाई के अन्दर विजली की तरह इधर से उधर तक लपकता हुआ दिखाई दे रहा था। लॉर्ड मार्क कर हार गया, उसे अपनी तोपों सहित पीछे हटना पड़ा। लॉर्ड मार्क कर अब मैदान छोड़ कर आज़मगढ़ की ओर वढ़ा। कुंवरसिंह ने उसका पीछा किया। सम्भव है कि या तो कुंवरसिंह का विचार इस समय कुछ वदल गया या वह लॉर्ड मार्क की चाल में आ गया। इतिहास लेखक मॉलेसन लिखता है कि कुंवरसिंह का इस समय वनारस आने का विचार छोड़ कर आज़मगढ़ की ओर लॉर्ड मार्क का पीछा करना वहुत वड़ी भूल थी।

लॉर्ड मार्क की पराजय

लॉर्ड मार्क ने अपने वचे हुए आदमियों सहित आज़मगढ़ के क़िले में आश्रय लिया। आज़मगढ़ का शहर क्रान्तिकारियों के हाथों में था। कुंवरसिंह ने लॉर्ड मार्क और उसकी सेना को क़िले में क़ैद कर क़िले का मोहासरा शुरू कर दिया।

कुँवरसिंह का युद्ध कौशल

पच्छिम की ओर से अब सेनापति लगर्ड एक दूसरी अंगरेज़ी सेना सहित लॉर्ड मार्क की सहायता के लिए आज़मगढ़ की ओर बढ़ा। कुंवरसिंह को इसका पता लग गया। कुंवरसिंह ने सब से पहले आज़मगढ़ छोड़ कर ग़ाज़ीपुर जाकर वहाँ से गङ्गा पार कर जगदीशपुर पहुँचने और फिर से अपनी पैतृक रियासत विजय करने का इरादा किया। इसके लिए कुंवरसिंह ने एक सुन्दर चाल चली।

लगर्ड की सेना तानू नदी के पुल पर से आज़मगढ़ आने वाली थी। कुंवरसिंह ने अपनी सेना का एक दल उस पुल पर लगर्ड की सेना का मुक़ावला करने के लिए भेज दिया। अपनी शेष सेना सहित कुंवरसिंह ग़ाज़ीपुर की ओर बढ़ा। यह छोटा सा सैन्यदल पुल के ऊपर वीरता के साथ लगर्ड की सेना का मुक़ावला करता रहा। जब उसे पता लगा कि मुख्य सेना काफ़ी दूर निकल गई, वह धीरे धीरे पीछे हट कर उस सेना से जा मिला। लगर्ड को कुंवरसिंह की इस चाल का पता न चल सका। इतिहास लेखक मॉलेसन ने कुंवरसिंह की इस चाल और तानू नदी के ऊपर लड़ने वाले कुंवरसिंह के सिपाहियों की वीरता दोनों की ख़ूब प्रशंसा की है। इसके बाद लगर्ड की सेना ने बारह मील तक कुंवरसिंह का पीछा किया, किन्तु कुंवरसिंह हाथ न आ सका।

लगर्ड की पराजय

इतने ही में ज़रा सा चक्कर देकर स्वयं कुंवरसिंह ने अचानक लगर्ड की सेना पर हमला किया। कम्पनी की ओर कई अफ़सर और अनेक सिपाही मारे

गए। अन्त में कम्पनी की सेना को हार कर पीछे हट आना पड़ा और कुंवरसिंह गङ्गा की ओर बढ़ा।

डगलस की पराजय

एक ओर अंगरेज़ी सेना सेनापति डगलस के अधीन कुंवरसिंह को परास्त करने के लिए बढ़ी। नघई नामक ग्राम के निकट डगलस और कुंवरसिंह की सेनाओं में संग्राम हुआ। कुंवरसिंह ने इस समय अपनी सेना के तीन दल किए। एक दल ने डगलस का मुक़ाबला किया। दूसरे दोनों दल घूम कर आगे बढ़ गए। पहला दल ज़ोरों के साथ डगलस की सेना से लड़ता रहा। डगलस के मुक़ाबले में इस दल की संख्या कम थी। चार मील तक डगलस इस दल को दबाता चला गया। अन्त में ज्योंही डगलस की सेना थक कर रुकी, दूसरे दोनों दल अन्य रास्तों से घूम कर उस पर टूट पड़े। पराजित डगलस को पीछे हट जाना पड़ा।

कुंवरसिंह को संयुक्त सेना गङ्गा की ओर बढ़ी। डगलस की सेना ने फिर उसका पीछा किया, किन्तु व्यर्थ। कुंवरसिंह अपनी सेना सहित आश्चर्यजनक वेग के साथ चल कर सिकन्दरपुर पहुँचा। उसने घाघरा नदी पार की और मनोहर ग्राम में जाकर कुछ देर के लिए विश्राम किया।

मनोहर ग्राम में डगलस की सेना ने फिर कुंवरसिंह पर हमला किया। कुंवरसिंह के कुछ हाथी, कुछ बारूद और कुछ रसद का सामान डगलस के हाथ आया। कुंवरसिंह ने फिर अपनी सेना के कई छोटे छोटे दल बनाए और उन सब को अलग अलग रास्तों

से चल कर एक नियत स्थान पर मिलने की आज्ञा दी। डगलस के लिए इन पृथक पृथक दलों का पीछा कर सकना असम्भव हो गया। कुंवरसिंह को सारी टुकड़ियाँ आगे चल कर मिल गईं और गङ्गा की ओर बढ़ चलीं।

कुँवरसिंह गोली से घायल

गङ्गा के निकट पहुँच कर कुंवरसिंह ने यह अफ़वाह उड़ा दी कि मेरी सेना बलिया के निकट हाथियों पर गङ्गा को पार करेगी। अंगरेज़ी सेना उसी स्थान पर जाकर कुंवरसिंह को रोकने के लिए डट गई। किन्तु कुंवरसिंह उस स्थान से सात मील नीचे शिवपुर घाट से रात्रि के समय किश्तियों में गङ्गा को पार कर रहा था। अंगरेज़ी सेना को जब इस चाल का पता लगा, वह शिवपुर पहुँची। कुंवरसिंह की समस्त सेना गंगा पार कर चुकी थी। केवल एक अन्तिम किश्ती रह गई थी। कुंवरसिंह इसी किश्ती में था। ठीक जिस समय कुंवरसिंह की किश्ती बीच धार में थी अंगरेज़ी सेना के किसी सिपाही की गोली कुंवरसिंह की दाहिनी कलाई में आकर लगी। ८१ वर्ष के बूढ़े कुंवरसिंह ने यह देख कर कि दाहिना हाथ निकम्मा हो गया और समस्त शरीर में विष फैल जाने का डर है, बाएँ हाथ से तलवार खींच कर अपने घायल दाहिने हाथ को स्वयं एक वार में कुंहनी पर से काट कर गङ्गा में फेंक दिया। घाव पर कपड़ा लपेट कर कुंवरसिंह ने गङ्गा को पार किया। अंगरेज़ी सेना गङ्गा के उस पार उसका पीछा न कर सकी।

कुंवरसिंह

From the "History or Indian Mutiny" by Charles Ball.]
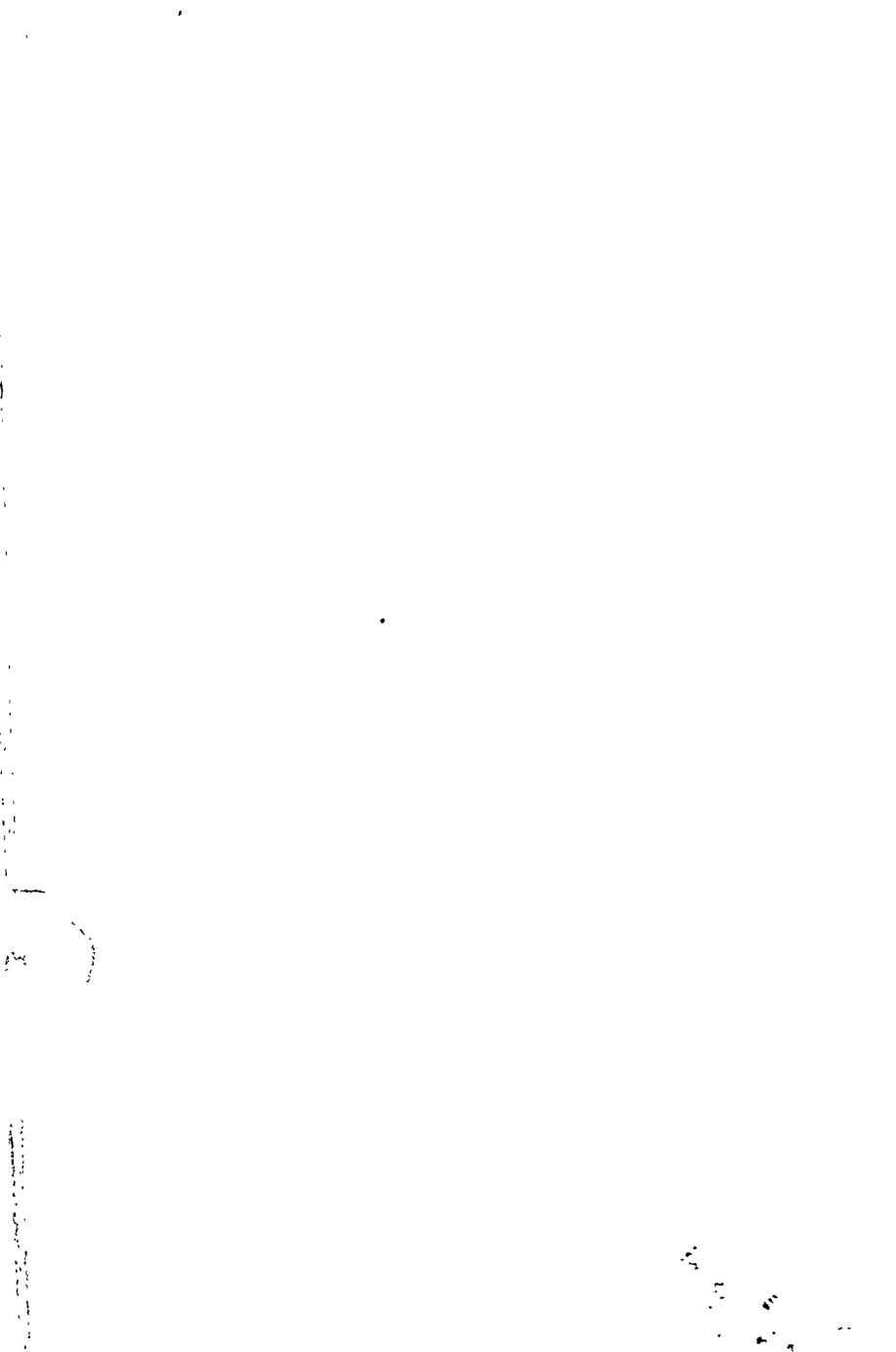
गङ्गा के उस पार कुछ दूरी पर जगदीशपुर की राजधानी थी।

कुंवरसिंह का जगदीशपुर में प्रवेश

आज से आठ महीने पहले कुंवरसिंह को जगदीशपुर से निकल जाना पड़ा था। इन आठ महीने तक जगदीशपुर अंगरेज़ी सेना के क़ब्ज़े में रहा। २२ अप्रैल को राजा कुंवरसिंह ने फिर जगदीशपुर में प्रवेश किया। कुंवरसिंह के भाई अमरसिंह ने पहले से कुछ स्वयं सेवकों का एक दल कुंवरसिंह की सहायता के लिए जमा कर रक्खा था। जगदीशपुर पर फिर से कुंवरसिंह का क़ब्ज़ा हो गया।

आरा के अंगरेज़ अफ़सर चकित हो गए। २३ अप्रैल को

लीग्रैण्ड की पराजय

लीग्रैण्ड के अधीन कम्पनी की सेना जगदीशपुर पर दोबारा हमला करने के लिए आरा से चली। आठ महीने कुंवरसिंह और उसकी सेना के लगातार संग्राम और कठिन यात्रा में बीते थे। जगदीशपुर पहुँचे उसे अभी २४ घण्टे भी न हुए थे। कुंवरसिंह का दाहिना हाथ कट चुका था। उसके पास सेना भी एक हज़ार से अधिक न थी। उसके मुक़ाबले में लीग्रैण्ड की सेना सुसज्जित और ताज़ा थी। तोपें भी इस सेना के साथ थीं। कुंवरसिंह के पास उस समय कोई तोप न थी। जगदीशपुर से डेढ़ मील के फ़ासले पर लीग्रैण्ड और कुंवरसिंह की सेना में संग्राम हुआ। लीग्रैण्ड की सेना में कुछ अंगरेज़ और अधिकांश सिख थे। किन्तु मैदान फिर पूरी तरह कुंवरसिंह के हाथों में रहा। उस दिन की पराजय को

वयान करते हुए एक अंगरेज़ अफ़सर जो संग्राम में शामिल था लिखता है—

"वास्तव में इसके बाद जो कुछ हुआ उसे लिखते हुए मुझे अत्यन्त लज्जा आती है। लड़ाई का मैदान छोड़ कर हमने जङ्गल से भागना शुरू किया। शत्रु हमें बराबर पीछे से पीटता रहा। हमारे सिपाही प्यास से मर रहे थे। एक निकृष्ट गन्दे छोटे से पोखर को देख कर वे घबरा कर उसकी ओर लपके। इतने में कुंवरसिंह के सवारों ने हमें पीछे से आ दबाया। इसके पश्चात् हमारी ज़िल्लत की कोई हद न रही, हमारी आपत्ति चरम सीमा को पहुँच गई। हममें से किसी में शर्म तक न रही। जहाँ जिसको कुशल दिखाई दी, वह उसी ओर भागा। अफ़सरों की आज्ञाओं की किसी ने परवा न की। व्यवस्था और क़वायद का अन्त हो गया। चारों ओर आहों, शापों और रोने के सिवा कुछ सुनाई न देता था। मार्ग में अङ्गरेज़ों के गिरोह के गिरोह मारे गरमी के गिर गिर कर मर गए। किसी को दवा मिल सकना भी असम्भव था, क्योंकि हमारे अस्पताल पर कुँवरसिंह ने पहले ही क़ब्ज़ा कर लिया था। कुछ वहीं गिर कर मर गए, शेष को शत्रु ने काट डाला। हमारे कहार डोलियाँ रख रख कर भाग गए। सब घबराए हुए थे, सब डरे हुए थे। सोलह हाथियों पर केवल हमारे घायल साथी लदे हुए थे। स्वयं जनरल लीग्रैण्ड की छाती में एक गोली लगी और वह मर गया! हमारे सिपाही अपनी जान लेकर पाँच मील से ऊपर दौड़ चुके थे। उनमें अब अपनी बन्दूक़ उठाने तक की शक्ति न रह गई थी। सिखों को वहाँ की धूप की आदत थी। उन्होंने हमसे हाथी छीन लिए और हमसे आगे भाग गए। गोरों का किसी ने साथ न दिया। १९९ गोरों में से केवल ८० इस भयङ्कर संहार से

ज़िन्दा बच सके ! हमारा इस जङ्गल में जाना ऐसा ही हुआ जैसा पशुओं का कसाई ख़ाने में जाना, हम वहाँ केवल वध होने के लिए गए थे !"*

इतिहास लेखक व्हाइट लिखता है—"इस अवसर पर अङ्गरेज़ों ने पूरी और बुरी से बुरी हार खाई ।"†

अंगरेज़ी सेना की सब तोपें और असबाब कुँवरसिंह के हाथ आया ।

इस प्रकार २३ अप्रैल सन् १८५८ को विजयी कुंवरसिंह फिर से अपनी पैतृक रियासत पर शासन करने लगा। किन्तु कुँवरसिंह के हाथ का घाव अभी तक अच्छा न हुआ था । उस घाव ही के कारण २६ अप्रैल सन् १८५८ को अपने महल के अन्दर राजा कुंवरसिंह की मृत्यु हुई । कुँवरसिंह की मृत्यु के समय स्वाधीनता का हरा झण्डा उसकी राजधानी के ऊपर फहरा रहा था और अंगरेज़ कम्पनी के आधिपत्य से वह अपनी रियासत और प्रजा दोनों को सर्वथा स्वाधीन कर चुका था । इतिहास लेखक होम्स लिखता है—

कुँवरसिंह की मृत्यु

"उस बूढ़े राजपूत की, जो ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध इतनी वीरता और इतनी आन के साथ लड़ा, २६ अप्रैल सन् १८५८ को मृत्यु हुई ।"‡

* Charles Ball's *Indian Mutiny*, vol. ii, p. 288.

† "The English sustained on this occasion a complete defeat of the worst kind."—White's *History of the Mutiny*.

‡ "The old Rajput who had fought so honourably and so bravely against the British power died on April 26th, 1858."—*History of the Sepoy War*, by Holmes.

कुँवरसिंह का चरित्र

कुँवरसिंह का व्यक्तिगत चरित्र अत्यन्त पवित्र था, उसका जीवन परहेज़गारी का था। यहाँ तक कि लिखा है उसके राज में कोई मनुष्य इस डर से कि कहीं कुँवरसिंह न देख ले, खुले तौर पर तम्बाकू तक न पीता था। उसकी समस्त प्रजा उसका बहुत बड़ा आदर और उससे प्रेम करती थी। युद्ध कौशल में वह अपने समय में अद्वितीय था।

राजा अमरसिंह

कुँवरसिंह के बाद उसका छोटा भाई अमरसिंह जगदीशपुर की गद्दी पर बैठा। अमरसिंह ने बड़े भाई के मरने के बाद चार दिन भी विश्राम नहीं लिया। केवल जगदीशपुर की रियासत पर अपना अधिकार बनाए रखने से भी वह सन्तुष्ट न रहा। उसने तुरन्त अपनी सेना को फिर से एकत्रित कर आरा पर चढ़ाई की। लीग्रैण्ड की सेना की पराजय के बाद जनरल डगलस और जनरल लगर्ड की सेनाएँ भी गङ्गा को पार कर आरा की सहायता के लिए पहुँच चुकी थीं। ३ मई को राजा अमरसिंह की सेना के साथ डगलस और लगर्ड की सेनाओं का पहला संग्राम हुआ। उसके बाद बिहिया, हातमपुर, दलीलपुर इत्यादि अनेक स्थानों पर दोनों सेनाओं में अनेक संग्राम हुए। अमरसिंह ठीक उसी प्रकार की युद्ध नीति द्वारा अंगरेज़ी सेना को बार बार हराता और हानि पहुँचाता रहा, जिस प्रकार की युद्ध नीति में कुँवरसिंह निपुण था। निराश होकर १५ जून को जनरल लगर्ड ने इस्तीफा दे दिया। लड़ाई का भार अब जनरल

डगलस पर पड़ा। डगलस के साथ सात हज़ार सेना थी। डगलस ने अमरसिंह को परास्त करने की क़सम खाई। किन्तु जून, जुलाई, अगस्त और सितम्बर के महीने बीत गए, फिर भी अमरसिंह परास्त न हो सका। इस बीच विजयी अमरसिंह ने आरा में प्रवेश किया और जगदीशपुर की रियासत पर अपना आधिपत्य जमाए रक्खा। जनरल डगलस ने कई बार हार खाकर यह एलान कर दिया कि जो मनुष्य किसी तरह भी अमरसिंह का सिर लाकर पेश करेगा, उसे बहुत बड़ा इनाम दिया जायगा, किन्तु इससे भी काम न चल सका।

जगदीशपुर पर सात ओर से हमला

सात ओर से सात विशाल सेनाओं ने एक साथ जगदीशपुर पर हमला किया। १७ अक्तूबर को इन सेनाओं ने जगदीशपुर को चारों ओर से घेर लिया। अमरसिंह ने देख लिया कि इस विशाल सैन्यदल पर विजय प्राप्त कर सकना असम्भव है। वह तुरन्त अपने थोड़े से सिपाहियों सहित मार्ग चीरता हुआ अंगरेज़ सेना के बीच से निकल गया। जगदीशपुर पर फिर कम्पनी का क़ब्ज़ा हो गया, किन्तु अमरसिंह हाथ न आ सका।

नौनदी का संग्राम

कम्पनी की सेना ने अमरसिंह का पीछा किया। १९ अक्तूबर को नौनदी नामक ग्राम में इस सेना ने अमरसिंह को घेर लिया। अमरसिंह के साथ केवल चार सौ सिपाही थे। इन चार सौ में से तीन सौ ने नौनदी के संग्राम में लड़ कर प्राण दिए। शेष सौ ने कम्पनी की सेना को एक बार

पीछे हटा दिया। इतने में और अधिक सेना अंगरेज़ों की मदद के लिए पहुँच गई। अमरसिंह के सौ आदमियों ने अपनी जान हथेली पर लेकर युद्ध किया। अन्त में अमरसिंह और उसके दो और साथी मैदान से निकल गए। शेष ९७ वहीं पर कट मरे। नौनदी के संग्राम में कम्पनी की ओर मरने वालों और घायलों की संख्या इससे कहीं अधिक थी।

कम्पनी की सेना ने फिर अमरसिंह का पीछा किया। एकबार कुछ सवार अमरसिंह के हाथी तक पहुँच गए। हाथी पकड़ लिया गया, किन्तु अमरसिंह कूद कर निकल गया।

अमरसिंह का अंत

अमरसिंह ने अब कैमूर के पहाड़ों में प्रवेश किया। शत्रु ने वहाँ पर भी उसका पीछा किया, किन्तु अमरसिंह ने हार स्वीकार न की। इसके बाद राजा अमर सिंह का कोई पता नहीं चलता।

जगदीशपुर की वीर स्त्रियाँ

जगदीशपुर के महल की स्त्रियों ने भी शत्रु के हाथ में पड़ना गवारा न किया। लिखा है कि जिस समय महल की डेढ़ सौ स्त्रियों ने यह देखा कि अब शत्रु के हाथों में पड़ने के सिवा कोई चारा नहीं, तो वे तोपों के मुंह के सन्मुख खड़ी होगईं और स्वयं अपने हाथ से फ़लीता लगा कर उन सब ने अपने ऐहिक जीवन का अन्त कर दिया!

लखनऊ के पतन के बाद क्रान्तिकारियों का कोई विशेष केन्द्र

कहीं भी भारत में न रहा था। कम्पनी की सेनाएँ इस समय चारों ओर फैलती जा रही थीं। पलटनों पर पलटन इङ्गलिस्तान से भरती हो होकर भारत आ रही थीं। विशाल भारतीय साम्राज्य को अपने हाथों से खिसकता देख कर इङ्गलिस्तान के शासकों ने उस समय अपनी सारी शक्ति भारतीय क्रान्ति के दमन करने में लगा रक्खी थी। पहली अप्रैल सन् १८५८ को कम्पनी की हिन्दोस्तानी सेना और देशी रियासतों की सेनाओं के अतिरिक्त कम्पनी के पास भारत में ९६,००० गोरी सेना थी। अंगरेज़ क़ौम के बड़े से बड़े अनुभवी सेनापति भारत में मौजूद थे। दूसरी ओर सिखों और गोरखों दोनों ने अपनी पूरी शक्ति से अंगरेज़ों का साथ दिया। क्रान्तिकारियों के अन्दर अव्यवस्था बढ़ती जा रही थी। दिल्ली, कानपुर और लखनऊ जैसे केन्द्र हाथ से निकल चुके थे। इस परिस्थिति में अवध और रुहेलखण्ड के नेताओं ने इधर उधर फैले हुए क्रान्तिकारियों के नाम यह आज्ञा प्रकाशित की—

अंगरेज़ों की विशाल सेना

"तुम लोग विधर्मियों की बाज़ाब्ता सेनाओं का खुले मैदान में सामना करने का प्रयत्न न करो, क्योंकि उनमें व्यवस्था हमसे बढ़ कर है और उनके पास बड़ी बड़ी तोपें हैं। उनके आने जाने पर दृष्टि रक्खो, दरियाओं के तमाम घाटों पर अपना पहरा रक्खो, उनके पत्र व्यवहार को बीच में रोक दो, उनकी रसद को रोक लो, उनकी डाक और चौकियों को तोड़ दो और सदा उनके कैम्प के इधर उधर फिरते रहो। फ़िरङ्गी को बिलकुल चैन न लेने दो!"*

---

* Russell's *Diary*, p. 276.

इस आज्ञा के विषय में रसल लिखता है—"इस आम प्लान से नेताओं की बुद्धिमत्ता का पता चलता है और यह भी पता चलता है कि इससे अधिक भयङ्कर युद्ध का हमें कभी भी सामना करना न पड़ा था।"*

बारी की लड़ाई

मौलवी अहमदशाह लखनऊ से क़रीब तीस मील दूर बारी नामक स्थान पर था। बेगम हज़रतमहल छै हज़ार सैनिकों सहित बिटावली में थी। होपग्रॉण्ट तीन हज़ार सेना और तोपख़ाने सहित लखनऊ से बारी की ओर बढ़ा। मौलवी अहमदशाह को पता चला, उसने बारी से चार मील दूर एक गाँव में अपनी पैदल सेना को नियुक्त किया, और सवार सेना को किसी दूसरी जगह छिपा दिया। उसकी चाल यह थी कि कम्पनी की सेना इस गाँव पर हमला करे, अहमदशाह की पैदल सेना उसका मुक़ाबला करे और उसके सवार अचानक पीछे से आकर कम्पनी की सेना को घेर लें। मौलवी स्वयं पैदल सेना के साथ रहा। सवारों को आज्ञा थी कि जिस समय तक पैदल सेना के साथ अंगरेज़ों की लड़ाई शुरू न हो जाय तुम अपने आप को बराबर छिपाए रखना किन्तु ऐन मौक़े पर अधीर सवारों ने अहमदशाह की आज्ञा के विरुद्ध अंगरेज़ी सेना को सामने देखते ही अपने स्थान से निकल कर उस पर हमला कर दिया। इस अव्यवस्था का परिणाम यह हुआ कि थोड़ी सी लड़ाई के बाद

---

* Russell's *Diary*, p. 276.

अहमदशाह को उस गाँव से निकल कर भाग जाना पड़ा और वारी का मैदान अंगरेज़ों के हाथ रहा।

कम्पनी की सेना के अनेक दल इस समय अवध और रुहेलखण्ड के क्रान्तिकारियों को उत्तर की ओर खदेड़ते हुए चले जा रहे थे।

जनरल होप की मृत्यु

१५ अप्रैल को वालपोल ने लखनऊ से ५० मील दूर रुइया के क़िले पर हमला किया। रुइया के ताल्लुक़ेदार नरपतिसिंह के पास केवल २५० साधारण सिपाही थे। वालपोल के साथ कई हज़ार सेना और तोपें थीं। सामने की ओर से वालपोल के डेढ़ सौ आदमियों ने क़िले पर चढ़ाई की। क़िले की दीवारों से गोलियों की बौछार शुरू हुई। ४६ अंगरेज़ वहीं पर मर गए, शेष को पीछे हट जाना पड़ा। वालपोल ने अपनी तोपों सहित क़िले के दूसरी ओर से गोलेबारी शुरू की। वालपोल के गोले क़िले के ऊपर से पार कर दूसरी ओर की अंगरेज़ी सेना पर जाकर गिरने लगे। वालपोल की घबराहट को देख कर जनरल होप आगे बढ़ा। होप मारा गया। समस्त अंगरेज़ी सेना को ज़िल्लत के साथ हार कर क़िले से पीछे हट जाना पड़ा। जनरल होप अंगरेज़ों के मुख्यतम और अनुभवी सेनापतियों में से था। उसकी मृत्यु से भारत और इङ्गलिस्तान के अंगरेज़ों को बहुत बड़ा शोक हुआ। इस विजय के बाद भी नरपतिसिंह ने जब देख लिया कि मैं विशाल अंगरेज़ी सेना के मुक़ाबले इस छोटे से क़िले में देर तक न ठहर सकूंगा, तो अपने मुट्ठी भर आदमियों सहित वह क़िले से बाहर निकल गया।

नाना साहब और मौलवी अहमदशाह अब शाहजहाँपुर पहुंचे।

शाहजहाँपुर और बरेली

कमाण्डर-इन-चीफ़ सर कॉलिन कैम्पबेल ने शाहजहाँपुर पहुंच कर चारों ओर से नगर को घेर लिया। उसका उद्देश नाना साहब और मौलवी अहमदशाह को वश में करना था। किन्तु ये दोनों नेता अंगरेज़ी सेना के बीच से शाहजहाँपुर छोड़ कर निकल गए।

ख़ानबहादुर ख़ाँ ने अभी तक रुहेलखण्ड की राजधानी बरेली को स्वाधीन कर रक्खा था। दिल्ली का एक शाहज़ादा मिरज़ा फ़ीरोज़शाह, नाना साहब, मौलवी अहमदशाह, बालासाहब, बेगम हज़रतमहल, राजा तेजसिंह और अन्य अनेक नेता इस समय बरेली में थे। सर कॉलिन अपनी सेना सहित बरेली की ओर बढ़ा। क्रान्तिकारी नेता पहले ही से बरेली छोड़ देने और चारों ओर रुहेलखण्ड में फैल जाने का निश्चय कर चुके थे। ५ मई को अंगरेज़ी सेना ने बरेली को घेर लिया। बरेली के असंख्य क्रान्तिकारी केवल ढाल तलवार लेकर मरने के लिए अंगरेज़ी सेना पर टूट पड़े। दोनों ओर काफ़ी जानें गईं। अन्त में ७ मई सन् १८५८ को ख़ानबहादुर ख़ाँ अन्य नेताओं और कुछ सेना सहित बरेली छोड़ कर निकल गया। अंगरेज़ी सेना ने बरेली के नगर पर क़ब्ज़ा कर लिया।

सर कॉलिन कैम्पबेल अभी बरेली ही में था कि मौलवी

शाहजहाँपुर का संग्राम

अहमदशाह ने घूम कर फिर से शाहजहाँपुर पर हमला किया, वहाँ की अंगरेज़ी सेना को परास्त किया और शाहजहाँपुर पर क़ब्ज़ा

कर लिया। कैम्पबेल ने फिर शाहजहाँपुर पर हमला किया। इस वार तीन दिन तक शाहजहाँपुर में संग्राम होता रहा। एक वार मालूम होता था कि मौलवी अहमदशाह का अब शाहजहाँपुर से वच कर निकल सकना असम्भव है। तुरन्त चारों ओर से क्रान्तिकारी नेता सर्वप्रिय मौलवी अहमदशाह की सहायता के लिए पहुँच गए। वेगम हज़रतमहल, शाहज़ादा फ़ीरोज़शाह, नाना साहव इत्यादि सव अपनी सेनाएँ लेकर १५ मई को शाहजहाँपुर पहुँचे। मौलवी अहमदशाह फिर इन सव की सहायता से शाहजहाँपुर से निकल आया। इसके वाद रुहेलखण्ड में घूम कर अहमदशाह ने फिर अवध के अन्दर प्रवेश किया।

मौलवी अहमदशाह के साथ दग़ा

मौलवी अहमदशाह किसी तरह अंगरेज़ों के क़ाबू में न आता था। इस वार अवध में प्रवेश करते ही उसने अंगरेज़ों से लड़ने के लिए फिर अपना वल वढ़ाने का प्रयत्न किया। मार्ग में पवन नाम की छोटी सी हिन्दू रियासत थी। मौलवी अहमदशाह ने वेगम हज़रतमहल की मोहर लगा एक परवाना पवन के राजा के पास सहायता के लिए भेजा। राजा जगन्नाथसिंह ने तुरन्त मौलवी अहमदशाह को अपने यहाँ वुलवाया। अहमदशाह अपने हाथी पर वैठ कर पवन पहुँचा। राजा जगन्नाथसिंह और उसके भाई से अहमदशाह की वातचीत हुई; वातचीत हो ही रही थी कि जगन्नाथसिंह के भाई ने धोखे से मौलवी अहमदशाह पर गोली चला दी। अहमदशाह इस विश्वासघातक के वार से न वच सका। राजा जगन्नाथसिंह ने

तुरन्त अहमदशाह का सिर काट कर उसे एक कपड़े में लपेटा और स्वयं पास के अंगरेज़ी कैम्प में पहुँचा दिया। इस प्रकार ५ जून सन् १८५८ को मौलवी अहमदशाह का अन्त हुआ। अगले दिन मौलवी अहमदशाह का कटा हुआ सिर शाहजहाँपुर की कोतवाली के सामने टाँग दिया गया।

राजा जगन्नाथसिंह को इस सेवा के बदले में कम्पनी सरकार से पचास हज़ार रुपए इनाम में मिले।

अहमदशाह की योग्यता

मौलवी अहमदशाह की योग्यता के विषय में हम ऊपर भी अंगरेज़ इतिहास लेखकों की राय उद्धृत कर चुके हैं। होम्स लिखता है कि मौलवी अहमदशाह "उत्तर भारत में अंगरेज़ों का सब से ज़बरदस्त शत्रु था।" * एक दूसरा अंगरेज़ इतिहास लेखक मॉलेसन लिखता है—

"मौलवी एक बड़ा अद्भुत मनुष्य था × × × सेनापति की हैसियत से उसकी योग्यता के विषय में अनेक सुबूत मिले × × × कोई भी और मनुष्य अभिमान के साथ यह न कह सकता था कि मैंने दो बार सर कॉलिन कैम्पबेल को मैदान में परास्त किया ! × × × फ़ैज़ाबाद के मौलवी अहमदशाह की इस प्रकार मृत्यु हुई। यदि एक ऐसे मनुष्य को, जिसकी जन्मभूमि की स्वाधीनता का अन्याय द्वारा अपहरण कर लिया गया हो, और जो फिर से उस स्वाधीनता को स्थापित करने के लिए योजना करे

---

* "The most formidable enemy of the British in Northern India."—Holmes' *History of the Indian Mutiny*, p. 539.

और युद्ध करे, देशभक्त कहा जा सकता है, तो इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं हो सकता कि मौलवी अहमदशाह सच्चा देशभक्त था। उसने किसी की गुप्त हत्या करके अपनी तलवार को कलङ्कित न किया था; निहत्थे और निर्दोष मनुष्यों की हत्या को उसने कभी गवारा तक न किया था; उसने मरदाना वार, आन के साथ और डट कर खुले मैदान में उन विदेशियों के साथ युद्ध किया जिन्होंने उसका देश छीन लिया था; हर देश के वीर और सच्चे लोगों को मौलवी अहमदशाह का आदर के साथ स्मरण करना चाहिए।"*

ये शब्द एक अंगरेज़ इतिहास लेखक के हैं। निस्सन्देह संसार के स्वाधीनता के शहीदों में सन् ५७ के मौलवी अहमदशाह का नाम सदा के लिए आदरणीय रहेगा।

---

* "The Moulvi was a very remarkable man . . . of his capacity as a military leader many proofs were given during the revolt, . . . No other man could boast that he had twice foiled Sir Colin Campbell in the field ! . . . Thus died the Moulvi Ahmad Shah of Fyazabad. If a patriot is a man who plots and fights for the independence, wrongfully destroyed, of his native country, then most certainly the Moulvi was a true patriot. He had not stained his sword by assassination ; he had connived at no murders; he had fought manfully, honourably, and stubbornly in the field against the strangers who had seized his country ; and his memory is entitled to the respect of the brave and the true-hearted of all nations,"—Malleson's *Indian Mutiny*, vol. iv, p. 381.

उनचासवाँ अध्याय

लक्ष्मीबाई और तात्या टोपे

जमना के दक्खिन और विन्ध्याचल के उत्तर का समस्त प्रदेश ११ महीने तक क्रान्तिकारियों के हाथों में रहा, जिसका मुख्य श्रेय महारानी लक्ष्मीबाई को है।

सर ह्यू रोज़ का कार्यक्रम

सर ह्यू रोज़ के अधीन एक विशाल सेना, जिसमें हैदराबाद, भोपाल और अन्य रियासतों की सेनाएँ भी शामिल थीं, तोपों सहित, इस प्रदेश को फिर से विजय करने के लिए भेजी गई।

६ जनवरी सन् १८५८ को सर ह्यू रोज़ मऊ से रवाना हुआ। रायगढ़, सागर, बानापुर, चँदेरी इत्यादि स्थानों को विजय करती हुई यह सेना २० मार्च को झाँसी के निकट पहुँची। झाँसी इस समस्त प्रदेश के क्रान्तिकारियों का सबसे मुख्य केन्द्र था। नगर के अन्दर बानापुर का राजा मरदानसिंह और अन्य अनेक राजा और सरदार रानी की सहायता के लिए मौजूद थे।

रानी लक्ष्मीबाई ने कम्पनी की सेना के पहुँचने से पहले झाँसी के चारों ओर दूर दूर तक के इलाक़े को वीरान करवा दिया था, ताकि शत्रु की सेना को झाँसी पर हमला करते समय रसद इत्यादि न मिल सके। न खेतों में नाज की एक बाल थी, न कहीं पर घास का तिनका था और न साए के लिए कोई वृक्ष था।

किन्तु महाराजा सींधिया ने और टेहरी टीकमगढ़ के राजा ने कम्पनी की सेना के लिए रसद, घास इत्यादि का इतना अच्छा प्रबन्ध कर दिया था कि उस सेना को किसी तरह की कठिनाई न हुई।

लक्ष्मीबाई का सेनापतित्व

अंगरेज़ी सेना को बढ़ते देख कर रानी लक्ष्मीबाई ने क्रान्तिकारियों का सेनापतित्व ग्रहण किया। प्रत्येक मोरचा उसने अपनी उपस्थिति में तैयार कराया और अपने सामने फ़सील के ऊपर तोपें चढ़वाईं। सर ह्यूरोज़ लिखता है कि रानी लक्ष्मीबाई के साथ झाँसी की सैकड़ों स्त्रियाँ तोपख़ानों और मैगज़ीनों में आती जाती और काम करती दिखाई दे रही थीं।

झाँसी में आठ दिन लगातार संग्राम

२४ मार्च को सवेरे सबसे पहले झाँसी की एक तोप ने, जिसका नाम घनगर्ज था, कम्पनी की सेना के ऊपर गोले बरसाने शुरू किए। उसके बाद आठ दिन तक लगातार संग्राम होता रहा।

एक दर्शक, जो उन दिनों झाँसी में मौजूद था, लिखता है :—

"२५ तारीख़ से गहरा संग्राम प्रारम्भ हुआ। अंगरेज़ों ने सारे दिन और

सारी रात गोले बरसाए। रात के समय क़िले और शहर के ऊपर तोपों के गोले डरावने दिखाई देते थे। पचास या तीस सेर का गोला ऐसा मालूम होता था जैसी एक छोटी सी गेंद, किन्तु अङ्गारे की तरह लाल। × × × २६ तारीख़ के दोपहर को कम्पनी की सेना ने नगर के दक्खिनी फाटक पर इस ज़ोर से गोले बरसाए कि उस ओर की झाँसी की तोपें ठण्ढी हो गईं। किसी को भी वहाँ खड़े रहने की हिम्मत न हो सकी। × × × इस पर पच्छिमी फाटक के तोपची ने अपनी तोप का मुँह उस ओर करके शत्रु के ऊपर गोले बरसाने शुरू किए। तीसरे गोले ने अंगरेज़ी सेना के सब से अच्छे तोपची को उड़ा दिया। इस पर अंगरेज़ी तोप ठण्ढी होगई। रानी लक्ष्मीबाई ने खुश होकर अपनी ओर के तोपची को, जिसका नाम ग़ुलाम ग़ौस ख़ाँ था, सोने का कड़ा इनाम में दिया। × × × पाँचवें या छठे दिन चार पाँच घण्टे तक रानी की तोपों ने चमत्कार कर दिखाया। उस दिन अंगरेज़ों की ओर असंख्य आदमी मारे गए, और अनेक तोपें ठण्ढी होगईं। फिर अङ्गरेज़ी तोपें अधिक उत्साह से चलने लगीं, झाँसी की सेना का दिल टूटने लगा और उनकी तोपें ठण्ढी होने लगीं। सातवें दिन शाम को शत्रु के गोलों ने नगर के बाईं ओर की दीवार का एक हिस्सा गिरा दिया और उस ओर की तोप ठण्ढी हो गई। कोई वहाँ पर खड़ा न रह सकता था। किन्तु रात के समय ११ मिस्त्री कम्बल ओढ़े दीवार तक पहुँचे और सुबह तक उस हिस्से की मरम्मत कर दी। झाँसी की तोप सूर्य निकलने से पूर्व फिर अपना कार्य करने लगी। × × × कम्पनी की ओर इससे बहुत भारी नुक़सान हुआ, यहाँ तक कि उनकी तोपें बहुत देर के लिए निकम्मी हो गईं। आठवें दिन सवेरे कम्पनी की सेना शङ्कर क़िले की ओर बढ़ी। दूरबीनों की सहायता से अङ्गरेज़ों

ने क़िले के अन्दर के पानी के चश्मे पर गोले बरसाने शुरू किए। ६-७ आदमी पानी लेने के लिए पहुंचे, जिनमें से चार वहीं पर मर गए, शेष अपने बरतन छोड़ कर भाग आए। चार घण्टे तक किसी को नहाने धोने तक के लिए पानी न मिल सका। इस पर पच्छिमी और दक्खिनी फाटकों के तोपचियों ने कम्पनी की सेना के ऊपर लगातार गोलेबारी शुरू की और कम्पनी की जो तोपें शङ्कर क़िले पर हमला कर रही थीं उनके मुँह फेर दिए। तब जाकर लोगों को नहाने और पीने के लिए पानी मिल सका। इमली के दरख़्तों के नीचे बारूद का एक कारख़ाना था। × × × एक गोला इस कारख़ाने पर पड़ा जिससे ३० आदमी और ८ स्त्रियाँ मर गईं। उसी दिन सबसे अधिक शोर मचा। उस दिन का संग्राम भीषण था। बन्दूकों की आवाज़ दिलों को दहलाती थी, तोपें ज़ोरों के साथ चल रही थीं। जगह जगह तुरही और बिगुल की आवाज़ सुनाई देती थी। आसमान धुएँ और गर्द से भरा हुआ था। शहर फ़सील के ऊपर के कई तोपची और अनेक सिपाही मारे गए। उनकी जगह दूसरे नियुक्त कर दिए गए। रानी लक्ष्मीबाई उस दिन बड़े परिश्रम के साथ कार्य करती रही। वह हर एक चीज़ को ख़ुद देखती थी, आवश्यक आज्ञाएँ जारी करती थी और दीवार में जहाँ कमज़ोरी देखती, तुरन्त मरम्मत कराती। रानी की इस उपस्थिति से सिपाहियों की हिम्मत बेहद बढ़ गई। वे बराबर लड़ते रहे।"*

किन्तु कम्पनी की विशाल सेना और उसके सामान के मुक़ाबले में झाँसी की सेना का अकेले बहुत अधिक देर तक ठहर सकना असम्भव था।

---

* D. B. Parasnis' *Life of Lakshmi Bai* (Marathi), pp. 187-93.

चरखारी का राजा

तात्या टोपे अपनी सेना सहित जमना के उत्तर में था। जमना पार कर अब वह चरखारी के राजा के यहाँ पहुँचा। चरखारी के राजा ने स्वाधीनता संग्राम में भाग लेने से इनकार कर दिया था। तात्या ने चरखारी पर हमला किया, राजा से २४ तोपें छीनी और तीन लाख रुपये युद्ध के ख़र्च के लिए वसूल किए। इसके बाद तात्या कालपी पहुँचा। कालपी में उसे रानी लक्ष्मीबाई का एक पत्र मिला जिसमें रानी ने उससे झाँसी की मदद के लिए पहुँचने की प्रार्थना की थी। तात्या झाँसी की ओर बढ़ा, लिखा है कि तात्या के अधीन एक विशाल सेना थी। कम्पनी की सेना एक बार सङ्कट में पड़ गई, सामने की ओर रानी लक्ष्मीबाई और पीछे की ओर तात्या टोपे की सेना। किन्तु कम्पनी की सेना ने इस समय ख़ासी हिम्मत से काम लिया और तात्या की सेना ने मालूम होता है काफ़ी कायरता दिखाई। १ अप्रैल को अंगरेज़ी सेना ने साहस के साथ पीछे मुड़ कर तात्या की सेना पर हमला किया। तात्या के क़रीब डेढ़ हज़ार आदमी मारे गए। उसकी तोपें अंगरेज़ों के हाथ आईं।

क्रान्तिकारियों की स्थिति

झाँसी की स्थिति अब और भी अधिक निराशाजनक होगई, फिर भी रानी लक्ष्मीबाई ने हिम्मत न हारी। ३ अप्रैल को अंगरेज़ी सेना ने झाँसी पर अन्तिम बार हमला किया। चारों ओर से एक साथ आक्रमण होने लगा। रानी अपने घोड़े के ऊपर सवार सिपाहियों और अफ़सरों के हौसले बढ़ाती हुई, उनमें ज़ेवर और

रानी लक्ष्मी बाई, झांसी का संग्राम

[श्री वासुदेव राव सूबेदार, सागर, की कृपा द्वारा एक समकालीन चित्र से]

ख़िलअत बाँटती हुई, बिजली की तरह इधर से उधर तक फिर रही थी। शत्रु ने पहले नगर के उत्तर की ओर सदर दरवाज़े पर ज़ोर दिया। आठ स्थानों पर सीढ़ियाँ लग गईं। रानी की तोपों ने अपना काम जारी रक्खा। अंगरेज़ अफ़सर डिक और मिचेलजॉन ने सीढ़ियों पर चढ़ कर अपने साथियों को ललकारा, किन्तु तुरन्त दो गोलियों ने इन दोनों बहादुर अंगरेज़ों को वहीं पर ढेर कर दिया। बोनस और फ़ॉक्स ने उनका स्थान लिया, वे दोनों भी मार डाले गए। आठों सीढ़ियाँ टूट कर गिर पड़ीं। इतिहास लेखक लो लिखता है कि झाँसी की दीवारों से गोलों और गोलियों की बौछार उस दिन अत्यन्त ही भीषण थी, जिसके कारण अंगरेज़ी सेना को पीछे हट जाना पड़ा।

विश्वासघातक की करतूत

किन्तु जब कि उत्तर की ओर सदर दरवाज़े की यह स्थिति थी, कहते हैं कि किसी भारतीय विश्वासघातक की सहायता से कम्पनी की सेना दक्खिनी दरवाज़े से नगर में घुस आई। इसके बाद कम्पनी की सेना एक स्थान के बाद दूसरा स्थान विजय करती हुई महल की ओर बढ़ चली।

रानी लक्ष्मीबाई का प्रयत्न

रानी ने क़िले की फ़सील पर से नगरनिवासियों के संहार और उनकी बरबादी को देखा। वह तुरन्त एक हज़ार सिपाहियों सहित अंगरेज़ी सेना की ओर लपकी। दोनों ओर से बन्दूकों को फेंक कर तलवारों की लड़ाई होने लगी। दोनों ओर अनेक जानें गईं।

कम्पनी की सेना को कुछ दूर तक फिर पीछे हटना पड़ा। इतने में किसी ने आकर रानी को सूचना दी कि सदर दरवाज़े का रक्षक सरदार खुदाबख़्श और तोपख़ाने का अफ़सर सरदार ग़ुलाम ग़ौस ख़ाँ, दोनों मारे गए, जिसका अर्थ यह था कि उत्तर की ओर का दरवाज़ा भी अब शत्रु के लिए खुल गया। रानी का दिल टूट गया एक बार उसने क़िले के मैगज़ीन में अपने हाथ से आग लगा कर उसके साथ अपने प्राण दे देने का इरादा किया। किन्तु फिर अधिक सोच समझ कर उसने झाँसी से बाहर कहीं और पहुँच कर स्वाधीनता संग्राम में सहायता देने का निश्चय किया। झाँसी पर कम्पनी का क़ब्ज़ा हो गया।

रानी लक्ष्मीबाई कालपी की ओर

रानी लक्ष्मीबाई ने उसी दिन रात को सदा के लिए झाँसी छोड़ दी। हथियार बाँधे हुए, मरदाना वेष में और अपने दत्तक पुत्र दामोदर को कमर से कसे हुए वह क़िले की दीवार पर से एक हाथी की पीठ पर कूद पड़ी। वह अपने प्यारे सफ़ेद घोड़े पर सवार हुई १० या १५ सवार उसने अपने साथ लिए और कालपी की ओर रवाना हुई।

सौ मील का अश्वारोहण

लेफ़्टिनेण्ट बोकर ने कुछ चुने हुए सवार लेकर रानी का पीछा किया। रानी और उसके साथियों ने अपने घोड़ों को सरपट छोड़ दिया। बोकर और उसके सवार बराबर पीछा करते रहे। सुबह होते होते रानी एक क्षण भर के लिए भाण्डेर नामक ग्राम के पास ठहरी।

गाँव से दूध लेकर उसने दामोदर को पिलाया। किन्तु अंगरेज़ी सैन्यदल बराबर पीछा कर रहा था। रानी तुरन्त अपने साथियों सहित फिर घोड़ों पर चढ़ कर कालपी की ओर बढ़ी। लेफ़्टिनेण्ट बोकर का घोड़ा रानी के घोड़े के पास आ पहुँचा। रानी ने तुरन्त अपनी तलवार खींच ली। रानी लक्ष्मीबाई की तलवार के एक वार में घायल होकर बोकर अपने घोड़े से गिर पड़ा। रानी के साथ के सवारों और बोकर के साथ के सवारों में तलवार के हाथ होने लगे। अन्त में घायल बोकर और उसके साथी हार कर पीछे रह गये। रानी और उसके साथियों ने फिर अपने घोड़ों को सरपट छोड़ दिया। सुबह से दोपहर हो गया और दोपहर से तीसरा पहर, किन्तु रानी को ठहरने का अवकाश न मिल सका। चलते चलते शाम हो गई, तारे निकल आए, किन्तु फिर भी रानी न रुकी। अन्त में आधी रात के क़रीब अपने बच्चे दामोदर को कमर से बाँधे हुए, झाँसी से कालपी तक १०२ मील से ऊपर फ़ासला तय करके रानी लक्ष्मीबाई ने कालपी में प्रवेश किया।

रानी का प्यारा घोड़ा कालपी पहुँचते ही गिर कर मर गया। रानी ने शेष रात कालपी में विश्राम लिया।

सुबह को रानी लक्ष्मीबाई, नाना साहब के भतीजे रावसाहब और सेनापति तात्या टोपे में परस्पर बातचीत हुई।

बाँदा का नवाब

जिस प्रकार सरह्यू रोज़ मऊ से झाँसी की ओर रवाना हुआ था उसी प्रकार जनरल ह्विटलॉक १७ फ़रवरी सन् १८५८ को जबलपुर से सागर इत्यादि फिर

से विजय करने के लिये निकला था। ह्विटलॉक के साथ भी काफ़ी गोरी और देशी पलटनें थीं। ओरछा का राजा ह्विटलॉक के साथ हो गया। सागर के बाद ह्विटलॉक बाँदा की ओर बढ़ा। बाँदा के नवाब ने अनेक अंगरेज़ों को अपने महल में आश्रय दे रक्खा था, उसका व्यवहार उनके साथ अत्यन्त उदार था। किन्तु साथ ही वह अपने प्रान्त के क्रान्तिकारियों का एक मुख्य नेता था। शुरू में ही उसने बाँदा से अंगरेज़ी राज के चिन्ह उखाड़ कर सम्राट बहादुरशाह का हरा झण्डा नगर के ऊपर लगा दिया था।

ह्विटलॉक को आते देख कर नवाब मुक़ाबले के लिए तैयार हो गया। कई लड़ाइयाँ हुईं, अन्त में नवाब की हार रही। विजयी ह्विटलॉक ने १९ अप्रैल को बाँदा में प्रवेश किया। नवाब अपनी कुछ सेना सहित नगर छोड़ कर कालपी की ओर निकल गया।

करवी का राव

इसके बाद ह्विटलॉक ने करवी के राव माधोराव पर चढ़ाई की। माधोराव दस वर्ष का बालक था। उसकी नाबालिग़ी के दिनों में रियासत का प्रबन्ध कम्पनी के नियुक्त किए हुए एक कारबारी के हाथों में था। करवी के राव ने क्रान्ति में किसी तरह का भाग न लिया था। ह्विटलॉक के आने का समाचार सुन कर वह स्वागत के लिए आगे बढ़ा। ह्विटलॉक और उसकी सेना ने नगर में प्रवेश किया। तुरन्त बालक माधोराव को कैद कर लिया गया, महल को गिरा दिया गया, राजधानी को लूट लिया गया और रियासत को कम्पनी के राज

में मिला लिया गया। इस घटना के विषय में इतिहास लेखक मॉलेसन लिखता है—

"ह्विटलॉक की सेना के ऊपर वहां किसी ने एक गोली भी न चलाई थी, फिर भी ह्विटलॉक ने इरादा कर लिया कि बालक राव के साथ इस प्रकार का व्यवहार किया जाय जैसा किसी ऐसे मनुष्य के साथ किया जाता है जो अंगरेज़ी सेना के विरुद्ध लड़ा हो। इस बेईमानी और अन्याय का कारण यह था कि करवी के महल में माल भरा हुआ था जिससे सिपाहियों को अनेक कठिन संग्रामों और गरमी की कष्टकर यात्राओं के लिए इनाम दिए जा सकते थे। करवी के महल के तहख़ानों और ख़ज़ानों में सोना, चाँदी, जवाहरात और क़ीमती हीरे भरे हुए थे। × × × ह्विटलॉक को इस धन का लोभ था।"*

इसके बाद ह्विटलॉक महोबा पहुँचा, वहाँ से उसने सेना भेज कर आस पास के क्रान्तिकारियों को दमन करना शुरू किया।

क्रान्तिकारियों में अव्यवस्था

रानी लक्ष्मीबाई, रावसाहब, तात्या टोपे, बाँदा का नवाब, शाहगढ़ और बानापुर के राजा और अन्य अनेक क्रान्तिकारी नेता उस समय अपनी अपनी सेना सहित कालपी में मौजूद थे। इस विशाल सैन्य-

* "Not a shot had been fired against him (Whitlock), but he resolved never the less to treat the young Rao as though he had actually opposed the British forces. The reason for this perversion of honest dealing lay in the fact that in the palace of Kirwi was stored the where-withall to compensate soldiers for many a hard fight and many a broiling sun In its vaults and strong rooms were specie, jewels, and diamonds of priceless value . . . . The wealth was coveted."—Kaye and Malleson's *Indian Mutiny*, vol. v, p. 140-41.

दल के लिए शत्रु पर विजय प्राप्त कर सकना अधिक कठिन न होता। किन्तु इन क्रान्तिकारियों में कोई एक व्यक्ति ऐसा न था जो शेष सब को अपनी आज्ञा के अधीन कर सके। रानी सब से योग्य थी, किन्तु वह स्त्री थी और उसकी आयु केवल २२ वर्ष की थी। तात्या टोपे वीर और दक्ष सेनापति था, किन्तु वह एक साधारण घराने में उत्पन्न हुआ था। प्राचीन ख़ानदानी नरेशों का एक स्त्री के या साधारण कुल में पैदा हुए मनुष्य के मातहत काम करना उस समय तक इतना सरल न था। ठीक यही दोष दिल्ली के पतन का भी मुख्य कारण रह चुका था। फिर भी रानी लक्ष्मीबाई कुछ सेना लेकर कालपी से ४२ मील दूर कछ्रगाँव पहुँची। कछ्रगाँव में फिर सर ह्यू रोज़ की सेना से लक्ष्मीबाई की सेना का आमना सामना हुआ। नेताओं में मतभेद और अव्यवस्था बनी रही। किसी ने रानी को यथेच्छ सहायता न दी। नतीजा यह हुआ कि कछ्रगाँव में फिर क्रान्तिकारियों की हार रही। इतिहास लेखक मॉलेसन ने बड़ी प्रशंसा के साथ लिखा है कि पराजय के बाद क्रान्तिकारी सेना आश्चर्यजनक व्यवस्था के साथ कालपी की ओर लौट आई।* किन्तु मालूम होता है यह व्यवस्था उनमें पराजय के बाद पैदा हुई।

कालपी का संग्राम

सर ह्यू रोज़ ने अब कालपी पर हमला किया। लक्ष्मीबाई ने अपनी पराजित सेना को फिर से प्रोत्साहित किया। वह अपने सवारों सहित स्वयं सर ह्यू

* Malleson's *Indian Mutiny*, vol. v, p. 124.

रोज़ के मुक़ाबले के लिए आगे बढ़ी। खूब घमासान संग्राम हुआ। एक बार अंगरेज़ी सेना के दाहिने भाग को पीछे हट जाना पड़ा। कम्पनी के तोपची अपनी तोपें छोड़ कर भाग गए। लक्ष्मीबाई अपने घोड़े पर सब से आगे थी। इसके बाद स्वयं सर ह्यू रोज़ बाईं ओर से मुड़ कर लक्ष्मीबाई के मुक़ाबले के लिए बढ़ा। अन्त में मैदान सर ह्यू रोज़ के हाथों रहा। २४ मई को कम्पनी की सेना ने कालपी में प्रवेश किया। कालपी के क़िले में अंगरेज़ों को क़रीब ७०० मन बारूद और असंख्य अस्त्र शस्त्र और अन्य सामान हाथ आया। रानी लक्ष्मीबाई, रावसाहब और बाँदे के नवाब और थोड़ी सी सेना सहित, कालपी छोड़ कर निकल गई।

निस्सन्देह सर ह्यू रोज़, जो इस समय तक क़रीब एक हज़ार मील की कठिन यात्रा कर, पहाड़ों, जङ्गलों और नदियों को पार कर, बड़ी बड़ी सेनाओं पर विजय प्राप्त कर चुका था और नरबदा से जमना तक का प्रदेश कम्पनी के लिए फिर से विजय कर चुका था, कम्पनी के अत्यन्त योग्य और वीर सेनापतियों में से था।

सींधिया के नाम क्रान्तिकारियों का पत्र

क्रान्तिकारियों के पास अब न सामान था, न कोई ढङ्ग की सेना और न कोई क़िला। फिर भी लक्ष्मीबाई और तात्या टोपे ने हिम्मत न हारी। तात्या गुप्त रीति से कालपी से निकल कर ग्वालियर पहुँचा। ग्वालियर में उसने महाराजा सींधिया की सेना और प्रजा को अपनी ओर किया। इस नई सेना को साथ लेकर

वह फिर पीछे मुड़ा। गोपालपुर में तात्या, लक्ष्मीबाई, बाँदा के नवाब और रावसाहब की फिर भेंठ हुई। लक्ष्मीबाई ने अब रावसाहब को सबसे पहले ग्वालियर विजय करने की सलाह दी, ताकि क्रान्तिकारियों का फिर से एक नया केन्द्र बन सके। २८ मई सन् १८५८ को सब क्रान्तिकारी नेता ग्वालियर के सामने पहुँच गए। महाराजा सींधिया के पास नीचे लिखा पत्र भेजा गया—

"हम लोग आपके पास मित्र भाव से आ रहे हैं। आप हमारे (पेशवा के) और अपने पूर्व सम्बन्ध को स्मरण कीजिए। हमें आपसे सहायता की आशा है, ताकि हम दक्खिन की ओर बढ़ सकें, इत्यादि।"

ग्वालियर पर क्रान्तिकारियों का क़ब्ज़ा

जयाजीराव सींधिया इन लोगों की ओर मित्रता दर्शाने के स्थान पर १ जून सन् १८५८ को अपनी सेना और तोपों सहित उनके मुक़ाबले के लिए निकला। सींधिया के इरादे को देख कर रानी लक्ष्मीबाई तीन सौ सवारों सहित सींधिया की तोपों पर टूट पड़ी। किन्तु सींधिया की अधिकांश सेना पहले ही तात्या को वचन दे चुकी थी। ये लोग तुरन्त अपने अफ़सरों सहित क्रान्तिकारियों की ओर आ मिले। ग्वालियर की तोपें ठण्डी हो गईं। जयाजीराव और उसके मन्त्री दिनकरराव को मैदान छोड़ कर आगरे की ओर भाग जाना पड़ा। ग्वालियर की प्रजा ने हर्ष और उल्लास के साथ विजयी क्रान्तिकारियों का स्वागत किया।

ग्वालियर की सेना ने पेशवा नाना साहब के प्रतिनिधि राव साहब को पेशवा मान कर तोपों की सलामी दी। सींधिया के

अर्थसचिव अमरचन्द भाटिया ने सींधिया का सारा ख़ज़ाना क्रान्तिकारी नेताओं के हवाले कर दिया।

३ जून सन् १८५८ को फूलबाग़ में एक बहुत बड़ा दरबार हुआ। तमाम सामन्तों, सरदारों और अमीरों ने अपना अपना स्थान ग्रहण किया। अरब, रुहेला, राजपूत और मराठा पलटनें अपनी वर्दियाँ पहरे दरबार में जमा होगई। पेशवा का शिरपना और कलग़ी तुर्रा रावसाहब के सिर पर रक्खा गया। समस्त दरबार ने रावसाहब को पेशवा स्वीकार किया। पेशवा के मन्त्री नियुक्त कर दिये गए। तात्या टोपे प्रधान सेनापति नियुक्त हुआ। बीस लाख रुपये सेना में तक़सीम कर दिए गए और अन्त में तोपों की सलामी हुई।

तात्या और लक्ष्मी बाई की योग्यता

इस प्रकार तात्या और लक्ष्मीबाई ने दिल्ली, कानपुर और लखनऊ के स्थान पर सन् ५७-५८ के क्रान्तिकारियों को एक नया और ज़बरदस्त केन्द्र प्रदान कर दिया। तात्या और लक्ष्मीबाई की इस कारग्वाई को बयान करते हुए इतिहास लेखक मॉलेसन लिखता है—

"इस प्रकार जो बात असम्भव मालूम होती थी वह होगई। × × × सर ह्यू रोज़ समझ गया कि—अब देर करने से कितनी ज़बरदस्त हानि असन्दिग्ध है। यदि ग्वालियर तुरन्त विप्लवकारियों के हाथों से न छीन लिया गया तो कोई यह पहले से नहीं कह सकता कि नतीजा कितना अधिक बुरा हो सकता है। यदि विद्रोहियों को अवकाश मिल गया तो तात्या टोपे, जिसका राजनैतिक और सैनिक बल ग्वालियर पर क़ब्ज़ा हो जाने के कारण बेहद बढ़ गया है और जिसके पास इस समय ग्वालियर के समस्त जन, वहाँ का धन

और सामान मौजूद हैं, कालपी की पराजित सेना के अवशेषों पर एक नई सेना खड़ी कर लेगा और समस्त भारत के अन्दर एक मराठा विप्लव पैदा कर देगा। तात्याटोपे इस काम में बड़ा चतुर था। ऐसी हालत में सम्भव है कि वह पेशवा का झण्डा फहरा कर दक्खिन महाराष्ट्र के ज़िलों को भड़का दे। उन ज़िलों में अंगरेज़ी सेना बाक़ी नहीं है। यदि मध्य भारत में विप्लवकारियों को ख़ासी सफलता मिल गई तो सम्भव है कि दक्खिन के लोग फिर से पेशवा की उस सत्ता के लिए खड़े हो जायँ, जिसके लिए उनके पूर्वज युद्ध कर चुके थे और अपना रक्त बहा चुके थे।"*

लक्ष्मीबाई की नेक सलाह

लक्ष्मीबाई ने अब इस बात पर ज़ोर दिया कि और सब काम छोड़ कर सेना को तुरन्त सन्नद्ध कर मैदान में लाया जाय। रावसाहब और अन्य नेताओं ने रानी की इस सलाह की अवहेलना की। अमूल्य समय दावतों और उत्सवों में नष्ट किया गया। इतने में सर ह्यू रोज़ अपनी सेना सहित वेग के साथ ग्वालियर पर टूट पड़ा। सर ह्यू रोज़ ने महाराजा सींधिया को अपने साथ रक्खा और एलान किया कि कम्पनी की सेना केवल सींधिया को ग्वालियर की गद्दी पर फिर से स्थापित करने के लिए आई है।

लक्ष्मीबाई की व्यूह रचना

तात्याटोपे मुक़ाबले के लिए आगे बढ़ा। ग्वालियर की सेना इससे पहले उत्तर भारत में एक बार कम्पनी की सेना से हार खा चुकी थी। थोड़ी देर के संग्राम के बाद ही ग्वालियर की सेना में उथल

* Ibid, vol. v, p. 149-50.

पुथल मच गई। रावसाहव घवरा गया। लक्ष्मीवाई ने फिर एक वार विखरी हुई सेना में नई जान फूंकी। उसने फिर से सेना की व्यूह रचना की और नगर के पूर्वीय फाटक की रक्षा का भार स्वयं अपने ऊपर लिया।

ग्वालियर का संग्राम

लक्ष्मीवाई के साथ उसकी दो सहेलियाँ मन्दरा और काशी घोड़ों पर सवार वीरता के साथ शस्त्र चला रही थीं। प्रसिद्ध सेनापति जनरल स्मिथ अव लक्ष्मीवाई के मुक़ावले के लिए वढ़ा। कई वार स्मिथ की सेना ने पूर्वीय फाटक पर हमला किया, किन्तु हर वार उसे हार कर पीछे हट जाना पड़ा। कई वार रानी लक्ष्मीवाई ने फाटक से निकल कर वाहर की सेना पर हमला किया और अनेक शत्रुओं को मैदान में समाप्त कर फिर अपने फाटक को आ सँभाला। लिखा है लक्ष्मीवाई उस दिन सुवह से शाम तक घोड़े पर सवार विजली की तरह इधर से उधर जाती हुई दिखाई देती रही। अन्त में जनरल स्मिथ को उस ओर का प्रयत्न छोड़ कर पीछे हट जाना पड़ा। १७ जून सन् १८५८ का मैदान रानी लक्ष्मीवाई के हाथों रहा।

लक्ष्मीवाई की वीरता

१८ जून को जनरल स्मिथ और अधिक सेना लेकर फिर उसी फाटक पर पहुँचा। उस दिन अंगरेज़ी सेना ने कई ओर से ग्वालियर के क़िले पर हमला किया। जनरल स्मिथ के साथ सेनापति सर ह्यू रोज़ भी रानी लक्ष्मीवाई के मुक़ावले के लए पूर्वीय फाटक के सामने दिखाई दिया। वहुत सवेरे, जव कि लक्ष्मीवाई अपनी दोनों

सहेलियों सहित शरवत पी रही थी, ख़बर मिली कि कम्पनी की सेना वढ़ी चली आ रही है। तुरन्त शरवत का कटोरा फेंक कर रानी अपनी सहेलियों सहित आगे वढ़ी। लक्ष्मीवाई उस दिन मरदाना वेप में थी। एक अंगरेज़ दर्शक लिखता है—

"तुरन्त सुन्दर रानी मैदान में पहुँच गई। सर ह्यू रोज़ की सेना के मुक़ाबले में उसने दृढ़ता के साथ अपनी सेना को खड़ा किया। बार बार उसने प्रचण्ड वेग के साथ सर ह्यू रोज़ की सेना पर हमला किया। रानी का दल कई स्थानों पर शत्रु के गोलों से बिंध गया। उसके सैनिकों की संख्या निरन्तर कम होती चली गई। फिर भी रानी सदा सबके आगे दिखाई देती थी। वह बार बार अपनी बिखरी हुई सेना को जमा करती रही और पद पद पर अलौकिक वीरता का परिचय देती रही। किन्तु इस सब से भी काम न चला। स्वयं सर ह्यू रोज़ ने अपने सांडनी सवारों सहित आगे बढ़ कर रानी लक्ष्मीबाई की अन्तिम व्यूह रचना को तोड़ डाला। इस पर भी वीर और निर्भीक रानी अपने स्थान पर डटी रही।"

जब कि रानी लक्ष्मीवाई इस 'अलौकिक वीरता' के साथ सर ह्यू रोज़ का मुक़ाबला कर रही थी, शेप अंगरेज़ी सेना अन्य क्रान्तिकारी दलों को चीरती हुई पीछे की ओर से रानी पर आ टूटी। लक्ष्मीवाई अब दोनों ओर से घिर गई।

लक्ष्मीबाई का अद्भुत शौर्य

ग्वालियर की तोपें ठण्डी हो गईं। मुख्य सेना तितर वितर हो गई। विजयी अंगरेज़ सेना चारों ओर से रानी के अधिकाधिक निकट वढ़ी आ रही थी। रानी के पास केवल उसकी दोनों सहेलियाँ और १५

रानी लक्ष्मी बाई, मृत्यु से थोड़ी देर पूर्व

[श्री वासुदेव राव सूबेदार, सागर, की कृपा द्वारा, एक समकालीन चित्र से]

२० सवार बाक़ी रह गए। रानी ने अपने घोड़े को सरपट छोड़ा और शत्रु को चीरते हुए दूसरी ओर की क्रान्तिकारी सेना से जाकर मिलना चाहा। अंगरेज़ सवारों ने उसका पीछा किया। रानी अपनी तलवार से मार्ग काटती हुई आगे बढ़ी। अचानक एक गोली उसकी सहेली मन्दरा के आकर लगी। मन्दरा घोड़े से गिर कर समाप्त हो गई। रानी ने तुरन्त मुड़ कर अपनी तलवार से उस गोरे सवार पर वार किया, जिसकी गोली ने मन्दरा को समाप्त किया था। सवार कट कर गिर पड़ा, रानी फिर आगे बढ़ी। सामने एक छोटा सा नाला था। एक छलाँग के बाद अंगरेज़ सवारों का रानी लक्ष्मीबाई को छू सकना असम्भव हो जाता, किन्तु दुर्भाग्यवश रानी का घोड़ा नया था। पिछले संग्रामों के अन्दर उसके कई प्यारे घोड़े उसके नीचे समाप्त हो चुके थे। घोड़ा बजाय छलाँग मारने के नाले के इस पार चक्कर खाने लगा। अंगरेज़ सवार अब और अधिक निकट आ पहुँचे। रानी चारों ओर से घिर गई।

लक्ष्मीबाई का बलिदान

रानी उस समय बिलकुल अकेली रह गई। उसने अकेले ही उन सब का अपनी तलवार से मुक़ाबला किया। एक सवार ने पीछे से आकर रानी के सिर पर वार किया। सिर का दहिना भाग अलग हो गया दाहिनी आँख भी निकल कर बाहर आगई, फिर भी लक्ष्मीबाई घोड़े पर डटी हुई अपनी तलवार चलाती रही। इतने में एक वार रानी की छाती पर हुआ। सर और छाती दोनों से खून का फ़व्वारा

छूटने लगा। वेहोश होते होते रानी ने अपनी तलवार से उस गोरे सवार को, जिसने सामने से रानी पर वार किया था, काट कर गिरा दिया! किन्तु इसके वाद लक्ष्मीवाई की भुजा में और अधिक शक्ति न रह गई।

लक्ष्मीवाई का एक वफ़ादार नौकर रामचन्द्रराव देशमुख उस समय पास था। घटनास्थल के निकट गङ्गादास वावा की कुटियो थी। रामचन्द्रराव रानी को उठा कर उस कुटिया में ले गया। गङ्गादास वावा ने रानी को पीने के लिए ठण्डा पानी दिया और उसे अपनी कुटिया में लिटा दिया।

लक्ष्मीवाई का अन्तिम संस्कार

चन्द मिनट के अन्दर ही रानी लक्ष्मीवाई का शरीर ठण्डा पड़ गया। रामचन्द्रराव ने रानी की अन्तिम इच्छा के अनुसार शत्रु से छिपा कर घास की एक छोटी सी चिता वनाई और उस पर रानी लक्ष्मी वाई के मृत शरीर को लिटा दिया। थोड़ी देर के अन्दर आग की लपटों में लक्ष्मीवाई के शरीर की केवल अस्थियाँ शेष रह गई।

लक्ष्मीवाई का चरित्र

निस्सन्देह महारानी लक्ष्मीवाई का समस्त व्यक्तिगत जीवन जितना पवित्र और निष्कलङ्क था उसकी मृत्यु भी उतनी ही वीरोचित थी। संसार के इतिहास में कदाचित् विरले ही उदाहरण इस तरह की स्त्रियों के मिलेंगे जिन्होंने इतनी छोटी आयु में इस प्रकार शुद्ध जीवन व्यतीत करने के वाद लक्ष्मीवाई की सी अलौकिक वीरता और असाधारण युद्ध कौशल के साथ किसी भी देश की स्वाधीनता

के लिए युद्ध किया हो अथवा इस प्रकार अपने आदर्श के लिए लड़ते लड़ते युद्धक्षेत्र में प्राण दिए हों।

इतिहास लेखक विन्सेण्ट स्मिथ ने, जो भारतीय आदर्शों या भारतवासियों के मानव अधिकारों का अधिक पक्षपाती नहीं है, महारानी लक्ष्मीबाई को "स्वाधीनता संग्राम के नेताओं में सब से अधिक योग्य नेता"* स्वीकार किया है।

दक्खिन में क्रान्ति की चिनगारियाँ

सन् ५७ के विप्लव का मुख्य क्षेत्र उत्तरी भारत था। यदि विन्ध्याचल से दक्खिन का भाग क्रान्ति का उसी प्रकार साथ दे जाता जिस प्रकार उत्तर का, तो मद्रास और बम्बई की सेनाओं का उत्तर की ओर जाकर बिहार, बनारस, इलाहाबाद, अवध और रुहेलखण्ड को फिर से विजय कर सकना असम्भव होता और क्रान्ति का अन्तिम परिणाम बिलकुल दूसरा ही होता। दक्खिन में क्रान्ति के प्रचारक पहुंच चुके थे, अनेक स्थानों में कुछ हुआ भी, किन्तु यह सब इतना कुसमय और इतने अव्यवस्थित ढङ्ग से हुआ कि अंगरेज़ों के लिए उसे दमन करना अत्यन्त सरल हो गया और क्रान्तिकारियों को उससे विशेष लाभ न पहुँच सका।

कोल्हापुर में क्रान्ति

लन्दन के अन्दर रङ्गो बापूजी और अज़ीमुल्ला ख़ाँ की भेंट का ज़िक्र एक पिछले अध्याय में किया जा चुका है। सतारा में बैठ कर रङ्गो बापूजी नाना साहब के

* ". . . the ablest of the rebel leaders."—*The Oxford Student's History of India*, by Vincent A. Smith, p. 328.

साथ पत्र व्यवहार करता रहा और दक्खिन के अनेक सरदारों और नरेशों को क्रान्ति की ओर करने के प्रयत्न करता रहा। १३ जुलाई सन् १८५७ को कोल्हापुर की देशी पलटन बिगड़ी। सिपाहियों ने अपने कुछ अंगरेज़ अफ़सरों को मार डाला और ख़ज़ाने पर क़ब्ज़ा कर लिया। किन्तु चन्द महीने के अन्दर ही अंगरेज़ों ने वहाँ के क्रान्तिकारियों का दमन कर दिया। १५ दिसम्बर को महाराजा के छोटे भाई चिमना साहब की मदद से कोल्हापुर के नगर में फिर विप्लव शुरू होगया। नगर के फाटक बन्द कर दिए गए, फ़सील पर तोपें चढ़ा दी गईं, और स्वाधीनता का ढिंढोरा पिटवा दिया गया। अंगरेज़ी सेना पहुँची, ख़ासा घमासान संग्राम हुआ। किन्तु विजय अंगरेज़ों की ही रही। विजय के बाद अनेक लोग तोपों के मुंह से उड़ा दिए गए।

अन्य स्थान

अगस्त सन् ५७ में बेलगाँव की देशी पलटन में क्रान्ति के लक्षण दिखाई दिए। नेताओं को तोप के मुंह से उड़ा दिया गया। बेलगाँव और धारवाड़ को शान्त कर दिया गया।

रङ्गो बापूजी का एक बेटा फाँसी पर लटका दिया गया। सतारा राजकुल के दो व्यक्तियों को निर्वासित कर दिया गया। रङ्गो बापूजी सतारा से हट गया। उसके पकड़ने के लिए बड़े बड़े इनामों का एलान किया गया। किन्तु उसका पता न चला।

बम्बई की कुछ देशी पलटनों ने निश्चय कर रक्खा था कि पहले बम्बई शहर में क्रान्ति प्रारम्भ की जाय, फिर पूना जाकर पूना

पर क़ब्ज़ा कर लिया जाय और नाना साहब को पेशवा एलान कर दिया जाय।* बम्बई के सिपाही अभी सलाहें ही कर रहे थे कि अंगरेज़ों को पता चल गया। कुछ को फाँसी दे दी गई, कुछ को देश निकाला और मामला ठण्डा होगया।

नागपुर के निकट के कुछ देशी सिपाहियों ने १३ जून सन् ५७ अपने लिए नियत कर रक्खी थी। कई बड़े बड़े नागरिक भी इस सलाह में शामिल थे। किन्तु मद्रास की देशी पलटनों ने समय से पहले पहुँच कर नागपुर को ठीक कर लिया।

जबलपुर

जबलपुर प्रान्त का गोंड राजा शङ्करसिंह और उसका पुत्र क्रान्ति के सच्चे भक्त थे। उन्होंने जबलपुर की ५२ नम्बर देशी पलटन को अपनी ओर कर लिया। अंगरेज़ों को पता चल गया। १८ सितम्बर सन् ५७ को राजा शङ्करसिंह और उसके बेटे को तोप के मुंह से उड़ा दिया गया। इस पर ५२ नम्बर पलटन बिगड़ी। एक अंगरेज़ मार डाला गया। ५२ नम्बर पलटन के कुछ सिपाहियों ने अन्य स्थानों पर जाकर क्रान्ति में भाग लिया।

दिल्ली के शहज़ादे फ़ीरोज़शाह ने रियासत धार में, महीदपुर में, गोरिया में और अन्य स्थानों में क्रान्ति की योजनाएँ कीं। किन्तु अधिक सफलता न हो सकी।

हैदराबाद

दक्खिन में हैदराबाद एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान था। एक अंगरेज़ इतिहास लेखक लिखता है—"तीन

* Forrest's *Real Danger in India*

महीने तक हिन्दोस्तान की क़िस्मत निज़ाम अफ़ज़लुद्दौला और उसके वज़ीर सर सालारजङ्ग के हाथों में थी।" निस्सन्देह यदि हैदराबाद का निज़ाम क्रान्तिकारियों का साथ दे जाता तो समस्त दक्खिनी भारत में भयङ्कर आग लग जाती। जून और जुलाई सन् ५७ में हैदराबाद के नगर निवासियों के अन्दर क्रान्ति की ओर बेहद जोश दिखाई दिया। बड़े बड़े मौलवियों ने अंगरेज़ों के विरुद्ध फ़तवे निकाले, क्रान्ति के पक्ष में हज़ारों पत्रिकाएँ बाँटी गईं, मसजिदों में बड़ी बड़ी सभायें हुईं, कुछ मुसलमान सिपाही भी बिगड़े, किन्तु निज़ाम और उसके वज़ीर ने अंगरेज़ों का सच्चा साथ दिया, क्रान्तिकारी नेताओं को पकड़ कर उनके हवाले कर दिया, स्वयं कम्पनी की सेना की मदद से विद्रोही सिपाहियों को कटवा डाला और हैदराबाद को बचाए रक्खा।

ज़ोरापुर का वीर बालक राजा

हैदराबाद ही के निकट एक छोटी सी रियासत ज़ोरापुर की थी। ज़ोरापुर का राजा छोटी उम्र का और क्रान्ति के पक्ष में था। अंगरेज़ों से लड़ने के लिए उसने अरब और रुहेले पठानों की एक सेना जमा कर ली। फ़रवरी सन् ५८ में वह हैदराबाद आया। सर सालारजङ्ग ने उसे गिरफ़ार करा कर अंगरेज़ों के हवाले कर दिया। गिरफ़्तारी के बाद इस बालक राजा का व्यवहार अत्यन्त प्रशंसनीय और वीरोचित था। एक अंगरेज़ अफ़सर मीडोज़ टेलर के साथ वह बड़ा मेल जोल रखता था, और उसे "अप्पा" कहा करता था। जेलख़ाने में मीडोज़ टेलर उससे मिलने गया। राजा

पूर्ववत् बड़े आदर से मिला। मीडोज़ टेलर ने उससे अन्य क्रान्तिकारी नेताओं के नाम पूछे। इस पर टेलर लिखता है,—"राजा ने बड़े गर्व के साथ अकड़ कर उत्तर दिया—

"नहीं अप्पा, मैं यह कभी नहीं बताऊँगा! आप मुझे सलाह देते हैं कि मैं रेज़िडेण्ट से जाकर मिलूं, किन्तु मैं यह नहीं करूँगा। शायद उसे यह आशा होगी कि मैं अपने प्राणों की भिक्षा माँगूंगा, किन्तु अप्पा! मैं दूसरे की भिक्षा पर कायर की तरह जीना नहीं चाहता और न मैं कभी अपने देशवासियों के नाम प्रकट करूँगा!"

मीडोज़ टेलर एक दिन फिर राजा के पास गया। उसने बालक राजा से कहा कि यदि तुम दूसरों के नाम बता दोगे तो तुम्हें क्षमा कर दिया जायगा। राजा ने उत्तर दिया—

"× × × क्या? जब कि मैं मौत के मुँह में जाने को तैयार हूं, क्या मैं विश्वासघात करके अपने देशवासियों के नाम प्रगट करूँगा? नहीं, नहीं! तोप, फाँसी, कालापानी—इनमें से कोई भी इतना भयङ्कर नहीं है जितना विश्वासघात!"

टेलर ने राजा को सूचना दी कि तुम्हें प्राणदण्ड दिया जायगा। राजा ने उत्तर दिया—

"किन्तु अप्पा, मुझे एक प्रार्थना करनी है; मुझे फाँसी न देना, मैं चोर नहीं हूं। मुझे तोप के मुँह से उड़ाना। फिर देखना कि मैं कितनी शान्ति के साथ तोप के मुंह पर खड़ा रह सकता हूं!"

टेलर के कहने सुनने से राजा को प्राणदण्ड के स्थान पर कालेपानी की सज़ा दी गई। जब उसे कालेपानी ले जा रहे थे,

राजा ने अपने किसी अंगरेज़ पहरेदार से खेल खेल में पिस्तौल ले ली और अवसर पाकर अपने ऊपर गोली दाग दी। इससे पहले उसने एक दिन कहा था—

"मैं कालेपानी से मौत को पसन्द करता हूँ! क़ैद और कालापानी? मेरी प्रजा में से तुच्छ से तुच्छ पहाड़ी भी जेल में रहना पसन्द न करेगा—फिर मैं तो उनका राजा हूँ!"

इस वीर बालक राजा का वृत्तान्त और उसके शब्द हमने मीडोज़ टेलर की अंगरेज़ी पुस्तक "स्टोरी ऑफ़ माई लाइफ़" से दिए हैं।

भास्करराव वावा साहब

ज़ोरापुर के राजा का एक साथी नारगुण्ड का राजा भास्कर राव बावा साहब था। बावा साहब की रानी बड़ी वीर और अंगरेज़ों की जानी दुश्मन थी। लिखा है कि बहुत दिनों तक सोचने विचारने के बाद रानी ही के कहने पर २५ मई सन् १८५८ को बावासाहब ने अंगरेज़ों के विरुद्ध युद्ध का एलान कर दिया। मॉनसन के अधीन कम्पनी की एक सेना नारगुण्ड की ओर बढ़ी। बावासाहब ने अपने कुछ सिपाहियों सहित मॉनसन को रात के समय नारगुण्ड के निकट जङ्गल में जा घेरा। संग्राम हुआ। मॉनसन मार डाला गया। उसका सर काट कर शेष धड़ जला दिया गया। कम्पनी की सेना हार कर भाग गई। अगले दिन मॉनसन का कटा हुआ सिर नारगुण्ड की फ़सील पर लटका दिया गया। इसके बाद बावासाहब का एक सौतेला भाई अंगरेज़ों से मिल गया।

अंगरेज़ी सेना ने नारगुण्ड पर फिर हमला किया। बाबासाहब की सेना हार गई। बाबासाहब स्वयं बच कर निकल गया। कुछ दिनों बाद बाबासाहब गिरफ़्तार कर लिया गया और १२ जून सन् १८५८ को उसे फाँसी पर लटका दिया गया। उसकी रानी और माता दोनों ने मालप्रभा नदी में कूद कर आत्महत्या कर ली।

कोमलदुर्ग के भीमराव ने और ख़ानदेश के भीलों और उनकी स्त्रियों ने तीर कमान लेकर अँगरेज़ों से युद्ध किया। किन्तु ये सब प्रयत्न अधिकतर समय निकल जाने के बाद हुए और आसानी से दमन कर दिए गए।

रंगून और बरमा में भी थोड़ा सा विप्लव हुआ, किन्तु कुसमय।

अब हम फिर क्रान्ति के सब से महान क्षेत्र अवध की ओर आते हैं। मौलवी अहमदशाह की हत्या से पहले लॉर्ड कैनिङ्ग ने अवध में यह एलान करवा दिया कि जो लोग हथियार रख देंगे उन्हें क्षमा कर दिया जायगा और उनकी जागीरें आदिक वापस दे दी जायँगी। किन्तु इसका विशेष असर दिखलाई न दिया। इसके बाद ५ जून सन् ५८ को अहमदशाह की हत्या हुई। अवध निवासियों का क्रोध फिर एक बार ज़ोरों से भड़क उठा। निज़ामअली ख़ाँ ने पीलीभीत पर हमला कर दिया। ख़ानबहादुर ख़ाँ चार हज़ार सेना जमा कर फिर मैदान में उतर आया। फ़र्रुख़ाबाद में पाँच हज़ार सिपाही नए सिरे से जमा होगए। नाना साहब, बाला साहब, विलायतशाह और अली ख़ाँ मेवाती के अधीन

अवध में नए सिरे से क्रान्ति की आग

हज़ारों सिपाही आ आकर जमा होने लगे। घाघरा नदी के किनारे चौक घाट में बेगम हज़रतमहल और सरदार मामू ख़ाँ की सेना थी। शाहज़ादा फ़ीरोज़शाह भी इस समय अवध में था। इनके अतिरिक्त रुइया का राजा नरपतसिंह, राजा रामबख़्श, बहुनाथ सिंह, चन्दासिंह, गुलाबसिंह, भूपालसिंह, हनुमन्तसिंह इत्यादि अनेक बड़े बड़े ज़मींदार अपने अपने सैन्यदल लेकर अवध को फिर से अंगरेज़ों के हाथों से छीनने के प्रयत्नों में लग गए। बूढ़े राजा बेनीमाधव ने फिर से लखनऊ पर चढ़ाई करने की तैयारी शुरू की।

अंगरेज़ यह सुन कर चकित रह गए कि १३ महीने तक लगातार युद्ध जारी रहने और ६ महीने से ऊपर लखनऊ में रक्त की नदियाँ बहने के बाद फिर कोई वीर लखनऊ पर हमला करने का साहस कर रहा है! क्रान्तिकारियों की सेना इस बार लखनऊ के निकट नवाबगञ्ज में जमा हुई। १३ जून सन् १८५८ को सेनापति होप ग्रॉएट के अधीन कम्पनी की सेना ने, जिसमें कई हिन्दोस्तानी पलटनें शामिल थीं, अचानक इन लोगों पर हमला किया। उस दिन के संग्राम का वृत्तान्त हम सेनापति होप ग्रॉएट ही के शब्दों में देना चाहते हैं। वह लिखता है—

"हम लोगों पर उनके हमले असफल रहे, किन्तु वे हमले अत्यन्त ज़ोरदार थे, और हमें उनका मुक़ाबला करने के लिए कठिन परिश्रम करना पड़ा। अनेक सुन्दर और साहसी ज़मींदारों ने दो तोपें खुले मैदान में लाकर पीछे की ओर से हम पर हमला किया। मैंने हिन्दोस्तान में बहुत से संग्राम

देखे हैं और बहुत से बहादुरों को इस दृढ़ता के साथ लड़ते देखा है कि या तो विजय प्राप्त करेंगे और या मर मिटेंगे; किन्तु मैंने इन ज़मींदारों के व्यवहार से बढ़ कर शानदार कभी कोई दृश्य नहीं देखा! पहले उन्होंने हमारी एक सवार पलटन पर हमला किया, हमारे सवार उनके मुक़ाबले पर न ठहर सके और इतने विचलित हो गए कि हमारी दो तोपें, जो उस पलटन के साथ थीं, बड़े ख़तरे में पड़ गईं। मैंने एक दूसरी सात नम्बर पलटन को आगे बढ़ने का हुकुम दिया। उनके साथ चार और तोपें थीं। ये तोपें शत्रु से पाँच सौ गज़ के फ़ासले पर लगा दी गईं। उन पर गोले बरसाने शुरू किए गए। वे इस बुरी तरह कट कट कर गिरने लगे जिस प्रकार हसिये से घास। उनका नेता एक लम्बा चौड़ा आदमी था। उसके गले में एक घेगा था। वह ज़रा नहीं घबराया। उसने अपनी तोपों के पास दो हरे झण्डे गड़वा कर उनके नीचे अपने आदमियों को जमा किया। किन्तु हमारे गोले इस बुरी तरह बरस रहे थे कि जो लोग तोपों के पास तक पहुँचते थे, वहीं मर कर गिर पड़ते थे। इसके बाद दो और नई पलटनें हमारी सहायता के लिए पहुँच गईं। तब हम बाक़ी बचे शत्रुओं को पीछे हटा सके। इस पर भी वे अपनी तलवारें और भाले हमारी ओर घुमाते जाते थे, और निर्भीकता के साथ हमें लड़ने के लिए आह्वान करते जाते थे। केवल उन दोनों तोपों के आस पास हमें १२५ लाशें मिलीं। तीन घण्टे के घमासान संग्राम के बाद विजय हमारी ओर रही।"*

इस प्रकार के भयङ्कर संग्राम इस समय अवध में चारों ओर जारी थे।

अक्तूबर सन् १८५८ में कमाण्डर-इन-चीफ़ सर कॉलिन कैम्प-

* Hope Grant's *Incidents of the Sepoy War*, p. 292.

वेल ने नए सिरे से अनेक गोरी और काली पलटनों को जमा करके चारों ओर से अवध के क्रान्तिकारियों को उत्तर की ओर खदेड़ना शुरू किया। नए सिरे से अवधनिवासियों ने अपनी एक एक चप्पा भूमि के लिए विकट संग्राम किया।

राजा वेनीमाधव

राजा वेनीमाधव के स्थान शङ्करपुर पर तीन सेनाओं ने तीन ओर से चढ़ाई की। अंगरेज़ों का वल उस समय वेहद वढ़ा हुआ था और वेनीमाधव के पास सेना और सामान दोनों की कमी थी। फिर भी वेनीमाधव ने विदेशियों की अधीनता स्वीकार न की। कमाण्डर-इन-चीफ़ सर कॉलिन कैम्पवेल ने वेनीमाधव के पास सन्देशा भेजा कि अब आपका विजय की आशा करना व्यर्थ है, यदि आप वृथा रक्तपात नहीं चाहते तो अंगरेज़ सरकार की अधीनता स्वीकार कीजिये, आपको क्षमा कर दिया जायगा और आपकी समस्त ज़मींदारी आपको वापस कर दी जायगी। वेनीमाधव ने उत्तर दिया—

"इसके बाद क़िले की रक्षा कर सकना मेरे लिए असम्भव है, इसलिए मैं क़िले को छोड़ रहा हूँ। किन्तु मैं अपना शरीर आपके कदापि सुपुर्द न करूँगा। क्योंकि मेरा शरीर मेरा अपना नहीं, वल्कि मेरे वादशाह का है।"

निस्सन्देह 'वादशाह' शब्द से वूढ़े वेनीमाधव का तात्पर्य अवध-नरेश नवाव विरजीस क़द्र और दिल्ली सम्राट वहादुरशाह से था।

क्रान्ति को प्रारम्भ हुए पूरा डेढ़ वर्ष वीत चुका था। इस

समय वह घटना हुई जो भारतीय ब्रिटिश राज्य के इतिहास में एक विशेष सीमा-चिन्ह मानी जाती है। क्रान्ति के प्रारम्भ में पेशीनगोई हो चुकी थी कि अंगरेज़ कम्पनी का राज भारत से उठ जायगा।

कम्पनी के शासन का अन्त

निस्सन्देह कम्पनी का राज पहली नवम्बर सन् १८५८ से हिन्दोस्तान से हटा लिया गया। इङ्गलिस्तान के शासकों ने उस समय कम्पनी को एक सौ वर्ष की सत्ता का अन्त कर देना अपनी कुशल के लिए आवश्यक समझा। किन्तु पहली नवम्बर से ईस्ट इण्डिया कम्पनी के स्थान पर इङ्गलिस्तान की मलका विक्टोरिया का राज इस देश पर क़ायम कर दिया गया।

लॉर्ड कैनिङ्ग इलाहाबाद में था। पहली नवम्बर को 'भारतीय नरेशों और भारतीय प्रजा के नाम' मलका विक्टोरिया का एक एलान भारत में प्रकाशित किया गया। उसी दिन लॉर्ड कैनिङ्ग ने स्वयं इलाहाबाद में दारागञ्ज के निकट क़िले के नीचे यह एलान सहस्रों मनुष्यों को पढ़ कर सुनाया। इस एलान में विक्टोरिया की ओर से भारतवासियों को सूचना दी गई कि—

मलका विक्टोरिया का एलान

कम्पनी का राज अब से समाप्त हुआ और उसके स्थान पर भारत के शासन की वाग हमने (अर्थात् मलका विक्टोरिया ने) अपने हाथों में ले ली है; सिवाय उन लोगों के जो हमारी अंगरेज़ी प्रजा की हत्या में भाग लेने के अपराधी हैं, शेष जो लोग भी हथियार रख देंगे उन सब को क्षमा कर दिया जायगा; हिन्दोस्तानियों

की गोद लेने की प्रथा आइन्दा से जायज़ समझी जायगी और दत्तक पुत्रों को पिता की जायदाद और गद्दी का मालिक माना जायगा; किसी के धार्मिक विश्वासों या धार्मिक रस्मोरिवाज में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न किया जायगा; देशी नरेशों के साथ कम्पनी ने इस समय तक जितनी सन्धियाँ की हैं उनकी सब शर्तों का आइन्दा ईमानदारी के साथ पालन किया जायगा; इसके बाद किसी भारतीय नरेश की रियासत या उसका कोई अधिकार न छीना जायगा; समस्त भारतवासियों के साथ ठीक उसी प्रकार का व्यवहार किया जायगा जिस प्रकार का अंगरेज़ों के साथ; इत्यादि, इत्यादि ।

बेगम हज़रतमहल का एलान

किन्तु कम से कम अवध निवासियों पर विक्टोरिया के इस एलान का भी अधिक प्रभाव न पड़ा। इङ्गलिस्तान की मलका की ओर से इस एलान के प्रकाशित होते ही बेगम हज़रतमहल की ओर से एक एलान इसके जवाब में अवध की समस्त प्रजा के नाम प्रकाशित हुआ। यह एलान हिन्दोस्तानी भाषा में था। हम इसके कुछ वाक्य उसके सरकारी अंगरेज़ी अनुवाद से हिन्दी में अनुवाद करके नीचे उद्धृत करते हैं। बेगम हज़रतमहल ने इस एलान में लिखा—

"× × × पहली नवम्बर सन् १८५८ का एलान, जो हमारे सामने आया है, बिलकुल स्पष्ट है। × × × इसलिए हम × × × बहुत सोच समझ कर मौजूदा एलान प्रकाशित करते हैं, ताकि पूर्वोक्त एलान के

ख़ास ख़ास असली उद्देश प्रकट हो जायँ और हमारी रिआया होशियार हो जाय।

"उस एलान में लिखा है कि हिन्दोस्तान का मुल्क जो अभी तक कम्पनी के सुपुर्द था, अब मलका ने अपने शासन में ले लिया है, और आइन्दा से मलका के क़ानूनों को माना जायगा। हमारी धर्मनिष्ट प्रजा को इस पर एतबार नहीं करना चाहिए। क्योंकि कम्पनी के क़ानून, कम्पनी के अंगरेज़ मुलाज़िम, कम्पनी का गवरनर जनरल और कम्पनी की अदालतें इत्यादि, सब ज्यों की त्यों बनी रहेंगी। तो फिर वह नई बात कौन सी हुई जिससे जनता को लाभ हो या जिस पर वे विश्वास कर सकें?

"उस एलान में लिखा है कि कम्पनी ने जो जो वादे और अहदपैमान किए हैं, मलका उन्हें मञ्ज़ूर करेगी। लोगों को चाहिए कि इस चाल को ग़ौर से देख लें। कम्पनी ने सारे हिन्दोस्तान पर क़ब्ज़ा कर लिया है, और अगर यह बात क़ायम रही तो फिर इसमें नई बात क्या हुई? कम्पनी ने भरतपुर के राजा को पहले अपना बेटा बतलाया और फिर उसका इलाक़ा ले लिया। लाहौर के राजा को वे लन्दन ले गए और फिर कभी उसे भारत लौटने न दिया। नवाब शम्सुद्दीन ख़ाँ को एक ओर उन्होंने फाँसी पर लटका दिया, और दूसरी ओर उसे सलाम किया। पेशवा को उन्होंने पूना और सतारा से निकाल दिया और आजीवन बिठूर में क़ैद कर दिया। बनारस के राजा को उन्होंने आगरे में क़ैद कर दिया। बिहार, उड़ीसा और बङ्गाल के नरेशों का उन्होंने नाम निशान तक नहीं छोड़ा। स्वयं हमारे क़दीम इलाक़े उन्होंने हमसे यह बहाना करके ले लिए कि फ़ौज को तनख़ाहें देनी हैं, और हमारे साथ जो सन्धि की उसकी

सातवीं धारा में उन्होंने यह क़सम खाई कि हम आप से और अधिक कुछ न लेंगे। इसलिए यदि जो जो इन्तज़ाम कम्पनी ने कर रक्खे हैं वे सब मञ्जूर किए जायँगे तो इससे पहले की हालत में और अब इस नई हालत में क्या अन्तर हुआ ? ये सब तो पुरानी बातें हैं। किन्तु हाल में भी क़समों और अहदनामों को तोड़ कर, और बावजूद इस बात के कि अंगरेज़ों ने हमसे करोड़ों रुपए कर्ज़ ले रक्खे थे—उन्होंने बिना किसी सबब के केवल यह बहाना लेकर कि आपका व्यवहार अच्छा नहीं और आपकी प्रजा असन्तुष्ट है, हमारा मुल्क और करोड़ों रुपए का माल हमसे छीन लिया। यदि हमारी प्रजा हमारे पूर्वाधिकारी नवाब वाजिदअली शाह से असन्तुष्ट थी, तो वह हमसे सन्तुष्ट कैसे हो गई ! और कभी किसी भी नरेश के लिए प्रजा ने अपने जान और माल को इस तरह क़ुरबान करके अपनी राजभक्ति का परिचय नहीं दिया जिस तरह कि हमारी प्रजा ने हमारे साथ किया है। फिर क्या कमी है कि वे हमारा मुल्क हमें वापस नहीं देते ? इसके अतिरिक्त उस एलान में लिखा है कि मलका को अपना इलाक़ा बढ़ाने की इच्छा नहीं है; फिर भी वह इन देशी रियासतों को अपने राज में मिला लेने से बाज़ नहीं रह सकती। × × ×

× × ×

"उस एलान में लिखा है कि ईसाई मज़हब 'सच्चा' है, किन्तु और किसी मज़हब वालों के साथ ज़्यादती न की जायगी, और सब के साथ एक समान क़ानूनी व्यवहार किया जायगा। न्यायशासन से किसी मज़हब के सच्चे या झूठे होने से क्या सम्बन्ध है ? × × × सुअर खाना और शराब पीना, चरबी के कारतूस दाँत से काटना और आटे और मिठाइयों में सुअर

की चरबी मिलाना, सड़कें बनाने के बहाने मन्दिरों और मसजिदों को गिराना, गिरजा बनवाना, गलियों और कूचों में ईसाई मत का प्रचार करने के लिए पादरियों को भेजना × × × इन सब बातों के होते हुए लोग कैसे विश्वास कर सकते हैं कि उनके मज़हब में दख़ल न दिया जायगा ? × × ×

"उस एलान में लिखा है कि × × × जिन लोगों ने हत्याएँ की हैं या हत्याओं में मदद दी है उन पर कोई दया न की जायगी, शेष सबको क्षमा कर दिया जायगा। एक मूर्ख मनुष्य भी देख सकता है कि इस एलान के अनुसार दोषी या निर्दोष कोई मनुष्य भी नहीं बच सकता। × × × एक बात उसमें साफ़ कही गई है, वह यह कि किसी भी दोषी मनुष्य को न छोड़ा जायगा, इसलिये जिस गाँव या इलाक़े में हमारी सेना ठहरी है उसके बाशिन्दे नहीं बच सकते। उस एलान को पढ़ कर, जिसमें कि साफ़ दुश्मनी भरी हुई है, हमें अपनी प्यारी प्रजा की स्थिति पर बड़ा दुःख है। अब हम एक स्पष्ट और विश्वस्त आज्ञा जारी करते हैं कि हमारी प्रजा में से जिन जिन लोगों ने मूर्खता करके गाँव के मुखियों की हैसियत से अपने तईं अंगरेज़ों के सामने पेश किया है, वे १ जनवरी सन् १८५६ से पहले हमारे कैम्प में आकर हाज़िर हों। निस्सन्देह उनका क़ुसूर माफ़ कर दिया जायगा। × × × आज तक कभी किसी ने नहीं देखा कि अंगरेज़ों ने किसी का क़ुसूर माफ़ किया हो।

× × ×

"हमारी प्रजा में से कोई अंगरेज़ों के एलान के धोखे में न आए !"*

---

* *History of the Indian Mutiny*, by Charles Ball, vol. ii.

इस एलान के प्रकाशित होने के ६ महीने बाद तक अवध के अन्दर स्वाधीनता का युद्ध बराबर जारी रहा। चार्ल्स बॉल लिखता है :—

अवध में क्रान्तिकारियों की स्थिति

"मलका विक्टोरिया के एलान के बाद भी अवध के अन्दर आश्चर्य जनक युद्ध जारी रहा। विप्लवकारियों के इन सब गिरोहों के साथ उनके देश वासियों को सहानुभूति थी और इस सहानुभूति से उन्हें इतना अधिक बल और इतनी अधिक उत्तेजना प्राप्त हुई कि जिसका अनुमान भी नहीं किया जा सकता। ये विप्लवकारी बिना कमसरियट के जहाँ चाहे जा सकते थे, क्योंकि लोग सब जगह उन्हें भोजन पहुँचा देते थे। वे बिना पहरे के अपना असबाब जहाँ चाहे छोड़ सकते थे, क्योंकि लोग उनके असबाब पर हमला न करते थे। उन्हें सदा अपनी और अंगरेज़ों की स्थिति का ठीक ठीक पता रहता था, क्योंकि लोग उन्हें घण्टे घण्टे भर के अन्दर आकर सूचना देते रहते थे। हम उनसे अपनी कोई योजना छिपा कर न रख सकते थे, क्योंकि हमारी प्रत्येक खाने की मेज़ के गिर्द और अंगरेज़ी सेना के क़रीब हर ख़ेमे में उनसे गुप्त सहानुभूति रखने वाले लोग खड़े रहते थे। हमारे लिए उन पर अचानक हमला कर सकना एक अलौकिक सी बात थी, क्योंकि हमारे चलने की अफ़वाह, एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य को, हमारे सवारों से अधिक तेज़ी के साथ उन तक पहुँच जाती थी।"*

यही कारण था कि विक्टोरिया के एलान के छै महीने बाद तक

---

* Ibid, vol. ii, p. 572.

भी अवध का प्रान्त अंगरेज़ों के क़ाबू में न आ सका। समय समय पर शङ्करपुर, ढुंढियाखेड़ा, रायबरेली, सीतापुर इत्यादि स्थानों पर बराबर संग्राम होते रहे। अन्त में अप्रैल सन् १८५९ तक अवध के समस्त क्रान्तिकारी नैपाल की सरहद के उस पार निकाल दिए गए।

अवधनिवासियों के अन्तिम प्रयत्न

कहा जाता है कि क़रीब साठ हज़ार पुरुष, स्त्री और बच्चों ने नाना साहब, बालासाहब, बेगम हज़रतमहल और नवाब बिरजीस क़द्र के साथ नैपाल में प्रवेश किया। नाना साहब और महाराजा जङ्गबहादुर में कुछ दिनों तक पत्र व्यवहार होता रहा। नाना साहब ने पहले नैपाल दरबार से अंगरेज़ों के विरुद्ध सहायता की प्रार्थना की, उसके बाद केवल भारतीय निर्वासितों के लिए नैपाल में रहने की इजाज़त चाही। महाराजा जङ्गबहादुर ने इनमें से कोई बात स्वीकार न की; बल्कि अंगरेज़ी सेना को नैपाल में प्रवेश करने और इन भारतीय निर्वासितों का संहार करने की इजाज़त दे दी। इन में से अनेक हथियार फेंक कर भारत वापिस आ गए, अनेक जंगलों और पहाड़ों में खप गए। नाना साहब का जनरल होप ग्रॉण्ट के साथ कुछ पत्र व्यवहार हुआ, जिनमें से अन्तिम पत्र में अंगरेज़ों के अन्यायों को दर्शाते हुए नाना साहब ने लिखा :—

निर्वासित क्रान्तिकारी

"आपको हिन्दोस्तान पर क़ब्ज़ा करने का और मुझे दण्डनीय क़रार देने का क्या अधिकार है ? हिन्दोस्तान पर राज करने का आपको किसने अधिकार

दिया ? क्या ! आप फ़िरङ्गी लोग बादशाह हैं, और हम इस अपने मुल्क के अन्दर चोर हैं ?"

इसके बाद कुछ पता नहीं कि नाना साहब का क्या हुआ। बेगम हज़रतमहल और उसके पुत्र बिरजीस क़दर को कुछ समय बाद नैपाल दरबार ने अपने यहाँ आश्रय दिया।

अवध की इस क्रान्ति के विषय में इतिहास लेखक मॉलेसन लिखता है :—

अवध का पतन

"जिस विप्लव को उन सिपाहियों ने आरम्भ किया था, जिनमें से कि अधिकांश अवधनिवासी थे, उस विप्लव में समस्त अवध निवासियों ने शामिल होकर स्वाधीनता के लिए युद्ध किया × × × हिन्दोस्तान के किसी दूसरे भाग ने इतनी दृढ़ता के साथ डट कर और इतनी अधिक देर तक हमारा मुक़ाबला नहीं किया जितना कि अवध ने। इस समस्त युद्ध में उस अन्याय को याद करके जो अन्याय कि सन् १८५६ में उनके साथ किया गया था, अवधनिवासियों के हृदय अधिकाधिक मज़बूत और उनका सङ्कल्प अधिकाधिक दृढ़ होता रहता था। × × × अन्त में जब कमाण्डर-इन-चीफ़ सर कॉलिन कैम्पबेल (लॉर्ड क्लाइड) ने समस्त अवध में से बचे हुए विद्रोहियों को बीन बीन कर नैपाल के जङ्गलों में आश्रय लेने के लिए विवश कर दिया तो इन लोगों ने प्रायः हार मानने की अपेक्षा भूखों मर जाना अधिक पसन्द किया। किसानों ने, ताल्लुक़ेदारों ने, ज़मींदारों ने, व्यापारियों ने बहुत दिनों के लगातार युद्ध के बाद केवल उस समय हार स्वीकार की जब कि उन्होंने देख लिया कि अब सब कुछ हो चुका।"*

---

* Malleson's *Indian Mutiny*, vol. v, p. 207.

इसके पश्चात् केवल तात्या टोपे के अन्तिम प्रयत्नों को बयान करना बाक़ी रह जाता है।

तात्या टोपे के अन्तिम प्रयत्न

तात्या टोपे के मुख्य साथियों नाना साहब, बाला साहब और लक्ष्मीबाई में से अब कोई बाक़ी न रहा था। अंगरेज़ों की सत्ता भारत में फिर से जम चुकी थी। स्वयं तात्या के पास अब न कोई ढङ्ग की सेना थी और न सामान। फिर भी तात्या टोपे ने आशा न छोड़ी। २० जून सन् १८५८ को ग्वालियर से निकल कर तात्या ने रावसाहब, बाँदा के नवाब और मुट्ठी भर बचे खुचे सैनिकों सहित नर्मदा की ओर बढ़ना चाहा। तात्या का उद्देश नर्मदा पार कर पेशवा के नाम पर दक्खिन के नरेशों और प्रजा को क्रान्ति के लिए फिर से तैयार करना था। २२ जून को अंगरेज़ी सेना ने उसे जौरा अलीपुर में जा घेरा। तात्या फिर बच कर निकल गया। तात्या का लक्ष्य इस समय किसी प्रकार नर्मदा पार करना था, और अंगरेज़ उसे नर्मदा पार करने से रोकना चाहते थे।

तात्या ने सब से पहले भरतपुर की ओर निगाह की। तुरन्त एक प्रबल अंगरेज़ी सेना तात्या को फँसाने के लिए भरतपुर पहुंच गई। तात्या मुड़ कर जयपुर की ओर बढ़ा। जयपुर की प्रजा और सेना दोनों तात्या से सहानुभूति रखती थीं। तात्या ने उन्हें तैयार रहने की सूचना दी। अंगरेज़ों को पता चल गया। तुरन्त एक अंगरेज़ी सेना नसीराबाद से जयपुर के लिए भेज दी गई। तात्या अब दक्खिन की ओर मुड़ा। करनल होम्स के अधीन एक सेना ने

उसका पीछा किया। तात्या अंगरेज़ी सेना से आँख बचाकर टोंक पहुँच गया। टोंक के नवाब ने नगर के दरवाज़े बन्द कर लिए, और अपनी कुछ सेना चार तोपों सहित तात्या के मुक़ाबले के लिए भेजी। यह सेना सामने आते ही तात्या से जा मिली। उन्होंने अपनी तोपें तात्या के हवाले कर दीं। तात्या टोपे नई सेना और सामान सहित अब इन्द्रगढ़ की ओर बढ़ा। वर्षा ज़ोरों से हो रही थी। पीछे से होम्स अपनी सेना सहित तात्या की ओर बढ़ा चला आ रहा था। राजपूताने की ओर से सेनापति रॉबर्ट्स के अधीन एक सेना तात्या पर हमला करने के लिए आ रही थी। चम्बल नदी तात्या के सामने थी और ख़ूब चढ़ी हुई थी।

तात्या तीनों से बच कर पूर्वोत्तर में बूंदी की ओर बढ़ा। नीमच नसीराबाद के प्रान्त में वह भीलवाड़ा नामक ग्राम में जाकर ठहरा। जनरल रॉबर्ट्स ने ख़बर पाते ही ७ अगस्त सन् १८५८ को तात्या पर हमला किया। दिन भर संग्राम होता रहा। रात को तात्या अपनी सेना और तोपों सहित उदयपुर रियासत में कोटरा ग्राम की ओर निकल गया।

कोटरा का संग्राम

कोटरा में १४ अगस्त को फिर अंगरेज़ी सेना ने उसे आ घेरा। संग्राम हुआ, किन्तु इस बार तात्या को अपनी तोपें मैदान में छोड़ कर पीछे हटना पड़ा। अंगरेज़ी सेना बराबर तात्या का पीछा करती रही। तात्या फिर चम्बल की ओर बढ़ा। इस समय एक अंगरेज़ी सेना पीछे से तात्या की ओर बढ़ी चली आ रही थी, दूसरी दाहिनी ओर से बढ़ी चली

आ रही थी और तीसरी उसके ठीक सामने चम्बल के किनारे मौजूद थी। फिर भी किसी को धोखा देते हुए और किसी से बचते हुए तात्या चम्बल तक पहुँच गया और आश्चर्यजनक फुर्ती के साथ अंगरेज़ी सेना से कुछ ही दूर फ़ासले पर चम्बल नदी को पार कर गया। चम्बल नदी अब तात्या और अंगरेज़ी सेना के बीच में पड़ गई। किन्तु तात्या के पास न रसद थी और न तोपें। तात्या सीधे झालरापट्टन की ओर बढ़ा। वहाँ का राजा अपनी सेना और तोपों सहित तात्या पर हमला करने के लिए निकला। किन्तु मैदान में पहुँचते ही झालरापट्टन की सेना तात्या की ओर जा मिली। अब तात्या को सेना, सामान, रसद इत्यादि सब कुछ मिल गया। झालरापट्टन की ओर बढ़ते हुए तात्या के पास एक भी तोप न थी। अब उसके पास ३२ तोपें हो गईं। विजयी तात्या ने झालरापट्टन के राजा से युद्ध के ख़र्च के लिए १५ लाख रुपए वसूल किए। पाँच दिन तक तात्या वहीं ठहरा रहा। उसने अपनी सेना को तनख़ाहें दीं। रावसाहब और बाँदे का नवाब बराबर तात्या के साथ थे। तीनों ने मिल कर फिर नर्मदा पार करने का विचार किया। अंगरेज़ों ने इन लोगों को रोकने के लिए सेनाओं का एक जाल बिछा दिया। किन्तु तात्या के पास अब मुक़ाबले के लिए काफ़ी सामान था। वह अब इन्दौर की ओर बढ़ा।

इस समय छै बड़े बड़े अंगरेज़ सेनापति रॉबर्ट्स, होम्स, पार्क, मिचेल, होप और लौकार्ट छै ओर से तात्या को घेरने का प्रयत्न कर रहे थे। कई बार तात्या और उसकी सेना अंगरेज़ी सेना को

सामने दिखाई तक दे जाती थी। किन्तु फिर भी तात्या वच कर निकल जाता था।

रायगढ़ के निकट मिचेल की सेना तात्या पर आ टूटी। थोड़े से संग्राम के वाद तात्या टोपे फिर अपनी तीस तोपें मैदान में छोड़ कर वच कर निकल गया। मार्ग में एक स्थान पर उसे चार और तोपें मिलीं। इसके वाद उत्तर की ओर वढ़ कर तात्या ने सींधिया के नगर ईशगढ़ पर हमला किया और वहाँ से आठ और तोपें प्राप्त कीं। तात्या जिस तरह हो, नर्मदा पार करने की धुन में था और अंगरेज़ी सेना उसे चारों ओर से घेर कर रोकना चाहती थी। तात्या की इस समय की समस्त यात्राओं, चालों, विजयों और पराजयों को वयान कर सकना असम्भव है। एक अंगरेज़ लेखक लिखता है—

तात्या की समस्या

"इसके वाद तात्या के वचने और भाग जाने का वह आश्चर्य जनक सिलसिला शुरू हुआ जो दस महीने तक जारी रहा और जिससे मालूम होता था कि हमारी विजय निष्फल हो गई। इस सिलसिले के कारण तात्या का नाम यूरोप भर में हमारे अधिकांश अंगरेज़ सेनापतियों के नामों की अपेक्षा भी कहीं अधिक मशहूर हो गया। तात्या के सामने समस्या सरल न थी। × × × उसे अपनी अव्यवस्थित सेना को लगातार इतनी तेज़ रफ़्तार पर ले जाना पड़ता था कि जिससे न केवल उसका पीछा करने वाली सेनाएँ ही, वल्कि वे सेनाएँ भी जो कभी दाहिनी ओर से और कभी वाईं ओर से अचानक उस पर टूट पड़ती थीं, हाथ मलती रह जाती थीं। एक ओर वह इस प्रकार उन्मत्तवत् अपनी सेना को भगाए लिए जाता था, दूसरी ओर वह

दरजनों शहरों पर क़ब्ज़ा कर लेता था, अपने साथ नया सामान जमा कर लेता था, इधर उधर से नई तोपें साथ ले लेता था और इन सबके अतिरिक्त अपनी सेना के लिए इस प्रकार के नए स्वयं सेवक रङ्गरूट भरती करता जाता था जिन्हें कि साठ मील रोज़ाना के हिसाब से लगातार भागना पड़ता था। तात्या ने अपने अल्प साधनों से जो कुछ कर दिखाया, उससे साबित है कि उसकी योग्यता साधारण न थी। × × × वह उस श्रेणी का मनुष्य था जिस श्रेणी का कि हैदरअली था। कहा जाता है कि तात्या नागपुर से होकर मद्रास पहुँचना चाहता था। यदि वह वास्तव में मद्रास तक पहुँच जाता तो वह हमारे लिए उतना ही भयङ्कर साबित होता जितना कि हैदरअली किसी समय हो चुका था। नर्मदा उसके लिए इतनी ही बड़ी रुकावट साबित हुई जितनी कि इङ्गलिश चैनल नैपोलियन के लिए। तात्या सब कुछ कर सका, किन्तु नर्मदा को पार न कर पाया। × × × अंगरेज़ी सेनाएँ शुरू में इतने ही धीरे धीरे आगे बढ़ीं जितने धीरे चलने कि उन्हें आदत थी। किन्तु फिर मजबूर उन्होंने तेज़ चलना सीख लिया। जनरल पार्क और करनल नेपियर की अन्त की कोई कोई यातनाएँ इतनी ही तेज़ थीं जितनी तात्या की औसत आधी यात्राएँ। फिर भी तात्या बच कर निकलता रहा। गरमियाँ निकल गईं, सारी बरसात निकल गई, सारी सरदी निकल गई, और फिर तमाम गरमी निकल गई, तो भी तात्या निकला चला जा रहा था। उसके साथ कभी दो हज़ार थके हुए अनुयायी होते थे और कभी पन्द्रह हज़ार।"*

इसके बाद तात्या ने अपनी सेना के दो टुकड़े किए। एक अपने

---

* *The Friend of India*, 1858.

अधीन, दूसरा रावसाहब के अधीन। दोनों दल दो ओर से आगे बढ़े। कई जगह अंगरेज़ी सेना से लड़ाइयाँ लड़ते हुए दोनों दल ललितपुर में जाकर फिर मिल गए। यहाँ पर दक्खिन में मिचेल की सेना, पूरब में करनल लिडेल की सेना, उत्तर में करनल मीड की सेना, पच्छिम में करनल पार्क की सेना और चम्बल की ओर से जनरल रॉबर्ट्स के अधीन एक सेना,—पाँच ओर से पाँच अंगरेज़ी सेनाओं ने तात्या को घेर लिया। तात्या ने अब अंगरेज़ी सेना को धोखा देने के लिए दक्खिन की यात्रा छोड़ कर तेज़ी से उत्तर की ओर बढ़ना शुरू किया। अंगरेज़ समझे कि तात्या ने दक्खिन जाने का विचार छोड़ दिया। किन्तु तात्या फिर अचानक मुड़ पड़ा, तेज़ी से उसने बेतवा नदी पार की, कजूरी में अंगरेज़ सेना के साथ एक संग्राम किया, वहाँ से रायगढ़ पहुँचा और फिर सीधा तीर की तरह दक्खिन की ओर लपका। अंगरेज़ उसकी इन चालों से घबरा गए। जनरल पार्क एक ओर से लपका, मिचेल पीछे से लपका, बेचर सामने से तात्या की ओर बढ़ा. किन्तु तात्या अपनी सेना सहित नर्मदा पहुँच ही गया और होशङ्गाबाद के निकट संसार के बड़े से बड़े युद्ध विशारदों को चकित कर अपनी सेना सहित नर्मदा को पार कर गया।

तात्या का नर्मदा पार करना

इतिहास लेखक मॉलेसन लिखता है—

"जिस दृढ़ता और धैर्य के साथ तात्या ने अपनी इस योजना को पूरा किया उसकी प्रशंसा न करना असम्भव है।"

लन्दन 'टाइम्स' के सम्वाददाता ने लिखा—

"हमारा अत्यन्त अद्भुत मित्र तात्या टोपे इतना कष्ट देने वाला और चालाक शत्रु है कि उसकी प्रशंसा नहीं की जा सकती। पिछले जून के महीने से उसने मध्य भारत में तहलका मचा रक्खा है, उसने हमारे स्थानों को रौंद डाला है, ख़ज़ानों को लूट लिया है और हमारे मैगज़ीनों को ख़ाली कर दिया है। उसने सेनाएँ जमा कर ली हैं और खो दी हैं, लड़ाइयाँ लड़ी हैं और हार खाई है, देशी नरेशों से तोपें छीन ली हैं, उन तोपों को खो दिया है, फिर और तोपें प्राप्त की हैं, उन्हें भी खो दिया है। इसके बाद उसकी यात्राएँ बिजली की तरह प्रतीत होती हैं। अठवाड़ों वह तीस तीस और चालीस चालीस मील रोज़ाना चला है। कभी नर्मदा के इस पार और कभी उस पार। हमारे सैन्यदलों के वह कभी बीच से निकल गया है, कभी पीछे से और कभी सामने से। × × × कभी पहाड़ों पर से, कभी नदियों पर से, कभी वादियों में से और कभी घाटियों में से, कभी दलदलों में से, कभी आगे से और कभी पीछे से, कभी एक ओर से और कभी घूम कर, × × × फिर भी वह हाथ न आया।"*

अन्त में अक्तूबर सन् १८५८ में तात्या अपनी सेना सहित रावसाहब और बाँदा के नवाब को साथ लिए हुए नागपुर के निकट पहुँच गया।

लॉर्ड कैनिङ्ग और उसके साथी काफ़ी घबरा गए। मॉलेसन लिखता है—

लॉर्ड कैनिङ्ग की परेशानी

"जिस मनुष्य को महाराष्ट्र अन्तिम पेशवा का न्याय्य उत्तराधिकारी स्वीकार करता था उसका भतीजा

---

* *The Times*, 17th January, 1859.

सेना सहित महाराष्ट्र की भूमि पर जा पहुँचा। × × × निज़ाम हमारा वफ़ादार था। किन्तु वह समय बड़ा विचित्र था। × × × इससे पहले भी इस प्रकार की मिसालें हो चुकी थीं, जब कि यदि किसी नरेश ने राष्ट्र के भावों के विरुद्ध कार्य किया तो प्रजा ने अपने उस नरेश के विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर दिया। सींधिया के विरुद्ध भी इस प्रकार का विद्रोह हो चुका था। हमें यह भय होना आवश्यक था कि कहीं ऐसा न हो कि तात्या की सेना समस्त महाराष्ट्र को हमारे विरुद्ध शस्त्र उठा लेने के लिए उत्तेजित कर दे, और फिर जब सारी महाराष्ट्र क़ौम विदेशियों के विरुद्ध हथियार उठा ले तो इसे देख कर दक्खिन (अर्थात् निज़ाम के इलाक़े) के लोग भी रोके न रुक सकें।"*

तात्या नागपुर में

निस्सन्देह यदि यही घटना एक साल पहले हुई होती तो सम्भव था कि शेष भारतीय इतिहास की गति दूसरी ओर को पलट जाती। किन्तु पिछले एक वर्ष के अन्दर भारतवासियों का उत्साह काफ़ी टूट चुका था। उत्तरीय भारत में जिस तात्या को लोग स्वयं आ आकर खुशी से रसद पहुँचाते थे उस तात्या के पास नागपुर के महाराष्ट्र लोग अब आने तक से डर गए।

तात्या की सेना कुछ दिन वहाँ ठहरी रही। अंगरेज़ी सेना ने फिर उसे चारों ओर से घेरना शुरू किया। तात्या के दक्खिन और उत्तर दोनों में विशाल अंगरेज़ी सेनाएँ थीं। उत्तर की सेना नर्मदा

---

* Malleson's *Indian Mutiny*, vol. v, pp. 239-40.

पार कर बढ़ी चली आ रही थी। नागपुर से तात्या को कोई सहायता न मिल सकी। लाचार होकर तात्या ने अब बड़ौदा की ओर बढ़ने का विचार किया।

नर्मदा के हर घाट पर दोनों ओर अंगरेज़ी सेना पड़ी हुई थी।

तात्या का अलौकिक कूच

तात्या बढ़ा, मेजर सण्डरलैण्ड की सेना के साथ उसका एक संग्राम हुआ। तात्या ने अपनी सेना को आज्ञा दी कि सब तोपें पीछे छोड़ कर नर्मदा में कूद पड़ो। तात्या और उसकी सेना एक पल भर के अन्दर नर्मदा के पार दिखाई दी। मॉलेसन लिखता है—

संसार की किसी भी सेना ने कभी कहीं पर इतनी तेज़ी के साथ कूच नहीं किया जितनी तेज़ी के साथ कि तात्या की भारतीय सेना इस समय कूच कर रही थी।

तात्या राजपुरा पहुँचा, वहाँ के सरदार से उसने घोड़े और

नवाब बाँदा का आत्म समर्पण

कुछ धन वसूल किया। अगले दिन वह छोटा उदयपुर पहुँचा। बड़ौदा यहाँ से केवल ५० मील था। इतने में पार्क के अधीन अंगरेज़ी सेना छोटा उदयपुर आ पहुँची। तात्या को बड़ौदा का विचार छोड़ देना पड़ा। अब वह फिर उत्तर की ओर मुड़ा। ठीक इस समय बाँदा के नवाब ने निराश होकर मलका विक्टोरिया के एलान के अनुसार हथियार रख दिए। तात्या और रावसाहब अकेले रह गए। मॉलेसन लिखता है—

"किन्तु ये दोनों नेता इस कठिन आपत्ति के समय भी इतने ही

शान्त, वीर और चतुर बने रहे जितने कि वे पहले किसी भी समय में रह चुके थे।"*

तात्या अब उदयपुर (मेवाड़) की ओर बढ़ा। तुरन्त कई अंगरेज़ी सेनाएँ उस पर टूट पड़ीं। वह मुड़ कर जंगल में घुस गया। तात्या के लिए अब बच सकना असम्भव दिखाई देने लगा। एक दिन तात्या और रावसाहब क़रीब चार बजे शाम को प्रतापगढ़ की ओर बढ़े। मेजर रॉक ने आकर सामने से उनका मार्ग रोक लिया। तात्या मेजर रॉक की सेना को परास्त करता हुआ आगे निकल गया। २५ दिसम्बर सन् १८५८ को तात्या बाँसवाड़ा के जंगल से निकला। ठीक इसी समय दिल्ली के राजकुल का प्रसिद्ध शहज़ादा फ़ीरोज़शाह, जो अवध के संग्रामों में भाग ले चुका था, अपनी सेना सहित तात्या की सहायता के लिए आ रहा था। जिस प्रकार शहज़ादे फ़ीरोज़शाह ने सेना सहित गङ्गा और यमुना को पार कर तात्या से जाकर भेंट की, उसकी कहानी भी अत्यन्त मनोरञ्जक है। १३ जनवरी सन् १८५९ को इन्द्रगढ़ में फ़ीरोज़शाह, तात्या और रावसाहब में भेंट हुई। सींधिया का एक सरदार मानसिंह भी उस समय इन लोगों में आकर मिल गया।

मेजर रॉक की पराजय

किन्तु इस समय तात्या फिर बुरी तरह चारों ओर से घिर रहा था। नेपियर उसके उत्तर में था, शॉवर्स उत्तर पच्छिम में, सोमरसेट पूरब में, स्मिथ

तात्या देवास में

---

* Ibid, vol. v, p. 247.

दक्खिन-पूरब में, मिचेल और बैनसन दक्खिन में, और बॉनर दक्खिन-पच्छिम और पच्छिम में। ये सब तात्या को घेर लेने के लिए बढ़े चले आ रहे थे। तात्या बढ़ते बढ़ते देवास पहुँचा।

१६ जनवरी को सवेरे देवास में तात्या, रावसाहब और फ़ीरोज़ शाह तीनों ख़ेमे में बैठे बातचीत कर रहे थे। अचानक किसी अंगरेज़ अफ़सर का हाथ तात्या की कमर पर पड़ा। अंगरेज़ सिपाही ख़ेमे में आ टूटे। मालूम हुआ तात्या पकड़ गया, किन्तु अचानक फिर ये तीनों नेता अंगरेज़ सिपाहियों के चंगुल से निकल गए। चारों ओर खोज हुई, किन्तु उनका पता न चल सका।

मानसिंह का विश्वासघात

२१ जनवरी को ये तीनों अलवर के निकट शिखरजी में दिखाई दिए। अंगरेज़ी सेना बराबर उन्हें घेरने का प्रयत्न करती रही। तात्या की सारी आशाएँ अब टुकड़े टुकड़े हो चुकी थीं। वह थका हुआ था। मानसिंह पास के जंगल में छिपा था। तात्या ने फ़ीरोज़शाह और रावसाहब को सेना के साथ छोड़ा और स्वयं तीन आदमियों सहित मानसिंह से मिलने गया। मानसिंह इस समय तक अंगरेज़ों से मिल चुका था। उससे जागीर का वादा कर लिया गया था। फ़ीरोज़शाह ने तात्या को वापस अपने पास बुलाना चाहा। मानसिंह ने उसे रोक लिया और ७ अप्रैल सन् १८५९ को ठीक आधी रात के समय सोते हुए तात्या को शत्रु के हवाले कर दिया।

१८ अप्रैल सन् १८५९ तात्या टोपे के लिए फ़ाँसी का दिन

नियत हुआ। चारों तरफ़ फ़ौज का पहरा था। लिखा है फ़ौज के चारों ओर टीलों पर खड़े हज़ारों ग्रामनिवासी तात्या को दूर से श्रद्धा के साथ नमस्कार कर रहे थे। तात्या धैर्य और साहस के साथ फाँसी के तख़्ते पर चढ़ा, उसकी बेड़ियाँ काटी गईं। तात्या ने हँसते हुए अपने हाथ से फाँसी का फन्दा गले में डाल लिया। तख़्ता खिंचगया, शाम तक तात्या का शव फाँसी पर लटकता रहा। शाम को अनेक यूरोपियन दर्शकों ने दौड़ कर तात्या के सिर के दो दो, चार चार बाल तोड़ लिए और वीर तात्या की स्मृति स्वरूप उन्हें अपने पास रक्खा।

तात्या का बलिदान

रावसाहब और शहज़ादा फ़ीरोज़शाह एक महीने बाद तक जी तोड़ लड़े। इसके बाद वेष बदल कर दोनों जङ्गलों में निकल गए। फ़ीरोज़शाह सन् १८६४ तक भारत के जङ्गलों में घूमता रहा। उसके बाद अरब चला गया, जहाँ सन् १८६६ में वह अन्य अनेक निर्वासित भारतीय क्रान्तिकारियों के साथ फ़क़ीर के वेष में देखा गया। रावसाहब तीन साल बाद पकड़ा गया और २० अगस्त सन् १८६२ को कानपुर में फाँसी पर लटका दिया गया।

रावसाहब और फ़ीरोज़शाह का अन्त

इस तरह हिन्दोस्तान को विदेशी शासन से स्वाधीन करने का सब से महान और व्यापक प्रयत्न निष्फल गया और अंगरेज़ी राज की जड़ एक काल के लिए और अधिक मज़बूती के साथ इस देश में जम गई।

तात्या टोपे

[चित्रशाला प्रेस, पूना की कृपा द्वारा]

पचासवाँ अध्याय

सन् ५७ के स्वाधीनता संग्राम पर एक दृष्टि

असफलता के मुख्य कारण

इस विशाल राष्ट्रीय प्रयत्न के कारणों और उसकी प्रगति को ऊपर के पृष्ठों में विस्तार के साथ बयान किया जा चुका है। इस प्रयत्न की असफलता के कारण भी इन्हीं पृष्ठों में स्थान स्थान पर दिखाए जा चुके हैं। इनमें मुख्यतम हमें दो दिखाई देते हैं—

समय से पूर्व युद्ध का प्रारम्भ

पहला यह कि कारतूसों और विशेष कर मेरठ की घटना के कारण संग्राम नियत समय से पहले शुरू हो गया। हम ऊपर मॉलेसन, विलसन, ह्वाइट जैसे अंगरेज़ विशेषज्ञों की सम्मति इस विषय में नक़ल कर चुके हैं कि यदि पूर्व निश्चय के अनुसार ३१ मई सन् १८५७ को सब स्थानों पर एक साथ युद्ध शुरू हुआ होता तो

अंगरेज़ शासकों के लिए भारत को फिर से विजय कर सकना सर्वथा असम्भव होता।

अंगरेज़ों को सिखों और गोरखों की सहायता

दूसरा कारण यह था कि सिखों और गोरखों ने अंगरेज़ों की सहायता करके उनके लिए दिल्ली और लखनऊ जैसे केन्द्रों को फिर से विजय कर सकना सम्भव बना दिया। इस विषय में पञ्जाब के चीफ़ कमिश्नर सर जॉन लॉरेन्स की स्पष्ट राय नक़ल की जा चुकी है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि यदि पटियाला, नाभा और झींद ने ऐन समय पर अंगरेज़ों को मदद न दी होती तो दिल्ली का फिर से विजय हो सकना असम्भव था, और एक बार यदि दिल्ली की सेना विजय प्राप्त कर पूरब और दक्खिन में उतर आती तो सन् ५७ की क्रान्ति का बाद का सारा नक़शा बदल जाता।

भारतवासियों का सहयोग

क्रान्तिकारियों का सङ्गठन सुन्दर और प्रशंसनीय था, फिर भी कम से कम लाखों भारतवासी अपने देशवासियों के विरुद्ध तरह तरह से अंगरेज़ों को सहायता दे रहे थे। रसल लिखता है—

"फिर भी हमें यह स्वीकार करना पड़ता है कि अंगरेज़ चाहे कितने भी बहादुर क्यों न हों, यदि समस्त भारतवासी पूरी तरह हमारे विरुद्ध हो जाते तो भारत में अंगरेज़ों का निशान तक कहीं बाक़ी न रह जाता। हमारे क़िलों के भीतर की सेनाओं ने जिस तरह जी तोड़ कर अपने स्थानों की रक्षा की, वह निस्सन्देह वीरोचित था। किन्तु इस वीरता में भारतवासी शामिल थे,

और उन्हीं की सहायता और उपस्थिति के कारण उन स्थानों की रक्षा करना हमारे लिए सम्भव हो सका। यदि पटियाला और झींद के राजा हमारे साथ मित्रता न दर्शाते और यदि सिख हमारी पलटनों में भरती न होते और उधर पञ्जाब को शान्त न रखते, तो हमारा दिल्ली का मोहासरा कर सकना सर्वथा असम्भव होता। लखनऊ में भी सिखों ने हमें खूब सहायता दी, और हर स्थान पर जिस तरह कि भारतवासी हमारी सेनाओं में भरती होकर लड़ाई में हमारे बल को बढ़ाते थे, उसी तरह हर जगह भारतवासी ही हमारी घिरी हुई सेनाओं की मदद करते थे, हमें भोजन पहुँचाते थे और हमारी सेवा करते थे। इसी क्षण यहाँ इस कैम्प में हमारी सब की हालत क्या है! देशी फ़ौजें ही सब से आगे रह कर हमारी रक्षा कर रही हैं, देशी लोग हमारे घोड़ों के लिए घास काट रहे हैं, वे ही हमारे साईस हैं, वे ही हमारे हाथियों को चारा देते हैं, वे ही हमारी बारबरदारी का इन्तज़ाम करते हैं, कमसरियट में वे ही हमारे भोजन का प्रबन्ध करते हैं, वे ही हमारे गोरे सिपाहियों का खाना पकाते हैं, वे ही हमारे कैम्प की सफ़ाई करते हैं, वे ही हमारे डेरे गाड़ते हैं और उन्हें इधर उधर ले जाते हैं, वे ही हमारे अफ़सरों का सब काम करते हैं और वे ही हमें अपने पास से रुपए उधार देते हैं। जो गोरा सिपाही मेरे साथ लिखने पढ़ने का काम करता है वह कहता है कि बिना हिन्दोस्तानी नौकरों, डोली उठाने वालों, अस्पताल के आदमियों और अन्य भारतवासियों के, उसकी पलटन एक सप्ताह भी जीवित न रह सकती।"*

* "Yet it must be admitted that, with all their courage, they (The British) would have been quite exterminated if the natives had been, all and altogether, hostile to them. The desperate defences made by the garrisons were no doubt heroic; but the natives shared their glory; and they by their

जिस तरह सिखों के बिना दिल्ली, उसी तरह गोरखों के बिना लखनऊ का विजय हो सकना असम्भव था।

इन दो मुख्य कारणों के अलावा इनसे कुछ कम महत्व के तीन और कारण संग्राम की असफलता के बताए जा सकते हैं।

योग्य और प्रभावशाली नेताओं का अभाव

इनमें पहला था दिल्ली के मोहासरे के दिनों में दिल्ली के अन्दर एक योग्य, शक्तिशाली और प्रभावशाली नेता का अभाव जो नगर के अन्दर की समस्त शक्तियों को अपने वश में कर, उन्हें एक महान प्रयत्न के लिये अग्रसर कर सके। यही एक मात्र कारण था कि दिल्ली के भीतर की विशाल वीर सेना बाहर निकल कर बाहर की अंगरेज़ी सेना को, जिसकी संख्या कहीं कम थी, महीनों तक समाप्त न कर सकी। यही त्रुटि एक दरजे तक लखनऊ में भी थी और इसी के कारण कभी कभी ऐन नाज़ुक मौक़े पर

---

aid and presence rendered the defence possible. Our siege of Delhi would have been quite impossible, if the Rajas of Patiala and Jhind had not been our friends and if the Sikhs had not recruited in our battalions and remained quiet in the Punjab. The Sikhs at Lucknow did good service, and in all cases our garrisons were helped, fed and served by the natives, as our armies were attended and strengthened by them in the field. Look at us all, here in camp, at this moment, our outposts are native troops; natives are cutting grass for our horses and grooming them, feeding the elephants, managing the transports, supplying the commissariat which feeds us, cooking our soldiers' food, clearing their camp, pitching and carrying their tents, waiting on our officers, and even lending us their money. The soldier who acts as my amanuensis declares that his regiment could not have lived a week but for the regimental servants, doli-bearers, hospital men and other dependents."
—*My Diary in India*, by Sir W. Russell.

क्रान्तिकारियों में व्यवस्था और आज्ञापालन की कमी दिखाई देती थी।

दूसरा कारण था सींधिया, होलकर और राजपूताने के नरेशों का केवल सङ्कोच और अविश्वास के कारण उस राष्ट्रीय विप्लव में भाग न ले सकना। यदि महाराजा जयाजीराव सींधिया या कोई प्रमुख राजपूत नरेश समय पर अपनी सेना सहित दिल्ली पहुँच जाता तो कम्पनी की सेना के लिए ठहर सकना सर्वथा असम्भव होता और राजधानी के अन्दर प्रभावशाली नेता की कमी भी पूरी हो जाती। सम्राट बहादुरशाह ने इन लोगों को क्रान्ति की ओर करने का प्रयत्न भी किया, किन्तु उसे सफलता न मिल सकी।

देशी नरेशों की अकर्मण्यता

तीसरा कारण यह था कि विन्ध्याचल से नीचे के भाग ने उससे शतांश उत्साह के साथ भी क्रान्ति का साथ नहीं दिया, जिस उत्साह के साथ कि विन्ध्याचल से उत्तर के भाग ने दिया। यदि मद्रास, बम्बई और महाराष्ट्र में उत्तर भारत के साथ साथ उसी तरह युद्ध शुरू हो गया होता तो उन प्रान्तों से उत्तर की ओर सेना भेज सकना अंगरेज़ों के लिए असम्भव होता, जनरल नील, जनरल हैवलॉक इत्यादि कलकत्ते तक भी न पहुँच पाते, और बनारस, इलाहाबाद, कानपुर और अन्त में लखनऊ विजय कर सकना अंगरेज़ों के लिए नामुमकिन होता।

दक्खिन में उदासीनता

युद्ध की असफलता के ये पाँचों कारण इस प्रकार के हैं कि

यदि इनमें कोई एक भी अनुपस्थित होता तो शेष चारों के होते हुए भी शायद युद्ध असफल न हो पाता।

अब प्रश्न यह हो सकता है कि यदि सन् ५७ का युद्ध सफल हो गया होता तो भारत या संसार के लिए नतीजा क्या होता?

दोनों ओर के अत्याचारों की तुलना

किसी भी निष्पक्ष इतिहास लेखक को इससे इनकार नहीं हो सकता कि अधिकांश क्रान्तिकारी अपने देश की स्वाधीनता और अपने धर्म की रक्षा के लिए मैदान में उतरे थे। दूसरी ओर जिन अंगरेज़ों ने उनका विरोध किया उनका मुख्य उद्देश इस देश के ऊपर अंगरेज़ी क़ौम के स्वेच्छाशासन को क़ायम रखना था। निस्सन्देह पहला आदर्श दूसरे आदर्श की अपेक्षा उच्चतर है। दोनों ओर से समय समय पर प्रशंसनीय वीरता और साहस का परिचय दिया गया। यहाँ पर दोनों ओर के अत्याचारों पर एक निगाह डालना अनुचित न होगा। बहुत मुमकिन है दिल्ली, कानपुर, झाँसी इत्यादि में कुछ न कुछ अंगरेज़ स्त्रियों और बच्चों की हत्या हुई। किन्तु इस सम्बन्ध में हमें एक दो बातों को याद रखना होगा।

क्रान्तिकारियों पर झूठे इलज़ाम

पहली यह कि जितनी बातें क्रान्तिकारियों के अत्याचारों के विषय में अंगरेज़ इतिहास लेखकों की पुस्तकों में पाई जाती हैं उनमें असत्य की मात्रा बहुत काफ़ी है। इसके सुबूत में हम ऊपर भी कई निष्पक्ष अंगरेज़ों की सम्मतियाँ नक़ल कर चुके हैं। इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट के मेम्बर मिस्टर लेयर्ड ने इस तरह की घटनाओं की

सच्चाई का ठीक ठीक पता लगाने के लिए क्रान्ति के दिनों में भारत की यात्रा की। ११ मई सन् १८५८ को इङ्गलिस्तान लौट कर लेयर्ड ने लन्दन में एक वक्तृता देते हुए कहा—

"जब मैं भारत में था, मैंने हद दरजे की सच्चाई के साथ यह पता लगाने का प्रयत्न किया कि आया किसी भी अंगरेज़ को अङ्ग भङ्ग किया गया था या नहीं। जिन लोगों को गवरमेण्ट ने इस विषय की जाँच करने के लिए नियुक्त किया था, और जिनके विषय में मुझे यह कहते हुए दुःख होता है कि यदि उन्हें भारतवासियों के अत्याचारों की एक भी मिसाल मिलती तो वे खुश होकर उसे चिपट जाते, उन लोगों तक ने मुझे विश्वास दिलाया कि उन्हें एक भी मिसाल ऐसी नहीं मिली जिसमें किसी अंगरेज़ को अङ्ग भङ्ग किया गया हो। इसके विपरीत बेशुमार मिसालें ऐसी मिलती हैं जिनमें हमारी सेना ने (अंग भंग करके) भयङ्कर बदला लिया × × ×।"*

निस्सन्देह इस बयान में उन अंगरेज़ पुरुषों का ज़िक्र नहीं है जो युद्ध में लड़ते हुए कटे।

एक दूसरे स्थान पर लेयर्ड ने कहा :—

"अत्यन्त सावधानी के साथ जाँच करने के बाद, सबसे उत्तम और सबसे अधिक विश्वसनीय लोगों से मुझे जो कुछ सूचना मिली है, उससे मुझे इस बात का पूरा विश्वास है कि दिल्ली, कानपुर, झाँसी और अन्य स्थानों पर जो अनेक भीषण अत्याचार कहा जाता है कि अंगरेज़ स्त्रियों और बच्चों के ऊपर किए गए, वे सब के सब, प्रायः बिना एक भी अपवाद के, झूठे

---

* Mr. Layard M. P., *The Home News*, May 17th, 1888, p, 690.

हैं और कहने वालों के अपने मन से गढ़े हुए हैं, जिसके लिए उन्हें लज्जा आनी चाहिए।"*

क्रान्ति के नेताओं की उदारता

प्रामाणिक अंगरेज़ लेखकों की सम्मतियाँ इस विषय की भी नक़ल की जा चुकी हैं कि कानपुर में अंगरेज़ स्त्रियों और बच्चों की हत्या यदि हुई भी हो तो वह नाना साहब की इजाज़त से नहीं की गई और न नाना साहब पर उसकी ज़िम्मेदारी लादना न्याय है। झाँसी में भी किसी निहत्थे अंगरेज़ की हत्या में रानी लक्ष्मीबाई का कोई हाथ न था। सम्राट बहादुरशाह और नाना साहब, बेगम हज़रत महल और रानी लक्ष्मीबाई चारों ने समय समय पर अंगरेज़ स्त्रियों और बच्चों की रक्षा का पूरा प्रयत्न किया। फ़ॉरेस्ट लिखता है कि अवध के नेताओं ने एक एलान द्वारा अपने अनुयाइयों को आज्ञा दी कि—"स्त्रियों या बच्चों की हत्या से अपने आन्दोलन को कलङ्कित न करना।" अवध के अन्दर असंख्य मिसालें ऐसी मिलती हैं जिनमें क्रान्तिकारी ज़मींदारों और जनता ने अंगरेज़ स्त्रियों और बच्चों यहाँ तक कि आश्रित अंगरेज़ पुरुषों को अपने महलों और मकानों में आश्रय दिया। इसके विपरीत जनरल नील, कूपर, हैवलॉक, हडसन जैसे अनेकों ने स्थान स्थान पर जिस तरह के कृत्य किए उनके विषय में स्वयं गवरनर जनरल लॉर्ड कैनिङ्ग ने, २४ दिसम्बर सन् १८५७ को, अपनी कौन्सिल के अन्दर कहा था—

"न केवल छोटे बड़े हर तरह के अपराधी ही, बल्कि वे लोग भी

* See page 1504 of this book.

जिनका अपराध कम से कम अत्यन्त सन्दिग्ध था, बिना किसी भेदभाव के फाँसी पर लटका दिए गए। ग्रामों को आम तौर पर जला डाला गया और लूट लिया गया। इस तरह दोषी और निर्दोष, पुरुष और स्त्री, बच्चे और बूढ़े, सब को बिना भेदभाव दण्ड दिया गया × × ×।"*

नील, हडसन जैसों के अन्य अत्याचारों को दोहराना मानव हृदय को यातना पहुँचाना है।

स्वाधीनता संग्राम पर एक कलंक

किन्तु साथ ही भारतीय क्रान्तिकारी अपनी 'स्वाधीनता और धर्म की रक्षा' के नाम पर खड़े हुए थे। यूरोप और भारत की सभ्यताओं और दोनों के नैतिक आदर्शों में बहुत बड़ा अन्तर है। अंगरेज़ जनरल नील के अत्याचार कानपुर या किसी दूसरी जगह निहत्थे अंगरेज़ों के ऊपर भारतीय क्रान्तिकारियों के अत्याचारों के लिए कोई बहाना नहीं हो सकते। बहुत सम्भव है कि क़रीब दो सौ अंगरेज़ स्त्रियों और बालकों की हत्या—और जहाँ तक पता चल सकता है, सन् ५७ में समस्त भारत के अन्दर इससे अधिक अंगरेज़ स्त्रियों और बच्चों की हत्या नहीं की गई—स्वाधीनता के उस पवित्र आन्दोलन पर सदा के लिए एक कलंक रहेगी।

यदि क्रान्ति सफल हो गई होती

किन्तु फिर यह प्रश्न उठता है कि यदि सन् ५७ की क्रान्ति सफल हो गई होती तो हालत क्या होती। संसार की सभी क़ौमों और देशों के लिए स्वाधीनता हर हालत में श्रेयस्कर और पराधीनता सब से

---

* See page 1658 of this book.

बड़ा शाप है। किसी भी क़ौम को अपनी उन्नति या अपने सार्वांगिक विकास का पूरा अवसर केवल स्वाधीनता में ही मिल सकता है। भारत या कोई देश इस व्यापक नियम का अपवाद नहीं हो सकता। किन्तु साथ ही सन् ५७ के हालात को ध्यान से पढ़ने पर तीन बातें हमारी नज़र में सबसे अधिक चमकती हैं।

‘धर्म’ और ‘दीन’ की आवाज़

पहली बात यह है। इसमें सन्देह नहीं सन् ५७ का स्वाधीनता संग्राम इस देश में हिन्दू मुसलिम ऐक्य का एक सुन्दर और ज्वलन्त उदाहरण था। उस संग्राम के समस्त हिन्दू और मुसलमान नेता, और लाखों हिन्दू और मुसलमान जन सामान्य अपने अपने धार्मिक विश्वासों पर क़ायम रहते हुए, भारत सम्राट के झंडे के नीचे, कंधे से कंधा मिलाकर, अपने प्यारे देश की आज़ादी के लिए युद्ध कर रहे थे। आज़ादी की लगन ने उस समय भारत के हिन्दू और मुसलमानों को कितना बेचैन कर रखा था इसकी एक सुन्दर मिसाल यह है कि गाय और सुअर की चरबी के जो कारतूस युद्ध का एक ख़ास सबब थे, एक बार शुरू हो जाने पर, युद्ध के अनेक मैदानों में, लाखों हिन्दू और मुसलमान सिपाही विदेशियों से लड़ते समय उन्हीं कारतूसों को ख़ुशी के साथ अपने दाँतों से काटते हुए दिखाई दिये।

साथ ही इसमें भी सन्देह नहीं कि सन् ५७ की क्रान्ति में भाग लेने वाले लाखों हिन्दू और मुसलमान ऐसे भी थे जिनके शस्त्र उठाने का मुख्य कारण यह था कि उन्हें अपना ‘धर्म’ ख़तरे में

दिखाई देता था। विधर्मी विदेशियों की अनेक करतूतों और ख़ास कर चरबी के कारतूसों ने उनकी इस आशंका को ख़ासा मज़बूत कर दिया था। इन भारतीय वीरों के हृदय की सच्चाई, इनके त्याग और इनकी वीरता का हमें आदर है। किन्तु हमें यह मानना होगा कि सर्वव्यापी मानवधर्म की दृष्टि से ऐसे लोग किसी अधिक उच्च धार्मिक आदर्श के लिए खड़े न हुए थे। रूढ़ियां रूढ़ियां हैं, और हक़ यह है कि इन हिन्दू, मुसलिम या ईसाई, पृथक पृथक धर्मों का समय संसार से वहुत दिनों का उठ चुका। सच्चा वास्तविक मानव धर्म मनुष्य मात्र के लिए एक है। इस सच्चे धर्म की झलक अनेक हिन्दू, मुसलमान और अन्य महात्माओं की वाणी में समय समय पर मिल चुकी है; यहाँ तक कि वे लोग अपने आप को हिन्दू मुसलमान इत्यादि कहने से भी परहेज़ करते थे। समस्त संसार इस सच्चे व्यापक धर्म की वाट जोह रहा है, और ज़िस भारत ने कवीर और नानक जैसों को पैदा किया उससे आशा की जाती है कि वह संसार को इस सच्चे सार्वजनिक धर्म की ओर ले जाने में अग्रसर होगा। ऐसी सूरत में सन् ५७ के अनेक क्रान्तिकारियों की 'धर्म, धर्म !' और 'दीन, दीन !' की आवाज़ न सार्वभौम सत्य की दृष्टि से वहुत ऊँची थी और न धर्म के क्षेत्र में भारत के वास्तविक गौरव के उपयुक्त थी।

इन दोनों धर्मों की पृथक पृथक लहरें भारतीय समाज के जीवन में पिछले एक हज़ार साल के अन्दर अनेक ढंग से टकरा चुकी थीं। हम इस पुस्तक के शुरू में दिखला चुके हैं कि उन एक

हज़ार साल के अन्दर जिस मेल और प्रेम के साथ हिन्दू और मुसलमान इस देश में रहते रहे उसकी मिसाल संसार के किसी भी दूसरे देश में मिलना कठिन है। किन्तु साथ ही हमारे दैनिक और मानसिक जीवन में वह टक्करें भी मौजूद थीं जिन्होंने कबीर को "आपस में दोउ लरि लरि मूए," और नानक को "दावा राम रहीम कर लड़दे बेईमान," कहने पर मजबूर किया। जैसा हम दिखला चुके हैं, इन टक्करों को हमारे क़ौमी जीवन से और उनके कारणों को हमारे दिलों से मिटाने के महान प्रयत्न भी जारी थे। किन्तु हमें बहुत सन्देह है कि सन् ५७ के जिस पहलू का हम ज़िक्र कर रहे हैं, सफलता के बाद, वह पहलू इन समन्वयात्मक प्रयत्नों में सहायक होता या भविष्य के लिए इन टक्करों की सम्भावना को और अधिक बढ़ा देता।

बहुत सम्भव है कि इन टक्करों का नतीजा अन्त में अच्छा ही होता और ये टक्करें हमें शीघ्र सार्वजनिक सत्य की चट्टान तक पहुँचा देतीं। सम्भव है कि सन् १७५७ से १८५७ तक के अनुभवों के कारण इन टक्करों में से अनेक कबीर और अकबर पैदा हो जाते, और यह अत्यन्त जटिल समस्या सुन्दरता पूर्वक सदा के लिए हल हो जाती। कम से कम यदि सन् ५७ का महान प्रयत्न सफल हो गया होता तो फिर किसी तीसरी ताक़त को अपने तुच्छ स्वार्थ के लिए इस समस्या को जान बूझ कर और अधिक जटिल बना देने का मौक़ा न मिलता। किन्तु वे टक्करें देश को किस ओर ले जातीं इस सब में कितना समय लगता, और कबीर और अकबर के

स्वप्न कब तक पूरे हो पाते, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

उच्च कुलों का मान

दूसरी बात यह है कि सन् ५७ का समय राजघरानों और उच्च कुलों के मान, उनकी सत्ता और कुलीनता के अभिमान का समय था। इन कुलों ही के नाम पर सन् ५७ का युद्ध शुरू हुआ। दिल्ली में बख़्त ख़ाँ, लखनऊ में मौलवी अहमदशाह, कानपुर में अज़ीमुल्ला ख़ाँ और महाराष्ट्र में तात्या टोपे को केवल इस लिए यथेच्छ सफलता न मिल सकी, क्योंकि वे किसी राजकुल में पैदा न हुए थे। सन् ५७ की सफलता के बाद सम्भव है कि, एक तो भारत के राजकुलों में परस्पर मेल क़ायम रहना इतना सरल न होता जितना सम्राट बहादुरशाह ने राजपूताना इत्यादि के राजाओं के नाम अपने पत्र में आशा की थी, और दूसरे जनता की सत्ता, जनता की शक्ति और जनता की राजनीति के दिन भारत से और अधिक दूर चले गए होते।

हिंसा और अहिंसा

तीसरी बात यह है कि यद्यपि एक ओर बहादुरशाह, हज़रत महल, कुंवरसिंह और लक्ष्मीबाई जैसों के चित्र और चरित्र और दूसरी ओर कैनिङ्ग, नील, हैवलॉक और हडसन जैसों के चित्र और चरित्र, दोनों में साफ़ अन्तर दिखाई देता है; यद्यपि एक के ऊपर भारत के उच्चतर नैतिक आदर्शों और दूसरे के ऊपर पच्छिम के हीन आदर्शों की छाप साफ़ दिखाई देती है, फिर भी जिन साधनों से सन् ५७ के क्रान्तिकारी अंगरेज़ों का मुक़ाबला कर रहे थे, वे हिंसात्मक साधन थे, जिन्हें

मनुष्य जाति हज़ारों साल से आज़मा चुकी थी। सन् ५७ में जिस पक्ष की भी विजय होती वह विजय 'हिंसा' के सिद्धान्त की ही होती। स्वाभाविक था कि उस संग्राम में वही पक्ष अन्त में विजय प्राप्त करे जो 'हिंसा' के सिद्धान्त और उसके उपयोग में अधिक निस्सङ्कोच और अधिक सिद्धहस्त हो। भारत या एशिया का वास्तविक और चिरकालीन गौरव यूरोप के ऊपर इस तरह की विजय में न था। हमें पूरा विश्वास है कि 'हिंसा' के ऊपर 'अहिंसा' की श्रेष्ठता और अधिक बलवत्ता की अमली शिक्षा संसार को देने का कार्य भारत ही के लिए नियुक्त है, और सन् ५७ की राष्ट्रीय क्रान्ति की शताब्दी से पहले भारत के पग उस अधिक ज्वलन्त विजय की ओर साफ़ बढ़ते हुए दिखाई दे रहे हैं।

किन्तु यह सब केवल विश्वास और अनुमान की चीज़ें है। सन् ५७ की असफलता की याद किसी भी विचारवान भारतवासी के हृदय को दुखी और सन्तप्त किये बिना नहीं रह सकती। मालूम होता है कि शायद हमारी इन सब त्रुटियों की पूर्ति के लिए और भारतीय आत्मा के पूर्ण परिमार्जन के लिए ही इस देश को अभी कुछ समय और विदेशी शासन के तातदिव्य में से होकर निकलना बदा था।

यदि क्रान्ति न हुई होती ?

एक प्रश्न यह भी उत्पन्न होता है कि यदि सन् ५७ की क्रान्ति ही न हुई होती तो नतीजा क्या होता ? सन् १७५७ से १८५७ तक के कम्पनी के राज और उसके साधनों और कृत्यों का बयान इस

पुस्तक में किया जा चुका है। उस समस्त दुःखकर कहानी को दोहराना असम्भव और निरर्थक है। लॉर्ड डलहौज़ी ही के भारतीय रियासतों को हड़पने के विषय में हम इतिहास लेखक लडलो की यह राय उद्धृत कर चुके हैं कि—

"यदि इन हालात में उन लोगों के पक्ष में, जिनकी रियासतें छीन ली गई थीं और छीनने वालों के विरुद्ध भारतवासियों के भाव न भड़क उठते तो भारतवासी मनुष्यत्व से गिरे हुए समझे जाते।"*

इसी प्रकार यदि दिल्ली सम्राट के लगातार अपमान और लखनऊ की स्वाधीनता के नाश से भारतवासियों के हृदयों में जोश उत्पन्न न होता तो वे मनुष्य न कहला सकते। ऐसे ही मनुष्य का विचार चाहे सत्य हो वा असत्य, किन्तु जिस चीज़ को भी मनुष्य अपना धर्म समझता है उसको आघात से बचाने के लिए यदि वह अपना सर्वस्व न्योछावर करने को तैयार नहीं हो जाता, तो उसे मनुष्य नहीं कहा जा सकता।

ऐसी अवस्था में यदि भारतवासियों में मनुष्यत्व बाक़ी था तो सन् ५७ की क्रान्ति स्वाभाविक और अनिवार्य थी। उस क्रान्ति के आदर्शों के विषय में या क्रान्तिकारियों के सम्मुख वास्तविक और उच्चतर आदर्शों के अभाव के विषय में हम चाहे कुछ भी क्यों न कहें, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि यदि सन् ५७ की क्रान्ति न हुई होती तो उसका यही अर्थ था कि भारतवासियों में से साहस,

* "*Thoughts on the Policy of the Crown.* by Ludlow, pp. 35, 36.

आत्मगौरव, कर्तव्यपरायणता और जीवन शक्ति का अन्त हो चुका। अंगरेज़ शासकों के हौसले फिर सहस्रों गुने बढ़ गए होते और भारतवासियों के जीवन में आशा की छटा तक कहीं दिखाई न देती। इसमें तो कुछ भी सन्देह नहीं कि फिर हिन्दू या मुसलमान एक भी देशी रियासत भारत में बाक़ी न बची होती। भारतवासियों की अवस्था इस समय तक क़रीब क़रीब वैसी ही होती जैसी अफ़रीका और अमरीका के उन आदिम निवासियों की, जिनके सहस्रों वर्षों के अस्तित्व को यूरोपियन जातियों ने संसार से मिटा दिया और जिनके प्रदेशों में अब यूरोपियन जातियों के उपनिवेश बने हुए हैं। इस सब दृष्टि से सन् ५७ के क्रान्तिकारियों का भीषण बलिदान कदापि व्यर्थ नहीं गया। उन लोगों के असफल प्रयत्नों ने, जब कि एक ओर अंगरेज़ शासकों की आँखें खोल दीं और उन्हें सावधान कर दिया, दूसरी ओर उन्होंने भारतवासियों के राष्ट्रीय जीवन में आशा और आत्मविश्वास की वह झलक पैदा कर दी जो सौ वर्ष तक भी कभी फीकी नहीं पड़ सकती।

सन् ५७ की क्रान्ति का अन्य देशों पर असर

एक और बात इस विषय में ध्यान देने योग्य है। किसी भी देश की कोई इतनी महान घटना संसार के अन्य देशों पर अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकती। ठीक सन् ५७ में अंगरेज़ चीन के साथ युद्ध करने का सङ्कल्प कर चुके थे। जिस अंगरेज़ी सेना की मदद से लॉर्ड कैनिङ्ग ने भारत को फिर से विजय किया, उसमें से अधिकांश चीन पर हमला करने के लिए रवाना हो चुकी

थी, और लॉर्ड कैनिङ्ग ने भारत की आपत्ति को देख कर उसे बीच ही में रोक लिया। उस समय का चीन भी ४० वर्ष बाद के बॉक्सर युद्ध के समय के चीन से कहीं अधिक निर्बल देश था। सन् ५७ का जापान भी क़रीब तीन सौ छोटी छोटी रियासतों में बँटा हुआ था, जिनमें परस्पर प्रतिस्पर्धा और आए दिन के संग्राम होते रहते थे। उस समय का जापान राजनैतिक दृष्टि से किसी प्रकार उस समय के भारत से अधिक बलवान या अधिक अच्छी अवस्था में न था। भारतीय क्रान्ति के ११ वर्ष बाद जापानी देशभक्तों ने, अपने यहाँ की २७३ सैकड़ों वर्षों की पुरानी रियासतों को अन्त कर, देश में एक प्रधान शासन क़ायम किया। सन् १८६८ के इस महान परिवर्तन से ही जापान की समस्त जागृति का प्रारम्भ हुआ। प्रसिद्ध अंगरेज़ तत्ववेत्ता हरबर्ट स्पेन्सर का वह ऐतिहासिक पत्र, जिसमें उसने भारत की ओर सङ्केत करते हुए जापानी नीतिज्ञों को यूरोप और अमरीका निवासियों की चालों की ओर से सावधान किया, भारतीय क्रान्ति के बाद का ही लिखा हुआ था। कौन कह सकता है कि यदि चीन और जापान दोनों देश पाश्चात्य क़ौमों के अधीन होने से बचे रहे तो इसका श्रेय किस दरजे तक सन् ५७ की क्रान्ति के उन प्रवर्त्तकों और सञ्चालकों को मिलना चाहिए जिन्होंने एशियाई जीवन के उस ऐन नाज़ुक मौक़े पर ब्रिटिश महत्वाकांक्षा को कुछ दिनों के लिए एक ज़बरदस्त धक्का पहुँचाया, और अन्य एशियाई देशों को पाश्चात्य कूटनीति की ओर से सावधान हो जाने का मौक़ा दिया।

हमारे भावी आदर्श

जो हो, भारतवासियों के लिए अब मुख्य कार्य केवल अपने धार्मिक, सामाजिक और नैतिक आदर्शों को स्थिर करना है। इसी के साथ साथ उन्हें 'अहिंसा' की शक्ति को समझना होगा और अपने मन में 'अहिंसा' की अजेयता और उपयोगिता में विश्वास उत्पन्न करना होगा। हम ऊपर लिख चुके हैं कि भारत के पग उस भावी अपूर्व विजय की ओर साफ़ और दृढ़ता के साथ बढ़ते हुए दिखाई दे रहे हैं। प्रश्न केवल समय का है।

अंगरेज़ इतिहास लेखक फ़ॉरेस्ट लिखता है—

"सन् ५७ की क्रान्ति हमें इस बात की याद दिलाती है कि हमारा साम्राज्य एक ऐसे पतले छिलके के ऊपर क़ायम है, जिसके किसी भी समय सामाजिक परिवर्तनों और धार्मिक क्रान्तियों की प्रचण्ड ज्वालाओं द्वारा टुकड़े टुकड़े हो जाने की सम्भावना है।"*

* "The Mutiny reminds us that our dominions rest on a thin crust ever likely to be rent by titanic fires of social changes and religious revolutions."—*State Papers*, by Forrest, Introduction.

इक्यावनवाँ अध्याय

सन् १८५७ के बाद

सन् १८५७ की आज़ादी की जंग से अंगरेज़ नीतिज्ञों की आँखें खुल गईं। वे अब अनुभव करने लगे कि जिस तेज़ी के साथ वे कुछ समय पहले से हिन्दोस्तान की देशी रियासतों का एक एक कर ख़ातमा करने और देश के सारे मानचित्र को लाल रँग देने की कोशिशों में लगे हुए थे वह अंगरेज़ी राज की स्थिरता के लिए कल्याण सूचक न थी। वे समझ गए कि अपने साम्राज्य को और अधिक बढ़ाने की निस्बत अब उसकी मज़बूती के उपाय करना ज़्यादा ज़रूरी है। उन्हें अपनी क़रीब एक सौ साल की शासन नीति पर फिर से ग़ौर करने की ज़रूरत महसूस हुई। सन् ५७-५८ के अन्दर भारत और इङ्गलिस्तान के अंगरेज़ी समाचार पत्रों और राजनैतिक केन्द्रों में इस विषय की ख़ूब बहसें हुईं। अन्त को जो

ख़ास ख़ास उपाय अंगरेज़ी साम्राज्य की आइन्दा की मज़बूती के लिए सब से ज़्यादा महत्व के समझे गए और जिनके ऊपर बहुत दर्जे तक सन् ५७ के बाद से भारत में अंगरेज़ी राज की नीति ढाली गई उन्हें हम एक एक कर नीचे बयान करते हैं—

१–ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अन्त

सन् १८५८ तक ब्रिटिश भारत की हुकूमत ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथों में थी। ऊपर आ चुका है कि सन् १६०० ईसवी में इङ्गलिस्तान की मलका एलिज़ेबेथ ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की रचना की थी और फिर हर बीस साल के बाद इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट एक नए 'चारटर एक्ट' के ज़रिये हिन्दोस्तान के अन्दर कम्पनी के अधिकारों को पक्का करती रहती थी जिसका मतलब यह था कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी वास्तव में पार्लिमेण्ट की केवल एक एजण्ट थी।

क्लाइव से पहले ईस्ट इण्डिया कम्पनी का काम इस देश में केवल व्यापार करना था। क्लाइव के समय से हिन्दोस्तान के कुछ इलाक़े के ऊपर कम्पनी का राज शुरू हुआ। उसके बाद वारन हेस्टिंग्स ब्रिटिश भारत का पहला गवरनर जनरल नियुक्त हुआ। वारन हेस्टिंग्स ही के समय में इङ्गलिस्तान के एक मन्त्री फ़ॉक्स ने पार्लिमेण्ट के सामने यह तजवीज़ पेश की कि हिन्दोस्तान के अन्दर जो कुछ इलाक़ा कम्पनी के हाथ आ गया है उसके शासन का इन्तज़ाम कम्पनी के हाथों से लेकर इङ्गलिस्तान के बादशाह और इङ्गलिस्तान के मन्त्रिमण्डल के हाथों में दे दिया जाय। हाउस ऑफ़ कॉमन्स ने फ़ॉक्स की इस तजवीज़ को मंज़ूर कर लिया। किन्तु हाउस

ऑफ़ लॉर्ड्स पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के धनाढ्य हिस्सेदारों का प्रभाव अधिक था, इसलिए हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स ने फ़ॉक्स की तजवीज़ को नामंज़ूर कर दिया।

अगले साल यानी सन् १७८३ में प्रधान मन्त्री विलियम पिट ने यह तजवीज़ पेश की कि इङ्गलिस्तान के मन्त्रिमण्डल के मातहत एक नया मोहकमा क़ायम किया जाय जिसे 'बोर्ड ऑफ़ कण्ट्रोल' कहा जाय। मन्त्रियों में से एक इस बोर्ड का प्रधान रहे, और कम्पनी के डाइरेक्टर अपने भारतीय राज के शासन का जो कुछ प्रवन्ध करें वह सब इस बोर्ड की देख रेख में करें। सन् १७८४ से लेकर सन् १८५८ तक इङ्गलिस्तान का यह सरकारी मोहकमा और कम्पनी के डाइरेक्टर, दोनों मिलकर ब्रिटिश भारत की शासन नीति चलाते रहे। दूसरे शब्दों में क़रीब क़रीब शुरू से ही भारत में अंगरेज़ी राज की असली बाग इङ्गलिस्तान की सरकार और वहाँ की पार्लिमेण्ट के हाथों में रही और ईस्ट इण्डिया कम्पनी इस मामले में उनकी केवल एक एजण्ट थी।

सन् १७८३ के बाद सन् १८१३ में एक नई बात यह की गई कि उस समय से हिन्दोस्तान के साथ तिजारत करने का अनन्य अधिकार भी पार्लिमेन्ट ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी से ले लिया और हर अंगरेज़ या हर अंगरेज़ कम्पनी को इस देश के साथ तिजारत करने का अधिकार दे दिया। वजह यह थी कि इङ्गलिस्तान और हिन्दोस्तान के बीच की तिजारत बहुत बढ़ गई थी और सारी अंगरेज़ क़ौम उससे लाभ उठाने के लिए लालायित थी। हम ऊपर

एक अध्याय में दिखा चुके हैं कि भारत के प्राचीन उद्योग धन्धों के सर्वनाश और भारत की वर्तमान दरिद्रता का मूल कारण सन् १८१३ का 'चारटर' एक्ट था।

हर नए चारटर एक्ट में अंगरेज़ क़ौम और अंगरेज़ व्यापारियों के असली उद्देश पर परदा डालने के लिए कोई न कोई वाक्य इस तरह का जोड़ दिया जाता था जिससे मालूम हो कि इन विदेशियों का असली मतलब केवल भारतवासियों का उपकार करना है! मिसाल के तौर पर सन् १८१३ के चारटर में लिखा गया कि हिन्दोस्तान के "अंगरेज़ी इलाक़ों के वाशिन्दों के सुख और उनके हित को वढ़ाना"* इङ्गलिस्तान का "कर्तव्य" है, इत्यादि।

सन् १८३३ के एक्ट में लिखा है :—

"इन इलाक़ों के किसी वाशिन्दे को, या इन इलाक़ों में रहने वाली वादशाह की किसी क़ुदरती रिआया को, केवल उसके मज़हब, या जन्म स्थान या नसल, या रङ्ग की वजह से कम्पनी के मातहत किसी मुलाज़मत, पदवी या ओहदे के अयोग्य न समझा जायगा।"†

सन् १८३३ से सन् १८५३ तक भारत के अन्दर अंगरेज़ी राज की सीमाएँ इतनी वढ़ चुकी थीं कि फिर १८५३ के 'चारटर एक्ट'

---

* "To promote the interest and happiness of the inhabitants of the British Dominions."—Charter Act of 1813.

† "That no Native of the said territories, nor any naturalborn subject of His Majesty resident therein, shall by reason only of his religion, place of birth, descent, color, or any of them, be disabled from holding any place, office, or employment under the said company."—Charter Act of 1833.

में इस तरह के किसी परोपकार सूचक वाक्य की ज़रूरत महसूस न हुई।

सन् १८५३ के चारटर एक्ट के पास होने के समय अंगरेज़ शासकों ने जो गवाहियाँ पार्लिमेन्ट की सिलेक्ट कमेटी के सामने दीं उनसे साफ़ मालूम होता है कि उस समय भारत के अंगरेज़ शासकों का एक मात्र उद्देश यह था कि जिस तरह हो सके, इस देश से धन चूस कर इङ्गलिस्तान को धनाढ्य बनाया जावे और अंगरेज़ी तालीम और ईसाई मत प्रचार के ज़रिये हिन्दोस्तान के राष्ट्रीय चरित्र को निर्बल कर उन्हें सदा के लिए अंगरेज़ क़ौम का गुलाम बना कर रखा जावे।

सन् ५७ के कुछ पहले से इङ्गलिस्तान के अन्दर इस बात के लिए फिर ज़बरदस्त आन्दोलन जारी था कि कम्पनी के विशाल भारतीय साम्राज्य का इन्तज़ाम कम्पनी के हाथों से लेकर बराहरास्त इङ्गलिस्तान के बादशाह और इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट के हाथों में दे दिया जाय। इस आन्दोलन की दो ख़ास वजह बताई गईं।

पहली वजह यह थी कि हिन्दोस्तान ही की और ख़ास कर बंगाल की 'लूट' के प्रताप से १८ वीं सदी के आख़ीर के दिनों से इंगलिस्तान के पिछड़े हुए उद्योग धन्धे बढ़ने शुरू हुए और लंकाशायर आदि के कारख़ाने खुलने लगे। इन नए कारख़ानों के मालिकों को एक तरफ़ तो रुई जैसे कच्चे माल की ज़रूरत थी और रुई इङ्गलिस्तान में न हो सकती थी। शुरू में कुछ रुई अमरीका से इङ्गलिस्तान मंगवाई गई किन्तु वह बहुत मंहगी पड़ती थी।

दूसरी तरफ़ उद्योग धन्धों के वढ़ने के साथ साथ इङ्गलिस्तान की अनुपजाऊ भूमि में नाज की पैदावार भी और कम होती जा रही थी, और वहाँ के लोगों को भोजन पहुँचाने के लिए वाहर से नाज की भी ज़रूरत थी। इसके लिए राजनैतिक भाषा में एक नया वाक्य "Development of the resources of India" (हिन्दोस्तान की भूमि की उपजाऊ शक्ति को उन्नति देना) गढ़ा गया। मतलव यह था कि विशाल भारत भूमि में इस तरह की व्यवस्था की जावे, इस तरह के रास्ते वनाए जावें और सहूलियतें की जावें, जिनसे इस देश से माल और धन के खींचने में आसानी हो, यहाँ के अंगरेज़ी इलाक़े के अन्दर रुई की खेती को वढ़ाया जावे और रेलों इत्यादि के ज़रिए रुई, नाज और दूसरे कच्चे माल के जगह जगह से जमा होकर इङ्गलिस्तान भेजे जाने और इङ्गलिस्तान के नए कारख़ानों में वने हुए माल को हिन्दोस्तान के शहरों और गावों में पहुँचाने की सुविधाएँ पैदा की जावें। किन्तु ईस्ट इण्डिया कम्पनी के रहते यह काम पूरी तेज़ी के साथ नहीं हो सकता था।

दूसरी वजह यह थी कि इङ्गलिस्तान के अनेक लोग हिन्दोस्तान के ज़रखेज़ मैदानों में आ आकर वसना और इस देश को ऑस्ट्रेलिया, अफ़रीका, अमरीका आदि की तरह इङ्गलिस्तान का एक उपनिवेश वना देना चाहते थे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी इस तरह के उपनिवेश वनाने के ख़िलाफ़ थी।

असली वात यह थी कि कम्पनी के डाइरेक्टर और हिस्सेदार

चाहते थे कि हिन्दोस्तान की तिजारत हिन्दोस्तान की हुकूमत और हिन्दोस्तान की लूट का सारा फ़ायदा उन्हीं को पहुँचे। किन्तु इङ्गलिस्तान में उनके वैभव को देख देख कर उनके हज़ारों और प्रतिस्पर्धी पैदा हो चुके थे। लोग चाहते थे कि जो लाभ भारत से केवल कम्पनी को हो रहा है वह अब सारी अंगरेज़ी क़ौम को हो। यही कम्पनी के तोड़े जाने का सब से बड़ा कारण था।

किन्तु ये दो ख़ास वजह बताई गईं जिनसे इङ्गलिस्तान के लोग कम्पनी के तोड़े जाने और ब्रिटिश भारत की हुकूमत बराहरास्त इङ्गलिस्तान के बादशाह के हाथों में दिए जाने के लिए बहुत दिनों से आन्दोलन कर रहे थे। सन् ५७ के विप्लव से इन लोगों को मौक़ा मिल गया। सन् १८५८ में पार्लिमेण्ट के सामने यह तजवीज़ पेश की गई। इसके जवाब में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डाइरेक्टरों ने एक लम्बी दरख़ास्त लिख कर फ़रवरी सन् १८५८ में पार्लिमेण्ट के सामने पेश की। डाइरेक्टरों ने इस दरख़ास्त में अपने सौ साल के शासन के लाभ को दिखाते हुए प्रार्थना की कि शासन की बाग कम्पनी ही के हाथों में रहने दी जाय। हाल के विप्लव की ओर इशारा करते हुए और अपने शासन की सफलता को दर्शाते हुए डाइरेक्टरों ने इस दरख़ास्त में लिखा :—

"हम लोगों को यह दिखाने की ज़रूरत नहीं है कि हाल की दुर्घटना में यदि देशी नरेश बजाय बलवे को दमन करने में हमें सहायता देने के, बलवे के मार्ग प्रदर्शक बन जाते या यदि देश की आम जनता बलवे में

शामिल हो जाती तो इस दुर्घटना का आख़िरी नतीजा शायद कितना मुख़्तलिफ़ होता ।"*

इसी दरख़ास्त में कम्पनी के डाइरेक्टरों ने लिखा कि—

"जिस उसूल का इस समय इङ्गलिस्तान में बड़े ज़ोरों के साथ प्रचार किया जा रहा है वह यह है कि हिन्दोस्तान पर हुकूमत करने में हमें ख़ास नज़र इसी बात पर रखनी चाहिए कि जो अंगरेज़ वहाँ रहते हैं, उन्हें किसी तरह फ़ायदा हो ।"†

डाइरेक्टरों ने इस दरख़ास्त में पार्लिमेण्ट को तफ़सील के साथ यह भी सलाह दी कि भारत के भावी शासन में किन किन बातों के ख़ास ख़याल रखने की ज़रूरत है ।

किन्तु अंगरेज़ क़ौम की बढ़ती हुई माँग को अब पूरा न करना असम्भव था । कम्पनी की प्रार्थना अब स्वीकार न हो सकती थी । भारतवासियों के दिलों को भी किसी नए और गहरे परिवर्तन द्वारा अपनी ओर करने की ज़रूरत थी । सन् १८५८ में ही भारत के अन्दर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन का ख़ातमा कर दिया गया । भारत में अंगरेज़ी राज के शासन की बाग इङ्गलिस्तान को पार्लिमेण्ट ने स्वयं अपने हाथों में ले ली । हाउस ऑफ़ कॉमन्स ने

---

* ". . . how very different would probably have been the issue of late events, if the Native princes instead of aiding in suppressing the rebellion, had put themselves at its head, or if the general population had joined in the revolt: "—East India Company's petition to Parliament, 1858.

† "The doctrine now widely promulgated that India should be administered with an special view to the benefit of the English who reside there."—Ibid.

१६ मार्च सन् १८५८ को एक नई कमेटी नियुक्त की। इस कमेटी का काम नीचे लिखे शब्दों में निश्चित किया गया—

"तहक़ीक़ात की जाय कि हिन्दोस्तान में, ख़ास कर देश के पहाड़ी ज़िलों और अधिक स्वास्थ्यजनक स्थानों में यूरोपियनों की बस्तियाँ आबाद करने और उपनिवेष बढ़ाने के लिए और साथ ही मध्य एशिया के साथ हमारी तिजारत को तरक़्क़ी देने के लिए क्या क्या किया जा चुका है, क्या क्या किया जा सकता है और उसके क्या क्या सर्वोत्तम उपाय हैं?"*

सर चार्ल्स मेटकाफ़ ने यह राय देते हुए कि भारत का शासन कम्पनी के हाथों से लेकर पार्लिमेण्ट के हाथों में दे दिया जाय, लिखा कि—

"यद्यपि मालूम होता है कि हिन्दोस्तान के लोग इस बारे में बिलकुल उदासीन हैं कि हिन्दोस्तान के ऊपर कम्पनी द्वारा शासन किया जाय या बराहरास्त इङ्गलिस्तान के मन्त्रियों द्वारा फिर भी भारत की दूसरी रिआया इस बारे में उदासीन नहीं है, यानी जो यूरोपियन हिन्दोस्तान में रहते हैं और जो कम्पनी के नौकर नहीं हैं और इनके अलावा आम तौर पर वे सब लोग जो दोग़ली नसल के हैं, वे अब कभी भी कम्पनी के शासन से सन्तुष्ट न होंगे।"

ज़ाहिर है कि इस परिवर्तन में हिन्दोस्तानियों की इच्छा का

---

* "To inquire into the progress and prospects, and the best means to be adopted for the promotion of European colonization and settlement in India, especially in the hill districts and healthier climates of that country; as well as for the extension of our commerce with Central Asia."—Terms of Reference of the Select Committee of the House of Commons, 16th March, 1858.

इतना सवाल न था जितना अंगरेज़ों की इच्छा का। इसके बाद किसी को भी इस विषय में सन्देह नहीं हो सकता कि भारत का शासन कम्पनी के हाथों से लेकर इङ्गलिस्तान के मन्त्रिमण्डल के हाथों में देने का ख़ास उद्देश भारतवासियों को लाभ पहुँचाना न था, बल्कि भारत के सर्वोत्तम प्रदेशों में यूरोपनिवासियों के उपनिवेश बना कर भारतवासियों को अपने गोरे मालिकों के लिए "लकड़ी चीरने वालों और पानी भरने वालों" की अवस्था तक पहुँचा देना था। कम्पनी के शासन को अन्त कर देने में ही अब अंगरेज़ नीतिज्ञों को भारत में अंगरेज़ी राज की स्थिरता और उसका भावी हित दिखाई देता था।

२—मलका विक्टोरिया का एलान

विप्लव के पूरी तरह शान्त होने से पहले ही भारत का शासन कम्पनी के हाथों से लेकर इङ्गलिस्तान की सरकार के हाथों में दे दिया गया। मलका विक्टोरिया उस समय इङ्गलिस्तान के सिंहासन पर थी। हिन्दोस्तान के राजाओं, रईसों, सरदारों और समस्त प्रजा के नाम मलका की ओर से एक एलान प्रकाशित किया गया, जिसका ज़िक्र हम ऊपर एक अध्याय में कर चुके हैं। सार रूप में इस एलान के अन्दर नए अधिकार परिवर्तन की सूचना दी गई, भारतवासियों को सलाह दी गई कि वे मलका, उसके उत्तराधिकारियों और उनके द्वारा नियुक्त अफ़सरों के सदा वफ़ादार रहें। लॉर्ड कैनिङ्ग को भारत का पहला वाइसराय नियुक्त किया गया, देशी राजाओं को यह विश्वास दिलाया गया कि जो सन्धियाँ

और अहदनामे आप लोगों के साथ इस समय तक किए जा चुके हैं, इङ्गलिस्तान की सरकार उन पर क़ायम रहेगी, भारतीय प्रजा को विश्वास दिलाया गया कि तुम्हारे मज़हब में किसी तरह का दख़ल न दिया जायगा, और अन्त में लोगों से विप्लव को शान्त करने की प्रार्थना करते हुए मलका विक्टोरिया ने एलान किया—

"जब ईश्वर की कृपा से देश में फिर से शान्ति क़ायम हो जायगी, तब हमारी हार्दिक इच्छा है कि हिन्दोस्तान की कारीगरी को तरक़्क़ी दी जाय, ऐसे ऐसे काम बढ़ाए जाय जिनमे आम जनता को लाभ हो और उनकी उन्नति हो, और शासन इस तरह मे चलाया जाय जिससे भारत में रहने वाली हमारी समस्त रिआया को लाभ हो। प्रजा की .ख़ुशहाली ही में हमारा बल है, उनके सन्तोष में हमारी सलामती है और उनकी कृतज्ञता हमारे लिए सब से अच्छा इनाम है। सर्वशक्तिमान् परमात्मा हमें और हमारे मातहत अफ़सरों को बल दें, ताकि हम अपनी इन इच्छाओं को अपनी प्रजा के हित के लिए पूरा कर सकें।"

ऊपर लिखा वाक्य इस एलान का सब से अधिक चित्ताकर्षक वाक्य है। अनेक भोले भारतवासियों के लिए एलान के ये शब्द काफ़ी सान्त्वना देने वाले साबित हुए और उन पर भरोसा करके सन् ५७ की विशाल युद्धाग्नि में समाप्त हो जाने वाले स्वदेशी मुग़ल साम्राज्य की जगह उन्होंने विदेशी अंगरेज़ी राज को अपना लिया। किन्तु वास्तव में इस एलान का मूल्य इस तरह के अन्य राजनैतिक एलानों से किसी तरह ज़्यादा न था और न यह एलान या कम्पनी से लेकर इङ्गलिस्तान के बादशाह के हाथों में शासन की बाग का

दिया जाना दोनों में से कोई बात भारत की ओर अंगरेज़ शासकों की नीति में किसी तरह के भी मौलिक परिवर्तन का चिन्ह थी। इस एलान का मुख्य उद्देश था स्वतंत्रता संग्राम में असफल भारतवासियों के दिलों को किसी तरह शान्त करना और इसमें सन्देह नहीं, इस उद्देश में अंगरेज़ शासकों को काफ़ी सफलता मिली। प्रसिद्ध अंगरेज़ इतिहास लेखक फ़्रीमैन ने बहुत दिनों बाद इस तरह के एलानों के विषय में लिखा—

"किन्तु जब हम विज्ञप्तियों और एलानों की ओर आते हैं × × × तो हम झूठ के ख़ास चुने हुए मैदान में पहुंच जाते हैं, × × × निस्सन्देह जो मनुष्य पार्लिमेण्ट के हर काम या हर क़ानून पर विश्वास कर लेता है, वह बालक की तरह भोला है।"*

इस तरह के जितने वादे इङ्गलिस्तान ने हिन्दोस्तान के साथ किए हैं, उन सबको मारकिस ऑफ़ सैलिसबरी ने साफ़ "राजनैतिक छल (Political hypocrisy)" स्वीकार किया है।

भारत सरकार के प्रसिद्ध और सुयोग्य लॉ मेम्बर सर जेम्स स्टीफ़ेन ने मलका विक्टोरिया के इस ख़ास एलान के विषय में साफ़ कहा था कि यह एलान—"केवल एक रसमी पत्र था, यह कोई अहदनामा न था जो भारत के अंगरेज़ शासकों के ऊपर किसी तरह का भी बन्धन हो, इस एलान की कोई भी क़ानूनी क़ीमत

* ". . . But when we come to manifestoes, proclamations . . . here we are on the very chosen region of lies, ... He is of child-like simplicity indeed who believes every act of Parliament, . . ."—Freeman's *Methods of Historical study*, pp. 258, 259.

नहीं है (The Proclamation has no legal force whatever.)।"

इङ्गलिस्तान की राज व्यवस्था के अनुसार भी मलका को कोई इस तरह का अधिकार प्राप्त न था और न इङ्गलिस्तान के किसी बादशाह को प्राप्त है, जिससे इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट या वहाँ के मन्त्री बादशाह के किसी एलान के अनुसार अमल करने के लिए मजबूर किए जा सकें। पहली नवम्बर सन् १८५८ को लॉर्ड कैनिङ्ग ने यह एलान इलाहाबाद में पढ़ कर सुनाया। भारत के अंगरेज़ शासकों ने उस समय से आज तक अपने व्यवहार में इस एलान के वादों की कभी अणुमात्र भी परवा नहीं की।

३—देशी रियासतों को क़ायम रखना

हम ऊपर लिख चुके हैं कि लॉर्ड डलहौज़ी का उद्देश भारत के समस्त मानचित्र को अंगरेज़ी राज के रङ्ग में रँग देना था। पञ्जाब, नागपुर, अवध, सतारा, झाँसी इत्यादि पर क़ब्ज़ा किया जा चुका था। १८ अप्रैल सन् १८५६ को पार्लिमेण्ट के सामने वक्तृता देते हुए सर अर्सकाइन पेरी ने कहा था,—"इसके बाद अब निज़ाम के राज की बारी है। उसके बाद मालवा की उपजाऊ भूमि पर क़ब्ज़ा किया जायगा, जहाँ की काली मिट्टी में रुई और अफ़ीम बहुत अच्छी पैदा हो सकती है। फिर गुजरात जो उससे भी ज़्यादा ज़रखेज़ है। × × × राजपूताने और बाक़ी की छै करोड़ देशी प्रजा को इसके बाद विजय किया जायगा।" इत्यादि*

* Speech by Sir Erskine Perry in the House of Commons on April 18th, 1856.

किन्तु अगले ही साल विप्लव ने यह सारा नक़शा बदल दिया। अंगरेज़ों की आँखें खुल गईं, वे समझ गए कि लॉर्ड डलहौज़ी की अपहरण नीति ही विप्लव का एक ख़ास कारण थी। उन्हें अब अपना हित और अपने साम्राज्य की स्थिरता हिन्दोस्तान की बाक़ी देशी रियासतों के क़ायम रहने में ही दिखाई देने लगी।

निस्सन्देह विप्लव के बाद भी और विप्लव के ऐन दिनों में भी कुछ ऐसे अंगरेज़ मौजूद थे, जो रही सही देशी रियासतों को ख़त्म करके अंगरेज़ी राज में मिला लेने के पक्ष में थे। सन् १८५८ में लन्दन में "इण्डियन पॉलिसी (भारतीय नीति)" नामक एक पत्रिका प्रकाशित हुई, जिसमें भारत के अंगरेज़ शासकों को यह सलाह दी गई कि हर देशी नरेश के मरने पर वे उसके राज पर क़ब्ज़ा कर लें। किन्तु विचारवान् अंगरेज़ नीतिज्ञों को इस सलाह के मानने में अपने साम्राज्य का हित दिखाई न दिया। यही वजह है कि विप्लव के बाद से अब तक एक बरमा को छोड़ कर किसी नई देशी रियासत पर क़ब्ज़ा नहीं किया गया। इसमें भी सन्देह नहीं कि जिस नीति का पिछले ७० साल के अन्दर अंगरेज़ शासकों ने देशी नरेशों के साथ व्यवहार किया है, उसका नतीजा यह है कि धीरे धीरे हिन्दोस्तान की क़रीब क़रीब सब देशी रियासतें विदेशी अंगरेज़ी राज की स्थिरता में किसी तरह का ख़तरा हो सकने के बजाय ब्रिटिश साम्राज्य की ख़ास पोषक बन गई हैं।

सन् ५७से अब तक हिन्दोस्तान की सैकड़ों छोटी बड़ी रियासतों के साथ जिस तरह का व्यवहार किया गया है, जिस तरह

अंगरेज़ रेज़िडेण्टों, पोलिटिकल एजण्टों इत्यादि द्वारा क़दम क़दम पर देशी नरेशों के न्याय्य अधिकारों में हस्तक्षेप होता रहा है, जिस तरह हिन्दोस्तानी राजकुमारों की शिक्षा पर अंगरेज़ नीतिज्ञों ने सदा अपना ही अनन्य अधिकार बनाए रखा, जिसमें कभी कभी उन कुमारों के अभिभावकों और स्वयं गद्दीनशीन नरेशों तक को दख़ल देने का अधिकारी नहीं समझा गया, जिस तरह अनेक राजकुमारों के चरित्र का व्यवस्थित और वैज्ञानिक ढंग से सत्यानाश किया गया है और फिर कभी कभी उस चरित्र हीनता को ही उनकी अयोग्यता का सुबूत मान लिया गया है, यह सब लम्बी और दुःखकर कहानी संसार के साम्राज्यों के इतिहास में अपना ख़ास स्थान रखती है। इसकी दूसरी मिसालें ढूंढ़ने के लिए हमें पच्छिम एशिया के ऊपर आज से चार पाँच हज़ार साल पहले के मिश्री साम्राज्य और उसके दो तीन हज़ार साल बाद के रोमन साम्राज्य के इतिहास को पढ़ना होगा। किन्तु यह सब विषय हमारी इस पुस्तक के प्रसंग से बाहर है।

अंगरेज़ों की देशी फ़ौजों के सिपाही ज़्यादातर देशी रियासतों से भरती किए जाते हैं, और ब्रिटिश भारत के किसी भी विद्रोह को दमन करने में वे ही अधिक उपयोगी साबित होते हैं।

४—भारत में अंगरेज़ी उपनिवेश

हिन्दोस्तान में अंगरेज़ों के उपनिवेश यानी अंगरेज़ी बस्तियाँ बसाने का चरचा वारन हेस्टिंग्स के समय से चला आता था। किन्तु इस विषय पर अंगरेज़ नीतिज्ञों में सदा काफ़ी मतभेद रहा। अनेक

अंगरेज़ उन दिनों इस तरह के उपनिवेशों को बढ़ने देने के विरुद्ध थे। वारन हेस्टिंग्स की कौन्सिल के सदस्य मॉनसन की राय थी कि अंगरेज़ भारत में खेती इत्यादि का कार्य न कर सकेंगे, और यदि करने की चेष्टा करेंगे तो उनका रहन सहन भारतीय प्रजा की अपेक्षा इतना मँहगा होगा कि उसकी वजह से सरकार की आमदनी में बहुत कमी पड़ जायगी।

७ नवम्बर सन् १७६४ को कॉर्नवालिस ने इङ्गलिस्तान के भारत मन्त्री डण्डास को लिखा कि—"ब्रिटेन के हित के लिए यह बात बड़े महत्व की है कि यूरोपनिवासियों को जहाँ तक हो सके हमारे भारतीय इलाक़ों में उपनिवेश बनाने और बसने से रोका जाय।"

४ फ़रवरी सन् १८०१ को डाइरेक्टरों ने भारत में इस तरह के उपनिवेशों के विरुद्ध एक प्रस्ताव पास किया।

सन् १८१३ में कम्पनी के अनन्य अधिकार को तोड़ कर समस्त इङ्गलिस्तान निवासियों के लिए भारत आने और तिजारत करने का मैदान खोल दिया गया। इसके बाद दक्खिन और उत्तर के कई नए पहाड़ी इलाक़े अंगरेज़ी राज में मिलाए गए। इसलिए इङ्गलिस्तान के कुछ लोगों ने कम्पनी के डाइरेक्टरों की राय के ख़िलाफ़ फिर भारत में अपने उपनिवेश बनाने के लिए आन्दोलन शुरू किया। इन लोगों की मुख्य दलील यह थी कि इस तरह के उपनिवेशों की मदद से अंगरेज़ी राज भारत में अधिक दिनों तक क़ायम रह सकेगा। अन्य नीतिज्ञों के अलावा सर फ़्रेडरिक शोर भी इस तरह के उपनिवेशों के पक्ष में था। उसकी दलील यह थी—

"अंगरेज़ी सत्ता के उलट जाने से इस तरह के नए बसे हुए (विदेशी) लोगों को कोई फ़ायदा न होगा, बल्कि उन्हें हर तरह से नुक़सान होगा, इसलिए हिन्दोस्तानियों की तरफ़ से किसी भी उपद्रव या बग़ावत के समय ये लोग अपना सारा प्रभाव गवरमेण्ट के पक्ष में लगा देंगे और अपने देशी नौकरों, साथियों आदि को भी ऐसा ही करने के लिए उत्तेजित करेंगे; इसके विपरीत भारतवासियों के भाव अंगरेज़ सरकार की ओर इस तरह के हैं कि जब कभी कोई बग़ावत होती है तब जो लोग बग़ावत में शामिल नहीं होते वे भी कम से कम तटस्थ रहते हैं, किन्तु सरकार को प्राय: कोई सहायता नहीं देता।"*

सर चार्ल्स मेटकॉफ़ और लॉर्ड विलियम वैण्टिङ्क भी भारत में अंगरेज़ी उपनिवेश बनाने के पक्ष में थे। उनकी दलीलें भी ठीक इसी तरह की थीं। नतीजा यह हुआ कि सन् १८३३ के चारटर एक्ट में उन अंगरेज़ों के लिए कई तरह की नई सुविधाएँ कर दी गईं, जो भारत में आकर बसना चाहते थे।

नैपाल के रेज़िडेण्ट ब्रायन हॉटन हॉजसन ने दिसम्बर सन् १८५६ में हिमालय की उर्वर घाटियों में यूरोपियनों के उपनिवेश बनाने के पक्ष में एक अत्यन्त ज़ोरदार पत्र लिखा। उसने लिखा—

"× × × हिमालय में अपने उपनिवेशों को बढ़ाना अंगरेज़ सरकार के सर्वोच्च और सबसे अधिक महत्वपूर्ण कर्त्तव्यों में से एक है।"

हॉजसन की राय में "भारत के अन्दर ब्रिटिश सत्ता को स्थायी बनाने के लिए सब से बड़ा, सब से पक्का, सबसे निःशङ्क और

* *Notes on Indian Affairs*, by Sir Frederick Shore.

सबसे सुगम राजनैतिक उपाय"* भारत के अन्दर अंगरेज़ों के उपनिवेश ही हो सकते थे।

हॉजसन की तजवीज़ थी कि आयर्लैंण्ड और स्कॉटलैण्ड के किसानों को मुफ़्त ज़मीनें देकर भारत में बसने के लिए प्रोत्साहित किया जाय।

सन् ५७ के बाद इस विषय का आन्दोलन इङ्गलिस्तान में और भी अधिक ज़ोर के साथ होने लगा। इसी लिए सन् १८५८ में पार्लिमेण्ट ने वह तहक़ीक़ाती कमेटी क़ायम की जिसका ज़िक्र हम ऊपर कर चुके हैं।

इसके साथ साथ अनेक तरीक़ों से उस समय के अंगरेज़ शासकों ने अपने देशवासियों और ख़ास कर अंगरेज़ पूंजीपतियों को भारत में आकर बसने के लिए उत्साहित करना शुरू किया। आसाम और कुमायूं में अंगरेज़ सरकार ने हिन्दोस्तानियों के ख़र्चे पर चाय की काश्त के तजुरबे किए और यह खुले एलान कर दिया कि इन तजुरबों के सफल होने पर चाय के सरकारी खेत उन अंगरेज़ों को दे दिए जायँगे जो इस काम के लिए आसाम और कुमायूं में बसना चाहेंगे। तजरुबों का सारा ख़र्च हिन्दोस्तानियों के सर पर पड़ा और दोनों स्थानों के चाय के खेत बाद में अंगरेज़ों

* ". . . the encouragement of colonization therein is one of the highest and most important duties of the Government, ... greatest, surest, soundest and simplest of all political measures for the stabilisation of the British power in India, . . . "—Brian Houghton Hodgson, Resident of Nepal, on the *Colonization of the Himalayas by Europeans*, December, 1856.

के हवाले कर दिए गए। हिन्दोस्तानियों ही के ख़र्च पर कई अंगरेज़ों को इसलिए चीन भेजा गया कि वे चीन से चाय के बीज लाएँ, चीनी काश्त के तरीकों को सीखें और वहाँ से चीनी विशेषज्ञ साथ लाकर भारत में अपने धन्धे को तरक्की दें। पिछले डेढ़ सौ साल से ऊपर के ब्रिटिश शासन में कभी किसी भारतीय व्यापार को उत्तेजना देने के लिए अंगरेज़ सरकार ने इस तरह के प्रयत्न नहीं किए। यूरोपियन पूंजीपतियों की बचत को बढ़ाने और पक्का करने के लिए हिन्दोस्तानी मज़दूरों के सम्बन्ध में भारत सरकार ने इस तरह के क़ानून पास किए जिनसे हज़ारों भारतवासी इन लोगों के क़ानूनी गुलाम बन गए। इन क़ानूनी गुलामों के साथ अंगरेज़ पूंजीपतियों और उनके नौकरों का व्यवहार ब्रिटिश भारतीय इतिहास का एक अत्यन्त कलङ्कित अध्याय है।

ठीक इसी तरह धन इत्यादि की सहायता कुमायूं ही में लोहे का धन्धा करने वाले अंगरेज़ों को दी गई।

नील की खेती करने वाले अंगरेज़ों को भी भारतवासियों के धन से समय समय पर सहायता दी जा चुकी है और हिन्दोस्तानी मज़दूरों के साथ इन निलहे गोरों के घोर अमानुषिक व्यवहार का चरचा अनेक बार देशी समाचार पत्रों में हो चुका है। रेलों, सड़कों और उनके विचित्र नियमों द्वारा भी इन अंगरेज़ों को अपने कार्य में हर तरह की सहायता दी गई है।

सन् १८५८ की कमेटी के सामने गवाहों ने यह सब बातें विस्तार के साथ बयान कीं। गवाहों में से कुछ की राय थी कि

भारत के पहाड़ी प्रदेशों पर अंगरेज़ किसानों और मज़दूरों को आवाद कर दिया जाय और भारत के मैदानों में इस तरह के अंगरेज़ पूंजीपतियों को वसाया जाय जो अपने अधीन हिन्दोस्तानी किसानों और मज़दूरों से काम ले सकें। इससे वढ़ कर कुछ लोगों की राय यहाँ तक थी कि एलजीरिया (उत्तर अफ़रीका) के समान समस्त हिन्दोस्तान में अंगरेज़ पूंजीपतियों से लेकर अंगरेज़ किसानों और मज़दूरों तक को वसाया जावे। अंगरेज़ों को भारत में ज़मींदारी करने के लिए अनेक तरह की सुविधाएँ दी जाने की सलाह भी हुई।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत में अंगरेज़ों की वस्तियाँ वसाने के ख़िलाफ़ थी। यह वात कमेटी के सामने अनेक गवाहों ने अपने वयानों में कही है। इन गवाहों में से हम केवल एक जे० जी० वॉलर का वयान नीचे उद्धृत करते हैं। उससे पूछा गया—

"भारत में यूरोपियनों को वसने में ख़ास ख़ास एतराज़ कौन से हो सकते हैं?"

गवाह ने उत्तर दिया—

"मैं समझता हूँ, मैं कई एतराज़ गिना चुका हूं; किन्तु एक और एतराज़ इतने महत्व का है कि मेरे लिए उसे छोड़ देना अपने विपय के साथ इन्साफ़ करना न होगा। मैं समझता हूँ कि जो कम्पनी वतौर एक अमीन के वादशाह के नाम पर इस समय भारत पर शासन कर रही है, उसके हाथों से शासन का अधिकार ले लेना नितान्त आवश्यक है। यदि अङ्गरेज़ सरकार का वास्त-

विक उद्देश यह है कि हिन्दोस्तान में अङ्गरेज़ों को बसने के लिए प्रोत्साहित किया जाय, तो × × × मेरी राय है कि × × × अङ्गरेज़ अपने बादशाह के स्थान पर किसी बीच की कम्पनी का अधिकार स्वीकार न करेंगे। × × × मैं समझता हूँ कि न केवल अङ्गरेज़ों को भारत में उपनिवेश बनाने के लिए प्रेरित करने और प्रोत्साहित करने के लिए ही, बल्कि उस अत्यन्त विशाल देश पर अपना प्रभुत्व जमाए रखने के लिए भी भारत के शासन में फ़ौरन गहरे परिवर्तन की ज़रूरत है, और इन परिवर्तनों के लिए केवल तभी मार्ग तैयार किया जा सकता है जब कि कम्पनी की जगह इङ्गलिस्तान के बादशाह का नाम और बादशाह का अधिकार क़ायम कर दिया जाय।"

कम्पनी तोड़ दी गई। भारत में कई स्थानों पर ख़ास कर, कई ज़रख़ेज़ पहाड़ी इलाक़ों में अंगरेज़ों की बस्तियाँ बसाने की जी तोड़ कोशिशें की गईं। इन कोशिशों का विस्तृत इतिहास हमारे प्रसंग से बाहर है। किन्तु बावजूद कम्पनी के तोड़ दिए जाने के और बावजूद इन तमाम कोशिशों, कमेटियों, गवाहियों, सुविधाओं, इरादों और उत्तेजनाओं के पिछले ८० साल के अन्दर संसार के अन्य देशों की तरह हिन्दोस्तान में अंगरेज़ों की बस्तियाँ आबाद न हो सकीं। इस असफलता की वजह बयान करते हुए टाउनसेण्ड अपनी पुस्तक 'एशिया एण्ड यूरोप' में लिखता है :—

"कहा जाता है कि हिन्दोस्तान में गोरों (यूरोपियनों) की कमी का कारण वहाँ की आबोहवा है, किन्तु वहाँ की पहाड़ियों पर भी तो कोई अङ्गरेज़ जाकर नहीं बसता। अङ्गरेज़ न्यू साउथवेल्स (ऑस्ट्रेलिया) के गरम मैदानों में रहते हैं; अमरीका के गोरे लोग × × × फ़्लोरिडा (मध्य अमरीका) के उन

मैदानों में भरे हुए हैं जिनमें मारे गरमी के भभूके उठते हैं; स्पेन के लोग दोनों अमरीकाओं के गरम प्रदेशों में एक शासक जाति की हैसियत से बसे हुए हैं; डच लोग जावा में रह रहे हैं; किन्तु अंगरेज़, चाहे उन्हें कितने भी प्रलोभन क्यों न दिए जायँ, भारतवर्ष में नहीं ठहर सकते। ऐसे ज़ोरों के साथ उनकी तबियत ऊबती है, इतने ज़ोरों के साथ वे इस बात को अनुभव करने लगते हैं कि हम यहाँ पर देश के निवासियों से बिलकुल अलग परदेशी हैं, कि फिर चाहे उन्हें कितनी भी क़ुरबानी क्यों न करनी पड़े, धन, पदवी या अपने सुखकर कारबार में उन्हें कितनी भी हानि क्यों न सहनी पड़े, वे चुपचाप वहाँ से खिसक कर यूरोप चले आते हैं।"

निस्सन्देह भारत की भूमि के अभी तक अंगरेज़ी उपनिवेशों के शाप से बचे रहने की असली वजह यह है कि भारत एक प्राचीन, विशाल और अत्यन्त घना बसा हुआ देश है। अंगरेज़ों के लिए न यहाँ की करोड़ों जनता को मिटा कर उनकी जगह लेना इतना सरल है जितना ऑस्ट्रेलिया के अर्धसभ्य आदिमवासियों को मिटा कर उनकी जगह लेना, और न वे यूरोपनिवासी, जो अभी तक 'सभ्यता' के उच्चतर अङ्गों में भारतवासियों से कहीं पीछे हैं, जिनके और भारतवासियों के चरित्रों, रहन सहन और आदर्शों में इतना ज़बरदस्त अन्तर है, बिना अपना जातीय व्यक्तित्व खोए भारतवासियों के साथ किसी तरह भी मिल जुल कर भारत में रह सकते हैं।

---

* Meredith Townsend's *Asia and Europe*, p. 87.

सन् १८१३ के 'चारटर एक्ट' में एक धारा यह भी थी कि जो अंगरेज़ ईसाई पादरी भारतवासियों के "धार्मिक उद्धार" के लिए यानी उन्हें ईसाई वनाने के लिए 'भारत जाना चाहें और वहाँ रहना चाहें" उन्हें "क़ानून के ज़रिए हर प्रकार की सुविधा" दी जाय। चुनाँचे इसके वाद से ही "ईसाई धर्म प्रचार का एक सरकारी मोहकमा (एक्लेज़िएस्टिकल डिपार्टमेण्ट)" भारत में खोल दिया गया और उसका ख़र्च ज़वरदस्ती भारत वासियों के सिर मढ़ दिया गया।

४—राष्ट्रीय भावों का नाश

सन् ५७ के विप्लव के वाद अंगरेज़ नीतिज्ञों में इस विषय पर ख़ूव वहसें होने लगीं। मार्च सन् १८५८ की अंगरेज़ी पत्रिका "दी कैलकटा रिव्यु" में एक अंगरेज़ का लिखा हुआ नीचे लिखा वाक्य मिलता है जिससे पता चलता है कि उस समय के अंगरेज़ नीतिज्ञों को क्या क्या वातें सूझ रही थीं। वह अंगरेज़ लिखता है—

"हमें चारों ओर × × × इस समय की आवाज़ें सुनाई दे रही हैं, जिनमें ज़ोरों के साथ यह सलाह दी जाती है कि हमें क्या करना चाहिए। कोई कहता है 'भारत को अवश्य ईसाई वना लेना चाहिए', कोई कहता है 'भारत भर में अंगरेज़ों को वसाना चाहिए', कोई कहता है 'मुसलमानों के मज़हव को दवा देना चाहिए', कोई कहता है 'हमें हिन्दोस्तानी ज़वान को ख़त्म कर देना चाहिए और उसकी जगह अपनी मातृभाषा (अंगरेज़ी) प्रचलित कर देनी चाहिए'। ये इनमें से केवल थोड़ी सी आवाज़ें हैं।"*

---

* ". . . on every hand, we hear the voices of the times . . . . urging the popular measure of the hour, 'India must be christianized'—

सन् ५७ के बाद अधिकांश अंगरेज़ नीतिज्ञ इस बात को और अधिक ज़ोरों के साथ अनुभव करने लगे थे कि भारतवासियों के दिलों से राष्ट्रीयता के रहे सहे भावों को मिटा देना और आइन्दा इस तरह के भावों को पनपने न देना अंगरेज़ी साम्राज्य की स्थिरता के लिए आवश्यक है। इसके उस समय दो मुख्य उपाय सोचे गए—(१) भारत में ईसाई मत प्रचार और (२) अंगरेज़ी शिक्षा।

मलका विक्टोरिया ने अपने एलान में यह वादा किया था कि मज़हब के मामले में अंगरेज़ सरकार किसी तरह का पक्षपात न करेगी। किन्तु विप्लव के केवल अगले ही वर्ष इङ्गलिस्तान के प्रधान मन्त्री लॉर्ड पामर्सटन ने ईसाई पादरियों के एक डेपुटेशन के उत्तर में कहा—

"मालूम होता है कि अन्तिम लक्ष्य के विषय में हम सब का एक ही मत है। समस्त भारत में पूरब से पच्छिम तक और उत्तर से दक्खिन तक ईसाई मत के फैलाने में जहाँ तक हो सके मदद देना, न केवल हमारा फ़र्ज़ है बल्कि इसी में हमारा फ़ायदा है।"*

'India must be colonized'—'The Mohammedan religion must be suppressed,'—'We must abolish the vernacular and substitute our mother tongue,' such are but a few,"—*The Calcutta Review*, March 1858, p. 163.

* "We seem to be all agreed as to the end. It is not only our duty, but it is our interest to promote the diffusion of Christianity as far as possible throughout the length and breadth of india."—Lord Palmerston, to a deputation headed by the Archbishop of Canterbury, in 1859, *The Conversion of India*, by George Smith, C. I. E., L. L. D., p. 233.

सन् ५७ के विप्लव पर टीका करते हुए अनेक अंगरेज़ पादरियों ने कहा—

"हमारे दुश्मन वे मुसलमान थे जिनके मज़हब की तारीफ़ करके हमने उन्हें फुला दिया, और वे हिन्दू थे जिनके अन्धविश्वासों को हमने पुष्ट किया, किन्तु हमारे सच्चे मित्र वे हिन्दोस्तानी थे जिन्हें हमारे पादरियों ने ईसाई बना लिया था।"

इन लोगों के ईसाई मत प्रचार का एक मात्र उद्देश अपने साम्राज्य को पक्का करना था। विलियम एडवर्ड्स विप्लव के दिनों में कम्पनी का मुलाज़िम था और बाद में आगरा हाईकोर्ट का एक जज हुआ। उसकी राय थी—

"हम विदेशी आक्रामक और विजेता समझे जाते हैं और सदा समझे जायँगे, × × × हमारे लिए अपनी रक्षा का सबसे अच्छा उपाय यह है कि हम देश को ईसाई बना लें; × × × देशी ईसाइयों की बस्तियाँ जब देश में इधर उधर फैल जायँगी तो वे अनेक वर्षों तक हमारी मज़बूती के लिए स्तम्भों का काम देंगी, क्योंकि जब तक अधिकांश जनता मूर्तिपूजक (हिन्दू) या मुसलमान रहेगी, तब तक ये ईसाई लोग अवश्य राजभक्त रहेंगे।"*

लॉर्ड विलियम बैंटिङ्क की कोशिशों और पञ्जाब को ईसाई बनाने की तजवीज़ों का ज़िक्र इससे पहले किया जा चुका है।

---

* "We are, and ever must be, regarded as foreign invaders and conquerors, . . . Our best safeguard is in the evangelization of the country; . . . Christian settlements scattered about the country would be as towers of strength for many years to come, for they must be loyal as long as the mass of the people remain either idolaters or Mohammedans."—William Edwardes.

जो ग़रज़ भारतवासियों को ईसाई बनाने या मुसलमानों को दबाने से थी वही भारत में अंगरेज़ी शिक्षा के प्रचार से थी। लार्ड मैकॉले इस शिक्षा का सब से ज़बरदस्त हामी था और उसके असली विचारों का ज़िक्र हम ऊपर शिक्षा के अध्याय में कर चुके हैं।

भारत की विचित्र स्थिति में देश को ईसाई बनाने का प्रयत्न अधिक न चल सका और न अधिक खुले तौर पर उसे शासन नीति का एक अंग बनाया जा सका। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि अंगरेज़ी शिक्षा ने एक ख़ासी श्रेणी ऐसे लोगों की पैदा कर दी है, जो अपनी रोज़ी के लिए अंगरेज़ी राज पर निर्भर हैं, जो उस राज के विशेष स्तम्भ हैं, जिनके रहन सहन और भारतीय जनता के रहन सहन में बहुत बड़ा अन्तर पैदा हो गया है, और जिनमें सामूहिक दृष्टि से राष्ट्रीयता या राष्ट्रीय मान के भावों का क़रीब क़रीब अभाव है।

६—हिन्दोस्तान की उपजाऊ शक्ति को उन्नति देना

आज कल की यूरोपियन राजनीति में किसी देश पर शासन करने का मतलब ही उस देश से अधिक से अधिक धन खींचना है। भारत की 'लूट' से ही इङ्गलिस्तान के और विशेष कर लङ्काशायर के कारख़ाने चले, जिसका ज़िक्र एक पिछले अध्याय में किया जा चुका है। सन् ५७ के बाद "भारत की उपजाऊ शक्ति को उन्नति देने (Development of the resources of India)" का विशेष चरचा सुना जाने लगा। इसके छै ख़ास ख़ास उपाय सोचे गए।

(क) भारत में रेलों का जारी करना—भारत में रेलें उसी धन से जारी की गईं जो अंगरेज़ों ने मुख़्तलिफ़ तरीक़ों से भारत से कमाया था। एक पिछले अध्याय में दिखाया जा चुका है कि इस तरह के कामों के लिए कभी एक पैसा भी इङ्गलिस्तान से लाकर हिन्दोस्तान में ख़र्च नहीं किया गया। इस पर भी पार्लिमेण्ट के एक मेम्बर स्विफ़्ट मैकनील ने १४ अगस्त सन् १८६० को कहा था—

"यह हिसाब लगाया जा चुका है कि जितना धन भारत में रेलों पर ख़र्च किया जाता है, उसमें से हर शिलिङ्ग पीछे आठ पेंस (यानी दो तिहाई) इङ्गलिस्तान चला आता है।"*

इन रेलों के मुख्य कार्य हैं—भारत से गेहूँ, कपास आदि इङ्गलिस्तान भेज सकना, इङ्गलिस्तान का बना हुआ माल भारत के कोने कोने में पहुँचाना और ज़रूरत पड़ने पर इधर से उधर तक सेनाओं का ले जा सकना। निस्सन्देह हमारी आज कल की पराधीन स्थिति में ये रेलें भारतवासियों के धन, उनके धन्धों और उनके स्वास्थ्य तीनों के लिए नाशक और बेशुमार ग्रामों को उजाड़ देने वाली साबित हुई हैं।

(ख) रुई की खेती—इङ्गलिस्तान को अपने कपड़े के धन्धे के लिए रुई पहले अमरीका से मंहगे दामों पर लेनी पड़ती थी। भारत में बरार, सिन्ध और पञ्जाब अपनी सुन्दर रुई के लिए

* It has been computed that out of every shilling spent in railway enterprise, 8d. makes its way to England."—Swift Macneill in the House of Commons 14th August, 1890.

मशहूर थे। इन देशों पर अंगरेज़ों के क़ब्ज़ा करने का एक ख़ास मतलब यह था कि इङ्गलिस्तान के कारख़ानों को सस्ती रुई भेजी जा सके। सन् १८५८ के बाद इसके लिए विशेष प्रयत्न किए गए। एक नई 'ईस्ट इण्डिया कॉटन कम्पनी' क़ायम की गई और रुई की काश्त और उसके इङ्गलिस्तान भेजे जाने की ओर ख़ास ध्यान दिया गया। इङ्गलिस्तान और हिन्दोस्तान के सम्बन्ध का सब से मुख्य रूप उस समय से आज तक कच्ची रुई का भारत से इङ्गलिस्तान जाना और इङ्गलिस्तान के बने हुए कपड़ों का भारत में आकर बेचा जाना है। यही इङ्गलिस्तान के लोगों की जीविका का सबसे बड़ा आधार है।

(ग) अंगरेज़ पूंजीपतियों को सुविधाएँ—भारत में आकर धन्धा करने वाले अंगरेज़ पूंजीपतियों को शुरू से ख़ास सुविधाएँ मिलती रही हैं। चाय, नील इत्यादि की खेती कराने वाले अंगरेज़ों के साथ सरकार की रिआयतों का ज़िक्र ऊपर इसी अध्याय में किया जा चुका है। इन अंगरेज़ पूंजीपतियों के फ़ायदे के लिए चाय और नील के बाग़ीचों के लाखों हिन्दोस्तानी मज़दूरों के साथ जो सलूक भारत सरकार ने जायज़ रखा है उसकी दूसरी मिसाल ढूंढ़ने के लिए हमें पौने दो हज़ार साल पहले रोमन ग़ुलामी की प्रथा के अमानुषिक इतिहास की शरण लेनी पड़ती है। सन १८६० में सर एशले एडन ने, जो बाद में बङ्गाल का लेफ़्टिनेण्ट गवरनर हुआ, साफ़ कहा था कि—"नील की काश्त कभी भी लोग अपनी इच्छा से नहीं करते, बल्कि सदा उनसे ज़बरदस्ती कराई जाती है।"

ब्रिटिश भारत में चाय और नील की काश्त का इतिहास गुलामी की प्रथा का अत्यन्त लज्जाजनक इतिहास है।

(घ) अंगरेज़ों को नौकरियाँ—ब्रिटिश सत्ता को मज़बूत रखने का उस समय यह भी एक ख़ास उपाय माना गया। अनेक अंगरेज़ स्वीकार कर चुके हैं कि अंगरेज़ों को जो तनख़ाहें आम तौर पर भारत में दी जाती हैं उससे आधी भी उन्हें इङ्गलिस्तान या किसी दूसरे देश में न मिल सकतीं।

(च) असली शासन से भारतवासियों को दूर रखना—बहुत दर्जे तक इङ्गलिस्तान के हित में भारत का अहित और भारत के हित में इङ्गलिस्तान का अहित है। एक के उद्योग धन्धों की उन्नति में दूसरे की बेरोज़गारी है और एक की .खुशहाली में दूसरे की निर्धनता। इसलिए शासन प्रबन्ध में कोई वास्तविक अधिकार हिन्दोस्तानियों को देना विदेशी शासकों के लिए कभी भी हितकर नहीं हो सकता।

कप्तान पी० पेज ने लन्दन के ईस्ट इण्डिया हाउस से बैठ कर ६ अप्रैल सन् १८१६ को अपने एक मेमोरण्डम में लिखा कि—

"मैं भारतवासियों की नेक चलनी के इनाम में उनकी इज़्ज़त बढ़ा दूँगा, किन्तु उनके हाथ में सत्ता कभी न दूँगा, × × ×।

"× × × यही उसूल रोमन लोगों का था। हम भारतवासियों के हाथों में बिना किसी प्रकार की सत्ता दिए उनकी ख़ैरख़्वाही अपनी ओर बनाए रख सकते हैं। उन्हें केवल सत्ता का आभास देना काफ़ी होगा; और यद्यपि व्यक्तिगत जीवन में मैं राशफ़ूकाल्त के इस उसूल को घृणा की दृष्टि

से देखता हूँ कि मनुष्य अपने मित्रों के साथ भी इस प्रकार से रहे कि मानों एक दिन वे अवश्य उसके शत्रु बनने वाले हैं, फिर भी मैं समझता हूँ कि भारत के शासकों के लिए इस उसूल को सदा ध्यान में रखना ही उचित है।"*

इंगलिस्तान और हिन्दोस्तान दोनों देशों के नीतिज्ञ इस बात को अच्छी तरह समझते हैं कि सन् १९३५ के गवरमेण्ट आफ़ इण्डिया एक्ट की असेम्बलियाँ और वज़ारतें भी 'सत्ता के आभास' से किसी अंश में अधिक नहीं हैं।

(छ) क़ानून और अदालतें—'भारत की उपजाऊ शक्ति को उन्नति देने' (?) का एक ख़ास उपाय आज कल के क़ानून और कचहरियाँ हैं। जो 'ताज़ीरात हिन्द' सन् १८३३ के चारटर एक्ट के बाद लॉर्ड मैकॉले ने बनाया था और जिसका अधिक ज़िक्र हम एक पिछले अध्याय में कर चुके हैं, वह सन् १८५७ की क्रान्ति के बाद भारत के क़ानून की शकल में रायज हुआ।

क़रीब क़रीब इसी ढंग के और अंगरेज़ों ही के बनाए हुए

---

* "I would reward good conduct (of Natives) with honour but never with power. . . .

"*Nullum imperium tutum, nisi benevolentia munitum.* The good will of the Natives may be retained without granting them power, the semblance is sufficient; and although I abhor in private life that maxim of Rochefaucult's which recommends a man to live with his friends as if they were one day to be his enemies, I think it may be remembered with effect by the sovereigns of India."—Captain P. Page in his Memorandum, dated East India House, April 9th, 1819, *Report of the Select Committee, 1832*, vol. v, pp. 480-483.

"ताज़ीरात आयरलैंड" (आयरिश पीनल कोड) के बारे में मशहूर अंगरेज़ विद्वान बर्क ने जो शब्द कहे थे वह किसी न किसी दर्जे तक "ताज़ीरात हिन्द" के बारे में भी कहे जा सकते हैं। बर्क ने कहा था—

"इस कोड का संग्रह और सम्पादन बड़ी क़ाबलीयत के साथ किया गया है और उसके सारे हिस्से एक दूसरे के साथ ख़ूब खपते हुए हैं। वह एक बहुत पेचीदा मशीन है जिसे बड़ी अक़्लमन्दी के साथ तय्यार किया गया है। कभी भी किसी चतुर, किन्तु पतित मनुष्य ने किसी क़ौम पर अत्याचार करने, उसे दरिद्र बना देने, उसे चरित्र भ्रष्ट करने और उसके अन्दर के मनुष्यत्व तक का सत्यानाश कर डालने के लिए इससे अधिक उपयोगी यन्त्र तय्यार न किया होगा।*"

दीवानी के क़ानून की पेचीदगियाँ भी मुक़दमें बाज़ी को कम करने के स्थान पर बढ़ाने ही में अधिक मदद देती हैं और हज़ारों घरानों के सर्वनाश का कारण साबित हो चुकी हैं। आजकल की अदालतों और उनकी कार्रवाइयों से भारतवासियों का जो आर्थिक और नैतिक पतन हुआ है वह किसी से भी छिपा नहीं है। ये अदालतें हमें बड़ी हसरत के साथ हज़ारों वर्षों से चली आती हुई पौने दो सौ साल पहले तक की उन पंचायतों की याद दिलाती

* "Well digested and well disposed in all its parts; a machine of wise and elaborate contrivance, and as well fitted for the oppression, impoverishment and degradation of a people, and the debasement in them of human nature itself, as ever proceeded from the perverted ingenuity of man."—*Burke on the Irish Penal Code.*

हैं जिनमें ग़रीव से ग़रीव को विना पैसे न्याय मिल सकता था और मुग़ल समय के शहरों के उन न्यायालयों की याद दिलाती हैं जिनके दरवाज़ों पर लिखा रहता था 'फ़क़ीरी (दरिद्रता) ही न्यायाधीश के लिए सबसे ज़्यादा फ़ख़ (अभिमान) की चीज़ है' और जिनके धर्मभीरु न्यायाधीशों के लिए किसी के यहाँ दावत में जाना या किसी से एक पान तक की भेंट स्वीकार करना हराम समझा जाता था।

७—भारतीय सेना का सङ्गठन

अपनी अपूर्व वीरता और उसके साथ साथ देशभक्ति के अभाव के कारण भारतीय सिपाहियों ने विदेशी राज के संस्थापन में सदा ज़वरदस्त हिस्सा लिया है। किन्तु विप्लव के वाद सेना के नए सङ्गठन के लिए एक रायल कमीशन नियुक्त हुआ। कुछ की तजवीज़ थी कि केवल अंगरेज़ और दोग़ले सिपाही भारतीय सेना में रक्खे जायँ, किन्तु इससे काम न चल सकता था। कुछ और लोगों की तजवीज़ थी कि अंगरेज़ सिपाहियों के साथ साथ थोड़े से अरव, वरमी और अफ़रीका के हब्शी भी भारतीय सेना में भरती किए जायँ। इस तरह की सलाहें देने वाले विप्लव से डर गए थे और हिन्दोस्तानी सिपाहियों की पलटनों को विलकुल तोड़ देना चाहते थे। किन्तु इस तजवीज़ से भी काम न चल सका। अन्त को यह तजवीज़ ठहरी कि हिन्दोस्तानी पलटनों में ब्रिटिश भारतीय प्रजा के मुक़ावले में नैपाल के गोरखों, सरहद के पठानों, जम्मू के डोगरों, राजपूताने के राजपूतों, पटियाले आदि के सिखों और मराठा

रियासतों के मराठों को तरजीह दी जाय। तोपख़ाने की नौकरियाँ अविश्वास के कारण देशी सिपाहियों के लिए वन्द कर दी गईं, क्योंकि अंगरेज़ लेखक कॉलफ़ील्ड के अनुसार—"इस मोहकमें में हिन्दोस्तानी सब से अधिक योग्यता प्राप्त कर लेते हैं।" देशी सिपाहियों को गोरे सिपाहियों के मुक़ावले में घटिया हथियार मिलने लगे। फ़ौज के बड़े बड़े और असली ज़िम्मेदारी के ओहदे उनके लिए वन्द होगए।

करनल मॉलेसन लिखता है—

"अपने देशी सिपाहियों के साथ हमारी वेवफ़ाई (Bad faith) थी जिसने उनके दिलों को हमारी ओर से सशङ्क कर दिया × × ×।

"सिपाहियों की ओर हमारी यह वेवफ़ाई ठीक पहले अफ़ग़ान युद्ध के वाद से शुरू हो जाती है।"

विप्लव को दमन करने का सारा ख़र्च यहाँ तक कि इंगलिस्तान में गोरे सिपाहियों को शिक्षा देने और उनके भारत आने जाने का ख़र्च तक हिन्दोस्तान से वसूल किया गया। हिन्दोस्तान से वाहर के अंगरेज़ों के अनेक युद्धों का ख़र्च भी हिन्दोस्तान से लिया गया है। मेजर विनगेट लिखता है कि सन् १८५६ में ६१,८६७ अंगरेज़ सिपाही भारत में पल रहे थे और इनके अलावा १६,४२७ अंगरेज़ सिपाही ऐसे थे जो उस समय इङ्गलिस्तान में रहते थे, इङ्गलिस्तान की रक्षा करते थे और जिन्हें तनख़ाहें हिन्दोस्तान से दी जाती थीं। जब कभी इङ्गलिस्तान से हिन्दोस्तान पलटनें लाने की ज़रूरत होती थी तो उन गोरी पलटनों के इङ्गलिस्तान से चलने के छै

महीने पहले तक की तनख़ाहें और तमाम ख़र्च भारत से लिया जाता था। भारतीय सेना के नए सङ्गठन द्वारा अंगरेज़ी सेना की संख्या बढ़ा दी गई, भारत से अंगरेज़ों को आमदनी बढ़ गई, देशी सिपाहियों की अवस्था और अधिक हीन होगई, भारत के शासन का आर्थिक भार बढ़ गया और देश की शृङ्खलाएँ और अधिक मज़बूत होगई।

८—भेदनीति

सन् १८१३ में सर जॉन मैलकम ने, जो उन विशेष अनुभवी नीतिज्ञों में से था, जिन्होंने १६ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारत के अन्दर अंगरेज़ी साम्राज्य को विस्तार दिया, पार्लिमेण्ट की तहक़ीक़ाती कमेटी के सामने गवाही देते हुए कहा था—

"इस समय हमारा साम्राज्य इतनी दूर तक फैला हुआ है कि जो असाधारण ढङ्ग की हुकूमत हमने उस देश में क़ायम की है उसके बने रहने के लिए केवल एक बात का हमें सहारा है, वह यह कि जो बड़ी बड़ी जातियाँ इस समय अंगरेज़ सरकार के अधीन हैं वे सब एक दूसरे से अलग अलग हैं, और जातियों में भी फिर अनेक जातियाँ और उपजातियाँ हैं; जब तक ये लोग इस तरह एक दूसरे से बटे रहेंगे, तब तक इस बात का डर नहीं है कि कोई भी बलवा हमारी सत्ता को हिला सके।"*

* "In the present extended state of our Empire, our security for preserving a power of so extraordinary a nature as that we have established, rests upon the general division of the great communities under the Government, and their subdivision into various castes and tribes; while they continue divided in this manner, no insurrection is likely to shake the

इसके कुछ साल बाद एक अंगरेज़ अफ़सर ने लिखा था—

"हमारे राजनैतिक, मुल्की और फ़ौजी तीनों तरह के भारतीय शासन का उसूल, 'फूट फैलाओ और शासन करो' होना चाहिए।"*

सन् १८३१ की जाँच के समय मेजर जनरल सर लिओनेल स्मिथ ने कहा था—

"× × × अभी तक हमने साम्प्रदायिक और धार्मिक पक्षपात के द्वारा ही मुल्क को वश में रक्खा है—हिन्दुओं के ख़िलाफ़ मुसलमानों को और इसी तरह अन्य जातियों को एक दूसरे के ख़िलाफ़ × × ×।"†

विप्लव के बाद करनल जॉन कोक ने, जो उस समय मुरादाबाद की पलटनों का कमाण्डर था, लिखा कि—

"हमारी कोशिश यह होनी चाहिए कि भिन्न भिन्न धर्मों और जातियों के लोगों में हमारे सौभाग्य से जो अनैक्य मौजूद है उसे पूरे ज़ोरों में क़ायम रक्खा जाय, हमें उन्हें मिलाने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। भारत सरकार का उसूल यही होना चाहिए,—'फूट फैलाओ और शासन करो।"‡

---

stability of our power."—Sir John Malcolm, before the Parliamentary Committee of 1813.

* "*Divide et impera* should be the motto of our Indian administration, whether political, civil, or military."—Carnatus in the *Asiatic Journal*, May 1821.

† ". . . the prejudices of sects and religions by which we have hitherto kept the country—the Mussalmans against Hindoos, and so on; . . . ."—Major-General Sir Lionel Smith, K. C. B., before the Enquiry Committee of 1831.

‡ "Our endeavour should be to uphold in full force the (for us fortunate) separation which exists between the different religions and races,

१४ मई सन् १८५६ को बम्बई के गवरनर लॉर्ड एलफ़िन्सटन ने अपने एक सरकारी पत्र में लिखा कि—

"पुराने रोम के शासकों का उसूल था—'फूट फैलाओ और शासन करो,' और यही हमारा उसूल होना चाहिए।"*

हमें इस तरह के और वाक्य देने की ज़रूरत नहीं है। वास्तव में किसी देश के अन्दर विदेशी शासन को चिरस्थायी रखने का सबसे ज़बरदस्त उपाय यही हो सकता है।

जिस तरह एक मज़हब और दूसरे मज़हब के लोगों में फूट डालने का प्रश्न है, उसी तरह एक प्रान्त और दूसरे प्रान्त के लोगों में। विप्लव के बाद एक तजवीज़ यह की गई थी कि भारतीय सरकार के अधिकारों को कुछ कम कर दिया जाय और विविध प्रान्तीय सरकारों को अपने अपने यहाँ के शासन में अधिक स्वतन्त्रता दे दी जाय। इस तजवीज़ का नाम उसके असली लक्ष्य को छिपाने के लिए 'प्रान्तीय स्वाधीनता (Provincial autonomy), रक्खा गया। मेजर जी० विनगेट ने १३ जुलाई सन् १८५८ को पार्लिमेण्ट की सिलेक्ट कमेटी के सामने इस तजवीज़ की ग़रज़ को इस तरह बयान किया था—

---

not to endeavour to amalgamate them. *Divide et impera* should be the principal of Indian Government."—Lieut.-Colonel John Coke, Commandent at Muradabad.

* "*Divide et impera* was the old Roman Motto, and it should be ours."—Lord Elphinstone, Governor of Bombay, in a Minute, dated 14th May, 1859.

प्रश्न—आप कहते हैं कि एक केन्द्रीय सरकार से कई तरह के ख़तरे हैं और आप कहते हैं कि इससे तमाम देशवासियों में एक समान भाव पैदा होंगे और उनके एक समान लक्ष्य होंगे जो हमारे लिए ख़तरनाक हो सकते हैं?

उत्तर—हाँ! मैं समझता हूँ कि यदि कोई एक ऐसी बात हुई कि जिसमें तमाम भारतवासी दिलचस्पी लेने लगे तो उससे विदेशी शासन को अधिक हानि पहुँचने की सम्भावना है, बनिस्बत किसी भी ऐसी बात के कि जिसका आन्दोलन भारत के केवल एक भाग तक परिमित हो। यदि किसी प्रश्न पर सारे भारतीय साम्राज्य भर में आन्दोलन होने लगा तो निस्सन्देह किसी ऐसे प्रश्न की अपेक्षा, जिसका सम्बन्ध केवल एक प्रान्त के लोगों से हो, विदेशी सत्ता के लिए यह कहीं अधिक ख़तरनाक होगा।*

इस 'प्रान्तीय स्वाधीनता' का असली लक्ष्य यही था कि विविध प्रान्तों के लोगों में परस्पर प्रेम और राष्ट्रीयता यानी भारतीयता के भाव पैदा होने न पाएँ।

६—भारत से इङ्गलिस्तान को ख़िराज

बाह्य दृष्टि में भारत इङ्गलिस्तान को कोई ख़िराज नहीं देता, किन्तु मेजर विनगेट ने बड़ी योग्यता के साथ साबित किया है कि जो रक़म 'होम चार्जेज़' के नाम से भारत सरकार हर साल इङ्गलिस्तान भेजती है, वह वास्तव में भारतवर्ष का इङ्गलि-

* Major G. Wingate, before the Parliamentary Committee, 13th, July 1858.

स्तान को ख़िराज है। सन् १८३४ से १८५१ तक १७ साल के अन्दर ५,७६,००,००० पाउण्ड यानी क़रीब ७५ करोड़ रुपए इस मद में भारत से इङ्गलिस्तान भेजे गए। इस रक़म के बदले में भारत को कुछ भी प्राप्त न हुआ और न भारत को इससे कोई लाभ हुआ। जो रक़में हर साल अंगरेज़ व्यक्तियों ने अपने और अपने कुटुम्बियों के लिए भारत से इङ्गलिस्तान भेजीं, और जो विशाल धन इङ्गलिस्तान के लोगों ने भारत के व्यापार से कमाया, उस सब का इस से कोई सम्बन्ध नहीं। इसके अलावा भारत से कमाए हुए धन में से ३,६०,००,००० पाउण्ड विविध अंगरेज़ों का उस समय भारत सरकार के पास क़रज़े की शकल में जमा था।

अन्तिम शब्द

विप्लव के बाद का पिछले ८० साल का इतिहास इस पुस्तक के प्रसङ्ग से बाहर है। किन्तु आजकल की परिस्थिति में किसी भी देश का दूसरे देश पर शासन न उन उपायों के अलावा किसी दूसरे उपायों द्वारा क़ायम हो सकता है जिनका इस पुस्तक भर में ज़िक्र है, न किसी दूसरे उपायों द्वारा जारी रक्खा जा सकता है और न उसके कोई दूसरे नतीजे हो सकते हैं।

लॉर्ड मैकॉले ने सच कहा है —

"मुझे विश्वास है कि सब प्रकार के अन्यायों में सब से बुरा अन्याय एक क़ौम का दूसरी क़ौम पर अन्याय करना है।"*

---

* "Of all forms of tyranny I believe the worst is that of a nation over a nation."—Lord Macaulay.

अमरीका के प्रसिद्ध राष्ट्रपति अबराहाम लिङ्कन ने एक स्थान पर लिखा है :—

"कोई क़ौम भी इतनी भली नहीं हो सकती जो दूसरी क़ौम पर शासन कर सके।"*

यदि प्लासी के मैदान से ही भारत में अंगरेज़ी राज का आरम्भ मान लिया जाय, तो भारत के लिए १८० साल के विदेशी शासन का नतीजा कम से कम ऊपर की दृष्टि से दिन प्रति दिन बढ़ती हुई भयङ्कर दरिद्रता, निर्बलता, फूट, आए दिन के दुष्काल, मलेरिया, इनफ्लुएञ्ज़ा और प्लेग के सिवा और कुछ दिखाई न दिया। इङ्गलिस्तान के लिए भी, यदि आज भारत के ऊपर से अंगरेज़ों का राज हट जाय तो कल लङ्काशायर के तमाम पुतलीघर और देश के अन्य असंख्य कारख़ाने, जो भारतीय पराधीनता ही के सहारे चल रहे हैं, बन्द हो जायँ, लाखों अंगरेज़ पूंजीपति और मज़दूर बेरोज़गार हो जायँ, और सारा देश आश्चर्यजनक तेज़ी के साथ दरिद्रता, अवनति और बरबादी की ओर जाता हुआ दिखाई देने लगे। नैतिक क्षेत्र में दोनों देशों के लिए नतीजा इससे भी अधिक नाशकर है। हर अन्याय अन्यायी और अन्याय पीड़ित दोनों के लिए एक समान घातक होता है। एक क़ौम के ऊपर दूसरी क़ौम के बलात् शासन द्वारा शासक क़ौम के अन्दर स्वार्थान्धता, क्रूरता और अविवेक का बढ़ते जाना और विवेक, सहृदयता तथा मानव प्रेम

* "There is no nation good enough to govern another nation."—President Abraham Lincoln.

जैसे उच्चतर गुणों का लोप होते जाना स्वाभाविक और अनिवार्य है। इसी तरह शासित क़ौम के अन्दर दिन प्रति दिन स्वार्थ, अनैक्य और कायरता का बढ़ते जाना और प्रेम, आत्मविश्वास तथा साहस का कम होते जाना भी उतना ही स्वाभाविक है। वास्तव में इस प्रकार का अप्राकृतिक सम्बन्ध धीरे धीरे दोनों देशों को नाश तथा मृत्यु की ओर ले जाए बिना नहीं रह सकता।

किसी दो देशों में इस तरह का सम्बन्ध संसार के अन्य देशों के लिए भी हितकर नहीं हो सकता। जरमनी, इतालिया, जापान, अमरीका जैसे बलवान देशों में इङ्गलिस्तान के विशाल साम्राज्य को देख देख कर ईर्षा और बेचैनी होना, और भारत की गुलामी के कारण अफ़ग़ानिस्तान, ईरान, इराक़, टरकी और मिश्र जैसी निर्बल जातियों की स्वाधीनता का और अधिक ख़तरे में होना स्वाभाविक है। अपने भारतीय साम्राज्य को सुरक्षित रखने के लिए ही इङ्गलिस्तान को बार बार अफ़ग़ानिस्तान के मामलों में बेजा हस्तक्षेप की सूझती है। मिश्र के प्रसिद्ध देशभक्त ज़ाग़लूल पाशा ने सच कहा था कि भारत पर अपना साम्राज्य बनाए रखने के लिए इङ्गलिस्तान को नहर सुएज़ की ज़रूरत है, और नहर सुएज़ पर क़ब्ज़ा रखने के लिए मिश्र को पराधीन करने की। इसके अलावा भारत जैसे विशाल देश के राज से विदेशी शासकों के हाथों में इस तरह के लाखों सस्ते तनख़ाहदार और आदर्श हीन सिपाही मिल जाते हैं जिनका अन्य देशों को गुलाम बनाने में आसानी से उपयोग किया जा सकता है। सारांश यह कि दो देशों का इस तरह का

अप्राकृतिक सम्बन्ध संसार के किसी भी देश के लिए हितकर नहीं हो सकता।

इस अप्राकृतिक स्थिति से बाहर निकलने का तरीक़ा भी केवल एक ही हो सकता है और वह यह है कि इन दोनों देशों के इस न्याय विरुद्ध और धर्म विरुद्ध सम्बन्ध का जितनी जल्दी हो सके अन्त कर दिया जावे। इसका उपाय भी अधिकतर शासित क़ौम ही के हाथों में है। ऊपर के समस्त अध्यायों से ज़ाहिर है कि कोई विदेशी शासन किसी देश के ऊपर न बिना शासितों की सहायता के क़ायम हो सकता था और न बिना उनके सहयोग के जारी रह सकता है। हर विदेशी शासन का आहार जिसके सहारे वह शासन ज़िन्दा रहता है वह धन और सम्पत्ति है जो शासक जाति व्यापार के ज़रिए या दूसरे उपायों से शासित देश से कमाती है। इसी तरह वह जीवन प्रद वायु जिसके बिना कोई विदेशी शासन कहीं पर एक क्षण भी क़ायम नहीं रह सकता शासितों का परस्पर अविश्वास और अनैक्य है।

दूसरे शब्दों में भारत और इंगलिस्तान की वर्तमान स्थिति में इस अप्राकृतिक और नाशकर सम्बन्ध को अन्त करने के तीन ही मुख्य उपाय हैं—

१—विदेशी वस्तुओं और ख़ासकर विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार कर देश की बनी वस्तुओं और हाथ के कते और हाथ के बुने खद्दर के उपयोग द्वारा विदेशी शासकों के मार्ग से सबसे प्रबल प्रलोभन को दूर कर देना।

२—विना जाति-पाँति, धर्म, सम्प्रदाय या ऊँच नीच के भेद भाव के समस्त भारतवासियों में परस्पर प्रेम, विश्वास और ऐक्य का संचार करना और ३५ करोड़ देश वासियों के हित के सामने अपने अपने व्यक्तिगत या छोटे छोटे सामूहिक स्वार्थ को तिलाञ्जलि देने के लिये सदा तय्यार रहना।

३—विदेशी शासन में और शासन से सम्बन्ध रहने वाले हर मोहकमे में शासकों के साथ भारतवासी मात्र का वढ़ता हुआ असहयोग।

इन उपायों की सफलता के लिए सवसे वड़ी ज़रूरत इस वात की है और एक प्रकार से इसी में हमारी अन्तिम सफलता की कुंजी है कि हम किसी क़दम पर भी अपने आज कल के जीवन के सर्वोच्च सिद्धान्त और इस युग के सर्वोच्च आदर्श 'अहिंसा' से डिगने न पावें।

यही भारत के लिए उद्धार का एक मात्र मार्ग है और भारतवासियों के लिए धर्म का एक मात्र पथ। इसी पर भारत और इंगलिस्तान दोनों का भावी जीवन निर्भर है। इसी में इन दोनों देशों का और इनके ज़रिए शेष संसार का वास्तविक कल्याण है।

क्या कहाँ

पुस्तक प्रवेश

अ

आ

इ

ई

उ

ए

ऐ

औ

क

ख

ग

च

छ

ज

झ

ट

ठ

ड

त

थ

द

ध

न

प

फ

ब

भ

म

य

र

ल

व

श

स

ह

अध्याय १–५१

अ

आ

इ

ई

ऐ

ग

झ

ट

ठ

ड

ध

न

प

ब

भ

य

र

ल

श

स

ह